आदित्य ग्रन्थमाला – पुष्प १

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र

(आत्मकथा)

हीरालाल शास्त्री

१९७०

प्रकाशक :
आशुतोष शास्त्री,
अनुपम प्रकाशन मन्दिर प्रा० लिमिटेड,
शास्त्री सदन,
खेजड़े का रास्ता, चांदपोल बाजार,
जयपुर–१

प्रथम संस्करण
अगस्त, १९[illegible]०

मूल्य चालीस रुपये

मुद्रक :
रमेशचन्द्र अजमेरा,
अजमेरा प्रिंटिंग वर्क्स,
घी वालों का रास्ता,
जौहरी बाजार,
जयपुर–३

निवेदन

वनस्थली में मेरे ४१ साल पूरे होने के अवसर पर आज के दिन मैं अपना "**प्रत्यक्षजीवनशास्त्र**" प्रकाशित होने के लिए प्रस्तुत करता हूं।

जीवनकुटीर, वनस्थली,
अक्षयतृतीया, सम्वत् २०२७ वि०,
८ मई, १९७०

विनयावनत
हीरालाल शास्त्री

प्रकाशक की ओर से

आपाजी (पण्डित हीरालालजी शास्त्री) ने बहुत लोगों के अत्यन्त आग्रह के बाद अपने बारे में और अपने लम्बे सार्वजनिक जीवन के बारे में कुछ लिखना स्वीकार किया। फलस्वरूप 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' की रचना हुई। यह 'शास्त्र' अक्षय तृतीया, संवत २०२७ वि० तदनुसार ८ मई, १९७० को प्रकाशन के लिए प्रस्तुत हुआ। दादा (श्री सुधाकरजी शास्त्री) ने इसे छपवाने का काम अपने जिम्मे लिया।

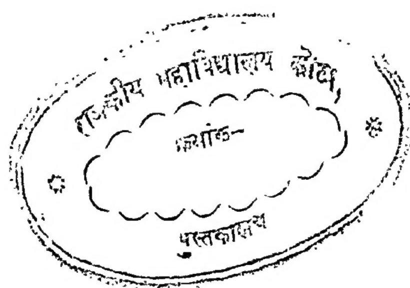
हम लोग पिछले कुछ समय से स्वतन्त्र रूप से मुद्रण और प्रकाशन का काम प्रारम्भ करना चाह रहे थे। इसी हेतु 'अनुपम प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड' के गठन की तैयारी हम लोगों ने की। अनुपम प्रकाशन सामयिक पत्र-पत्रिकाओं और साहित्य के प्रकाशन का काम करेगा तथा समय पाकर मुद्रण-संस्थान भी बनेगा।

यह विचार बना कि जब यह संस्थान मुद्रण प्रकाशन का काम करने वाला है तो इसका शुभ श्रीगणेश 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' के महत्वपूर्ण और उपयोगी प्रकाशन से ही क्यों न किया जाय? यह विचार आपाजी को और भाभी (श्रीमती रतनजी शास्त्री) को भी पसन्द आया।

इस प्रकार एक ओर तो 'अनुपम प्रकाशन' के गठन और पञ्जीकरण की कार्यवाही चली और दूसरी ओर 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' का मुद्रण होता रहा। ग्रन्थ ६ अगस्त, १९७० को तैयार हो गया। अजमेरा प्रिंटिंग वर्क्स के स्वत्वाधिकारी श्री रमेशचन्द्रजी अजमेरा ने विविध कठिनाइयों के बीच भी इसका मुद्रण पूर्ण करवाया, इसके लिए उन्हें साधुवाद है।

'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' अपनी कहानी स्वयं कह रहा है। हमें भरोसा है कि इस 'शास्त्र' का सभी ओर स्वागत होगा।

—आशुतोष शास्त्री



समर्पण

जिनके अन्त समय में

जिनका दर्शन मैं नहीं कर सका

ऐसे पांचों —

मेरी दादी, मेरी बुहा,

मेरे पिता, मेरी माता

और

रतन जी के पिता

की

पुण्य स्मृति

में

—हीरालाल शास्त्री

अनुक्रमणिका

भाग ३

भाग ४

भाग ५

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र

भाग १

पूर्वकथन

भाग १

पूर्वकथन

प्रत्यक्षसत्यस्य विवेचनाय,
निजानुभूतेः परिदर्शनाय ।
स्वकीयचारित्र्यनिरूपणाय,
ग्रन्थं करोमि प्रियरञ्जनाय ।।

मुझ से कई लोगों ने कई बार कहा कि मैं अपना जीवनचरित्र लिखूं। कई सालों तक वह बात मेरी समझ में नहीं आयी। पर आखिर मैंने सोचा कि मैं कुछ लिख ही डालूं तो नुकसान क्या है? खाली लेख लिखने की, खाली भाषण देने की, खाली बात करने की मेरी आदत नहीं रही। मैंने हमेशा अपने काम के बारे में बातचीत की, अपने काम को लेकर लेख लिखे, अपने काम को लेकर भाषण दिये।

मैंने तर्क किया कि अपने जीवन के विषय में लिखना होगा तो वह भी अपने काम के विषय में ही तो होगा? इस प्रकार थोड़ा बहुत लिख डालने का फैसला होगया। लिखे जाने वाले ग्रन्थ का नाम मुझे "प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" सूझा। मुझ जैसे प्रत्यक्षवादी के लिए प्रत्यक्षजीवन तो ठीक है, पर रतनजी ने कहा "शास्त्र" नाम बहुत बड़ा लगता है? मैंने कुछ मजाक में कह दिया "शास्त्री" की कलम से तो "शास्त्र" ही लिखा जा सकता है।

"पूर्वकथन" नाम के पहले भाग के बाद "प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" के दूसरे भाग में मेरा "जीवनवृत्त" है, जिसके कुल पाँच अध्याय हैं। तीसरे भाग में है "रचनापञ्चशती"। अप्रेल, १९६७ से मार्च, १९७० तक के समय में मैंने चलते फिरते १२०० के करीब छन्द बना डाले जिनमें से छांटकर ५०० छन्द रचनापञ्चशती के नाम से दिये हैं, जो पांच खण्डों में विभक्त है। चौथे भाग में कुछ "अतिरिक्त सामग्री" दी गयी है। पाँचवां भाग "उत्तरकथन" नाम से है।

बचपन से लेकर मेरी उम्र के ७१वें साल तक की जो बातें जिस रूप में मुझे याद आती गयीं उन्हें मैंने उसी रूप में ज्यों का त्यों साफ साफ "जीवन वृत" में लिख दिया है, बिना तोड़ मरोड़ के, बिना दुराव छिपाव के। 'रचनापञ्चशती' की या अपनी किन्हीं भी रचनाओं के लिए किसी प्रकार के काव्यत्व का मेरा दावा नहीं है। अपने पास की लिखित सामग्री में से "अतिरिक्तसामग्री" भाग बना है। "उत्तरकथन" में सहयोग स्वीकृति और ग्रन्थविषयक मेरी मर्यादा व भावना का समावेश हुआ है।

मैं कैसा क्या मनुष्य हूँ, मेरी कैसी क्या मान्यताएं रहीं हैं, उनके अनुसार मेरा कैसा क्या जीवन बीता है, यह "प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" का विषय है। मेरे पास जो कुछ प्रायवेट या पब्लिक है सो सब एक जैसा है। उस सब कुछ का संक्षेप में समावेश "प्रत्यक्ष-जीवनशास्त्र" में करने का यत्न किया गया है। एकाध विषय अवश्य छूट गया है और सामग्री तो बहुत सी छोड़ देनी पड़ी है। इस ग्रन्थ में प्रत्यक्ष सत्य का विवेचन है। मेरी अनुभूतियों का परिदर्शन है और मेरे चारित्र्य का निरूपण है और इससे मेरे प्रिय जनों का मनोरंजन होगा। इतिशम्।

हीरालाल शास्त्री

भाग २

जीवनवृत्त

भाग २

जीवनवृत्त

प्रस्तावना

"जीवनवृत्त" के नाम से जो कुछ लिखा गया है वह केवल एक व्यक्ति का जीवनवृत्त मात्र है। उक्त व्यक्ति के जीवन की घटनाओं के सिलसिले में किन्हीं दूसरे व्यक्तियों का जो सम्बन्ध आया सो भी सहज भाव से लिखने में आ गया। बाकी इस वृत्त को किन्हीं सालों के सार्वजनिक अथवा राजनीतिक इतिहास का रूप देने का मेरा विचार नहीं हुआ। इस प्रबन्ध की भाषा वैसी ही हिन्दी भाषा है जैसी मैं स्वयं बोलता हूं। मेरे पास सहज साहित्यिकता है या नहीं सो मुझे पता नहीं है। बहरहाल मैंने अपने लेख में साहित्यिकता लाने की कोशिश नहीं की है। एक के बाद दूसरी बात याद आती गयी और वह मुझे लिखने लायक लगी तो लिख दी गयी। जो बात लिखने लायक नहीं लगी उसे छोड़ दिया गया। बस यही मेरे इस जीवनवृत्त की प्रस्तावना है।

हीरालाल शास्त्री

(१)

बचपन, विद्यार्थिकाल (जोबनेर में)

१८९९ – १९१६

पारीक पुरोहित महामुनि पराशर की सन्तान माने जाते हैं। पारीक पुरोहितों की एक खांप सकराण्यां जोशी है। राजपूताना के जयपुर राज्य के अन्तर्गत जोवनेर कस्बे के सकराण्यां जोशियों के परिवार में मार्गशीर्ष कृष्णा ६, सं० १९५६ वि० तदनुसार २४ नवम्बर, १८९९ को मेरा जन्म हुआ। मेरा जन्म अश्लेषा नक्षत्र में हुआ वताया, जिससे माना जाता है कि मेरी माता का स्वर्गवास मेरे जन्म के लगभग १६ महीने वाद ही हो गया।

सकराण्यां जोशियों के वारे में एक किंवदन्ती मैंने अपने वचपन में सुनी थी। वे लोग किसी राजा की राजधानी में रहते थे। राजा ने ग्रहण के समय उनको सोने का दान देना चाहा। उन्होंने ऐसा दान लेना स्वीकार नहीं किया। राजा ने उनको देश निकाला दे दिया। वे लोग चलते चलते एक वावड़ी के पास पहुंचे और उन्होंने वहां अपना डेरा डाला। वावड़ी का पानी खारा था। उसी समय किसी वनजारे की शक्कर की वालद वहां पहुंची। जोशियों ने पानी मीठा करने के खयाल से तमाम वालद की शक्कर वावड़ी में डलवा दी, तवसे वे सकराण्यां जोशी हो गये।

रावों की पोथियों से मुझे अपनी १५-१६ पीढ़ियों का पता चल सका। मेरे पड़दादा पनजी जोवनेर में और शायद आसपास के गांवों में बसी हुई अपनी जाति में भी खास आदमी माने जाते होंगे। मेरे दादा मंगल जी पर छोटी उम्र में ही गृहस्थी का भारी बोझा आ पड़ा था। कम से कम पांच बहिनें, एक अंधी और बाल विधवा बेटी और छः बेटे उनके थे। कमाने वाले वे अकेले थे। उनका देहान्त चालीसेक साल की उम्र में होगया मालूम होता है। उनके सबसे छोटे बेटे का जन्म उनके देहान्त के तीन महीने बाद हुआ। मेरी दादी पर विपत्ति का पहाड़ टूट गया। उसके पास एक मात्र सहारे के रूप में उनकी अंधी लड़की थी। दोनों मां बेटी ने किस प्रकार अपनी गृहस्थी को चलाया होगा, इसकी कल्पनामात्र से मुझे रोमांच हो जाता है।

घर की तमाम जमीन आदि गिरवी रखने में आगयी। बहुत दुःखी होकर मेरी दादी अपने १०-१५ साल की उम्र के दो तीन बड़े बेटों को लेकर खानदेश चली गयी, छोटे लड़कों को उसने अपनी अंधी बेटी के भरोसे छोड़ा होगा। ऐसा अनुमान होता है कि खानदेश में मेरी दादी और उसके बेटों का गुजारा ठीक ठाक चला। उधर से लौटकर आने के बाद मेरे पिताजी का विवाह हुआ। बाद में संवत् १९५६ के देशव्यापी और भयंकर अकाल के बीच मेरा जन्म हुआ। दूसरे साल १९५७ में पैदावार अच्छी हुई और मुझे अपने आप ही भाग्यशाली होने का श्रेय मिल गया। शायद इसीलिए मेरा नाम हीरा रखा गया।

पुराने जमाने में कैसा रहा होगा सो तो मुझे पता नहीं है। पर जिस जमाने के बारे में मैंने सुनना समझना शुरू किया उससे लेकर दसों साल तक हमारे घर की माली हालत बहुत मामूली रही। जैसे तैसे खेती-बाड़ी और बैल-ऊंट की कमाई से गुजर होता था। मेरे घर वालों से मैंने कई बार "धन खेती धरक चाकरी" सुना था—अर्थात् वे किसी की भी नौकरी करने की कल्पना नहीं कर सकते थे। अस्तु। जब जोर की बारिश होती तो मेरी दादी बोलती—"बरस बावल्या बरस, कोठी कानी बरस"। यानी वह घर के बजाय खेत में बरसने के लिए इन्द्र से प्रार्थना करती। कच्चे मकान थे, उन दिनों जोबनेर में पक्के मकान कम ही थे। अपने कच्चे मकान में मैं हर साल अनाज भरा हुआ देखता था। मेरे पिताजी को भैंस गाय रखने का शौक था, इसलिए हमारे घर में घी, दूध, दही, छाछ की कमी कभी नहीं रही। बाकी तो कस्बे के बाजार से जो कुछ मिल जाता था उसीसे काम चलता था। मैंने केले, सन्तरे काफी बड़ा होने पर देखे। आम भी हमारे गांव में बाहर से कभी कभी आते थे। गन्ना तक भी हमारे यहां नहीं था। पान की दुकान नहीं थी। चाय का तो नामोनिशान भी नहीं था।

मेरी माता का देहान्त हुआ तब मेरे पिताजी की उम्र २५ साल की होगी। लोग उनसे दूसरा विवाह कर लेने की बात करते तो वे एक ही जवाब देते कि मैं विवाह कर लूं तो मेरे इस नन्हें बच्चे का क्या होगा। नितान्त उन्होंने अपना दुबारा विवाह नहीं

किया। अपने पांचों छोटे भाइयों के विवाह मेरे जन्म के आठेक साल के भीतर उन्होंने कर दिये, एक भाई का विवाह दो वार किया। पर वे खुद उस जमाने में और उस उम्र में जैसे के तैसे एकाकी विधुर ही बने रहे। मेरे दो छोटे काकाजी 'परदेश' में रहते थे। उनमें से एक की सगाई हुई तव उनको बुलाने के लिए उधार पैसे लाकर तार दिया गया तो उनका जवाब आया कि सफर खर्च भेज दो तो मैं आ जाऊं। विवाह की लागत का रुपया वे लाएं, इसके बजाय उनके खुद के आने के लिए सफर खर्च भेजा गया तव वे आये। ऐसी कमाई वे करते थे। ऐसी हालत में ही लगातार तीन विवाह कुछ महीनों के भीतर हुए तो गांव वालों ने समझा कि ये लोग बड़े "भागवान" हैं। उन दिनों ५०० रुपये लगा दिये जाते तो लड़के का विवाह वहुत अच्छा समझा जाता था।

मेरी माता का देहान्त मेरे ननेरे में हुआ था। मेरे पिताजी हम दोनों को लाने के लिए ससुराल गये थे। उन्हीं दिनों उनके वहां रहते ही मेरी माता चल वसी। तो मेरे पिताजी मुझको अकेले ही लेकर जोबनेर पहुंचे। धुँधली सी झलक पड़ती है कि मेरे पिताजी मुझे अपने कंधे पर विठा कर लाये थे। मेरी दादी ने पूछा, भाया श्रीनाराण—वीनणी कठै ? पर वीनणी तो स्वर्ग सिधार चुकी थी। घर में कुहराम मच गया। उस सारे दृश्य के विचार मात्र से मैं आज भी कांप उठता हूं। मुझे पड़ोस में रहने वाली कानी नाम की गूजरी माई के स्तन से दूध पिलाने का इन्तजाम किया गया। कानी माई को जब तक वह जिन्दा रही मैं मानता रहा। वह चेहरे मोहरे से मुझे "क्वीन विक्टोरिया" सी लगती थी। मेरी दादी और बुहा ने मुझे पाला। छः भाइयों के परिवार में मैं विना माता का अकेला और भाग्यशाली समझा जाने वाला एक मात्र वच्चा था। इसलिए मेरा वेहद लाड़ प्यार हुआ। जो कुछ होता सो मेरे लिए ही होता। मेरा कोई पांतीदार नहीं था। इसलिए मैं इकलखोरा वन गया। कभी मैं मामूली सा भी वीमार होता तो मेरी दादी और तमाम घर वाले मुझे घेर कर बैठे रहते और मेरी दादी को मैं यह कहते सुनता — "भगवान ई की सारी पीड़ा मनै दे दे" एक वार मुझे बुखार था उसी समय किसी पड़ौसी का लावणा आया, सो मेरी दादी ने मुझे थोड़ा सा खिला दिया। मैंने खा लिया तो वह वहुत खुश हुई। परन्तु मेरे बुखार ने तो आखिर टायफाइड का रूप ले लिया। लगातार दुवारा टाइफाइड हो गया और मेरी ऐसी हालत हो गयी कि मेरे वचने की आशा छूटने लगी। उसी हालत में मुझे छोड़कर मेरे पिताजी रातों रात पैदल चलकर १० कोस दूर एक गांव पहुंचे जहां एक आदमी में किसी एक स्वर्गवासी वावाजी का भाव आता था। वावाजी ने मेरे पिताजी से कह दिया—"भोला, जा वच्चो ठीक हो जासी।" मैं वच गया।

मैं शायद ६ साल का हुआ तव मुझे मदरसे विठा दिया गया था। जोवनेर के यशस्वी ठाकुर साहव कर्णसिंहजी ने मेरे जन्म के पांचेक साल पहले ही जोवनेर में हाई स्कूल खोल दिया था। उक्त हाई स्कूल को ठाकुर साहव कर्णसिंहजी के सुपुत्र रावल साहव

नरेन्द्रसिंहजी चलाते रहे। अन्त में वही स्कूल शानदार कृषि कालेज हो गया जिसमें आज कल एम० एससी० तक की पढ़ाई है। स्कूल को गांव के लोग मिदरसा बोलते थे, क्लास को गिलास और इम्तिहान को अंत्र्याम और मास्टर साहब को मांट साव या उस्ताज्जी और मौलवी साहब को मजाक में मोल्या साव बोलते थे। मुझसे ३–४ क्लास ऊपर पढ़ने वाले जयसिंहजी ने हाल ही में मुझे बताया कि एकबार मास्टर भवानीरामजी ने ४-५ बड़े लड़कों से कहा कि मेरे पास कक्षा ३ में एक बेहद होशियार लड़का है—तुम लोग उससे जो चाहे सवाल पूंछ सकते हो। लड़के मेरे पास आये और लगे सवाल पूंछने। जयसिंहजी का कहना है कि मैंने सब सवालों के बढ़िया उत्तर देकर लड़कों को निरुत्तर कर दिया। क्या सवाल उन्होंने पूंछे थे और क्या जवाब मैंने दिये थे. सो किसी को याद नहीं है। पर उसके बाद की बात मुझे याद है। चौथे क्लास के शशमाही इम्तिहान में मेरे इतने ज्यादा नम्बर आये थे कि बड़े ठाकुर साहब ने मुझे बुलाकर देखा और मुझे डबल प्रमोशन दिलवा दिया। परन्तु वह डबल प्रमोशन मेरे लिए अभिशाप सिद्ध हुआ। चौथे क्लास का शशमाही इम्तिहान दिया हुआ मैं छठवें क्लास के उसी साल के सालाना इम्तिहान में कैसे पास हो सकता था ?

मेरे पिताजी बहुत थोड़े पढ़े लिखे थे। मैंने अपने घर में हनुमान चालीसा और फटी पुरानी दो एक किताबों के अलावा कुछ नहीं देखा। उन दिनों में किसी स्त्री के पढ़ने का तो सवाल ही नहीं था। पर मेरी माता की शोभा मैंने बहुत सुनी। मुझे सुनाने वाले सब लोग उसे साक्षात् लक्ष्मी बताते थे। अभाव के समय और खास कर अकाल के जमाने में अपने घर में जैसी भी हालत रही होगी उसी में मेरी माता प्रसन्न रहती थी। मेरे पिताजी एक प्रकार के "लीडर" थे। उनकी पंचायती जोबनेर और आसपास के गांवों में बहुत चलती थी। उनका स्वभाव तेज था और कोमल भी। वे सरल प्रकृति के थे। मैंने उनकी एक बात बहुत मजेदार सुनी। वे खानदेश से लौटकर आये तब उन्होंने अपने एक छोटे भाई को गाय दुहते हुए देखा तो वे बोले "अरै हत्यारा ! तू बापड़ी ई गाय का बोबा क्यों खींचै छै"।

मेरे पिताजी मुझको "उड़ती चील का अंडा" कहा करते थे। ऐसे अंडे को उन्होंने सेया। उनका जीवन सिर्फ मेरे लिए था। वे बार बार मेरी पढ़ाई के बारे में मुझसे और दूसरों से भी पूंछते रहते थे। मुझे स्कूल और खेल मैदान के अलावा कहीं भी नहीं जाने देते। पढ़ाई के अलावा कोई सा भी दूसरा काम मुझसे कोई करा लेता तो वे उससे झगड़ा करते थे। वे कहते बच्चे की पढ़ाई क्यों ठलाते हो। ठाकुर साहब आर्यसमाज के अनुयायी थे। उनके यहां कभी कभी सभा, भजन और हवन होता था उसमें भी मैं जा सकता था। कभी किसी मंदिर में कथा होती तो उसमें भी मैं जा सकता था। एक सभा में एक उपदेशकजी ने "संध्या" पर बड़ा सुन्दर भाषण दिया। मैंने पण्डितजी का सुबह शाम पीछा किया, यह देखने के लिए कि पण्डितजी कैसी बढ़िया संध्या करते हैं ? पर मुझे पंडितजी की संध्या

देखने को नहीं मिली। मुझे वड़ी ग्लानि हुई। मैंने वड़ी छोटी उम्र में आर्यसमाजी पद्धत्ति से संध्या करना सीख लिया था। एक दिन मैं संध्या कर रहा था तव एक लड़के ने मुझे छेड़कर हंसा दिया। मैंने उसकी मां से शिकायत की, तो वह वोली—"तूने संध्या में ऐसा क्या मन लगाया कि किसी ने तेरे पास आकर तुझे हंसा दिया"। मुझे शर्मिन्दा होना पड़ा।

इस प्रकार के नियंत्रित जीवन का मुझ पर कई तरह का खास असर पड़ा। एक तो मैं कुसंग से वच गया, और दूसरे मैं दूसरा कोई काम नहीं सीख सका। मैं आजकल भी हाथ का रूमाल तक नहीं धो सकता। मुझे कभी पैदल नहीं चलने दिया गया। मेरी ऐसी आदत होगयी कि मैं हाथ में जरा सा भी सामान लेकर नहीं चल सकता। किसी दुकानदार से कोई चीज नहीं खरीद सकता। किसी ज्यौणार में मैंने कभी किसी को आवाज लगाकर कोई चीज नहीं मांगी। इसलिए मेरे घर वाले कहते—"ओ तो मांग्या मूंडा को छै"। मैंने शायद ही स्कूल की नागा की होगी और कभी भी मैं स्कूल में देर से नहीं पहुँचा। घड़ी गांव भर में दो एक ही होगी। छाया देखकर समय का अन्दाज लगाते थे। उन दिनों स्कूल में पिटाई खूव होती थी, पर मेरा पिटने का नम्वर एक वार भी नहीं आया। मेरे पिताजी मेरे पास कितावों, पाठ्य सामग्री आदि की कोई कमी नहीं होने देते थे, जवकि कुछ पैसे वाले घरों के लड़के कितावों के लिए तरसा करते। मामूली गांवाई कपड़े ही सही, पर कपड़ों की मेरे पास कभी कमी नहीं होती थी। राउन्डर के गेंद वल्ले मेरे पास वरावर वने रहते थे। गर्मी की छुट्टियों में हम लोग दिन भर ताश खेलते सो ताशों की कमी भी मेरे पास नहीं होती थी। मैं सातवें क्लास में पहुंचा तव ठिकाने में धनाभाव होने के कारण स्कूल की हालत वहुत विगड़ चुकी थी। न पढ़ाई का पता न खेल कूद का। स्कूल के संस्थापक ठाकुर कर्णसिंहजी के सुपुत्र ठाकुर नरेन्द्रसिंहजी जैसे-तैसे अपने पिताजी की वात को निभा रहे थे। ऐसी हालत में मैंने प्रायः तमाम पढ़ाई अपने आप ही की। एक मात्र खेल था चिथड़ों की या सूत की गेंद का राउण्डर। कभी कभी हम लोग मोई डंका और कवड्डी आदि भी खेलते थे। मैं पढ़ाई में सवसे आगे था, तो राउण्डर में भी मेरा मुकावला कोई नहीं कर सकता था। तमाम लड़कों में मेरी धाक थी।

मेरा शरीर अच्छा था। मैं शुरू से ही लम्वा पूरा जवान जैसा था। एक वार मैंने एक लड़के से कहा कि उल्टा होकर अपने आधे शरीर को इस पड़दी पर टिकादे, मैं तेरी टांगे पकड़ कर थाम लेता हूँ। उसने ऐसा ही किया तो मैंने उसकी टांगों को वाहर की ओर इतना खेंचा कि वह वेचारा नाक के वल गिरा और खून निकलने से वह लहू-लुहान होगया। एक दिन मेरे साथ खेलने वाली एक लड़की और उसके दो भाइयों से मेरा झगड़ा हो गया। मुझे इतने जोर का गुस्सा आया कि मैंने छोटे लड़के को पूरा उठा लिया और उसी की वड़े लड़के के मार दी। यह अजीव सा जुर्म था, इसलिए मेरी दादी की कचहरी में सिद्ध नहीं हो सका। मेरी दादी ने कहा कि एक लड़का दूसरे लड़के को उठाकर तीसरे लड़के के कैसे मार सकता है—यह वात झूठी है। एक दूसरे मौके पर मुझे

गुस्सा आया तो मैंने एक दौड़ते हुए दूसरे लड़के का पीछा किया। वड़ी देर से वह पकड़ में आया तो मैंने उसे पूरा का पूरा उठाकर एक कांटों की वाड़ में फैंक दिया। मैं तीर का और पत्थर का वहुत अच्छा निशानेवाज था। एक वार गुस्से में आकर मैंने एक लड़के को गेंद की ऐसी जोर की मारी कि वह धड़ाम से गिर पड़ा, जैसे गोली लग गई हो। एक वार एक लड़के के कान पर ऐसी गेंद मारी कि उसकी सोने की डवल मुकियां कान को तोड़कर कहीं ऐसी गिरीं कि कभी मिली ही नहीं। इस सवके विपरीत मेरे स्वभाव में वड़ी कोमलता थी जिससे मैं अपने साथियों की पढ़ाई आदि में मदद किया करता। उन्हें अपनी किताबें दे देता। मैं वड़ों की वहुत इज्जत करता था। मैं वेहद संकोची स्वभाव का था।

नंगे पांव करीव करीव दौड़ते हुए सीधा डूंगर पर चढ़ जाना, लपकते हुए पेड़ पर चढ़ जाना और कहीं से भी कूद पड़ना और पेड़ की डाल पर उल्टे लटक जाना मेरे लिए वहुत आसान था। इन सवके मुकावले में एक दूसरे गांव में एक वार एक मामूली से लड़के ने मुझे पछाड़ दिया। स्कूल के एक वड़े लड़के ने मुझे पीट डाला और एक दिन ठाकुर साहव के वाग में से चुपके से अनार तोड़ता हुआ पकड़ा गया सो वाग- वान के हाथ से मेरी पूजा हो गयी—भली वात यह हुई कि किसी दूसरे ने यह तमाशा नहीं देखा। एक वार एक वदमाश वन्दर से मेरा वेमौके मुकावला हो गया—वह ऊपर की तरफ अच्छी जगह था और मैं नीचे की तरफ एक खराव सी जगह पर। वन्दर मुझे गिरा कर मार देना चाहता था। कड़ा मुकावला हुआ। आखिर मैं कैसे भी करके वन्दर वाली जगह पहुँच गया। और फिर तो वन्दर आगे और पत्थर फेंकता हुआ मैं वन्दर के पीछे। सारा डूंगर नापने में आगया।

वचपन में मैं एक नम्वर 'ऊवमी' था। मेरे शरीर का दाहिना हिस्सा कई जगह से टूटा हुआ, कटा हुआ है। कभी किसी पेड़ पर से गिर जाना, कभी अचानक किसी गाड़ी पर से गिर जाना, कभी ऊंट पर से गिर जाना, कभी कांटेदार थोरों पर से कूदते समय पांव के कड़ों में धोती उलझकर कांटों में गिर जाना, कभी टांटियों के छाते के पास फंस जाने से असंख्य टांटियों द्वारा काटा जाना, इस तरह कुछ न कुछ होता ही रहता था। एक वार वोर्डिंग के वड़े वड़े लड़कों ने वाजार पर चढ़ाई कर दी। मैं छोटा था, पर मैं पीछे से पत्थरों की वौछार करता रहा। एक दिन दिया वत्ती के वाद मैं रूठ कर एक पड़दी पर जा लेटा और वहीं मुझे नींद आ गयी। अंधेरे में घर वालों ने अपने प्यारे भाया को सारे गांव में खोज डाला। मैंने अचानक करवट वदली और धड़ाम से गिर पड़ा। घर वालों को इस तरह से भाया विना खोजे ही मिल गया। मेरे घर वालों की ठाकुर साहव के साथ नहीं पटती थी सो किसी न किसी वात पर झगड़ा वढ़ जाता था। दो एक वार मैंने देखा कि मेरे काकाजी ठाकुर साहव के एक या ज्यादा प्रतिनिधियों की थप्पड़ और लकड़ी से खवर ले रहे हैं। एक वार मैंने देखा कि मेरे काकाजी मारवाड़ के भेड़ वकरी

चराने वालों को बुरी तरह से पीट रहे हैं, उन्हें उछल-उछल कर लातों से मार रहे हैं। एक वार मैंने देखा कि अंधेरी रात में नाई वाली चिराग के कम उजाले में जीमते हुए मेरे काकाजी ने परोसने वाले एक आदमी के लपक कर जोर की चपत जमा दी–उस आदमी ने हमको जात वाहर वता दिया था। इन सब तमाशों में मुझे वड़ा मजा आता था। एक वार एक ऊंट न मेरा पीछा किया तो मैं एक पेड़ के पीछे हो गया। मैं और ऊंट पेड़ का चक्कर काटते रहे। आखिर किसी ने आकर मुझे छुड़ाया। एक वार १२–१३ साल की उम्र में १४–१५ साल की उम्र वाले मेरे एक पक्के दोस्त से मेरा द्वन्द्व युद्ध हो गया। युद्धस्थल पहाड़ की एक कगार थी जिसके नीचे हम लोग गिरते तो दोनों का चकनाचूर हो जाता। पर हम एक दूसरे को गिरा नहीं सके तव दोनों हार कर वैठ गये और हमारे प्राण वच गये।

हम लोगों को मिडिल की प्रायः सारी पढ़ाई खुद ही करनी पड़ी। उन दिनों एक मास्टर श्री भवानीराम जी थे जो खुद मिडिल पास न होते हुए भी अंकगणित में तेज थे। वाद में एक मैट्रिक पास हैडमास्टर श्री शंकरसिंह जी आये, उनको हाई स्कूल तक का प्रायः सारा गणित जवानी याद था। मुझे इंटर फेल हैडमास्टर श्री रामेश्वरदयालजी शर्मा भी याद आते हैं जिनका गणित में वी० एससी० तक को सिखा देने का दावा था। मिडिल में हम पांच साथी थे। मैं अंग्रेजी की भूगोल को ठीक नहीं समझ पाया था, मुझे नक्शा खेंचना विल्कुल नहीं आता था। इसका नतीजा यह हुआ कि मैं अजमेर की मिडिल परीक्षा में वैठा तो वाकी सव विषयों में पास, पर भूगोल में फेल होगया। मेरे दूसरे चारों साथी प्रायः सभी विषयों में फेल। मुझे नवीं में चढ़ा दिया गया। नवीं के साथ-साथ मुझे मिडिल परीक्षा में दुवारा विठाया गया। नवीं में तो मैं पास हो ही गया, साथ में मिडिल में मुझे फर्स्ट डिवीजन तथा गणित और संस्कृत में डिस्टिंक्शन मिला। हाई स्कूल की परीक्षा में मैं जयपुर राज्य में फर्स्ट आगया तो मेरे वेहद होशियार होने की छाप लोगों पर पड़ गयी। स्कूल की पढ़ाई के साथ मैं वड़े शौक से संस्कृत का अध्ययन भी करने लगा। हमारे हैड मास्टर श्री जयदेव जी शर्मा विद्यालंकार ने मेरी रुचि संस्कृत में पैदा करदी और मुझे संस्कृत का अच्छा पढ़ना लिखना आगया। एक दूसरे ब्रह्मचारी जी के सम्पर्क से मैंने कुछ उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र का एक अच्छा हिस्सा विना समझे ही रट डाला। मुझे पढ़ने, लिखने और अपने गांव के डूंगर का नंगे पांव चक्कर लगाने का वड़ा शौक था। दिन भर खेलने से कई वार मेरे पांव सूज जाते थे। झूले के दिनों में मैं इतना झूलता था कि हाथ लहू लुहान हो जाते थे। सर्दी के मौसम में विना घड़ी के न जाने कितने वजे उठ कर गांव के वाहर वाग में विद्यालंकार जी के पास मैं संस्कृत पढ़ने को पहुँच जाता था। यह सव कुछ तो हुआ, होता रहा। पर मुझे राउण्डर के अलावा दूसरे खेल खेलने का, गाने वजाने का, भाषण देने के लिए खड़े होने का, नाटक खेलने-देखने का, पड़ौस में जलाशय न होने से तैरने का ऐसे कोई मौके नहीं मिले। इसलिए इन कामों में मैं कोरा ही रह गया।

मेरे पिताजी का कौल था कि हाई स्कूल पास करने से पहले मेरी सगाई और बी० ए० पास करने से पहले मेरा विवाह न किया जाय। मेरे लिए न जाने कितनी सगाइयां आती रही होंगी। पर मेरे पिताजी सबको टालते रहे। वे अपने विचार के बहुत पक्के थे। मैं सातवीं या आठवीं क्लास में था तब मेरे एक काकाजी अपनी ससुराल गये और वे मुझे भी साथ ले गये। वहां पर एक लड़की के घर वालों को 'लड़का' पसन्द आ गया और मेरे काकाजी मेरी सगाई मंजूर कर आये। घर लौटने पर मेरे पिताजी का अपने छोटे भाई से लम्बा झगड़ा चला। पर सगाई तो हो चुकी थी, अपने भाई की जबान को मेरे पिताजी नहीं टाल सकते थे। ऐसा जमाना था वह।

हाई स्कूल की परीक्षा देने के लिए हम दो लड़के जयपुर गये, सबलसिंह राठौर और मैं। ठाकुर साहब ने हमारे भोजन का इन्तजाम जोबनेर हवेली के पड़ौस की एक ब्राह्मणी के यहां किया। ब्राह्मणी बिना छिले हुए आलुओं का रसेदार साग बनाती थी। जयपुर शहर में साग के रसे को "झोली" बोलते हैं। ब्राह्मणी मुझसे कहती—भायाजी झोली लेल्यो। पता नहीं भायाजी ने उस समय कितनी झोली ब्राह्मणी के हाथ से ली होगी, पर ब्राह्मणी के वरदान से मेरे हाथ में ऐसी झोली आयी कि वह इस घड़ी तक नहीं छूटी है। झोली ने मेरी गिनती देश के मशहूर और कामयाब मांगने वालों में करा दी। मेरी दादी मुझे असीस देती—"भाया थारी लाखां पर लेखण चाल ज्यो"। दादी का आशीर्वाद फलीभूत हुआ और मेरी लेखनी करोड़ों पर चली। पर वह सब पराया पैसा था। खुद का पैसा मेरे पास कभी हुआ ही नहीं।

यहां मैं अपने रहन-सहन की बात भी थोड़ी सी बता दूंगा तो ठीक रहेगा। जल्दी उठना, खूब पढ़ना लिखना, जौ की रोटी नवनीत से खाकर, दही-छाछ-खा पीकर मदरसे जाना। तीसरे पहर घर आना, फिर सवेरे की जौ की रोटी घी शक्कर से या छाछ-मिर्च से खाना और फिर दियाबत्ती के समय तक खूब खेलना। रात को थोड़ा बहुत पढ़ना। छुट्टी के दिन डूंगर की सैर पर जाना या दिन भर खेलना, गर्मी की छुट्टियों में दिन भर ताश खेलना। घर में अकेला बच्चा था सो जितना लावणा आता मुझे ही मिलता। जब कभी विशेष भोजन घर में बनता तो मेरा नम्बर सबसे पहले और सबसे ज्यादा आता। इस प्रकार मेरी ज्यादा खाने की आदत पड़ गयी। पाचनशक्ति बहुत अच्छी थी इसलिए कभी-कभी घर भर के लिए बनी सारी रोटियों को मेरे सबसे छोटे काकाजी के साथ जमकर खत्म कर देने का खेल हो जाया करता था।

पर ऐसी किसी भी गड़बड़ के कारण मेरा पेट खराब नहीं हुआ। उस जमाने में सर्दी के मौसम में गोंद आदि के लड्डू बना कर खाने का रिवाज था। बूढ़े लोग मेथी या या सौंठ के लड्डू खाते थे। एक दफा किसी के लिए बने हुए मेथी के तमाम लड्डू मुझे खिला दिये गये। मेरे मुंह में छाले हो गये। और मेरे दांत हिल गये। दांत मेरे पहले से भी अच्छे नहीं थे। पर ऐसा लगा जैसे मेथी के लड्डुओं ने मेरे दांतों को समाप्त ही कर

दिया हो। जो हो दैवी चमत्कार से मेरे दांत वच गये और उनसे मेरी काफी उम्र हो जाने तक काम चल गया। एक वार मेरी आंखें वहुत जोर की आयीं। कई महीनों तक तकलीफ देने के वाद ठीक हुई। मेरी आंखें पहले भी वहुत वड़ी नहीं थीं, पर लोगों ने वताया कि दुखनी आने के वाद वे और भी छोटी हो गयीं। इसके अलावा मैं वहुत ज्यादा स्वस्थ [illegible]ार पहलवान सा रहा। पर मेरे जरा सा कान का दर्द भी होता तो मैं सारे घर [illegible]े चा[illegible]ेना था। जव मुझे वुखार आता तो कभी-कभी गुस्से में आकर मैं अपनी काकियों के थप्पड़ लगा देता। नींद में मुझे जगा देने वाले की खैर तो कभी नहीं थी।

एक वार के अलावा जोवनेर में मुझे कभी रामलीला, रासलीला या नाटक देखने का मौका नहीं मिला। एक वार मैं और मेरा एक मजाकी साथी रास देखने गये। पैसों की थाली फिरी। हमारे पास पैसे कहां थे? थाली वाले को आता देखकर मेरा साथी अपनी धोती के "अंट" के पास अपना हाथ ले गया। थाली वाले ने सोचा पैसा निकाला जा रहा है। थोड़ी देर वाद मेरा साथी मुँह मटका कर वोला "म्हांटा मैं तो खाज खोरूं छूं।" मेरे पिताजी शादी-विवाहों में दूसरे गांव जाते तो मुझे भी ले जाते। वे दिन वड़ी मौज के होते थे। कभी-कभी खूव भूखे मरने के वाद जीमना मिलता। कभी-कभी पिताजी अपनी पंच की हैसियत का उपयोग करके मुझे मेवा आदि दे देते। गीत सुनने को वहुत मिलते। गीत मुझे शुरू से ही वहुत अच्छे लगते थे। और किसी की टांग, किसी की पूंछ—ऐसे वहुत से गीत और उनकी लय मुझे आज भी याद है। मुख्यतया वचपन में सुने हुए गीतों के आधार पर मेरे कई एक गीत वाद में वन गये।

---

(२)

विद्यार्थिकाल (जयपुर में)

१९१६ – १९२१

मैं जयपुर से हाई स्कूल की परीक्षा देकर लौटकर आया तभी यह सोच–विचार होने लगा कि आगे क्या करना। उन दिनों जयपुर शहर में रहने का खर्चा कोई ज्यादा नहीं लगने वाला था। पर नकद का थोड़ा साधन भी घर में नहीं था। ऐसी हालत में मेरे एक काकाजी मुझे जयपुर ले गये, रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ जी एम० ए०, मेम्बर कौंसिल के पास। पुरोहित जी साहब की पत्नी के काकाजी की लड़की के साथ मेरी सगाई हो चुकी थी। उन्होंने मुझसे पूछा—क्या चाहते हो, नौकरी करना या आगे पढ़ना ? मैंने तुरन्त कह दिया, मैं आगे पढ़ना चाहता हूं। उसी समय जवाब मिला— "अच्छी बात है, परीक्षाफल निकलने पर आ जाना।"

परीक्षाफल इलाहाबाद के लीडर के दैनिक अखबार में निकला। इलाहाबाद युनिवर्सिटी की मैट्रिकुलेशन परीक्षा थी वह। मैं सैकन्ड डिवीजन में पास निकला। मेरा दूसरा साथी पास नहीं हो सका। हाई स्कूल में हमारे लिए पढ़ाने का काम चलाऊ सा इन्तजाम भी नहीं था। श्री जयदेवजी शर्मा विद्यालंकार कुछ समय के लिए हैडमास्टर हो गये थे। उन्होंने मुझे बहुत पसन्द किया और वे मुझे अलग से संस्कृत पढ़ाने लग गये। घर में न

घड़ी थी, न रोशनी का अच्छा इन्तजाम। सर्दी के मौसम में जब आंख खुलती तभी में गांव के बाहर कुछ दूरी पर बाग में विद्यालंकार जी के पास पहुंच जाता था। उन्होंने मुझे पंचतंत्र का एक हिस्सा पढ़ाया, एक हिस्सा पण्डितराज जगन्नाथ के भामिनीविलास का भी। मेरी पढ़ाई में एक राजकृष्ण बनर्जी की अंग्रेजी में लिखी हुई छोटी सी संस्कृत ग्रामर थी। उससे मुझे संस्कृत व्याकरण का काम चलाऊ बोध हो गया। मेरा मन होने लगा कि मैं अंग्रेजी छोड़कर केवल संस्कृत पढ़ूं। कुछ समय के लिए एक दूसरे हैडमास्टर श्री मुहम्मद इशाक कुरैशी आ गये थे। उन्होंने कहा अंग्रेजी मत छोड़ना, संस्कृत पढ़ना चाहो तो अंग्रेजी के साथ साथ पढ़ो। यह बात मेरी समझ में आ गयी।

मेरे पास हो जाने का तीन–चार लाइन का कार्ड पुरोहित जी साहब का लिखा हुआ मुझे मिला तो मैं फूला न समाया। जयपुर राज्य की कौंसिल के मेम्बर ने मुझे 'प्रियवर' लिखा था, सारा कार्ड अपने हाथ से। मैं जयपुर पहुँचा, एक के बजाय दो साफे, एक के बजाय दो कोट और एक के बजाय दो जूता जोड़ी। पुरोहित जी साहब की ख़ास हवेली में मेरा डेरा हुआ। पर हवेली के सामने एक नोहरा था वह मुझे ज्यादा पसन्द आया और मुझे वह नोहरा रहने के लिए मिल गया। अच्छी जगह थी वह। मैं पांच साल तक उसी नोहरे में रहा। कभी–कभी मेहमान भी वहां ठहरा दिये जाते थे। एक बार एक नव विवाहित दम्पति को वहीं ठहरा दिया गया। मुझे वहां से हटना पड़ा। मैंने जिन्दगी में पहली बार और शायद आखिरी बार भी पुरोहित जी साहब को शिकायत लिख भेजी। उन्होंने उसी कागज पर एक दोहा लिख भेजा जिसका अर्थ था जो दूसरों के आराम के लिए खुद तकलीफ उठाता है वह आदमी अच्छा होता है। इस उपदेश ने मुझे लज्जित कर दिया और इसका मेरे जीवन पर बड़ा असर पड़ा।

मैं गणित में खास होशियार था।मैं चाहता था कि इंटरमीजिएट में गणित और संस्कृत दोनों ले लूं। पर ऐसा जोड़ महाराजा कालेज में नहीं था। मुझे अंग्रेजी और संस्कृत के अलावा प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास दोनों लेने पड़े। साथ में यह भी फैसला हुआ कि मैं संस्कृत में साहित्योपाध्याय की परीक्षा दे दूं। दोनों की पढ़ाई शुरू हुई, महाराजा कालेज में इन्टरमीजिएट और साहित्योपाध्याय प्रायवेट। कालेज में अंग्रेजी के प्रोफेसर अच्छे थे, संस्कृत वाले भी अच्छे थे। पर इतिहास पढ़ाने वाले कुछ ऐसे ही थे। और मेरे पास संस्कृत की परीक्षा की तैयारी का बहाना भी रहता था। इतिहास में मेरा मन बिल्कुल नहीं लगा। हिन्दुस्तान और इंग्लैंड का इतिहास मेरा पढ़ा हुआ था और वह मुझे खूब याद था। साहित्योपाध्याय की पढ़ाई के लिए मैं पंडित बिहारीलालजी महाराज (साहित्य–वेदान्ताचार्य) के घर पर जाता था। पुरोहित जी साहब के यहां पंडितों का आना जाना विशेष था। उनमें पंडित बिहारीलाल जी महाराज बहुत सीधे सादे थे। वे साहित्याचार्य तक पढ़ाने वाले प्रोफेसर थे, पर वेतन उनको ३० रु० मासिक मिलता था। मैंने पिछली गर्मी की छुट्टियों में ही कुछ पद बनाना शुरू कर दिया था।

एक पद्य में मैंने पिंजरे में बन्द सिंह की कल्पना की थी। पुरोहित जी साहब ने पंडितों को मेरी रचना दिखायी। रचना में कोई खास बात नहीं थी। पर पण्डित लोगों की निगाह में मैं बहुत ऊंचा उठ गया और पुरोहित जी साहब तो मुझे बहुत ज्यादा होनहार मानने लग गये। मेरे साहित्योपाध्याय के फार्म पर गुरु के स्थान पर उन्होंने खुद ने हस्ताक्षर किये।

उन दिनों जयपुर शहर में शहरपना बहुत कम था। चाय की एक भी दुकान मैंने नहीं देखी। नाई की दुकान भी नहीं थी। बाजारों में गैस की रोशनी थी। बिजली नहीं आयी थी। टेलीफोन नहीं था सारे शहर में एक या ज्यादा से ज्यादा दो मोटरें थीं। सिनेमा तो था ही नहीं—नाटक भी साल में एकाध बार होता होगा। शहर के दरवाजे रात के ९ बजे से सुबह के ४ बजे तक बन्द रहते थे। ज्योणारें बहुत होती थी जिनमें राज के 'हैड़ों' की प्रमुखता सी लगती थी। जीमने के लिए टिकिट आते थे। टिकिट लेकर जीमने जाना मुझे बहुत नापसन्द था। लोगों को यह बात बहुत विचित्र लगती थी, क्योंकि जीमने का चाव साधारणतया सभी को था। दूसरों की निगाह में मैं अप्रिय सा हो गया। शहर में मेले बहुत भरते थे। मैं एक बार भी मेला देखने नहीं गया। मेलों में ज्यादातर गन्दे गीत गाये जाते थे। मेरा ध्यान तो सिर्फ मेरी पढ़ाई में था। भोजन मुझे मिल ही जाता था। कपड़े मेरे पिताजी बनवा देते थे। पुरोहित जी साहब ने मेरी बतायी हुई सब पुस्तकें मंगवा दीं। हाईस्कूल में फर्स्ट आने से मुझे राज्य से छात्रवृत्ति भी मिलती थी।

याद नहीं क्या कारण हुआ होगा, पर इतना याद है कि मैं इन्टरमीजिएट के फर्स्ट ईयर की परीक्षा में नहीं बैठ सका। बिना परीक्षा के ही मुझे सैकण्ड ईयर में चढ़ा दिया गया। साहित्योपाध्याय की परीक्षा में मैं बैठा। मेरी अच्छी तैयारी हो गयी थी, पर एक पेपर "न्याय मीमांसा" का था, उसका विषय मुझे कम याद था। उस समय मेरे पास दो चार मेहमान ठहरे हुए थे। उनके साथ मैं रात भर ताश खेलता रहा। सवेरे वह कठिन पेपर था। जो होना चाहिए था, वही हुआ। उसी गर्मी में मेरा विवाह मंड गया। मेरे पिताजी जयपुर आये, वे कभी नहीं आते थे मेरे पास, मैं ही छुट्टी मिलने पर जोबनेर जाया करता था। विवाह की खबर सुनकर मैं बहुत उत्साहित हो गया था, ऐसा मुझे याद है। विवाह के उन तीन चार दिनों में मैंने दो चार कौतुक से कर डाले थे। स्त्रियों में प्रचलित होगया कि यह बींद राजा तो अनोखा आया! मेरे मामाजी बहुत छोटे अर्ज की धोती मेरे लिए लाये थे। उस धोती का पहिनना जरूरी था। पर उसके ऊपर दूसरी धोती भी लपेटना जरूरी हो गया था। हम लोग बाहर निमटने आदि के लिए गये। ऊपर वाली धोती को मैंने उतार फेंका और खेत में दौड़ लगायी। दूर से देखने वालों ने समझा कि मैं नंगा दौड़ रहा हूँ। कुछ लड़कियां गूंदी के पेड़ पर चढ़ी हुई थीं। उनमें से एक बड़ी सी थी और "बीनणी" की सखी भी। मैं

उससे हंसी मजाक में लग गया। जिसकी इधर उधर काफी चर्चा हो गयी। मेरे पास 'मांडौगढ़ संग्राम' नाम की पुस्तक थी। उसे जोर–जोर से पढ़कर गाकर सुनाने लगा तो सैंकड़ों लोग इकट्ठे हो गये। आजकल भी मैं गुनगुनाने लगता हूँ :—

ऐसा तेग़ा करूं थरथरावे ज़मीं, मेरे जौहर की तुझको खबर ही नहीं।
मांडौ सर है चचा तो यह सर है, चचा मांडौ सर जो नहीं तो ये सर भी नहीं ॥

१९१७ में भयंकर प्लेग हुआ था। स्कूल–कालेज वन्द हो गये थे। हम लोग जोवनेर के वाहर झोंपड़ों में रहते थे। पास–पड़ौस के झोंपड़ों में भी प्लेग फैल गया था। इसलिए मुझे खासतौर से क़ैदी की तरह रखा जाता था। फिर भी एकाध लड़के से मेरा वड़ा मोह सा था। चुपके से मैं उसे पढ़ाने के लिए निकल जाता था। दोनों के झोपड़ों के वीच में किसी जगह छिपकर मैं उसे पढ़ाता था। प्लेग तो था ही। ऊपर से मेरी आंखें आ गयीं। मेरा पढ़ना लिखना वन्द हो गया। दो चार महीने यही हाल रहा। परीक्षा के दिन आ गये। मैं जयपुर पहुँचा और एक प्रेमी मित्र केसरीलाल सेठी के घर ठहरा। अंग्रेजी व संस्कृत तो मुझे आती थी। पर दोनों इतिहासों में मैं कोरा था। मैंने कुछ पढ़ा ही नहीं था, यहां तक कि किताबों के पन्ने जुड़े हुए पड़े थे। मैंने इतिहास के चारों पेपरों के लिए चार नोट खरीदे। मेरा मित्र मुझे पढ़कर सुनाता। याददाश्त अच्छी थी, विषय की पकड़ अच्छी थी, अंग्रेजी का लिखना वहुत अच्छा था। परीक्षाफल आया तो मैं सैकण्ड डिवीजन में पास निकला। इन्टरमीजिएट की परीक्षा हो चुकने पर मालूम पड़ा कि मैं चाहूँ तो १० दिन वाद होने वाली साहित्योपाध्याय परीक्षा में वैठ सकता हूँ। मैं जोवनेर जाकर पुस्तकें ले आया। एक दिन और एक पुस्तक, इस तरह दौड़–धूप करके मैं सव पुस्तकों को वांच गया। मुझे फर्स्ट डिवीजन और सैकण्ड पोजीशन मिला। मेरी वाहवाही हो गयी। कालेज में वी० ए० और प्रायवेट साहित्य–शास्त्री की पढ़ाई शुरू हो गयी।

१९१७ में गर्मी की छुट्टियों के कुछ महीने वाद मेरी दादी का देहान्त जोवनेर में हो गया। ६ दिन हो चुके तव मुझे खवर मिली। मैं जोवनेर पहुँचा। जिसे अपनी मां याद ही नहीं थी उसके लिए दादी का इस तरह गुजर जाना वड़ा दुःखदायी था। मैं १२ साल का था तव मेरी दादी ने १०–५ रु० जुटा लिए। उसे कताई के कुछ पैसे मिल जाया करते थे। कुछ लोग गंगास्नान के लिए जा रहे थे, सोरों घाट। चुपके से मेरी दादी उनके साथ हो गयी। साथ मुझे भी ले गयी। हम गंगाजी हो आये। मेरी दादी हमेशा कहती थीं—"म्हारो भायो, मनैं गंगाजी नुव्हा ल्यायो।" इससे मुझे गर्व का सा अनुभव होता था। ऐसी मेरी दादी गुजरी तव मैं उसके पास नहीं था। घर में पहुँचा तो मेरे पिताजी ने वताया कि नुकते के लिए एक पैसा भी पास नहीं है, गांव में उधार देने वाला भी नहीं मिला। अपने सव भाइयों के विवाह मेरे पिताजी कर्जा ले लेकर करवा

चुके थे। दो भाई गोद जा चुके थे, दो अलग हो चुके थे। जैसे-तैसे गुजर होता था। इस दुर्दशा में मैंने उधार लाने का बीड़ा उठाया और मैं अजमेर पहुंचा। वहां के एक बड़े रिश्तेदार ने साफ मना कर दिया। अजमेर से सीधा जयपुर गया। किराया खत्म हो चुका था, इसलिए बिना टिकट। पुरोहित जी साहब ने एक मिनट में मुझे १४० रु० लाकर दिये—बोले मेरे पास इस समय इतने ही हैं। शायद दादी के नवें दिन में जोबनेर लौटा और जैसे-तैसे दादी का नुकता हो गया। पारिवारिक और सार्वजनिक जीवन में उधार से काम चलाने की परीक्षा का यह पहला पर्चा मेरे लिए था जिसमें उस उम्र में मैं पास हो गया।

१९१८ में इन्फ्लुएंजा (गुजराती रोग) फैल गया। जोबनेर में बहुत सी मौतें हो गयीं—कुछ जवानों की भी। जयपुर में मुझे बुखार आया और सदा की भांति मैं जोबनेर चला गया। वहां पर मैं इन्फ्लुएंजा में ऐसा उलझा कि एक दिन तो मर ही गया था। मुझे कुछ-कुछ होश आया तब मैं सोचता था कि क्लास की हाजरी में मेरा नाम बुलेगा तो कोई लड़का बोलेगा—सर, वह तो मर गया। मेरी किताबें जयपुर के स्नान घर में बन्द पड़ी हैं, उन्हें कौन निकालेगा। न जाने क्या क्या गुजर रही थी। पर मैं चारपाई से नीचे लिया हुआ भी बच गया। इन्फ्लुएंजा मेरे परिवार में से तीन स्त्रियों और दो बच्चों को ले गया। तीन स्त्रियों में मेरी दो काकियां थीं और एक मेरी पत्नी। मैं दूसरी साल(कोठरी)में था। थोड़ा थोड़ा चेत था मुझे। मैं उसी समय समझ तो गया था कि कुछ न कुछ हो गया है। पर मुझे सारा हाल बाद में मालूम हुआ। मैंने अपनी पत्नी के वियोग में एक करुणात्मक संवाद जैसा लिख दिया और जयपुर में अपने एक मित्र को पद्यमय पत्र लिखे। जयपुर जाकर मैंने संस्कृत में एक करुणा-शतक लिखना शुरू किया, मेरे गुरूजी की जानकारी में। मेरी सगाइयां आने लगीं। मेरे पिताजी को और मुझे एक भी नहीं जंची। काफी समय निकल गया। एक दिन मैं जोबनेर गया था। वहां पर कोई सगाई करने वाले आ गये। उन्होंने अपने घर की, अपनी लड़की की बेहद तारीफ की। मेरे पिताजी उनकी बातों में आ गये और मेरी सगाई हो गयी। बाद में हम सबने सोचा कि घर और लड़की को देखा तो जाय। हमने अपने नाई को भेजा। वह बहुत खराब रिपोर्ट लाया, मेरे पास जयपुर। मैंने उसी समय लड़की वालों को लिख दिया कि आपने हमें धोखा दिया। उन लोगों ने बहुत पीछा किया मेरा और बड़ा जोर लगाया पुरोहित जी साहब तक। पर हम तो सगाई छोड़ चुके थे। मेरी पहली सगाई के पहले बहुत सगाइयां आ चुकी थीं। एक सगाई बढ़िया आयी थी, पर मेरे पिताजी तो उस समय मुझे फंसाना नहीं चाहते थे। उस लड़की की सगाई हो सके उससे पहले ही उसके माता-पिता दोनों मर चुके थे। उसके दो एक रिश्तेदारों ने जयपुर में मेरा पीछा शुरू किया। मुझ पर जादू सा होने लगा जिस लड़की से सगाई करना हम दूसरे कारण से नामंजूर कर चुके थे, वह अब भी मेरे इन्तजार में बैठी है। मैंने मेरे गुरु जी की राय ली, संयोग से मेरे काकाजी जयपुर आये थे जो मेरी पहली सगाई मेरे पिताजी से बिना पूछे मंजूर कर

आये थे। हम तीनों ने मिलकर सगाई मंजूर कर ली। मेरे पिताजी दौड़े जयपुर आये। मुझसे बोले—भाया औ तू कांई करचो। पर मैं तो हां कर चुका था। मेरा दूसरा विवाह १६२० की गर्मियों में हो गया।

१६२० में विवाह से कुछ पहले मेरी बी० ए० की और शास्त्री की दोनों परीक्षाएं हो चुकी थीं। शास्त्री में अच्छी तरह से पास होने की आशा मुझे थी सो पूरी हुई। मुझे सैकण्ड पोजीशन मिल गया। शास्त्री की तय्यारी में पूज्य वीरेश्वर शास्त्री जी महाराज का आशीर्वाद मुझे मिला [और बाद में एक बार मेरे तरंग उठी कि मैं "रस" पर कोई ग्रन्थ लिखूं। बी० ए० में मैं बहुत होशियार माना जाता था। शास्त्री की बहुत सी पढ़ाई मैंने अपने आप की थी। मैं कालेज में अपने कुछ साथियों को संस्कृत और अर्थशास्त्र पढ़ाया करता था। मेरा अंग्रेजी का लिखना बहुत अच्छा समझा जाता था। बी० ए० की परीक्षा के पहले टर्मीनल में मैं अर्थशास्त्र में फर्स्ट आया था, पर परीक्षा में न जाने क्या हुआ कि मैं अर्थशास्त्र में फेल हो गया। दूसरे सेशन में जो पहला टर्मीनल आया उसमें भी मैं फर्स्ट था, पर असली परीक्षा में फेल। मुझे बड़ा भारी धक्का लगा। दुबारा परीक्षा देने के सिवाय कोई उपाय नहीं था। वह १६२१ में दे दी गयी और मैं फर्स्ट आ गया। मुझे साल का सबसे अच्छा ग्रेज्युएट होने का एक मैडिल भी मिला। खास जोबनेर का रहने वाला मैं पहला ग्रेजुएट था, और पहला शास्त्री तो था ही। मेरा एम० ए०, आचार्य और एल-एल० बी० तीनों साथ करने का विचार था पर वह संयोग आया ही नहीं। उसका एक कारण गांधीजी का असहयोग आंदोलन भी था। मेरा जयपुर का विद्यार्थिकाल बहुत शान्तिमय था। किसी प्रकार का झंझट या झगड़ा-टंटा नहीं था। उन दिनों की मेरी दो शैतानियां मुझे याद आती हैं। मेरा साथी मगनीराम अग्रवाल बड़ा शक्की लड़का था, वह हर वक्त अपने कमरे का ताला बन्द रखता था। एक दिन कमरा भूल से खुला रह गया। मैं चुपके से उसके कमरे में गया और उसका साफा आदि निकाल ले गया। खोयी हुई चीजों की बहुत खोज हुई जिसमें मैंने आगे बढ़कर सहयोग दिया। पर चीजें मिलीं नहीं। एक दिन मौका पाकर मैंने उन चीजों को मंगनीराम के कमरे में पड़ी हुई एक पेटी में रख दिया। किसी की समझ में नहीं आया कि चीजें गुम थीं या नहीं और गुमी थीं तो पेटी में रखी हुई कैसे मिलीं। एक बार नये-नये मटर बाजार में आये। मंगनीराम ने बड़े शौक से मटर का साग बनवाया। मंगनीराम गया फुटबाल खेलने को। मैं पीछे से उसके साग फुलके सब खा गया। साग की तपेली में पानी डालकर ज्यों की त्यों रख दी। फुलकों के कुछ टुकड़े इधर उधर डाल दिये जिससे बिल्ली का शक हो जाये। इस प्रकार मंगनीराम की रोटी खा जाने वाले बड़े 'बिलाव' का कभी पता न चला।

मेरे जयपुर के विद्यार्थिकाल की, बल्कि मेरे सारे जीवन की उल्लेखनीय बात एक है। मुझे पता ही नहीं कि मेरे मन में यह विचार कैसे आया कि मैं किसी गांव में

जाकर आश्रम बनाऊंगा और ग्रामवासियों की सेवा करूंगा। बाद में मैंने इस विषय में एक पूरा नाटक लिखा जो छपाया नहीं जा सका। जो हो, गांव में आश्रम बनाने का विचार मेरा पक्का से पक्का हो गया। हालांकि मैं जयपुर में एक दूसरे वातावरण में रहता था। मेरे सामने पुरोहितजी साहब का उदाहरण था, जो बाद में सी० आई० ई० और नाइट हो गये थे, और जो सोना, ताजीम और जागीर पा चुके थे। मुझ पर उनका स्नेह भी बहुत ज्यादा था इतना कि जितना शायद ही किसी दूसरे पर हो। पुरोहितजी साहब के अलावा पंडित वीरेश्वर जी महाराज, पंडित बिहारी लाल जी महाराज, पंडित सूर्य नारायण जी महाराज, प्रो० दुर्गा प्रसाद जी माथुर, प्रो० दामोदर प्रसाद जी सक्सेना, प्रो० विट्ठल वामन ताम्हणकर ने मेरे जीवन को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया। जोबनेर के एक स्कूल में मेरा पक्का साथी सबल सिंह राठौर था। दूसरा राजपूत विद्यार्थी जयसिंह वर्मा था जो मुझसे कालेज की पढ़ाई में तीन साल आगे था। जयपुर के जीवन में मगनीराम अग्रवाल, डी० बी० नाईक मेरे साथी थे। मुझसे छोटे प्रिय-पात्रों में सुखदेव जोशी का नाम उल्लेखनीय है।

तीन साल तक पुरोहित जी साहब के यहां भोजन कर चुकने के बाद एक दिन मैंने अचानक ही दूसरी जगह भोजन का प्रबन्ध कर लिया, उनसे कहे बिना। अपनी जिन्दगी में अपने छोटेपन का सबसे पहले खास उदाहरण के रूप में मुझे अपना वह कदम याद आता है। पर पुरोहित जी साहब ने मुझसे कुछ नहीं कहा। मैं उन्हीं के नोहरे में रहता रहा और पहले की भांति ही उनके पास आता जाता रहा। मेरा एक मात्र ध्यान पढ़ाई में था। खेलने का कोई मौका नहीं था सो मैंने रामनिवास बाग में घूमना शुरू कर दिया था। कभी कोई सभा होती तो उसमें जरूर जाता था और उसमें से अपने जीवन के लिए कुछ न कुछ लाने की कोशिश करता था। मैं इलाहाबाद से अर्धसाप्ताहिक लीडर अखबार मंगवाता था और पुरोहितजी साहब के यहां तो कई एक पत्र-पत्रिकाएं आती ही थीं। १६१८ में दिल्ली में पंडित मदनमोहन मालवीय जी की अध्यक्षता में जो कांग्रेस सेशन हुआ था उसमें मैं पहुंचा था और उस समय के भारत के नेताओं को देख आया था। दिल्ली में मैं एक दिन सवेरे कुछ जल्दी उठ बैठा। जोर की सर्दी थी, पर मैं नंगे बदन बिस्तर में सीधा आसन जमाये बैठा रहा। मेरे पास सोये हुए व्यायाम के एक प्रो० नायडू उठे तो मुझसे बोले—तुम तो मेरे साथ हो जाओ, यानी व्यायाम के क्षेत्र में। एक बार मुझे मालूम पड़ा कि जयपुर के चांदपोल जेल में देशभक्त पंडित अर्जुनलाल जी सेठी को रखा गया है। मैं जेल के बाहर जाकर चक्कर काटता कि किसी तरह सेठी जी मुझे दिख जायं। कुछ समय बाद में मैंने सुना कि सेठीजी चुपके से आकर शहर के अमुक मकान में ठहरे हुए हैं। सवेरे ४ बजे उनको देखने के लिए मैं उस मकान में पहुंचा। मुझे याद है लोकमान्य तिलक के स्वर्गवास का समाचार सुन कर मैं बहुत रोया था। मेरे अर्थशास्त्र के प्रोफेसर विट्ठल जी मुझे एक बार इंडियन इकानामिक कान्फ्रेंस में इलाहाबाद अपने साथ ले गये थे। जयपुर में एक बार प्रो० राममूर्ति आये। मैं उनसे मिला। उनके लिए जो सभा

हुई उसमें मैंने भाषण दिया। आम सभा में वह मेरा पहला भाषण था। मैंने संस्कृत में दो-एक श्लोक बना कर प्रो० राममूर्त्ति को दिये।

पुरोहितजी साहब के इकलौते पुत्र का देहान्त भरी जवानी में हो गया था। बाद में उन्होंने एक बालक को गोद लिया। वह बालक मुझे बहुत प्यारा लगता था। उसकी पढ़ाई प्रारम्भ में संस्कृत से शुरू की गयी। बाद में मैंने देखा कि बालक का जैसा चाहिए वैसा हाल नहीं है। मैंने अंग्रेजी में एक बहुत लम्बा पत्र पुरोहित जी साहब को लिखा जिसे उन्होंने अपने कुछ निकट के मित्रों को दिखाया। उस पत्र से मेरी बड़ी तारीफ हो गयी। बी. ए. में फैल हो जाने पर मुझे चौमूं ठाकुर साहब के यहां पुरोहित रामनिवास जी की सिफारिश से ३० रु० मासिक की ट्यूशन मिल गयी, एक दूसरी ट्यूशन २० रु० मासिक की मुंशी नानगराम जी जौहरी की सिफारिश से मिली। कुछ सयय बाद मुझे चौमूं ठाकुर साहब ने ही ५० रु० मासिक देना शुरू कर दिया। ठाकुर साहब के लड़कों की पढ़ाई के बारे में भी मैंने उनको एक बहुत लम्बा पत्र अंग्रेजी में लिखा जिससे वे बहुत ज्यादा प्रभावित हुए। उन दिनों बी.ए. पासको ४० रु. मासिक वेतन मिलता था और मुझे बी. ए. फैल को ५० रु. मासिक ट्यूशन के मिलने लगे। पुरोहित जी साहब के पुस्तकालय में कई हजार पुस्तकें अव्यवस्थित पड़ी थीं। गर्मी की छुट्टी में मैंने कुछ दिन लगाकर तमाम पुस्तकों की लेखकवार सूची बना दी। मुझे उस समय पता नहीं था कि वह पुस्तकालय वनस्थली विद्यापीठ के गोपीनाथ पुरोहित पुस्तकालय का आधार बनेगा। बी. ए. की परीक्षा के बाद मुझे मर्दुमशुमारी में ५० रु० मासिक पर काम मिल गया। १०० रु० मासिक की आमदनी हो गयी, १०० रु० भी जयपुर राज्य के झाड़शाही—१ रुपये झाड़शाही के कभी कभी १ रु. छह आने मिलते थे। मेरे पिताजी की इच्छा जानकर मैंने अपनी कमाई का बचा हुआ पैसा जोबनेर में अपनी जमीन में एक पक्का कुआ बनवाने के लिए दिया। मैंने जो दूसरी जगह भोजन की व्यवस्था की थी उसे छोड़कर मैंने अपने नोहरे में ही भोजन का प्रबन्ध कर लिया, सो भी पुरोहित जी साहब से बात किये बिना। फिर भी उन्होंने मुझसे कुछ भी नहीं कहा। १९२१ के अन्त के आस पास मुझे महाराजा हाईस्कूल में टीचर भी बना दिया गया था। मतलब यह कि मैं सदा ही दो काम करता था। इसलिए कहीं न कहीं कमी रह जाती थी। मर्दुमशुमारी में मेरी शिकायत होने लगी। मेरे जिम्मे रिपोर्ट लिखने का काम दिया गया था जिसे मैं अपने ख्याल से ठीक कर रहा था। इसलिए मैं शिकायत को सहन नहीं कर सका। सेंसस सुपरिण्टेण्डेण्ट मुंशी नानगराम जी मेरे बड़े मेहरबान थे, फिर भी मैंने डांट कर एक लंबा पत्र उनको लिख मारा—मेरे जीवन में आगे आने वाले संघर्ष का वह पहला अध्याय था।

वह पुराना जमाना था। बड़े लोग दो घोड़ों की बग्गी में चलते थे। उनके बराबर साधारणतया कोई नहीं बैठ सकता था। सामने की छोटी सीट पर कोई बैठ जाता था। कोचमैन के बराबर चोबदार बैठता था। पर पुरोहित जी साहब हाथ

पकड़ कर मुझे अपने बराबर बिठलाते थे। देखने वालों को यह बहुत नापसन्द होता था। उन लोगों को इसमें मेरी धृष्टता दिखायी देती थी। मैं सोचता कि मैं इसमें क्या कर सकता हूं। पुरोहित जी साहब मुझ से थोड़ा बहुत काम भी लेते थे। मेरे पास आमदनी हो गयी तब मैंने दूसरे मकान में रहने की व्यवस्था कर ली थी। मेरी ओर से ये हरकतें होती रहीं, पर पुरोहित जी साहब मुझ से कुछ नहीं कहते थे। मैं सदा की भांति उनके पास आता जाता रहता और वे सदा की भांति मुझे अपने नजदीक मानते रहे। वे मेरे पालक थे, गुरु थे, पिता से भी बढ़कर थे। उनका और उनके पास–पड़ौस का मेरे जीवन पर बहुत असर पड़ा। वैसे ही देशी ठाठ के कपड़े पहिनना, वैसे ही बिना फर्नीचर के फर्श पर बैठना, इत्यादि। मेरा चौका १३-१४ साल की उम्र में ही छूट चुका था, पर मैं रोम में रोम वालों की तरह ही रहता था। मेरा ध्यान बराबर मेरे लड़कपन के उस ग्रामसेवा करने के सपने की ओर लगा हुआ था। पर पढ़ाई छूट जाने के बाद मैं जयपुर राज्य की नौकरी में घिसट गया। जिसमें निमित्त थे पुरोहित जी साहब। घर की परिस्थिति भी एक कारण थी। मेरे दादी के नुकता की व्यवस्था करने के बाद से घर के काम में मेरे पिताजी का मैं ही बड़ा से बड़ा सहारा होता गया था। पुरोहित जी साहब की वजह से मेरा सम्पर्क जयपुर के बहुत से बड़े लोगों से हो गया। कौंसिल के मेम्बर, महापंडित, बड़े से बड़े डॉक्टर, बड़े से बड़े वैद्य, बड़े वकील इत्यादि बहुतों से। गर्ज यह कि गांव के साधारण परिवार से आये हुए असंस्कृत से लड़के का दिमाग उस समय के जयपुर शहर में बड़े आदमी का सा हो गया था। पर मैं यह कह सकता हूं कि मेरे अकड़ स्वभाव के बावजूद नम्रता और विनय ने मेरा साथ कभी नहीं छोड़ा। मैंने १९१७ से डायरी लिखना शुरू कर दिया था। मेरी डायरी शुरू से आज तक नियमित रूप से लिखी जाती रही है।

(३)

जयपुर राज्य की नौकरी

१९२१ – २७

१९२१ में मर्दुमशुमारी का काम चल रहा था। जैसा कि मैं ऊपर बता चुका हूँ उस अस्थायी महकमे में मुझे भी नौकरी मिल गयी थी। मेरी ट्यूशन चलती रही। मेरे सामने सवाल भविष्य का था मेरे भीतर का विचार गांव में आश्रम बनाकर बैठने का था। यह विचार पुरोहित जी साहब को, मेरे पिताजी को, किसी भी हितैषी को पसन्द नहीं हो सकता था। घर की स्थिति का तकाजा था कि मैं कमाना शुरू करूं और सब लोगों की कल्पना थी कि मैं राज की नौकरी में तरक्की करूं। एक बार मैंने यह भी सोचा कि मैं पुरोहित जी साहब से सिफारिश करवा कर व्यापार की लाइन में चला जाऊं। मेरी एक कल्पना यह होने लगी थी कि मैं किसी न किसी जरिये से इतनी आमदनी करलूं कि परिवार का निर्वाह हो जाए, घर के कुछ जरूरी काम हो जाएं और मेरे पास बीसेक हजार की बचत हो जाए और उस रुपये से निश्चित १०० रु० मासिक की आमदनी मुझे होती रहे तो मैं परिवार की ओर से निश्चिन्त होकर अपने आश्रम के काम में लीन हो जाऊं।

अजमेर में राजा महाराजाओं के बेटों के लिए जो मेयो कालेज था उसमें पहुंच जाने से मेरी सोची हुई सारी योजना सफल हो सकती थी, ऐसा मेरी समझ में आया। मेयो कालेज के जयपुर हाऊस में जयपुर राज मोतमिद यानी जयपुर दरबार का प्रतिनिधि रहा करता था। उक्त स्थान पर अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्वान् पंडित चन्द्रधर जी शर्मा गुलेरी नियुक्त थे। वे काशी विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष होकर जा रहे थे। पुरोहित जी साहब को मेरी मेयो कालेज जाने की यह बात मंजूर हो गयी। पर सवाल खड़ा हुआ कि मुझ जैसे नवयुवक को ऐसी जिम्मेदारी की जगह पर कैसे भेजा जाए ? पुरोहित जी साहब ने तरकीब निकाली। उन्होंने मुझे महाराजा हाई स्कूल में शिक्षक का स्थान दिला दिया। शिक्षाविभाग से मेयो कालेज के लिये तीन नाम मांगे गये। तीनों में एक नाम मेरा भी चला गया और मुझे मेयो कालेज में जयपुर के मोतमिद राज का पद मिल गया।

मुर्दुमशुमारी का काम अस्थायी था ही। शिक्षक का काम मेरे लिए उससे भी ज्यादा अस्थायी साबित हुआ, असल में योजना ही ऐसी थी। मुर्दुमशुमारी में सुपरिंटेंडेंट साहब से मेरा झगड़ा जैसा हुआ उससे मेरी स्वतंत्रता और निर्भयता निखर सी गयी थी। मैंने मुर्दुमशुमारी में अपने परिचितों को काम दिलाने की चेष्टा की थी और वहां पर कुछ लोग मेरे अपने हो गये थे और मैं महकमे में लोकप्रिय हो गया था। महाराजा हाई स्कूल में मुझे करीब ६ महीने का वेतन मिला होगा, पर मेरी नियुक्ति ऐसे समय हुई थी कि मुझे पढ़ाने का मौका बहुत ही कम मिला। हाई स्कूल आदि की परीक्षाएं शुरू हो गयीं और मेरे हिस्से में परीक्षा हाल में निरीक्षक का काम आ गया। फिर गर्मी की लम्बी छुट्टी आ गयी। छुट्टी के बाद स्कूल खुला तब मुझे हाई स्कूल कक्षाओं को अंग्रेजी पढ़ाने का काम मिला। जहां तक याद है मैंने बीसेक दिन पढ़ाया होगा कि मेरा मेयो कालेज जाने का समय आ गया। उस जमाने में मुझे अंग्रेजी अच्छी आती थी, ग्रामर बहुत याद थी पर मेरा अंग्रेजी का उच्चारण वैसा ही था जैसा अपने आप पढ़े हुए देहात के किसी लड़के का हो सकता था। सिद्धराज ढड्ढा, दौलत मल भण्डारी, राजरूप टांक, नेमीचन्द कासलीवाल, जैसे मिडिल में ज्यादातर फर्स्ट डिवीजन पाये हुए लड़के मुझे पढ़ाने को मिले थे। लड़कों के साथ मेरा स्वाभाविक प्यार था और लड़के भी मुझे बहुत मानते थे। उन्होंने विदा के समय मुझे जल्दी जल्दी में हाथ का लिखा हुआ मानपत्र दिया था।

मैं १९२२ के अगस्त में मेयो कालेज में पहुँच गया। मेरी उम्र उस समय २२-२३ साल की थी। मैं बहुत मामूली से कपड़े की लम्बी अंगरखी पहिनता था, मेरे सिर पर पगड़ी थी, धोती थी और देशी जूते, मोजे नहीं। मेयो कालेज में प्रिंसिपल अंग्रेज था, उसकी शराबी होने की शोहरत भी थी। तीन अंग्रेज और थे, बाकी हिन्दुस्तानी थे। सबको बहुत अच्छा वेतन मिलता था। मैं प्रिंसिपल साहब के

सामने पेश हुआ। उन्होंने मुझे उपर से नीचे तक घूर कर देखा और अंग्रेजी में पूछा "व्हाट इज योर एज ?" मैंने सर कहे विना और पूरा वाक्य बोले विना ही जवाव दिया "ट्वेण्टी थ्री"। उन्होंने कहा आप जितने वड़े तो कई लड़के हैं "जयपुर हाउस" में। मैंने वेपरवाही से कह दिया—होंगे। प्रिंसिपल ने जयपुर दरबार को लिख दिया कि मोतमिद की पोस्ट पर ऐसे नवसिखिए जवान आदमी को नहीं रखा जा सकता। जयपुर दरवार की ओर से तगड़ा जवाव प्रिंसिपल को मिला जिसमें मेरे कुल की व मेरी बड़ी प्रशंसा लिखी गयी थी और आखिर में चाहा गया था कि कम से कम ६ महीने तो इस आदमी का काम देखा जाय। ६ महीने पूरे हुए उससे बहुत पहले ही मेरी मित्रता कालेज के एक दूसरे अंग्रेज से होगयी जो मेरा अफसर जैसा था। उसकी सिफारिश पर मुझे आर्जी तौर पर विना वेतन कालेज में पढ़ाने का थोड़ा सा काम भी मिल गया। मैं अंग्रेजी पढ़ाता, इतिहास पढ़ाता और कुछ समय तक मैंने कानून भी पढ़ाया जो मैंने खुद ने कभी नहीं पढ़ा था। मैंने साहब से कहा कि शैतानी करने वाले लड़कों को सजा देने का अधिकार मुझे होना चाहिए। साहव ने मुझे आजादी दे दी। वड़े बड़े लड़के जब गड़वड़ करते तो मैं उनसे जयपुर हाउस की कोठी के चक्कर लगवाता जो सबकी निगाह में वहुत अपमानजनक था। जयपुर महाराजा पास की कोठी में रहते थे और उनके गार्जियन एक वड़े से अंग्रेज साहब थे। वे जयपुर हाउस में आते तो मैं कभी भी अपने कमरे से निकल कर उनकी अगवानी नहीं करता था। एक दिन जोवनेर ठाकुर साहव (जो उस समय कौंसिल के मेम्बर बन चुके थे) एक छोटी सी बात लेकर जयपुर हाउस आये। मैंने उनका भी स्वागत नहीं किया, न उनकी छोटी सी बात मैंने मानी, क्योंकि वह मेरी राय में अनुचित थी। एक दिन क्लास की हाजिरी का रजिस्टर छिपा देने के कुसूर में मैंने सारे क्लास को ऐक्ट्रा ड्रिल की सजा दे दी थी। लड़कों से मेरा प्यार बहुत था, मैं उन्हें राष्ट्रीय बातें बताता था। मैं लड़कों को अच्छा भी लगता था। पर बड़े बड़े राजा महाराजा और जागीरदारों के वेटों को इतनी सख्ती बर्दाश्त नहीं हो सकती थी।

मेरे खिलाफ एक षडयंत्र रचा गया। मुझ पर कोई इल्जाम तो था नहीं। फिर भी नतीजा यह हुआ कि मेरे तबादले का हुक्म जयपुर दरबार से आगया। अंग्रेज प्रिंसिपल ने मेरी जोरदार सिफारिश की और वे मुझे छोड़ने को राजी नहीं हुए। आखिर एक दिन जयपुर कौंसिल के प्रेसीडेंट सर आर. आई. आर. ग्लैन्सी, आई. सी. एस. जयपुर हाउस आये। उन्होंने मुझसे कहा यंग मैंन — मैंने आपके लिए तरक्की का रास्ता खोजा है—आपको फायनेन्स की ट्रेनिंग में भेजना है। मैंने कहा—मुझे नौकरी करनी होगी तो आप जो कहेंगे सो मैं करूंगा। पुरोहित जी साहब दूसरी राय दे ही नहीं सकते थे। इसलिए मैं फायनेन्स की ट्रेनिंग के लिए बम्बई पहुंच गया। मेयो कालेज में मुझे दो तीन ट्यूशन मिल गयी थी और मेरी आमदनी अच्छी हो गयी थी। मैंने अपने घर की सब जरूरतों को पूरा करने की योजना बना ली थी, कुछ शुरूआत भी कर दी थी। पर शेखचिल्ली का वह महल ढह चुका था।

बम्बई में इंडियन ऑडिट सर्विस की दो परीक्षाएं मुझे देनी थी। पहली परीक्षा मैंने १।। महीने में दे दी। उसमें मेरे ठीक ठाक–शायद ४६ प्रतिशत नम्बर आ गये। दूसरी बड़ी परीक्षा ६ महीने में दे दी और उसमें भी मेरे ठीक नम्बर आ गये। वापस आने पर मुझे जयपुर राज्य के महकमा हिसाब में असिस्टेंट अकाउण्टेण्ट जनरल बनाया गया। मेरे ऊपर थे एक स्पेशल अकाउण्ट्स आफिसर रायबहादुर वैष्णवदास। हिसाब की उनकी नयी योजना से मैं सहमत नहीं हुआ। अकाउन्टेंट जनरल मुझ से सहमत थे, पर उनकी चलती नहीं थी। मैंने राय बहादुर की योजना के विरुद्ध एक लम्बा नोट लिख डाला और उसे जयपुर की कौंसिल के अंग्रेज प्रेसीडेंट के पास भेज दिया। प्रेसीडेंट मेरे नोट से बहुत प्रभावित हुए। पर एक मातहत की ऐसी गुस्ताखी किसी को मंजूर नहीं हो सकती थी। मुझे हुक्म मिला—इस यंग आफीसर को आगाह कर दिया जाय कि अपने अफसरों के ऊपर होकर ऐसा न किया करे।

कुछ समय बाद जयपुर राज्य की कौंसिल का पुनर्गठन हुआ। उसके अनुसार एक प्रेसीडेंट और चार मिनिस्टर रखे गये। पांचों के पास एक–एक सैक्रेटरी की नियुक्ति होनी थीं। पुरोहित जी साहब को फौरेन और होम ये दो विभाग मिले। उनके पास सेक्रेटरी कौन हो? मुझसे तलाश करने के लिए कहा गया। पर मेरे कहने से कोई जयपुरी तैयार नहीं हुआ। आखिर हार कर पुरोहित जी साहब ने कहा तुम ही सैक्रेटरी बन जाओ न? मैंने मंजूर कर लिया और एक दिन अचानक में मुबारक महल स्थित महकमा खास में जा बैठा। मुझे आफिस के काम की कुछ भी जानकारी नहीं थी। जरा जरा सी बात भी मुझे पूछनी पड़ती थी। मुझे काम सिखाने वाले मेरे दूसरे नम्बर के साथी श्री गोकुलनारायणजी व्यास थे। पुरानी कौंसिल से आयी हुई मिसलों के ढेर लगे पड़े थे और वे सब उर्दू में थीं। दूसरी ओर नयी कौंसिल का काम अंग्रेजी में शुरू हुआ। मुझे मेहनत तो बहुत ज्यादा करनी पड़ी पर मैंने कुछ ही महीनों में सारा बकाया साफ कर दिया। उर्दू की मिसलों की पेशी मैं अलग से करता था और अंग्रेजी का काम दूसरे समय में ज्यादातर घर पर अलग से। मैं जोरदार सेक्रेटरी माना गया। मेरी जानकारी के बिना एक भी कागज मिनिस्टर की पेशी में नहीं जा सकता था और मजाल क्या जो कोई अहलकार किसी से कुछ ले ले, दे दे। मौका मिलते ही मैंने कुछ नया काम भी करना चाहा–यथा जयपुर राज्य के पोस्ट आफिस का पुनर्गठन। मैं सेक्रेटरी नहीं हुआ था तब भी पुरोहितजी साहब कभी कभी बहुत बड़े मामलों के नोट मुझसे लिखवा लेते थे। जागीर के घोड़ों के सिस्टम को खत्म करके जागीरदारों से नकद वसूल करने की योजना बनी तो उसका पुरोहितजी साहब की ओर से कड़ा विरोध हुआ। जयपुर राज्य की करेंसी को खत्म करने की तजवीज हुई तो भी पुरोहितजी साहब ने उसका डटकर विरोध किया। पुरोहितजी साहब के लिए ऐसे नोट लिखने वाला मैं ही था। उन दिनों जयपुर राज्य में अंग्रेज रेजीडेण्ट था, अंग्रेज ही प्रेसीडेंट। एक कुछ भी लिखकर भेज दे, दूसरा उसे मंजूर कर ले। एक बार प्रेसीडेंट छुट्टी पर गये तो रेजीडेंट ने प्रेसीडेंट का चार्ज लिया यानी

वही रेजीडेण्ट, वही प्रेसीडेण्ट। मैं फॉरेन में सेक्रेटरी था। न जाने कितने मामलों में मुझे खिलाफ लिखना पड़ा होगा। मैं अंग्रेजों की आंख में चुभने लग गया। मैंने एक बार विना मंजूरी के एक टाइपिस्ट को रख लिया। अंग्रेज प्रेसीडेंट ने लिखा आइन्दा सेक्रेटरी इस तरह किसी को रखेगा तो उसे अपनी जेब से तनख्वाह देनी होगी। एक अहलमद से वड़ी गफलत हो गयी—प्रेसीडेण्ट ने उसकी वर्खास्तगी का हुक्म लिख दिया। पुरोहितजी साहव भी सहमत हो गये। मैंने सोचा यह तो गजव होगया, मेरा एक अहलकार किसी खास जुर्म के विना वर्खास्त हो गया। मैंने अहलकार की पुरजोर वकालत की, पुरोहित जी साहव ने भी मेरा समर्थन किया और अहलकार अपनी जगह पर वहाल हो गया। मेरे पास कायदे से कोई खास अधिकार नहीं था, पर मिनिस्टर के प्रतिनिधि की हैसियत से वहुत से काम मैं कर डालता था। एक वार मेडिकल विभाग के डाइरेक्टर ने किसी डॉक्टर की नियुक्ति की तजवीज भेजी। मेरी राय में उस डॉक्टर के पहले किसी दूसरे डॉक्टर का नम्वर आना चाहिए था। मैंने उक्त तजवीज को पड़ा रखा। जव हकदार डॉक्टर की नियुक्ति की तजवीज आयी तो मैंने तुरन्त मंजूर करवा कर भिजवा दी और उसके वाद पहली तजवीज को मंजूर करवाया।

इधर एक तरफ तो यह चल रहा था, दूसरी तरफ में व्याकुल हो रहा था कुछ सेवा का काम करने के लिए। मैंने पारीक पाठशाला हाईस्कूल में एक पीरियड पढ़ाना शुरू कर दिया। कभी हिन्दी पढ़ाता और कभी इतिहास। मुझे वड़ा आनन्द आता था और लड़के भी वहुत खुश होते थे। हम कुछ मित्रों ने मिलकर सामाजिक सुधार की दृष्टि से एक "प्रयास परिषद्" वनायी और "प्रयास" नाम का हस्तलिखित मासिक निकालना शुरू किया। मैंने एक राजस्थान छात्रालय भी खोल दिया। ८–१० लड़कों के लिए रहने का इन्तजाम किया। विद्यार्थियों से किराया नहीं लिया जाता था। उनका भोजनालय भी उसी मकान में कर दिया। यह काम वहुत अच्छा चला कई सालों तक। विद्यार्थी "विद्यार्थिजीवन" नाम का हस्तलिखित मासिक निकालते थे। समय समय पर कई एक अच्छे अच्छे विद्यार्थी छात्रालय में रहे। पर इन कामों से मेरी तृप्ति कहां होने वाली थी। तव एक दिन मैंने सोचा क्यों नहीं मैं दैनिक लीडर के सम्पादक के पास जाकर पत्रकारिता सीख लूं। मैं छुट्टी लेकर गया भी, पर वह काम मुझे अपने स्वभाव के अनुकुल नहीं लगा। सेठ जमनालाल जी वजाज एक वार जयपुर आये। हरिभाऊजी उपाध्याय के जरिये से उन्होंने मुझे वुलवाया। उन्होंने मुझे राज की नौकरी छोड़ने की प्रेरणा दी। पर नौकरी छोड़ना आसान काम नहीं था। सवसे वड़ी मुश्किल थी पुरोहित जी साहव का आशीर्वाद लेने की—वे मुझे कैसे छोड़ सकते थे और मैं उनके आशीर्वाद के विना उनको नहीं छोड़ सकता था। वड़ा भारी धर्मसंकट था मेरे सामने।

एक दिन पण्डित अर्जुनलाल जी सेठी जयपुर आये। हम दो चार मित्र उनसे एक जगह मिले। उनसे कुछ वातें हुई पर ज्यादा वात करने के लिए उन्होंने हम लोगों

को अपने डेरे पर बुलाया। मैं अकेला ही पहुंचा, क्योंकि मुझे नौकरी छोड़ने की पक्की लगन थी। सेठीजी बोले—तुम महामूर्ख हो—जो यह सोचते हो कि तुम अपने पास २० हजार रुपये कर लोगे तब नौकरी छोड़ोगे—मैं कहता हूं तुम्हारे पास २० हजार क्या २० सौ भी इस जिन्दगी में तो नहीं होने वाले। तुम पर कर्जा भले ही हो जाए। सच बात भी यही थी, मेरे पास तो आमदनी से ज्यादा खर्च होता ही था। सेठीजी ने कहा आंख बन्द करके समुद्र में कूदना हो तो कूद जाओ, तुम तिर जाओगे। सेठीजी की यह चाबी लग गयी। किसी समय मैंने सेठीजी को भोजन के लिए अपने घर बुलाया। वे बोले तुमको डर नहीं लगता, राज की नौकरी करते हो और मुझ जैसों को अपने घर बुलाते हो। मैंने कह दिया कि मुझे किसी बात का डर नहीं लगता। तभी उनके जंच गयी होगी कि यह आदमी नौकरी छोड़ सकता है।

१९२१ से १९२५ तक मेरी गृहस्थी ठीक ठाक चलती रही। मेरा दूसरा विवाह १९२० की गर्मियों में हो ही चुका था। मैंने जयपुर में अपना अलग घर एक किराये के मकान में बसा लिया था। उस समय जयपुर शहर में मकान का किराया रुपया आठ आना महीना था। मेरे मकान का मासिक किराया था ६ रुपये झाड़शाही। सरगासूली के सामने एक बहुत बड़ी चांदनी वाला मकान था वह। उसमें मेरी पत्नी, मेरे काकाजी की ४-५ साल की लड़की और मैं तीनों रहते थे। विद्यार्थिकाल से ही एक मांगीलाल नाई मेरे घर का सब काम कर देता था। उसे लोग मजाक में मेरा कामदार बताते थे। वह ठाठ का आदमी था। वह अपने समय पर हमारे यहां आता था और बाजार से सौदा सूत लाकर रख जाता था। एक दिन शाम को मेरी बहिन तो सो गयी थी और मेरी पत्नी अचानक बेहोश हो गयी। मैं घबड़ाकर उसे उसी हालत में छोड़कर मगनीराम अग्रवाल के पास पहुंचा। उसे मेरे मकान के लिए रवाना करके गुरूजी बिहारीलालजी महाराज के यहां गया। उन्हें रवाना करके मैंने पुरोहित जी साहब की हवेली तक दौड़ लगायी। वहां से दो तीन आदमी लिए। आखिर मेरी पत्नी को होश आ गया तो मेरे जी में जी आया। पता नहीं वह क्या बात थी। एक दूसरे मौके पर मेरे हिचकी चलने लगी तो लाख उपाय करने पर भी वह मिटे ही नहीं, मेरे प्राण निकलने को हो जाते थे। राज-वैद्य श्यामलाल जी एक दिन पहले कभी मेरे पास आकर मुझे स्वतः ही प्रवाल भस्म दे गये थे। मेरी भयंकर हिचकी के समय मैंने उनसे ही दवा ली। मेरी लम्बी अर्से तक दुखने वाली आंखों को डॉक्टर ज्वाला प्रसाद जी ने ठीक किया था। बाद को वैद्यों में वैद्य नन्द-किशोर जी से और डॉक्टरों में डॉ० प्रभुदयाल जी से मेरा प्रगाढ़ भाई चारा हो गया और वे मेरे घर के वैद्य व डॉक्टर बने रहे। आगे जाकर वैद्य नरहरि जी से भी मेरी बहुत घनिष्टता हो गयी थी। बचपन में मेरे दांत बहुत खराब हो चुके थे, उनकी संभाल मैंने डॉ० जगन्नाथ जी शर्मा से करवायी थी।

१९२५ की गर्मी का मौसम था। मैं अपने आफिस से घर जा रहा था। जोब-नेर के एक आदमी ने मुझसे कहा आपके पिताजी के पेट में दर्द था, अब ठीक हो गया

होगा। उसके दूसरे दिन दोपहर के समय मेरे काकाजी जोवनेर से मेरे पिताजी के गुजर जाने की खबर लेकर आये। उस दिन मैं अपनी पत्नी से रूठा हुआ था और हम आपस में बोल नहीं रहे थे। मैं दौड़ा हुआ पुरोहित जी साहब की तरफ गया। मैं अपने आपको संभाल नहीं पा रहा था। गुरुजी बिहारीलाल जी महाराज भी वहां थे। दोनों ने मुझे पुचकारा। पुरोहित जी साहब ने अपने आप ही मुझे हजार रुपये ला दिये। और हम पति-पत्नी जोवनेर के लिए रवाना हो गये। तीसरे दिन का काम किया। और पिताजी की अस्थियों को गंगाजी भिजवाया। फिर मैंने सोचा कि मुझे अपने पिताजी का अच्छा से अच्छा श्राद्ध करना चाहिए सो ही मैंने किया। वह श्राद्ध और वह क्रियाकर्म जोवनेर में अभूतपूर्व था। पुरोहित जी साहब ने मुझे और ज्यादा रुपया भी दे दिया था। जयपुर से मेरे तमाम मित्र और हितैषी जोवनेर आये थे। माता पहले ही मुझे जरा सा छोड़कर जा चुकी थी। मेरी दादी भी मेरी अनुपस्थिति में गुजर चुकी थी और मेरे पिता जी मेरे जीवन को बनाने वाले, साक्षात् त्यागमूर्ति अचानक ही विदा हो गये। पर मैं क्या करता, कोई भी क्या कर सकता था?

जब मैं मेयो कालेज में था तब १९२२ के सितम्बर में (नवरात्र स्थापना के दिन) हमारे घर एक बच्ची का आगमन हो चुका था। मैं जोवनेर पहुंचा तब मेरे पिता जी उदास होकर बोले—भाया—आपणें तो बाई आई छै यानी लड़का नहीं हुआ। मेरे पिता जी का देहान्त हुआ उन दिनों में घर में दूसरे बच्चे की आमद में कुछ ही समय बाकी था। मैं जयपुर में था। मैंने सोचा जोवनेर जाना चाहिए। किसी अज्ञात भय से मेरा दिल धड़क रहा था। रात के समय सवारी मिली नहीं, । गंगाराम ने सामान उठाया और हम लोग पैदल ही स्टेशन पहुंचे। सवेरे गाड़ी आसलपुर स्टेशन पहुंची तो एक आदमी मुझे बुलाने का तार लिए मिला। मैं ऊंट पर बैठकर जोवनेर पहुंचा। । मेरी पत्नी बेहोश पड़ी थी। मैंने देखा अब कुछ नहीं हो सकता। मैं बाहर आ कर बैठ गया, और स्त्रियों के रोने की आवाज का इन्तजार करने लगा। आवाज बहुत जल्दी आ गयी। मैं पागल की तरह भाग खड़ा हुआ। पर जाता कहां? हमारी बच्ची की आंखें आ रही थीं। दाह कर्म के बाद २॥ साल की बच्ची मेरी छाती से चिपक गयी। दो चार दिन के बाद उसकी आंखें खुलीं तो उसने मेरी काकी को अपनी मां समझ लिया। बाद में उसने रतन जी को अपनी मां मान लिया। जहां तक मैं सोच सकता हूँ शान्ता बाई (यही तो उसका नाम था) को यह पता ही नहीं था कि उसको जन्म देने वाली मां कौनसी थी। जो बच्चा हुआ था वह शायद पूरा नहीं था—मैंने देखा नहीं। उसे जिन्दा रखने की कितनी ही योजना मैंने बनायी—पर बच्चा कहां बचने वाला था। मुझे बराबर लगता रहा कि मेरे पिताजी की मृत्यु का धक्का मेरी पत्नी को मुझ से भी ज्यादा लगा है—शायद वह भी उसकी मृत्यु का कारण हुआ हो?

एक महीने के भीतर ऐसे जोर के दो तीन धक्के खाकर मैं जयपुर पहुंचा। जोबनेर से मैंने अपने आफिसर रायबहादुर के पास खास आदमी के साथ पत्र भेजा था।

महीने भर पहले मेरे पिताजी का देहान्त हो गया था और आज मेरी पत्नी चल बसी है। उसकी सख्त बीमारी की वजह से मुझे जोवनेर आना पड़ा—कृपया मेरी छुट्टी मंजूर करावें। अफसर साहब को मेरे साथ सहानुभूति नहीं हुई, वल्कि उन्होंने एतराज किया कि मैंने बिना इजाजत के हैडक्वार्टर कैसे छोडा ? मैं सोच नहीं सकता था कि ऐसे पाषाण हृदय मनुष्य भी हो सकते हैं। मुझे नौकरी से पहले ही बहुत नफरत थी और अब मेरी नफरत बहुत ज्यादा हो गयी। और अफसरों को तो मैं मानने वाला ही क्या था !

मेरी सगाई की बातें चल पड़ीं। अब तो मैं खुद ही हां–ना करने वाला था। धन का लोभ दिखाने वाले एकाध को मैंने टाल बतायी, मैं लोगों की निगाह में जिद्दी दिखायी दिया। बहुत जल्दी ही रतलाम निवासी श्री रघुनाथ जी व्यास(मास्टर)मेरे पास आ पहुंचे। वे मेरे कुछ मित्रों से परिचित थे। उनकी बात मेरी समझ में आने लगी। पर मैंने अपने प्रिय पात्र सुखदेव को चुपके से रतलाम भेजा, लड़की को देखने के लिए। सुखदेव बहुत अच्छी रिपोर्ट लाया। मेरी सगाई मास्टर रघुनाथ जी व्यास की लड़की रतनबाई से हो गयी। मास्टर साहब से द्वेष रखने वाले लोगों का एक शिष्टमण्डल मध्यभारत से चलकर पुरोहित जी साहब के पास पहुंचा, यह कहने के लिए कि रघुनाथ जी व्यास 'जात बाहर' हैं। ऐसे लोगों की कौन सुनने वाला था। दो–चार महीने बाद मेरा विवाह रतन जी से हो गया, खाचरोद में। रतन जी की माता जी के पास मेरे बारे में विरुद्ध रिपोर्ट पहुंचायी गयी थी, इसलिए वे उस समय बहुत खुश नहीं थीं। विवाह के कुछ ही दिन बाद मैं रतनजी को लाने के लिए रतलाम पहुंचा तब रतन जी की 'बाई' ने मुझे देखा। तब से वे मेरी 'बाई' भी हो गयीं और वही मेरी माता जी हैं, मुझे जन्म देने वाली मेरी मां के स्थान पर। मेरी दादी के स्थान पर बाई की सास 'बा' थीं। कितना प्यार मेरे साथ था बा का, बाई का और दा साहब (रतन जी के पिताजी) का। मैं तो वनस्थली आकर बस गया था। और मेरी गृहस्थी का सारा काम रतलाम, सैलाना में होता था। प्रसूति हुई तो क्या, रतन जी या कोई बच्चा बीमार हुआ तो क्या, कोई छोटा बच्चा चल बसा तो क्या ? मैं रतन जी के पीहर से, अपने सासरे से कभी उऋण नहीं हो सकता।

रतन जी के आने से मैं फिर दोहरा हो गया था। हमारी बच्ची शान्ताबाई तो थी ही, १९२९ में सुधाकर आ पहुंचा। हम चार हो गए। मेरे एक काकाजी और काकी और उनके बच्चे भी हमारे साथ ही थे। एक दूसरे काकाजी की एक लड़की शिवकुंवरी हमारे पास रहती थी जिसका विवाह हम लोगों ने कर दिया। मित्रों के आग्रह से मैंने जयपुर में एक मकान २००० रु० में खरीद लिया था, ज्यादातर उधार लिए हुए रुपये से। नौकरी मेरी बहुत बढ़िया थी ही। सब कुछ ठीक था पर मेरे मन में जो गांव में आश्रम बना कर रहने की खटक थी सो उसका मैं क्या करता ? बहरहाल मुझे नौकरी छोड़नी ही थी। रतन जी बहुत खुश होकर सहमत हो गयीं—बोली, चलिए जहां होंगे

राम वहीं होगी अयोध्या। मैंने एक योजना बनायी पुरोहित जी साहब के गले उतारने की। सेठ जमनालाल जी से मिलकर तय किया कि मुझे नौकरी छोड़कर एक बार श्री घनश्यामदास जी बिड़ला के पास जाना चाहिए। यही बात मैंने पुरोहित जी साहब को समझायी, बिड़ला जी के पास जाने से मेरी बड़ी तरक्की होगी, इत्यादि। पर यह सारी बात झूठी थी, मुझे किसी के पास जाकर अपनी कोई तरक्की नहीं करनी थी। जो हो, पुरोहित जी साहब के आशीर्वाद के साथ मैंने एक दिन चुपचाप नौकरी छोड़ दी और मैं महकमा खास से, पारीक पाठशाला से, अपने राजस्थान छात्रालय से, मित्रों की प्रयास परिषद् से विदा लेकर पिलानी जा पहुंचा। मेरी तरक्की के बारे में पुरोहित जी साहब मुझे बहुत समझा चुके थे पर वे मुझे जागते हुए को क्या जगाते? मैंने उनसे कह दिया था—आपकी जैसी तरक्की मिनिस्ट्री, रायबहादुरी, सी. आई. ई., नाइटहुड, सोना, ताजीम, जागीर मुझे कुछ नहीं चाहिए। मेरे पिताजी से बढ़ कर पुरोहित जी साहब भारी दिल से मुझे आशीर्वाद दे चुके थे।

अध्याय २

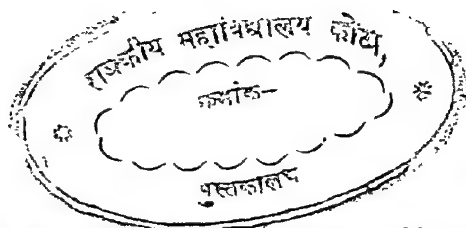
१

रचनात्मक सेवा की तैयारी

१९२७ – २९

जयपुर राज्य की नौकरी छोड़कर मैं अकेला ही पिलानी पहुंचा था। जयपुर शहर में मेरा समय विविध कामों से भरा हुआ रहता था। महकमा खास में मैं कायदे से बहुत ज्यादा समय लगाता था और बचा हुआ काम मैं घर पर ले आता था। पारीक हाई स्कूल में नियमित रूप से पढ़ाने को जाता था। राजस्थान छात्रालय की संभाल में समय लगाता था और प्रयास परिषद के काम में भी। पुरोहितजी साहब के घर पर भी कुछ न कुछ समय लग ही जाता था। काम वाले बहुत लोग मुझसे मिलने के लिए घर पर भी पहुंचते थे।

जयपुर से मैं पिलानी पहुंचा तो एक दम अकेला पड़ गया। कोई खास काम मेरे ज़िम्मे नहीं था। श्री घनश्यामदासजी बिड़ला स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से पिलानी में ठहरे हुए थे। मुझे एक अलग कोठी में ठहराया गया जहां पर मेरे पास कोई सहायक नहीं था। मैंने अकेलेपन के साथ-साथ दूसरी तरह से भी तकलीफ़ महसूस की। घनश्यामदासजी की प्रेरणा से बिड़ला परिवार के दो चार लड़के और दो एक दूसरे लोग सवेरे जल्दी प्रार्थना करने को इकट्ठे होते तो मैं भी वहां बेनागा चला जाता। मैं मावो और किशन को



शौकिया अंग्रेजी पढ़ाने लग गया और लक्ष्मीनिवास को शायद संस्कृत। सवेरे घनश्यामदासजी के साथ घूमने को निकल जाता और जो इधर-उधर की बातें होतीं सो मैं भी सुनता रहता। भोजनादि की अच्छी व्यवस्था थी घनश्यामदासजी के साथ ही।

मैंने अपने शौक से हाई स्कूल के कुछ लड़कों से सम्पर्क किया। वे मेरे पास आने लगे और मैं उनको देशसेवा आदि की बातें बताने लगा। उनका सम्पर्क मैंने घनश्यामदासजी से करवाया, भोजन के लिए उनको बुलाकर। स्कूल के एक अध्यापक श्री वंशीधर शर्मा मुझे मिल गये। उनका ध्यान भी किसी गांव में बैठकर काम करने का था। हम दोनों ने पड़ौस के खेड़ला नामक गांव में रोज़ाना शाम को जाना शुरू कर दिया। वहां पर लड़कों को पढ़ाते, उनसे प्रार्थना करवाते और गाने गवाते जो मेरी खुद की ही टूटी फूटी रचनाएं थीं। घनश्यामदासजी आदि मेरी इस हलचल को दिलचस्पी के साथ देखते थे।

पिलानी से मैं श्री हरिभाऊजी उपाध्याय के साथ साबरमती गया, गांधीजी को देखने के लिए। कोई एक सभा हो रही थी। उसमें गांधीजी भी थे। बीच में ही वे शायद बाथरूम जाने को उठे। वे चलते-चलते बेहोश होकर गिर गये। ऐसी हालत में हम जैसों का उनके पास बैठकर मिलने का मौक़ा नहीं रहा। श्री महादेव भाई देसाई आदि कुछ दूसरे लोगों से हरिभाऊजी ने मुझको मिलाया। साबरमती नदी का किनारा मैंने देखा और गांधीजी के रहने की कुटिया भी। हरिभाऊजी और मैं अहमदाबाद से बड़ौदा होकर उज्जैन व इन्दौर गये। रेलगाड़ी में ज़्यादा भीड़ होने से हमको सेकण्ड क्लास के टिकिट बनवाने पड़े। हरिभाऊजी ऊपर की बर्थ पर थे। नीचे एक दूसरे मुसाफ़िर थे। हरिभाऊजी अपना कफ़ आदि थूकने के लिए एक शीशी पास में रख लेते थे। वह शीशी लुढ़क गयी और उसमें जो कुछ था वह नीचे वाले मुसाफिर के मुंह पर जा गिरा। मुसाफिर ने अफ़सोस के साथ कहा कि आपकी दवा ढुल गयी है। न हरिभाऊजी बोले, न मैं बोला, हालांकि हम जानते थे शीशी में कौनसी दवा थी। हमारा वह व्यवहार सचाई, ईमानदारी की कौनसी श्रेणी में गिना जाना चाहिए? उज्जैन, इन्दौर में हरिभाऊजी ने कई साथियों से मेरा परिचय कराया। लौटकर मैं घनश्यामदासजी से मिला तो उन्होंने पूछा—गांधीजी में आपको कौनसी बात खास लगी? मैंने झट से कह दिया—गांधीजी जैसा सोचते हैं वैसा ही बोलते हैं और जैसा बोलते हैं वैसा ही करते हैं। मेरे खयाल में घनश्यामदासजी को यह विश्लेषण बहुत मामूली लगा।

घनश्यामदासजी युक्तप्रान्त के बनारस गोरखपुर डिवीजनों की ओर से केन्द्रीय धारा सभा के मेम्बर चुने गये थे मालवीयजी की मदद से, कांग्रेसी प्रत्याशी श्री श्रीप्रकाशजी को हरा कर। तय हुआ कि मैं कलकत्ता जाने से पहले बनारस गोरखपुर डिवीज़नों का दौरा कर आऊं। मैं बनारस पहुंचा। वहां पर जयपुर के संस्कृत के विद्यार्थियों के बीच में रहना, उनके साथ भोजन करना मुझे बहुत अच्छा लगता। मैं बनारस से गोरखपुर पहुंचा, श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार के यहां। गोरखपुर से (बुद्ध के जन्म स्थान) लुम्बिनी उपवन

गया। सवेरे नौतनवा स्टेशन पर उतरा। कोई सवारी नहीं मिली मुझे। रास्ता बताने के लिए एक हरिजन को साथ लेकर मैं पैदल चल पड़ा। १२ मील की दूरी थी, मेरे पांव में जूते की कील चुभ रही थी, बड़ी धूप थी, रास्ते में कई नाले आये। मेरे पास दो चार सन्तरे थे सो मैं चलता-चलता खाता रहा। लुम्बिनी उपवन में मुझे देखने जैसा कुछ नहीं लगा। वहां की कुइया का ठंडा पानी पिया और पैदल ही वापिस चल दिया। नौतनवा लौटकर मैंने हरिजन के घर भोजन करने का बहुत आग्रह किया, पर वह राजी नहीं हुआ। मैं प्लेटफार्म पर लेट गया और हरिजन भाई जो कुछ खरीद कर ला सका सो ही खाकर मैंने सन्तोष माना। बाद में गोरखपुर से मैं बस्ती पहुंचा। उसी जिले में एक जगह अठदया है। वहां के जमींदार ने मेरी ब्राह्मण जैसी खातिर की। एक अस्तबल सा था जिसमें बहुत से चूल्हे जल रहे थे, रात के अंधेरे में। एक स्वयंपाकी ब्राह्मण के साथ भोजन करने की व्यवस्था मेरे लिए की गयी। आधी रात को मुझे बिना होदे के हाथी पर बिठाकर रवाना किया गया, कई मील चलकर रेलगाड़ी पकड़ने के लिए। मुझे नींद सता रही थी और मैं बड़ी मुश्किल से हाथी पर से अब गिरा तब गिरा की हालत में राम-राम करके स्टेशन पहुंचा। मैंने आजमगढ़, जौनपुर, बलिया, मिर्जापुर का दौरा भी किया। बाबा राघवदास के आश्रम (बरहज बाज़ार) भी गया। लोग समझे नहीं कि मैं इस प्रकार की यात्रा क्यों कर रहा हूं। मैंने अपना सही उद्देश्य किसी को बताया नहीं। कलकत्ता पहुंच कर मैंने अपने दौरे की लिखित रिपोर्ट घनश्यामदासजी को दे दी।

कलकत्ते में मैं बिड़ला पार्क में ठहराया गया। वहां पर मुझे अच्छा भोजन मिल जाता और अच्छे से कमरे में मेरा डेरा था। मेरे पास से खर्चा कुछ नहीं लगता था। घनश्यामदासजी के साथ कार में बैठकर मैं बिड़ला ब्रदर्स के ऑफिस में पहुंच जाता। वहां से मैं बड़ा बाजार हो आता। लोग समझते कि मैं घनश्यामदासजी का सेक्रेटरी बना हूं। पर मेरे सुपुर्द काम था कुछ संस्थाओं की देखभाल करने का। अबलाश्रम जैसी दो-एक संस्थाओं में तो मैं वैसे ही चला जाता था। पर मैं मारवाड़ी बालिका विद्यालय के काम में रम गया। श्री सीतारामजी सेकसरिया विद्यालय के मंत्री थे। वे अपना कामधंधा छोड़कर पूरे तौर पर सार्वजनिक सेवा में अपना जीवन देने की धुन में थे। विशेष पढ़े लिखे न होते हुए भी वे सब बातों के जानकार अनुभवी कार्यकर्ता थे। उन्होंने मेरी मदद का हार्दिक स्वागत किया। मेरी राय से सीतारामजी ने मामूली से विद्यालय को हाई स्कूल का रूप दे दिया। सीतारामजी के साथ मेरी प्रगाढ़ मैत्री हो गयी और वे चाहे जब कहते रहते हैं कि मुझसे उन्होंने बहुत कुछ सीखा, डायरी लिखना आदि। यह उनका सौजन्य है। एक बहुत खास बात लिखने की रह गयी। मुझे बिड़ला पार्क ठहरे रहना बिल्कुल नहीं जंचा। मैं सोचता था, इतने बड़े घर में रहने से मैं अमीर सा आदमी होकर बिगड़ जाऊंगा। सब कुछ बहुत अच्छा और बिना खर्चे के। मैंने उस लाभ को लाभ न मानकर नुकसान माना। घनश्यामदासजी से बात करके मैं रतनजी को कलकत्ता ले आया। साथ में ५-६ साल की शान्ताबाई और १।। साल का सुधाकर था। मेरे पास रहने वाले लड़कों में से एक ब्रजमोहन

शर्मा को मैंने हिन्दी का टाइप सिखला दिया था और उसे घनश्यामदासजी ने अपने यहां नौकरी दे दी थी। ब्रजमोहन हमारे साथ ही रहता था। वह मेरा सेक्रेटरी, कामदार और भाई सब कुछ था। मैंने उन दिनों पंडित जवाहरलाल नेहरू से पत्र व्यवहार शुरू किया। गुड़गांव ज़िले के डिप्टी कमिश्नर ने विलेज अपलिफ्ट का काम किया था, मैंने उनसे भी लिखा-पढ़ी की। घनश्यामदासजी की प्रेरणा से मैंने हिन्दुस्तान टाइम्स में अंग्रेजी और विश्वमित्र आदि में हिन्दी के कई लेख जयपुर राज्य के शासन के बारे में छपवाये, गुमनाम से। लेखों में जयपुर के नाबालिग़ी के शासन की आलोचना थी। उस जमाने में जयपुर सरकार में अंग्रेजों का वोलवाला था, पर मेरे लेखों पर कोई खास ध्यान दिया गया होगा सो मुझे नहीं मालूम है।

कलकत्ते में दोनों बच्चों सहित रतनजी का और मेरा आठेक महीने रहना हुआ होगा। उस समय में मैंने मारवाड़ी वालिका विद्यालय के अलावा कोई खास काम नहीं किया। पर कलकत्ता निवास का वह समय मेरे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। अव्वल तो घनश्यामदासजी से मुझे उस समय के लायक अच्छी आर्थिक सहायता मिल गयी। उनकी उदारता से मेरा सब लेना-देना साफ़ हो गया, मेरी गृहस्थी का खर्चा तो चल ही गया। मेरा जो परिचय सीतारामजी से हुआ उसने जिन्दगी भर की अटूट मैत्री का रूप ले लिया। श्री भागीरथजी (कानोड़िया) से भी क्रमशः मेरी अभिन्न भाव की सी मैत्री हो गयी। बाकी पद्मराजजी जैन, प्रभुदयालजी हिम्मतसिंह का, वसन्तलालजी मुरारका, रामकुमारजी भुवालका आदि कई एक से मेरा मित्र-भाव बन गया। पद्मराजजी तो जल्दी गुजर गये थे, वसन्तलालजी बहुत बाद तक रह कर चल बसे, बाकी सबसे मेरा आज भी बहुत अच्छा सम्बन्ध मैं मानता हूं। भागीरथजी से मुझे अच्छी सहायता मिली, दूसरे कुछ मित्रों की सहायता भी मेरे लिए कम उपयोगी नहीं थी। सीतारामजी, भागीरथजी और घनश्यामदासजी का मेरे ऊपर जो कर्ज़ा है उसे मैं इस जिन्दगी में नहीं चुका सकता। बाद में मेरी यथेष्ट सहायता करने वाले ब्रजमोहनजी बिड़ला पर भी यही बात लागू होती है। जमनालालजी ने मुझे घनश्यामदासजी के पास पहुंचाया था, सो उनका कर्ज़ा भी मैं अपने ऊपर बहुत मानता हूं। आर्थिक सहायता के सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि घनश्यामदासजी व जमनालालजी से जीवनकुटीर के लिए केवल सांकेतिक सी सहायता मिली, यही सूरत प्रजामण्डल के जमाने की थी, सिवाय सत्याग्रह के जमाने में जब प्रायः सारा आर्थिक प्रबन्ध जमनालालजी की प्रेरणा से ही हुआ था। ब्रजमोहन जी की सहायता जीवनकुटीर के लिए, खास तौर से १९४१–५० की दशी के उन दिनों हुई जब जीवनकुटीर का मुख्य ध्यान कार्यकर्त्ताओं के सार्वजनिक कार्यक्रमों में सहायता पहुंचाना था। सीतारामजी की पत्नी भगवानदेवी से रतनजी का और मेरा व्यवहार एकदम घर का सा हो गया। सीतारामजी की बाई पन्ना मेरे लिए शान्तावाई जैसी बनी रही।

कलकत्ते में रहते हुए मैंने जयपुर की ओर भी थोड़ा बहुत ध्यान तो रखा। राजस्थान छात्रालय तो चल ही रहा था। १९२८ का कांग्रेस सेशन देखने के लिए मुझसे विना पूछे ही छात्रालय के सारे लड़के अचानक कलकत्ता आ पहुंचे। उनका तमाम इन्तज़ाम करने में काफी खर्च हुआ जिसमें वसन्तलालजी मुरारका जैसे मित्रों के सहयोग से बहुत आसानी हो गयी। लड़कों का यह उत्साह मुझे बहुत अच्छा लगा। छात्रालय के अलावा एक छात्रमण्डल जयपुर में कायम किया गया। उसमें रंगाई, जिल्दसाज़ी जैसे काम विद्यार्थियों को सिखलाये, जिससे वे कुछ क़माई कर सकें। उस काम की शुरूआत अच्छी थी, पर छात्रमण्डल ज्यादा समय तक नहीं चला। जयपुर में एक जयपुर हितकारिणी सभा कायम की गयी। उस काम के लिए खर्चे का अच्छा इन्तजाम था। सभा ज्यादा समय तक नहीं चल सकी। सभा के अध्यक्ष पण्डित वालचन्द्रजी शास्त्री और मन्त्री श्री केसरलालजी अजमेरा थे। उन दिनों में सार्वजनिक कामों में भाग लेने वालों में श्री घींसीलालज़ी गोलेछा और श्री सूरजबख्शजी घीया के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। शेखावाटी में ज़कात की समस्या थी। उसके समाधान के लिए श्री रामदेवजी चोखानी, श्री देवीवख्श सर्राफ आदि प्रयत्न कर रहे थे। घनश्यामदासजी की राय से मैंने भी उस काम में हिस्सा लिया।

लाला लाजपतरायजी के देहान्त का समाचार मुझे कलकत्ता में मिला। हम लोग दूर के किसी वाग में सैर करने गये हुए थे। लालाजी से मैं कभी मिला हुआ नहीं था, पर उनसे मैं इतना ज्यादा प्रभावित था कि मेरे आंसू रुके ही नहीं। माहेश्वरी भवन में जो शोकसभा हुई उसमें मैं भी वोला, विना लाउडस्पीकर के वड़े जोर शोर से। वड़े शहर की वड़ी सभा में वह मेरा पहला सार्वजनिक भाषण था। कलकत्ते में कांग्रेस अधिवेशन मैंने तो देखा ही, जयपुर से कुछ दूसरे मित्र भी अधिवेशन देखने आ गये थे। मैं कांग्रेस में कुछ था तो नहीं, पर मैंने अधिवेशन को बहुत नज़दीक से देखा जिसका मेरे मन पर बहुत असर हुआ। कलकत्ते में एक दिन घनश्यामदासजी गुरुदेव रवि वावू से मिलने गये तो मुझे भी साथ ले गये। वस सारे जीवन में इतना सा ही दर्शन गुरुदेव का मुझे हो सका।

एक ओर तो मैं कलकत्ते के जीवन से वहुत जल्दी उकता गया था, दूसरी ओर मुझे फिक्र हो रही थी किसी गांव में जाकर वसने के अपने संकल्प को पूरा करने की। मैंने घनश्यामदासजी से अपनी यह वात कह दी। वे मुझे तुरन्त छोड़ने के लिए राजी हो गये। रचनात्मक काम करने की मेरी लगन को उन्होंने समझ लिया होगा। कांग्रेस अधिवेशन के वाद रतनजी और मैं वर्धा पहुंचे। भगवानदेवी और सीतारामजी भी वहां थे और जमनालालजी तथा घनश्यामदासजी भी। मैंने सवसे पहले गांधीजी को अपना इरादा वता दिया और उन्होंने अपना आशीर्वाद मुझे दे दिया। फिर वात हुई जमनालालजी और घनश्यामदासजी से, दोनों से साथ-साथ। वे चाहते थे कि मैं पहले पुरुषोत्तम

दासजी टण्डन जैसे बड़े सेवक के पास ट्रेनिंग प्राप्त करूं और फिर काम शुरू करूं। मेरी कल्पना थी कि मेरी ट्रेनिंग प्रत्यक्ष काम के द्वारा ही बहुत अच्छी होगी। इसलिए मैं अपने दोनों शुभचिन्तकों की राय मानने को तैयार नहीं हुआ। जमनालालजी ने कहा आपको इस प्रकार बहुत तकलीफ़ होगी। मैंने अपने मुंहफट तरीके से उनको जवाब दे दिया कि जब तकलीफ़ होगी तब आपके पास आजाऊंगा, आप अभी से क्यों तकलीफ़ पा रहे हैं। घनश्यामदासजी ने कहा मैं आपको इस काम के लिए रुपया नहीं दूंगा। मैंने उनसे कह दिया, जब आपके पास रुपया मांगने को आऊंगा तभी तो आपके रुपया देने न देने का सवाल पैदा होगा। मैं इस काम के लिए रुपया मांगने को आपके पास आऊंगा ही नहीं। ऐसा हुआ भी। जमनालालजी के पास से मेरे पास ४५० या ५०० रुपये आये, ग़फलत से मेरे जिम्मे किसी मित्र के चुकाने इतने से रुपये बाकी रह गये थे सो मैंने चुका दिए। घनश्यामदासजी ने भी एक बार मुझे अपने आप ही ५०० रुपये दे दिये। बस इतना आर्थिक सहयोग उन दोनों "भाई जी" का मेरे रचनात्मक काम में हुआ। पर जमनालालजी को पता चला कि मैं तकलीफ़ में हूं तो उन्होंने तार देकर मुझे बुलवाया जिसका अन्त में जाकर नतीजा यह आया कि मुझे गांधी सेवा संघ और चर्खा संघ दोनों से आर्थिक सहायता मिल गयी। जमनालालजी–घनश्यामदासजी का हाल मैंने सीतारामजी को सुनाया तो वे बहुत प्रभावित हुए और बोले–१०० रु० मासिक तक तो अपन ही खर्च कर सकते हैं। उस समय १०० रु० मासिक को मैं निधि मान सकता था। इस प्रकार मेरा काम सीतारामजी के द्वारा हो गया। इसलिए मैं उनको वनस्थली का आदि सुहृद् कहता हूं।

कलकत्ते में मुझे कई तरह के अनुभव हुए। शेखावाटी की ओर से आये हुए महाजन लोग शेखावाटी को ही राजस्थान मानते हुए लगे। अग्रवाल लोग शायद अपने आप को ही मारवाड़ी मानते थे। माहेश्वरियों के साथ तो फिर भी उनका हिसाब ठीक था, बाकी ओसवाल जैसे महाजनों को शायद वे अपने से अलग ही समझते हों। महाजनों के अलावा किसी दूसरी जाति की तो मारवाड़ियों के पास गिनती ही नहीं थी। पर राजपूतों का वे ज्यादा लिहाज़ मानते हुए लगे। ठाकुरों के साथ के निकट सम्पर्क से वे गौरव अनुभव करते दिखायी दिये। ब्राह्मणों को वे हेय दृष्टि से देखते हैं, ऐसा मुझे बराबर लगता रहा—शायद ब्राह्मणों में मांगने की प्रथा होने से। मारवाड़ी भाई व्यापार आदि की दृष्टि से महाजनों के सिवाय शायद ही किसी को योग्य मानने को तैयार होंगे। दो एक बार ऐसा अनुभव मुझे भी हुआ कि जब तक लोगों को मेरे ब्राह्मण होने का पता नहीं लगा, तब तक एक बात थी—और वह पता लगते ही दूसरी बात हो गयी। यह मैंने वह असर बताया है जो मुझ पर पड़ता रहा, बाक़ी इसमें कुछ भूल भी हो सकती है।

कलकत्ते से एक बार हम लोग जसीडीह गये। वहां कुछ दिन ठहरें। एक दिन पहाड़ पर गये। मुझे अभ्यास था, इसलिए मैं लपकता हुआ पहाड़ की चोटी पर जा

पहुंचा। मेरे पीछे से ईश्वरदास जी जालान भी जा पहुंचे, बाकी सब कहीं के कहीं रह गये। बेचारी स्त्रियों का तो हाल-बेहाल हो गया। वापसी में उन्हें एक ठेले में बिठाया और ठेले को मैं घसीट लाया जिससे उन्होंने मुझे बहुत ज़ोरदार माना। मेरी कुछ ज्यादा खा जाने की आदत भी उन दिनों ज्यादा सामने आयी। मेरे मित्र मुझे भोजनभट्ट ही समझने लगे और इस मामले में मैं प्रख्यात-कुख्यात हो गया। मुझे भी अपनी ताकत दिखाने में कुछ ज्यादा ही मज़ा आता था। एक बार जयपुर में मजदूर न मिलने से मित्रों के सारे भारी सामान को मैंने अकेले ने तिमंजिले पर चढ़ा दिया था जिसकी लोगों को आज तक याद है।

अब तो मुझे जयपुर राज्य में खालसा के किसी गांव की खोज करनी थी और वहां जाकर बस जाने की तय्यारी करनी थी। बिजौलिया में जेठालाल भाई वस्त्र-स्वावलम्बन का काम करते थे। उसे हरिभाऊ जी के साथ जाकर मैं देख आया। मैंने अपने विचारों को एक लम्बे से लेख में लिख डाला। मैंने अपने लिए 'जीवन' शब्द का चुनाव किया। आश्रम शब्द से मैं कुछ डरने लग गया था, इसलिए मैंने कुटीर शब्द को चुना। इन दोनों शब्दों से 'जीवनकुटीर' की रचना होगयी। बंशीधरजी शर्मा को मैंने धुनाई, कताई, बुनाई, का काम सीखने के लिए जेठालाल भाई के पास भेज दिया। उन्होंने पिलानी की अपनी नौकरी छोड़ दी थी। बिजौलिया में थोड़े समय में ही जो काम उन्होंने सीखा वह बहुत अच्छा था। मेरे पास रहने वाले विद्यार्थी प्रकाशचन्द्र गोयल को मैंने अजमेर भेज दिया, हरिभाऊ जी के पास प्रेस आदि का काम सीखने के लिए और मैं निकला गांव की खोज में। इससे पहले मैं बारडोली हो आया था और उधर जुगतराम भाई दवे के द्वारा वेड़छी में होने वाले रचनात्मक काम को देख आया था। रचनात्मक काम में गुजराती भाइयों की बराबरी हम लोग नहीं कर सकते, ऐसा मैं मानता आया हूं। दुर्गाप्रसाद शर्मा नाम के अपने प्रिय शिष्य को मैंने अपने साथ लिया। गांव की खोज में हम लोग बहुत भटके, बड़ी तकलीफ़ उठायी। आखिरकार जयपुर राज्य की निवाई तहसील में बनथली नाम का गांव पसन्द किया गया।

गांव पसन्द करने की कसौटी क्या थी? वह गांव बहुत गरीब होना चाहिए, उसमें पक्का मकान न हो, वह शहर से, कस्बे से, रेलवे-स्टेशन से, डाक घर से दूर हो। उसमें पानी की कमी न हो, उस गांव में प्रायः एक ही जाति के किसान बसते हों, उसमें कपास की खेती होती हो, इत्यादि। बनथली में इन शर्तों में से कई एक पूरी होती थीं। इसलिए वह गांव पसन्द कर लिया गया। बनथली का नाम सुनते ही मैंने तपाक से कहा—बनथली क्या, वनस्थली बोलो। इस नाम ने बनथली के चुनाव को पक्का कर दिया। निवाई में एक तो डॉ० प्रभुदयाल जी थे जिनके साथ मेरा अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था। दूसरे तहसीलदार थे सुरेन्द्रलाल जी कासलीवाल।

तीसरे मिल गये केसरलाल जी पटवारी। इन तीनों से मुझे बहुत मदद मिली। गांव दिखाने को केसरलाल जी मेरे साथ गये और जब मैं गांव में बसने को पहुंचा तो तहसीलदार जी, डॉक्टर साहब, पटवारी जी आदि तमाम वनस्थली पहुंचे। लोगों ने समझा कि इतने बड़े-बड़े लोग-राज के हाकिम तक जिस आदमी के पीछे-पीछे चलते हैं वह कोई बहुत ही बड़ा आदमी होना चाहिए।

रतनजी से मेरी बात हो ही चुकी थी। मैं तो गांव में एक तरह से किसान परिवार में पला हुआ था। शरीर से मजबूत था और चाहे जैसी आबहवा में कुछ भी खा-पीकर रह सकता था। रतनजी थीं उस घर की जिसका रहन-सहन का स्टेण्डर्ड काफ़ी ऊंचा था। शहर से आयी हुई, महारानियों के बीच रही हुई और राज कुमारी की भांति पली हुई। रतनजी को किसी प्रकार का अनुभव भी नहीं था। पर उन्होंने बड़े भक्तिभाव से मेरा पूरा साथ देने का पक्का फैसला एक मिनट में कर डाला। इस मामले में मैं अपने आपको बहुत भाग्यशाली मानता हूं। रतनजी ने पर्दा और जेवर तो कलकत्ता पहुंचने के साथ-साथ ही छोड़ दिया था। फिर खादी पहनने का समय आया तो रतनजी से खादी धुलने में ही न आवे, इतनी भारी साड़ी उनसे संभले ही नहीं। परन्तु उन्होंने कोई परवाह नहीं की और खादी का प्रण ले डाला। बच्चों की पोशाक भी खादी की हो गयी। एक छोटे से गांव में रहने का सवाल तो था ही, रतनजी को जौ की रोटी बनाने-खाने का अभ्यास भी नहीं था। उन्होंने चाय भी छोड़ दी। उन्होंने अपने जीवन को बीस बिस्वा मेरे जीवन में शामिल कर लिया। इसलिए मैं अपने आपको मामूली और रतनजी को अपने मुकाबले में गैरमामूली मानता हूं।

जब में बारडोली होकर सैलाना पहुंचा तो वहां पर मुझे मेरी बुहा के देहावसान का समाचार मिला। वह मेरी दादी के साथ-साथ मुझे पालने वाली थी। वह बड़ी मर्दानी और बहादुर भी थी। अन्धी होते हुए भी वह गांव भर में सबसे अच्छा बारीक सूत कात सकती थी। पहले उसने अपनी विधवा मां की मदद की, बाद में अपने भाइयों की और उनकी बहुओं की। मेरी ऐसी बुहा भी मेरी गैरहाजरी में ही गुजर गयी। मेरा भाग्य ऐसा ही रहा—माता के देहान्त के समय मैं सवा साल का था, फिर पिताजी, दादी, बुहा इत्यादि किसी के अन्त समय में भी मैं हाजिर नहीं रहा। रतनजी और मैं जोबनेर पहुंचे। मैं खुद बुहा की अस्थियों को गंगाजी ले गया। पर पण्डे लोगों द्वारा ठगा जाने के खतरे से बचने के लिए मैंने उनको अपना नाम दूसरा बता दिया और मैं खुद ही मेरी बातें उनको सुनाता रहा। पण्डों ने हीरालाल शास्त्री का नाम सुन रखा था और उसे वे बड़ा आदमी मानते थे। मैं उन दिनों में नुकते की कुप्रथा के बहुत ख़िलाफ़ हो गया था। इसलिए बुहा का मामूली श्राद्ध किया मैंने। श्राद्ध के दिन जयपुर से कई बड़े लोग आये और एक अच्छी सी आमसभा हमारे घर के बाहर हुई।

मैंने "नुकते की कुप्रथा" नाम की पुस्तिका छपवायी और जयपुर में कुछ भाषण दिये। नुकते के खिलाफ़ बहुत लोगों का सहयोग मुझे मिला। उधर जोबनेर में मैंने मेरी बुहा के नाम से एक छात्रवृत्ति शुरू की, पर वह ज्यादा समय तक नहीं चली।

इस प्रकार १६२७–२६ का समय मेरा तैयारी का समय था। जयपुर में मेरा एक मकान जरूर हो गया था। बाकी मेरे हाथ में नाम लेने को भी पैसा नहीं था। सीतारामजी से १०० रु० मासिक का आश्वासन मुझे मिल चुका था और मैं सेठीजी की प्रेरणा के अनुसार, सीतारामजी के सहारे से और रतनजी के सहयोग से समुद्र में कूद गया था। मेरे साथ काम करने की तैयारी वाले वंशीधरजी भी मुझे मिल चुके थे। गांधीजी का आशीर्वाद मैंने ले ही लिया था और मेरे दो बड़े सहयोगियों का एक प्रकार से चैलेन्ज जैसा भी मैं स्वीकार कर चुका था। जयपुर के मित्रों, साथियों और रिश्ते-दारों की जबान से "महामूर्ख" कहलाने की तैयारी भी मैं कर चुका था। मैंने सरकारी नौकरी छोड़ते समय प्रतिज्ञा कर ली थी, न कमाने की और मांग कर खाने की। मुझे अपने काम की एवज में कुछ नहीं लेना था, जो कुछ भी मेरे हाथ में आ जाये उसे ज्यों का त्यों सार्वजनिक काम के लिए मुझे दे डालना था। मैंने यह भी सोच लिया था कि मेरे काम के लिए मुझे कोई शाबासी नहीं देगा। मैं मर जाऊंगा तब भी लोग कहेंगे—इस दरिद्री से काम नहीं हुआ, यह काम के डर के मारे मर गया। रतनजी के शब्दों में—हम लोग अपना सिर काट कर किसी के सिरहाने रख देंगे तब भी वह शिकायत कहेगा कि यह सिर तो मेरे गड़ता है। इस मजबूती के साथ रतनजी और मैं इस नये देहाती कार्य क्षेत्र में उत्तर गये।

२

जीवनकुटीर, वनस्थली

(१६२६-३६)

अपनी पसन्द के गांव वनस्थली (वनथली) में वसने के लिए मैं अक्षय-तृतीया (सं० १६८६) को पहुंच गया। साथ में मेरा एक शिष्य दुर्गाप्रसाद शर्मा था। रतन जी उन दिनों सैलाना में थीं। प्रसूति होने वाली थी। वाद में रतन जी शान्तावाई (७ साल) सुधाकर (३ साल) और प्रभाकर (६ महीने) को लेकर वनस्थली पहुंची। निवाई रेलवे स्टेशन से चलकर वैलगाड़ी कच्चे रास्ते में उतरी तो न जाने किस ग़लती से वह आवी उलट गयी और शान्तावाई गिर पड़ी, पर वाई के लगी नहीं। पता नहीं वह दुर्घटना किस वात की सूचक थी ?

मैं पहले निवाई कस्वे में पहुंचा था और मैंने डॉ० प्रभुदयाल जी के यहां डेरा किया था। दूसरे दिन एक वैलगाड़ी में सामान लाद दिया। आगे आगे वैलगाड़ी और पीछे-पीछे मैं और दुर्गाप्रसाद पैदल। गर्मी का मौसम, दोपहर के वाद दो-तीन वजे का समय, सामने की वहुत ज्यादा सख्त धूप। सूर्य तप रहा था। पैदल चलने का और छत्ता न लगाने का आग्रह था, छत्ता पास में था भी नहीं। कुछ खराव-सी हालत में हम लोग वनस्थली पहुंचे। गांव के वाहर वालाजी के मन्दिर पर उतरे। वहां की कुइया का ठंडा

पानी पिया और शान्ति प्राप्त की। शाम को निवाई के तहसीलदार सुरेन्द्रलाल जी, डॉक्टर प्रभुदयाल जी और पटवारी केसरलाल जी मय लवाजमे के वनस्थली आये। दालवाटी, बूरे-खरबूजे की गोठ हुई। गोठ के बाद हमारे मित्र हमको वनस्थली में छोड़कर वापस चले गये।

मेरा इतने छोटे गांव में इस प्रकार का कभी काम नहीं पड़ा था। वहां कच्ची (गारे की) ईंटों के मकान बनते थे, छत की जगह ज्यादातर छप्पर और किसी-किसी के यहां मामूली खपरेल होते थे। मैंने पहले कभी कच्ची ईंट (और असल में तो पक्की ईंट भी) नहीं देखी थी। गांव के बीच में एक महाजन की मेड़ी में हमारा डेरा लगा। मेड़ी का छप्पर बहुत नीचा था और उसका बारणा तो बहुत ज्यादा नीचा। न जाने कितनी बार मेरे सिर पर चोट लगी होगी। चौपाये की तरह मेड़ी में प्रवेश करना होता था। मुझे चूल्हा जलाना नहीं आता था और मेड़ी में धुआं भर जाता था जिससे हमारा दम घुटने लगता था कुछ दिन इसी प्रकार निकाले। फिर एक दिन कानदास जी नाम के एक दादूपन्थी बाबाजी हमको अपना एक बाड़ा दिखाकर बोले—महाराज आप यहां पर अपना 'मुकाम' बनाइए। बाड़े में एक नीम था। मैं उसी की छाया में जम गया। वह नीम हमारी वनस्थली का 'आदि-निम्ब' कहलाया। ईंटों का आर्डर दिया गया। पचास फीट की लम्बाई में चुनाई का काम शुरू हुआ। छोटी-छोटी पांच कोठरियां बन गयीं।

ऐसा याद पड़ता है कि मैं जयपुर जा कर कुछ रुपया मांग लाया। डा० दलजंग सिंह जी खानका ने मुझे १०० रु० कलदार दिये, कुछ रुपया दूसरों ने भी दिया, कुछ रुपया सीताराम जी ने कलकते से भेजा। एक कुआ बनाने की सख्त ज़रूरत महसूस हुई। हमने कुआ खोदना शुरू कर दिया। कुछ मजदूर लगा दिये गये। तिवाड़ी गोविन्द नारायण जी ने मुझे कुए की पूरी लागत के ८०० रु० के करीब देना मंजूर कर लिया। बारिश के मौसम में कुआ खोदना और उसकी चुनाई करना बड़ा कठिन काम था। ईंट-चूने का समय पर मिलना मुश्किल हो जाता था। काम बन्द होता दिखायी देने लगा और कुएं के गिर जाने का अन्देशा हुआ तो पास के एक गांव में ईंटों की भट्टी खरीदी गयी। जिससे ईंटे खरीदी गयी थीं, उसका एक बड़ा भाई ईंट लाने नहीं देने लगा तो मैंने एक सेवक को हुक्म दिया—वह आड़ा फिरने लगे तो तू उसे दाब कर बैठ जाना और जब ईंटों की गाड़ी भर कर रवाना हो जाए उसे छोड़ देना। सेवक को सचमुच वैसा ही करना पड़ा। कुआ तैयार हो गया, पर उसका पानी मीठा नहीं था। कुए का नाम जीवन-कूप रखा गया। कुछ समय के बाद हमने एक कुआ खेती के लिए लिया। उस कुए पर चोरी हो गयी। मैंने पड़ौस के एक मुखिया चौकीदार मीणे को बुला कर बैठा दिया और कह दिया कि चोरी की चीजें आएंगी तब तुम्हें जाने दूंगा। आखिर चोरी का सामान आ गया। मैं बहुत बड़ा आदमी तो माना ही जाता था, इन घटनाओं से मेरा दबदबा बढ़ गया—लोग मुझसे डरने लगे।

मेरा प्रिय शब्द 'जीवन' था और आश्रम शब्द के मुकाबले में मुझे कुटीर शब्द ज्यादा पसन्द आया। इसलिए संस्था का नाम जीवन-कुटीर वनस्थली रखा गया। कार्यक्रम का मुख्य अंग वस्त्रस्वावलम्बन सोचा गया जिसका मतलब यह कि ग्रामवासी अपने खेत में पैदा हुई कपास को खुद अपने घर पर लोढें, काकड़े अपनी भैंस को खिलावें और रूई को अपने घर पर हमसे खरीदा हुआ पींजन लगा कर पींजें, अपने चर्खे से सूत काता जाए और हमसे बुनाई का काम सीख कर कपड़ा बुन लिया जाए। शुरू से आखिर तक अपना ही तय्यार किया हुआ कपड़ा हो। बुनाई घर में न हो, तो गांवों के बुनकरों से कपड़ा बुनवा लिया जाए। बहरहाल बाज़ार से कोई कपड़ा, हाथ का काता बुना भी, खरीदा न जाए। वस्त्रस्वावलम्वन के अलावा हमने बीमारों को दवा देने का काम हाथ में लिया। अपने कुए पर खेती के कुछ प्रयोग शुरू किये। गांव के लड़कों और प्रौढ़ों को रात के समय पढ़ाने का काम भी हम करने लगे। आगे चलकर हमने गांवों के लिए अच्छें सांड लाकर देने का कार्यक्रम बनाया। किसानों की कर्जदारी मिटाने की निगाह से हमने सहकार सभा कायम की। कुरीति निवारण कराने और लोगों को निर्भय बनाने की दृष्टि से मैंने अपनी बोली में कुछ गीत बना डाले, जिन्हें सुनकर लोग खुश होते थे।

हमारे काम का आधारभूत सिद्धान्त यह था कि एक ओर ग्रामवासी और दूसरी ओर उनके सेवक हम लोग। राज की उपेक्षा करना, न उससे कुछ चाहना, न उससे झगड़ा मोल लेना। एक प्रकार से नये-से समाज की रचना करना, सब कुछ राज की सहायता के बिना करना, राज के द्वारा होने वाले विरोध और दमन से अपने आपको बचाते हुए चलना। गांव में अन्न आदि पैदा होता ही था, गाय भैंस से दूध आदि मिल सकता था, कपड़ा अपने आप तय्यार कर लिया जाए और हाथ का बना हुआ कपड़ा भी बाहर से न खरीदा जाए, बच्चे पढ़-लिख जाएं, जिससे ग्रामवासी महाजन के द्वारा ठगे न जा सकें, सहकार सभा के द्वारा कर्ज से मुक्ति प्राप्त कर लें, अच्छे सांड के द्वारा गाय की नस्ल सुधार लें, प्रचलित कुरीतियों को छोड़ दें, ग्रामवासियों के बीमार पड़ने पर हम उनकी सेवा कर दें, उनको दवा दे दें। दवा के अलावा मुफ़्त में कुछ न दिया जाए। केवल जीवनकुटीर के सेवकों की सेवा तो मुफ्त में मिले ही सही। कुटीर वाले अपने निर्वाह की व्यवस्था बाहर की सहायता से करलें, पर वे जहां तक हों सके उसी तरह से रहें, जिस तरह से अन्य ग्रामवासी रहते हैं, यानी बाहर से कोई सामान मंगवा कर काम में न लें, जिसे ग्रामवासी नहीं मंगवा सकते थे। संक्षेप में, यह हमारी कल्पना थी।

दुर्गाप्रसाद मेरे साथ था और उसने कार्यकर्ता बनना मंजूर कर लिया। कुछ समय बाद बंशीधरजी शर्मा बिजौलिया से वस्त्रस्वावलम्बन का काम सीख कर आगये। एक चंचरलाल नाम का लड़का बांसवाड़ा से आगया जिसे मैंने चन्द्रशेखर बना

दिया । एक बुजुर्ग से आदमी कन्हैयालाल जी व्यास आगये । गांव में से छोगा नाम के गूजर युवक को हमने रखा, हरजी नाम के अहीर लड़के को, गोपी नाम के कुम्हार लड़के को, रोड़ नाम के बुनकर वलाई को । रोड़ का नाम मैंने सन्तराम कर दिया । निर्वाह व्यय साधारणतया ५ रु० से १५ रु० मासिक तक था । बाहर से आये कुछ कार्यकर्ताओं में किसी किसी को २५ रु० ३० रु० भी मिल सकता था, ४० रु०, ५० रु०, ६० रु० तक भी । बाद में कुछ ग्रामवासी और शामिल होगये । बाहर के लोग भी आते रहे । बाहर के लोगों में से हम लोग १२–१३ आदमी पक्के हो सके । रहन-सहन बहुत कठिन था । मामूली रोटियों से गुजर करो, सवेरे ४ बजे उठो, रात को ११ बजे सोओ, प्रायः ६ मील तक के गांव में पैदल जाकर आओ, सेवेरे ४ बजे की प्रार्थना में अनिवार्यतया शामिल हो, वनस्थली में रहने वाले परिवार को भी जैसी मिले खादी पहिनाओ । ज्यादातर अपने हाथ से रोटी बना कर खाओ, या फिर रतन जी रोटी बनावें या बाद में कुछ साथियों की पत्नियां आ गयीं वे बनावें । शामिल का चौका चले या भले ही अपना-अपना अलग चूल्हा जलावें । समय की पाबन्दी बहुत कड़ी थी । प्रार्थना, भोजन आदि की घंटी बजाने में या किसी भी काम पर हाजिर होने में एक मिनिट की भी देर हो जाय तो दण्ड के तौर पर कुछ न कुछ पैसे दे कर क्षतिपूर्ति करो ।

खर्चे के लिए जो रुपया चाहिए था सो सब बाहर से आया । कितना भी थोड़ा रुपया आया, जरूरतों को कितनी भी कम रखा, कितने भी सादा रहे, बाहर की पीसने वालियों के पीसना बन्द कर देने पर भले ही खुद ही पीस लिया, मजदूरों के न आने पर भले ही खुद ही मजदूर बन गये, कुआं बनते समय कभी बैलों की कमी होने पर भले ही मैं खुद एक दूसरे युवक मजदूर के साथ बैल बन कर जुत गया, यह सब कुछ हुआ, पर ग्रामवासी हम लोगों को खास कर मुझको "भागवान' माने बिना नहीं रहे । हम अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद भी गांव वालों जैसे नहीं बन सके । हम लोग बाहर का रुपया स्वीकार न करते तो पता नहीं क्या होता । अपने गुजर के लिए कमाना शुरू करते तो फिर दूसरा काम प्रायः कुछ नहीं हो सकता था । हमारे निर्वाह के लिए देने को गांव वालों के पास क्या रखा था । बाहर का रुपया आया भले ही, पर वह बहुत कम आया, मकानों पर बहुत कम खर्च हुआ, खाने पीने में भी कम ही उठा, हम लोग एक से अधिक बार पूरे कंगाल हो गये, जो थोड़ा बहुत अनाज था उसे जौ, बाजरा गेहूं सबको मिलाकर खुद पीस लिया और टिक्कड़ बना कर खा लिये, पैसा एक भी नहीं मिलेगा जिसे रहना हो रहो, जाना हो जाओ–यह नोटिस देदिया, ले लिया । एक अर्से तक हम लोगों ने दोनों समय के भोजन पर प्रतिदिन ६ पैसे खर्च करके काम चलाया । रात्र युद्ध करने के बाद भी हम हम ही रहे और ग्रामवासी ग्रामवासी ही । ग्रामवासियों को तो आमतौर पर उतना पैसा भी देखने को नहीं मिलता था । हमने कच्चे झोंपड़े और पक्के कुए पर कुल ५ हजार खर्च कर दिये और ७॥ वर्षो में औसतन १५ आदमियों ने २५ हजार अपने ऊपर खर्च कर दिये । भले ही यह खर्च हमारी दृष्टि से बहुत ही कम था, पर ग्रामवासी

तो इतना नकद रुपयो अपने ऊपर उन दिनों नहीं खर्च कर सकते थे । और हमने जो कुछ खर्च किया वह पैसा हमारा अपना कमाया हुआ नहीं था ।

मै खुद मेहनत करने में किसी से कम नहीं था । पर पूर्व अनुभव और आदत न होने से हाथ के काम में मैं सबसे कच्चा था । तो भी मैंने पींजना, कातना, बुनना तक सीखा । अपने हाथ से पानी खेंचा, अपने हाथ से कपड़े धोये, नंगे पांव धूप में, बारिश में, सर्दी में खूब घूमा । पांव में चुभे हुए कांटे को शायद ही कभी निकाला होगा, कांटे को रगड़ देना और जो भीतर रहजाए उसकी उम्र क़ैद बोल देना, इसका मुझे घमंड था । कड़ी से कड़ी धूप के सामने बिना छाते के चलना । झुलसा देने वाली लू के मुकाबले नंगे बदन बैठकर तपना, यह सब-कुछ मेरे लिए मामूली काम था । एक बार मेरा नम्बर सबको रोटी बनाकर खिलाने का आगया । मैं रात के १–२ बजे ही उठ बैठा । जैसे तैसे चूल्हा जलाया, दाल चढ़ायी, आटा गूंधा और किसी भी हिकमत से रोटियां बनायीं शायद १०, १२, १५ आदमियों के लिए । चूल्हा बुझाकर, सब कुछ बन्द करके रखदिया । समय पर सबके उठने की घंटी लगायी, प्रार्थना की घंटी लगायी, प्रार्थना के बाद दूसरों के साथ हमेशा की तरह से मैं भी अपने काम में लग गया, फिर समय पर भोजन की घंटी लगादी, सब लोग भोजन के लिए आ बैठे । मैंने सब को परोस दिया, हम सबने पेट भर कर दाल रोटी खाली । मैं चुपचाप रहा । साथियों की समझ में नहीं आया कि रोटी कब और कैसे बन गयी, इस अनाड़ी और आलसी आदमी को यह कामयाबी कैसे मिल गयी । बेहद मजा रहा यह और मैं फूला न समाया ।

जीवनकुटीर में मंगलवार की साप्ताहिक छुट्टी रहती थी । पर मेरी जान-पहिचान किसी भी छुट्टी से कभी नहीं हुई । कुछ न कुछ करते ही जाना, जब थकने लग जायें तो पड़ रहना । अलबत्ता मैं साल में दो-एक बार सैलाना जरूर जाता था । "श्वशुरगृहनिवासः स्वर्ग तुल्यो नराणाम्" यह बात मुझ पर बहुत लागू होती थी । क्या मौज रहती थी खाने-पीने की, हंसी मजाक़ की, बेकार पड़े रहने की । सोवें तब सोवें, उठें तब उठें । आम खाने लगे तो गुठलियों से बाल्टियां भर गयीं । कच्ची मूंगफली, छोले, सांठे और सैलाना की वह मशहूर आलन–ककड़ी, रतन जी की माताजी (बाई) के हाथ के वह माल–खीर, शीरा, चूरमा, बाफ़ले, आदि और बाजार से आयी हुई सेव, कचौड़ी, खोपरा-पाक, पेड़ा, बर्फ़ी आदि ।

शान्ताबाई के अचानक चल बसने का उल्लेख अन्यत्र होगा । सुधाकर के बाद आने वाला प्रभाकर जीवन के ६ महीनों में बहुत स्वस्थ रहा था । पर बाद में वह ऐसा बीमार हुआ कि दो साल का होते-होते चला ही गया । उसके सूखे हुए शरीर का चित्र आज भी मेरे सामने आता है तो मैं व्याकुल हो उठता हूं । प्रभाकर के बाद श्याम (दिवाकर) आया सो भी मुश्किल से बचा हुआ रह गया । फिर आयी एक बच्ची अपर्णा

जिसकी सुन्दरता अद्वितीय बतायी गयी। मैंने उसे नहीं देखा। जन्म के एक हफ़्ते के भीतर वह 'टिटेनस' की शिकार होकर चल बसी। आखिर में आया नवीन। उसके ऐसा निमोनिया हुआ कि एक महीने से ज़्यादा चला, आखिर वह ६ महीने के बच्चे को लेकर ही गया। इन सब बातों से दुःखी होकर हमने हिम्मत की और कलकत्ता जाकर रतन जी का ऑपरेशन करा डाला। हम दोनों ने सोचा कि जब काम करना है तो इस रोजमर्रा के झंझट से बचने का उपाय करो। वह उपाय ऑपरेशन ही हो सकता था, हमारी स्थिति में। ऑपरेशन का असर आगे जाकर रतन जी के स्वास्थ्य के लिए बहुत प्रतिकूल हुआ, सो बात दूसरी है। आज तो जमाना बहुत बदल रहा है, पर १९३६ में हमने हिम्मत का यह खेल कर डाला सो जरूर ही खास बात मानी जाएगी।

मेरा ध्यान था ग्रामवासियों की सेवा करने का, अपने आपको व दूसरे साथियों को प्रत्यक्ष सेवा-कार्य के द्वारा 'ट्रेन' करने का। जो आता उसे वहीं पींजना, कातना, बुनना सीखना पड़ता और फिर ग्रामवासियों को सिखाना पड़ता। बाहर से आने वाले साथी साधारणतया मिडिल की योग्यता के थे, कुछ मेट्रिक भी थे, एकाध ग्रेज्युएट भी था। एकाध हिसाब जानने वाला था। बाद में वैद्य भी आगया था। हमारा कार्य-क्रम बहुत अच्छा चला। एक समय ऐसा आगया कि वनस्थली ग्राम में नाम लेने को भी बाहर से आया हुआ कपड़ा काम में नहीं लिया जा रहा था। विवाह में वर-वधू के लिए भी वही खादी के कपड़े होते थे। पास का छोटा गांव बाढ़-रामजीपुरा भी इस पैमाने तक पहुंच गया। घर में पिंजाई-कताई तो कई गांवों में हो गयी। ६ मील के दायरे में छोटे-बड़े पचासेक गांव थे और उनकी आबादी थी दसेक हजार। इतना ही हमारा पक्का क्षेत्र था। बाद में हम पिंजाई के काम को लेकर सैंकड़ों गांवों में फैले। खेती का काम हमें छोड़ देना पड़ा, सांडों का काम ज्यादा नहीं चला। सहकार सभा बाद में शुरू हुई थी, जब तक चली अच्छी चली। उसमें सख्ती बहुत थी, मजाल क्या कि कोई कर्जा लेने वाला सभा का एक पैसा भी रख ले। लोगों ने हमारे दवा के काम से काफी लाभ उठाया और हम लोगों की रोगी-परिचर्या भी कमाल की थी। वनस्थली में और आस पास के ४-५ गांवों में रात्रि-पाठशालाएं चलायी गयीं, जिनका काम काफ़ी फलदायक माना जा सकता है। सुधार के गीतों का प्रचार भी काफ़ी हुआ, जीवनकुटीर के गीत छपवा कर दूर दूर तक प्रचारित किये गये। जो साथी कार्यकर्ता जमे रहे, उनकी ट्रेनिंग भी काफी अच्छी हुई मानी जा सकती है।

जीवनकुटीर ने छोटा पींजन बनवाया, मामूली चर्खा बनवाया, बुनाई का सामान भी बनवाया। चर्खा सिर्फ़ पांच आने में मिलता था। तमाम सामान बहुत सस्ता था। उस चर्खे से एक घंटे में १,००० गज तक सूत काता जा सका बारह नम्बर का, जिसका प्रदर्शन लखनऊ कांग्रेस की प्रदर्शनी में किया गया था। ५००-७०० गज तो मामूली कातने वाले भी कात सकते थे। जीवनकुटीर का काम गांधी जी के आशीर्वाद

से शुरू हुआ था। बाद में कुटीर का सम्पर्क गांधीजी से बराबर बना रहा। गांधी जी को जीवनकुटीर का चर्खा पसन्द नहीं आया, क्योंकि उसकी बनावट में सफ़ाई नहीं थी, मामूली लकड़ी का चर्खा था वह। दूसरे, उसकी नाप भी उतनी पक्की नहीं थी। गांधी जी की दृष्टि जैसे सभी बातों में वैसे इसमें भी बहुत बारीक थी। ग्रामोद्योग की बात ज्यादा चली। उन दिनों में मैं एक बार अपने गांव का बना चमकता हुआ बड़ा सा चाक़ू गांधी जी के पास ले गया। गांधी जी खुश हुए। उन्होंने चाक़ू को कलम पर चलाया तो उसने काम नहीं किया। चाक़ू कच्चे लोहे का साबित हो गया और गांधी जी मेरी तरफ देख कर हंस दिये। मैं बहुत शर्मिन्दा हुआ कि मुझे इतनी सी बात भी नहीं सूझी कि यह तो देख लेता कि चाक़ू पक्के लोहे का है, वह कहीं कच्चे लोहे का तो नहीं है।

जीवनकुटीर, वनस्थली का रचनात्मक क्षेत्र में नाम बहुत होगया। कई लोग देखने को आते थे। हम जीवनकुटीर वालों को शाब्दिक प्रचार करने का शौक़ नहीं था। पर जीवनकुटीर के जलसे समय समय पर हो जाते थे। एक बार जयपुर शहर में जीवनकुटीर का जलसा किया गया, दो दिन। एक दिन 'बोहरा धुरिया' का ख्याल हुआ, दूसरे दिन "नुकते" का। जलसे की जगह बहुत बड़ी नहीं थी, पर वह जितनी थी खचाखच भर गयी थी। बड़े-बड़े लोगों को उसमें बैठने को जगह नहीं मिली थी। वे खड़े खड़े बड़ी प्रसन्न मुद्रा में सब कुछ देख रहे थे। हमने प्रारम्भिक गीत में गाया—"बिना बुलाया पावणां म्हे आज आया छां।" फिर उसी में गाया—"नाज म्हांको उपजायोड़ो जाणै कुण खा जाय छै, अजी खोज काढ़ता काढ़ता म्हे आज आया छां।" गांव का अनाज चुराने वाला नगरवासी चोर के रूप में पकड़ा गया और सभा में जोर शोर से हर्षध्वनि हुई। मैंने खुद गाया—"बाण्या रै बाण्या भाया पूरे कांटै तोल भाया पूरे कांटै तोल रै, नातर तो नरकां में सूदो जायलो।" लोग बेहद खुश हुए, मेरे इस नये केश्या से। जीवनकुटीर की प्रलय प्रतीक्षा नाम की प्रार्थना की गयी। मेरे गुरूजी पंडित सूर्यनारायण जी महाराज मेरे पास आकर बोले—यह तुम्हारी रचना है? मैंने नीचा सिर करके हिला दिया। वे बोले, तुमने कमाल कर दिया। मेरे अहं को मज़ा आ गया।

जयपुर शहर की जनता से जीवनकुटीर को अच्छा आर्थिक सहयोग मिला। कलकत्ते से सीताराम जी, भागीरथ जी का सहारा था। एक बार सेठ जमनालाल जी बजाज को किसी ने रिपोर्ट कर दी कि जीवनकुटीर पर भारी आर्थिक संकट आया हुआ है। जमनालाल जी ने मुझे तार देकर बम्बई बुलाया। उनकी यह बड़ी इच्छा थी कि मैं गांधी सेवा संघ का सदस्य बन जाऊं, जिससे मुझे अपने परिवार के भोजनादि की इतनी चिन्ता तो न रहे। मैंने संघ का सदस्य बनना स्वीकार नहीं किया। मेरी इनकारी का एक कारण यह भी था कि मैं किसी प्रकार की प्रतिज्ञा में बंधना नहीं चाहता था—

खासकर ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा में, क्योंकि मैं जानता था ऐसी प्रतिज्ञा मुझसे निभेगी नहीं। दूसरे अहिंसा के प्रति मेरी भीतरी आस्था नहीं थी। मेरा शब्द तो "शान्ति" था, "अहिंसा" नहीं। जीवनकुटीर के सिद्धान्त थे—सत्य, शान्ति, न्याय।। बाद में सत्कार्य सिद्धि और जुड़ गया। वैसे तो इन चारों में किसी प्रकार का खास विरोध नहीं हो सकता। पर किसी समय सत्य, शान्ति अथवा न्याय सत्कार्य–सिद्धि में बाधक होने लगे तो उनमें और सत्कार्य-सिद्धि में समन्वय खोजना पड़े। यह विषय लम्बे विवाद का विषय बन सकता है। पर इस बहस में इस समय पड़ने का मेरा मन नहीं है। मुझे मोक्ष क्या होती होगी, इसकी ठीक ठीक कल्पना नहीं है।

ऐसी हालत में सत्कार्य ही मेरा धर्म है, वही मेरा उपास्य है, वही साध्य है, बाक़ी सब साधन। इसमें शक नहीं कि साधारणतया सत्कार्य के साधन सत् ही होने चाहिए, पर मेरे दिमाग़ में यह सवाल भी उठता रहा है कि गाहे बगाहे इस नियम में अपवाद भी हो सकते हैं क्या ? सत्कार्य की परिभाषा करना भी आसान नहीं है, पर प्रत्येक जान सकता है कि उसके लिए सत्कार्य क्या है।

जमनालाल ज़ी ने मेरी मदद करना चाहा। गांधीसेवा–संघ से जीवन-कुटीर के लिए कुछ बंधी हुई सहायता उन्होंने तय करा ही दी। फिर चर्खा संघ की सहायता की बात आयी। मुझे रुपये के आधार पर किसी दूसरे का बन जाना मंज़ूर नहीं था। मेरा काम स्वतन्त्र था, उसमें जिसे मदद देना हो दे, जिसे न देना हो, न दे। चर्खा संघ की कौंसिल में देश के बड़े-बड़े सब नेता थे। मुझे चर्खा संघ से मदद लेना मंजूर नहीं हो रहा था। जमनालाल जी मुझे समझाने में सफल नहीं हुए तो एक दिन उन्होंने चर्खा संघ की कौंसिल में मेरी पेशी करवा दी। उन्होंने मेरा परिचय मुझे 'हिटलर' कह कर कराया, जो एक दम ग़लत था। मैंने नेताओं से कह दिया कि मुझे बाहर का कन्ट्रोल मंज़ूर नहीं है, इसीलिए मैं रुपया नहीं ले सकता। राजेन्द्र बाबू बोले—कोई बिना शर्त के आपको रुपया दे तो ? मैंने कहा मैं मंज़ूर कर लूंगा। वल्लभभाई बोले—तुम कण्ट्रोल नहीं चाहते न ? मैंने कहा—जी हां, मैं बाहर का, ऊपर का कन्ट्रोल नहीं चाहता। आप अहमदाबाद में रहते हैं, वहां बैठकर आप जीवनकुटीर वनस्थली पर हुक्म चलाओ यह नहीं हो सकता। वल्लभभाई टेढ़ा सा मुंह करके बोले—हूं ? आखिर बिना शर्त के चर्खा संघ की मदद जीवनकुटीर के लिए मंज़ूर हो गयी।

सामाजिक कुरीतियों में से नुकते "मृतक भोज" का कड़ा विरोध जीवनकुटीर की ओर से किया गया। लोग अपने माता पिता को उनके जीवन काल में भले ही तकलीफ़ ही देते हों पर उनके मर जाने पर उनकी सद्गति कराने की चिन्ता उन्हें बहुत होती थी। पास-पड़ोस के समाज का, जाति का इतना दबाव था कि ग़रीब से ग़रीब आदमी को भी अपने बाप का नुकता करना ही पड़े। जब तक वह न कर सके, उसके

ऊपर एक प्रकार का कर्जा वना रहे और उसकी अपकीर्ति होती रहे। इसलिए लोग क़र्जा करके, अपनी ज़मीन जीविका गिरवी रख कर, खुद बिक कर भी नुकता करते ही थे। वह कर्ज़ा ज़िन्दगी भर नहीं चुकता था और लोगों को गांव छोड़ कर चले जाने के लिए मजबूर हो जाना पड़ता था। ऐसी हालत में भी लोगों को जीवनकुटीर का नुकता विरोधी प्रचार पसन्द नहीं आया। जीवनकुटीर ने वनस्थली गांव में तो नुकता वन्द करवा ही दिया था। श्राद्ध के लिए सिर्फ सीरा बनावे सो भी सवा मन से ज्यादा आटे का नहीं। एक वृद्ध किसान औरों के मुकावले में खुशहाल था, वह भला आदमी भी था। उसने अपनी कुछ ज़मीन देकर जीवनकुटीर पर उपकार भी किया था। उसने अपने लड़के को बुनना तक सिखवाया था। पर उसने अपनी स्त्री का तरकीव से कुल मिलाकर नुकता ही कर डाला। मैं पंगत के वीच अचानक जा पहुंचा और वहां मैं इतना विगड़ा कि कोई ठिकाना नहीं। वेचारे बूढ़े किसान की मैंने शान विगाड़ दी, न जाने कितना भला बुरा उसके लिए कह डाला मैंने। वाद में मैं रूठ गया और वनस्थली से चार मील दूर सीदड़ा गांव के वाहर एक पेड़ के नीचे जाकर डेरा जमा दिया। मैंने रेखा खेंचकर जीवनकुटीर के स्थान में पवन-कुटीर वना डाली। सीदड़ा के कुछ लोग मुझे वहुत चाहते थे और मैं वहां वस जाता तो वे वड़े खुश होते। पर मैं यह जानता था कि ऐसा करना सर्वथा अव्यवहारिक होता। वनस्थली गांव में बेहद हलचल हो गयी, मेरे चले जाने से। गांव के मुखिया लोग इकट्ठे होकर मेरे पास पहुँचे और मेरी वहुत ज्यादा खुशामद की और मुझसे माफ़ी मांगी और आइन्दा ठीक रहने का वादा किया। मैंने अपनी भयंकर भूल महसूस की—माफी मुझे मांगनी चाहिए थी, वेचारे भले इज्ज़तदार आदमी की शान विगाड़ दी थी मैंने। जो हो, मैं तो मान जाने को तय्यार था ही, सो गांव वाले भाइयों की वात मान कर वनस्थली वापस आ गया, अपना वही मुंह लेकर। मैंने सोचा, मेरे रूठने का स्वभाव कहां चला जाता, उस स्वभाव ने मेरा साथ आज भी कहां छोड़ा है। कभी-कभी रतन जी तक तंग आ जाती हैं। जिससे मेरा ज्यादा प्यार, उसी से मेरा ज्यादा रूठना !

हम जीवनकुटीर वालों ने, प्रकट में या छिपकर भी, "राजनीति" में हिस्सा लेना नहीं चाहा। मैं शुरू से ही राजनीति को सर्पिणी राजनीति वोलता था। इसलिए हम किसी आन्दोलन में शामिल होने को नहीं गये। हम तो अपने अंगीकृत काम के नशे में रहते थे। रहन-सहन हमारा इतना सख्त था कि जेल में उससे ज्यादा क्या होता। इससे हमारा समाधान था। मैं सोचता था कि इस प्रकार के नये समाज की रचना होनी चाहिए, जिसमें राज का कोई लेना-देना नहीं, जिसमें दूसरों पर कम से कम आधार, गांव का वास्तविक स्वावलम्वन। मैंने पांच साल तक जम कर प्रयोग करने का विचार किया था। पांच साल होने पर वनस्थली में जल्सा किया, पांच साल के काम की रिपोर्ट पेश की। जयपुर शहर से सैंकड़ों मित्र आये थे। वे सव कुछ देखकर वहुत खुश हुये थे। हमारे झोंपड़ों की सफेदी, जगह-जगह नाम लिखे हुए, चारों ओर

सफ़ाई, हमारे गीत-गाने, हमारा वात करने का तरीक़ा, हमारे सिखाये गांव वालों की ओर से प्रदर्शन-सब कुछ शहर वालों के लिए मनमोहक था। तय हुआ कि इस प्रयोग की अवधि में तीन साल और वढ़ा दिये जाएं।

मैं देख रहा था कि मेरे काम की जड़ गहरी नहीं जा रही है, कुछ इच्छा से, कुछ भय से, लोग मेरी वात मानते थे। पर चारों ओर का वातावरण वहुत-ज्यादा प्रतिकूल था। ब्राह्मण, वनिये और किसान तक भी हमको धर्मभ्रष्ट करने वाला मानते थे, हमने उस समय तक हरिजनों का काम हाथ में नहीं लिया था तो भी। वैसे मैं खुद तो कभी का भ्रष्ट हो चुका था। चौका उसी साल छूट गया जव मैं मिडिल की परीक्षा के लिए अजमेर गया था। फिर १९२९ में जोवनेर में मैंने नाई के हाथ का पानी पी लिया था और मेरी जाति के लोगों ने मुझे वहिष्कृत करने का विचार किया था। आखिर में दिल्ली की विड़ला मिल के सेक्रेटरी श्री ज्वालाप्रसाद जी मंडेलिया के यहां उनके भंगी नौकर के हाथ से मैंने भोजन कर लिया था। पींजन में कच्ची आंत की तांत लगती है, सो पींजन ग्रामवासियों की निगाह में न सिर्फ हेय वस्तु था, वल्कि अपशकुन करने वाला भी था। कातना स्त्री का काम है और बुनना कोली वलाई का। पता नहीं कहां से उठी, किसने उठायी—पर चारों ओर यह अफ़वाह फैल गयी कि वनस्थली वाले पण्डित जी ने गांव वालों को इकट्ठा करके शर्वत का प्याला घुमा दिया—खुद का जूठा शर्वत दूसरों को पिला दिया और दूसरों का जूठा खुद पी गये। हर एक जाति ने वनस्थली में रहने वाले अपने जाति वन्धुओं को 'जात वाहर' कर दिया। जो ग्रामवासी 'जीवनकुटीर' में काम करते थे उनमें से कई एक साथियों ने जीवनकुटीर को छोड़ दिया। यह साबित होने में देर लगी कि शर्वत के प्याले की वात एक दम झूठी है। हम लोगों को वहुत परेशानी हुई, काम में वहुत नुकसान पहुँचा। अन्ततोगत्वा सव कुछ ठीक हो गया, पर शर्वत के प्याले का अनुभव हमें ऐसा हुआ कि उसे हम ज़िन्दगी भर नहीं भूल सकते।

मैं कुछ उकताने लग गया था। सोचता था इस तरह आखिर क्रांति कैसे होगी? विरुद्ध वातावरण के वीच एक छोटा-सा क्षेत्र क्या कमाल कर देता, जव ग्रामवासी ने जो कुछ मंजूर किया सो भी वेमन से ही किया था। मेरा भीतरी मन्थन मुझे कहने लगा कि राज में परिवर्तन हुए विना अपनी गाड़ी आगे नहीं वढ़ने वाली है। इस वीच में १९३५ में एक वड़ी भारी घटना होगयी—हमारी प्राणों से प्यारी वेटी शान्तावाई अचानक चल वसी। उसकी अकाल मृत्यु ने मुझे पत्थर का वना दिया, रतन जी ने फिर भी ज्यादा हिम्मत रखी मुझ से। नतीजा यह हुआ कि जीवनकुटीर के साथ-साथ शिक्षाकुटीर भी वन गया। पर यह कथा दूसरी है। १९३६ में शिक्षा कुटीर का पहला जलसा हुआ, उसके साथ ही जीवनकुटीर का ७॥ साल का जलसा भी हुआ। जीवनकुटीर के जलसे के सभापति सेठ जमनालाल जी वजाज थे। शिक्षा कुटीर की ओर से लड़कियों ने "अंधेर नगरी, अनवूझ राजा" नाम का नाटक खेला।

मैंने जीवनकुटीर के जलसे में एक "भीषण" भाषण दिया—जो कुछ मेरे भीतर भरा था, सो सब कुछ मैंने उगल दिया। राज का बेहद जोरदार खंडन मैंने कर डाला। एक ओर लोग स्तब्ध हो गये, दूसरी ओर खुश भी हुए। लोगों ने सोचा अब कुछ होगा और अब मजा आयेगा। पुरोहित जी साहब का वैकुण्ठवास १६३५ में शान्ताबाई के गुज़रने के एक महीने के भीतर हो गया था। जीवनकुटीर का खेल उन्होंने देखा था, पता नहीं वे क्या सोचते रहे होंगे ? पर मेरी बाद की हलचल को देखने के लिए वे नहीं रहे। मैं नुकते का विरोधी था, पर विधवा पुरोहितानी जी की भावना को देखते हुए और स्वयं पुरोहित जी साहब की विचारधारा को याद रखते हुए मैंने उनके नुकते के काम में आगे बढ़कर हिस्सा लिया। पारीक जाति में दो दल हो रहे थे, उन्हें एक करके एक जगह जीमने के लिए बिठा दिया, जिससे पुरोहितानी जी भी बहुत खुश हो गयीं।

जीवनकुटीर में कई लोग आये और कई छोड़कर चले गये। आखिर तक टिकने वालों में रतनजी के और मेरे खुद के अलावा प्रकाशचन्द्र गोयल, चन्द्र शेखर शर्मा, कल्याण शर्मा, धीरेन्द्रसिंह भदौरिया, वीरेन्द्रसिंह चौहान, राम भजन स्वामी, हनुमान शर्मा, बदरीनारायण खूंटेटा, बदरी नारायण शर्मा (खोरा जी), श्यामसुन्दर माथुर, वेंकटेश पारीक, सन्तराम, हरजीराम और श्रीधर शर्मा के नाम मुझे जरूर गिनाने चाहिए। इन साथियों में से कोई-कोई बिल्कुल शुरू से आ गये थे, कोई-कोई एक दम आखिर में आये, बाकी बीच के समय में आये। बाद में नारायण चतुर्वेदी, किशनसिंह बाटड़, लादूराम जी जोशी जैसे लोग भी जीवनकुटीर की परिधि में आ गये। बाकायदा सम्बन्धित हुए बिना, भावना से तो, और भी कई लोग जीवन-कुटीर के हो गये थे। जीवनकुटीर में जो अथक परिश्रम किया गया, जिस तरह से साथियों ने अपने आपको झोंका, उससे वे खुद तो तय्यार हो ही गये। इतना सा काम भी अपने आपमें बहुत बड़ी कीमत रखता है। जीवनकुटीर के कार्यकर्ताओं ने ही 'जयपुर राज्य प्रजामंडल' जैसा नमूने का संगठन बनाया। जीवनकुटीर के काम से देहात में कोई क्रान्ति नहीं हुई, न यह आशा रही कि इस प्रकार जिन्दगी भर काम करते रहने के बाद भी क्रान्ति हो जायगी। जितना काम हुआ, सो तो ठीक ही हुआ, मैंने जीवन कुटीर के ७॥ सालों में ३० हजार रुपये कहीं न कहीं से लाकर खर्च कर डाले, जिनमें ५ हजार रुपये तो झोंपड़ियों और पक्के कुए के थे। ३० हजार के बदले में जीवनकुटीर ने ३० हजार की आमदनी भी गांव वालों को करा दी। इस प्रकार रुपये का हिसाब तो बराबर हुआ। वस्त्र-स्वावलम्बन ने जड़ नहीं पकड़ी। इसके अनेक कारण हैं, खास कारण एक तो यह है कि एक छोटा सा केन्द्र बाहर के दबाव को नहीं झेल सकता, न उसका बाहर को प्रभावित करने का सामर्थ्य हो सकता है। दूसरा खास कारण यह कि इस जमाने के लोगों को धीमी-चाल पसन्द नहीं हो सकती। ग्रामवासी चाहे बेकार ही बैठा रहेगा, पर वह थोड़े नफ़े के लिए ज्यादा परिश्रम नहीं करना चाहता। जो हो, क्रान्ति का कोई दूसरा ही मार्ग खोजना होगा, क्रान्ति चाहने वल्लों को।

३

वनस्थली विद्यापीठ, लोकवाणी, जीवन सन्देश, नवजीवन कुटीर, नवजीवन सन्देश, मातृमन्दिर विद्यालय–जोबनेर

१९३५ – १९७०

मुझे याद नहीं कब मेरा यह विचार बना होगा कि अच्छा समाज अच्छे व्यक्तियों से ही बन सकता है और अच्छे लोग विद्यार्थियों में से बनाये जा सकते हैं। पर इतना मैं बता सकता हूं कि जब मैं अपने जन्म स्थान जोबनेर में हाई स्कूल का विद्यार्थी था तब से ही अपने साथियों से विशेष सम्पर्क रखने का शौक मुझे हो गया था। किन्हीं को मैं मौका मिलने पर पढ़ाने लगता, किन्हीं को मैं राउण्डर खेलनें के लिए अपना पक्का साथी बनाता। मैं मिडिल की परीक्षा दे चुका, उसके बाद भी मिडिल परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों की मदद करने के लिए मैं अजमेर तक पहुंच जाता। मैं कालेज की पढ़ाई के लिए जयपुर पहुंचा तब भी दूसरे विद्यार्थियों की मदद करने का, उनके जीवन को प्रभावित करने का मेरा यह तरीक़ा जारी रहा। जयपुर में ट्यूशन पर जाने लगा तब भी मेरी कल्पना विद्यार्थियों को पढ़ाने से आगे तक चलती रहती थी। कुछ समय तक जयपुर हाई स्कूल में शिक्षक रहा तब भी मेरा यही ध्यान रहा। मेयो कालेज में पहुंचा तब तो मैंने अपना यह उद्देश्य ही बना

लिया कि महाराजकुमारों और राजकुमारों के जीवन को बनाने का यत्न किया जाय। ट्रेनिंग के लिए बम्बई गया तब ऐसा मौका मुझे नहीं मिला, फिर भी मैंने एकाध नवयुवक कर्मचारी से इसी भावना से विशेष सम्पर्क साधा। बम्बई से लौटने के बाद जब तक जयपुर में सरकारी नौकरी में रहा तब तक पारीक हाई स्कूल में नियमित रूप से एक पीरियड पढ़ाने के लिए जाता था। साथ में राजस्थान छात्रालय खोल कर कुछ विद्यार्थियों को अपने निकट सम्पर्क में रखा। पिलानी में था तब वहां के कई होनहार विद्यार्थियों से मैंने सम्पर्क किया और पास के खेड़ला गांव में रात्रि पाठशाला खोली। उन्हीं दिनों जयपुर में एक छात्र मण्डल भी बनाया था। अपने खास मित्रों की प्रयास-परिषद् भी बनायी। आखिर जीवनकुटीर में भी मेरा भीतरी उद्देश्य यही था कि प्रत्यक्ष सेवा के द्वारा अपने आप को और दूसरे साथियों को ट्रेन किया जाय। और यह सब काम मैं मौनवृत्ति रखते हुए करता था, किसी भी प्रकार का शाब्दिक प्रचार मुझे कभी प्रिय नहीं था।

यह सब कुछ करते हुए लड़कियों में, स्त्रियों में काम करने का ध्यान मेरा कहीं नहीं बना था। कलकते में मारवाड़ी बालिका विद्यालय के पुनर्गठन में मेरा योगदान होगया सो तो एक संयोग की ओर मेरे परम स्नेही सीतारामजी के साथ मेरा विशेष प्रेम हो जाने की बात ही थी। वनस्थली में रतन जी और शान्ताबाई दोनों को मैंने खुद पढ़ाना शुरू किया। दोनों को हिन्दी की एक-एक परीक्षा भी पास करवायी। दोनों को बी० ए० तक ले जाने का मेरा पक्का विचार था, इसलिए कि दोनों मां-बेटी आगे चलकर स्त्रियों में सेवा कार्य करें। रतन जी तो कार्यकर्ता बन ही चुकी थीं। शान्ताबाई मुझे बहुत ज्यादा होनहार लगने लगी थी। छोटे बच्चे श्याम की बीमारी के समय रतन जी और मैं दोनों जयपुर जाकर रहे, तब पीछे से शान्ताबाई ने वनस्थली में घर को, अपने छोटे भाई आदि को बड़ी जिम्मेदारी के साथ संभाला। जीवनकुटीर की रात्रि शालाओं को देख-देख कर उसने आग्रह के साथ कहना शुरु किया—हमारे लिए भी एक पाठशाला बनवादो, हम भी छोटे बच्चों को पढ़ायेंगे। मैंने कहा—पाठशाला के लिए ईंटें तू बना। उसने ईंटें बनाना शुरू कर दिया, रतन जी की छोटी बहिन सुशीला और सुधाकर की मदद से। देखते-देखते कोई पांच सौ ईंटें बन गयीं। पाठशाला की झोंपड़ी बनती उससे बहुत पहले ही बाई ने बच्चों को पढ़ाना, हारमोनियम सिखाना आदि शुरू कर दिया था। जीवनकुटीर की प्रचार सभाओं में बाई सुशीला के साथ प्रार्थना आदि के गाने भी गाने लगी। जीवनकुटीर में अपने से बड़े युवक कार्यकर्ताओं से वह लाठी की लड़न्त कामयाबी के साथ कर लेती थी। बाई इतनी जबर्दस्त थी कि उसके सिर के बड़े से फोड़े का ऑपरेशन हुआ तो उसने बिना क्लोरोफार्म करा लिया और ज़रा सी सिसकार उसने नहीं की। मैं सोचने लगा कि यह लड़की आजीवन ब्रह्मचारिणी रहेगी और नहीं तो भी मैं उसे विवाह करके किसी लड़के के साथ नहीं करूंगा, बल्कि लड़के को ही अपने घर बुलाकर विवाह करके दोनों के लिए सेवा कार्य करने का अवसर पैदा करूंगा। यह विचार तरंग मेरी थी। दूसरी ओर विधि का विधान दूसरा ही लिखा जा रहा था। शान्ताबाई ने एक

दिन तीसरे पहर ४ बजे ज़ोर के सिर दर्द की शिकायत की, वह २–३ घंटों में बेहोश हो गयी, उसे फिर होश आया ही नहीं। बुखार १०७ डिग्री पाया गया, जो नाम लेने को भी नीचे नहीं आया।

शान्ताबाई की चिता में अग्नि प्रवेश करने के एक मिनट पहले तक मैं इस आशा में पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहा कि बाई अभी उठ खड़ी होगी—ऐसी स्वस्थ बलिष्ठ लड़की मर नहीं सकती। अग्नि प्रवेश के होते ही मैंने अपने आपको झकझोरा और मेरे भीतर की एक आवाज़ बोल उठी—देश में जितनी लड़कियां हैं वे सब तुम्हारी बेटियां हैं–जितनी चाहो अपने पास रखो और शान्ताबाई की जगह उनको मानो, पढ़ाओ, लिखाओ, सेवा के लिए तय्यार करो। श्मशान से लौटकर मैंने रतन जी से बात की। उससे पहले रतन जी ने मुझ से बहुत ज्यादा हिम्मत रखी थी। फिर तो रतन जी के लिए भी अपने आपको संभालना मुश्किल हो गया था। मेरी तजवीज सुनते ही वे सहमत हो गयीं और हम दोनों की कल्पना से उसी दिन शिक्षाकुटीर यानी वनस्थली विद्यापीठ बन गया। दो चार लड़कियां आयीं और कुछ महीनों में उनकी संख्या ३६ हो गयी। मित्रों ने हमारे स्त्री शिक्षा के विचार को तो पसन्द किया पर वनस्थली जैसे गांव में और शान्ताबाई की मृत्यु के सन्दर्भ में उस काम को शुरू करना दो एक मित्रों को कम पसन्द आया। वनस्थली में स्त्री शिक्षा का काम नहीं चल सकता, यह कहने वाले कई मिले। एक दानी सज्जन ने दस लाख रुपये के दान का अपना इरादा बता कर संस्था को अपने खुद के गांव ले जाना चाहा। एक दूसरे मित्र (जिनको अपने जीवन में मैंने बहुत बड़ा माना) ने कहा-काम तो यह बहुत अच्छा हो गया, पर इसे इस जगह से तो हटाना पड़ेगा। मैं बोला कुछ नहीं, पर मेरा इरादा और भी पक्का हो गया, यह काम तो यहीं जमेगा, यहीं बढ़ेगा जहां मेरी शान्ताबाई का शरीर गिरा है। उस ज़माने में सरकार की लिखित इजाज़त के बिना कोई स्कूल जयपुर राज्य में नहीं खुल सकता था। हमारे स्कूल के विरुद्ध भी आपत्ति उठायी गयी। डायरेक्टर आफ एज्यूकशेन अंग्रेज था। रतन जी ने लाल होकर साहब से हिन्दी में कहा—आप स्कूल बन्द करने के लिए अपनी फौज लेकर वनस्थली आजाना, मैं आपको फाटक पर तय्यार मिलूंगी। डायरेक्टर ने मुझ से पूछा—पंडित जी ! मिसेज शास्त्री क्या कहती हैं? मैंने बता दिया। साहब बोले, नहीं नहीं, आपका स्कूल बन्द नहीं होगा। बाद में वनस्थली देखने को दूसरे अंग्रेज ऑफीसर, इन्सपेक्टर जनरल ऑफ़ पुलिस और डायरेक्टर ऑफ मेडीकल एण्ड हैल्थ सर्विसेज भी आगये। हमने जीवनकुटीर से मिलता हुआ "शिक्षाकुटीर" नाम रखा अपने स्कूल का। इस प्रकार शिक्षाकुटीर का काम शुरु हो गया, जीवनकुटीर के दिये हुए झोंपड़ों में, बिना कौड़ी-पैसे के, बिना ज़मीन के और बिना मकान के, सर्वोपरि बिना किसी योजना के स्कूल बनाने वाली शान्ताबाई के सदा के लिए चले जाने के बाद। रतन जी और जीवनकुटीर के एक दूसरे साथी प्रकाशचन्द्र गोयल (बी० ए०) ने शिक्षाकुटीर के काम का आजीवन व्रत ले लिया।

शिक्षाकुटीर का काम दिन दूना, रात चौगुना बढ़ने लगा। शिक्षाकुटीर का पहला जल्सा वनस्थली में हुआ, उसके साथ ही जीवनकुटीर का आखिरी जल्सा भी हुआ। जल्दी ही शिक्षाकुटीर का नाम राजस्थान बालिका विद्यालय कर दिया गया जिसका दूसरा जल्सा जयपुर शहर में हुआ। ६३ लड़कियां थीं उस समय। उनकी परेड शहर में निकाली गयी जिसे नगरवासी देखते ही रह गये। एक प्रदर्शनी भी की गयी जिसे देखने को हजारों आदमी आये। लड़कियों के मन बहलाव के लिए पांच-पांच दस-दस रुपये में हमने दो चार टट्टू खरीद लिये थे सो जयपुर में घुड़दौड़ दिखायी गयी। रामप्रकाश नाटक घर में नाटक खेला गया जिसके टिकिट लेने के लिए असंख्य लोगों की भीड़ लग गयी। बड़ी भारी सभा हुई जिसमें सब तरह के लोग-मिनिस्टर, अंग्रेजी व हिन्दुस्तानी अफ़सर, जागीरदार, व्यापारी, डॉक्टर, वैद्य, वकील, प्रोफेसर, पण्डित आम जनता की भीड़ में बैठने को आये। मेरी अनुपस्थिति में एकाध मेम की सुविधा के लिए दो एक कुर्सियां लगा दी गयी थीं। मेरे कुछ राष्ट्रीय मित्रों ने मेरी बड़ी निन्दा छापी कि मैंने उनको नीचे बिठाया और विदेशियों को कुर्सियों पर। मेरे एक अत्यन्त प्रेमी बड़े भाई समान बन्धु ने वनस्थली जैसी स्त्री शिक्षा की आलोचना की। मैं एड़ी का ऑपरेशन कराकर सभा में पहुंचा था और स्वभाव तो मेरा जैसा आज है उस दिन भी वैसा ही था। मैंने मेरे बड़े भाई को डांट पिला दी उन पर एकाध अयोग्य से व्यक्तिगत आक्षेप भी कर डाले मैंने। मुझे अपने उस दिन के अनुचित निकम्मे व्यवहार का आज तक दुःख है। वह अक्टूबर, १९३७ की बात है।

१९३८ में जयपुर राज्य प्रजा मंडल का पहला अधिवेशन जयपुर में हुआ। वनस्थली की लड़कियां भी उसमें काम काज करने को पहुंची। बाद में हुआ प्रख्यात जयपुर सत्याग्रह। सेठ जमनालाल जी बजाज का स्वागत करने के लिए वनस्थली की लड़कियां सांगानेर स्टेशन पहुंची। हम लोग जेल से छूटकर आये तो वनस्थली की लड़कियां हमारे स्वागत के लिए तय्यार थीं। बाद में प्रजामंडल के प्रत्येक अधिवेशन में वनस्थली हाजिर मिली। १९४५ की गर्मी में राजपूताना और मध्य भारत के राष्ट्रीय कार्यताओं की ट्रेनिंग के लिए एक शिविर का आयोजन वनस्थली में किया गया। १९४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन आया। हमने सोच समझ कर फैसला किया कि छोटी छोटी बच्चियों की संस्था को आन्दोलन में झोंक देना ठीक नहीं रहेगा। दूर दूर से आयी हुई बच्चियों की सुरक्षा का स्थान भी वनस्थली ही सबसे अच्छा था। अलबत्ता जिन बड़ी लड़कियों ने और शिक्षकों ने चाहा उनको खुशी से छुट्टी दी गयी जिस तरह चाहें अंग्रेजी इलाके में चल रहे आन्दोलन में भाग लेने की। जयपुर राज्य में सर मिर्जा इस्माइल १९४२ की गर्मी में प्राइम मिनिस्टर होकर आये। उन्होंने आते ही प्रजामंडल के कार्यकर्ताओं से सम्पर्क किया। शुरू में हम चार पांच आदमी उनसे मिलने गये। बाद में कभी कभी श्री कर्पूरचन्द्र जी पाटनी मेरे साथ गये। बाद में मुझे अकेले को ही जाना पड़ता था। सर मिर्जा से मेरी कुछ मैत्री सी होने लगी। जैसे मैं सबसे

कहता था वैसे ही मैंने सर मिर्ज़ा से भी वनस्थली देखने के लिए कहा। एक दिन वे वनस्थली देख आये। वे वहुत खुश हुए और चार पांच मील का सड़क का टुकड़ा वनवा देने का इरादा उन्होंने अपने आप ही ज़ाहिर किया। उन्होंने शुरू में थोड़ी, और एक अर्से के बाद वहुत ज्यादा ज़मीन वनस्थली को दिलवा दी। उन पर यह असर किसी भी तरह से पड़ गया होगा कि वनस्थली का काम आगे जाकर वहुत वढ़ेगा। सर मिर्ज़ा के वनस्थली के साथ हुए सम्पर्क को लेकर मेरे प्रजामंडल के कुछ साथियों को कुछ भ्रम सा हो गया। वहरहाल उनको यह सव कुछ अच्छा नहीं लगा और वनस्थली के इतने अच्छे काम को उन्होंने शायद राजनीति में वाधक समझना शुरू कर दिया। इससे ज्यादा कुछ यहां वताने की मेरी इच्छा नहीं होती है। राजस्थान वालिका विद्यालय ने वनस्थली विद्यापीठ का रूप प्रायः उन्हीं दिनों ले लिया था। शिक्षाकुटीर का काम शुरू करने से पहले मैं गांधी जी का आशीर्वाद लेने गया था। उन्होंने कहा—"जितनी लड़कियों की संभाल रतन कर सके उतनी ही लड़कियां रखना।" विनोवा जी ने दस लड़कियों से ज्यादा न रखने की राय दी। पर इस संख्या के आधार पर कोई काम रतन जी की और मेरी निगरानी में ठीक से चल सकेगा यह वात मेरे गले नहीं उतरी। हम लोगों ने लड़कियों की संख्या को बढ़ाने की कोशिश नहीं की, पर जो लड़कियां आती गयीं उन्हें हम लेते गये। ज्यों ज्यों लड़कियां वढ़ीं, कच्चे झोंपड़े भी वढ़ते गये। जैसे लड़कियों की वैसे ही कार्यकर्ताओं की संख्या भी वढ़ती गयी। शिक्षक शिक्षिका दोनों को हमने शुरू से ही लेना ठीक समझा। पर लड़कियों के साथ लड़कों को पढ़ाने की तजवीज हमारी समझ में आज तक नहीं आयी है। १० साल तक के लड़कों को लड़कियों के साथ पढ़ाने की छुट्टी गांधीजी की तरफ से भी थी, इसलिए हमने वनस्थली में ही काम करने वाले कार्यकर्ताओं के १० साल तक के लड़कों को विद्यालय में पढ़ने के लिए आने की इजाज़त दे दी। हमारा इरादा वनस्थली विद्यापीठ को राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र वनाने का हो गया था। पर हमें नहीं लगता था कि सरकारी मान्यता प्राप्त परीक्षाओं के विना संस्था चल सकेगी। अतः हमने समझौते के तौर पर अपनी लड़कियों को हाई स्कूल आदि की परीक्षाएं दिलाना मंजूर किया। लड़कियां एम० ए० तक की पराक्षाओं में प्रायवेट वैठ सकती थीं, इसलिए हमने विद्यापीठ का सम्वन्ध विश्वविद्यालय से जोड़े विना ही काम चलाने का फैसला किया। प्रायः मिडिल तक की (आठ कक्षाओं की) पढ़ाई के लिए हमने अपनी "संस्कृता" परीक्षा जारी की। हाई स्कूल परीक्षा में पहले पहल १९४१ में वनस्थली की लड़कियां वैठीं। फिर क्रमशः इन्टरमीजिएट, वी० ए० तक की कक्षाएं खुल गयीं। वाकायदा एम० ए० खुलने में कुछ समय लगा। वनस्थली की पंचमुखी शिक्षा के पांच अंग थे जिन्हें हम आज कल इस प्रकार वताते हैं, १. नैतिक, २. शारीरिक, ३. व्यावहारिक, ४. कलात्मक और ५. वौद्धिक। गांधीजी की वुनियादी तालीम को हमने वनस्थली में नहीं अपनाया, मुझे वह वास्तव में व्यावहारिक नहीं लगी। वाकी जहां तक वन सका गांधीजी वाले वातावरण को वनस्थली में वनाये रखने की कोशिश हमने की। पंडित जवाहरलाल नेहरू पहले पहल वनस्थली आये तो वे आम

सभा में पहली वात यह वोले "मैं लड़की होता तो अपनी तालीम के लिए यहां आता"। वाद में उन्होंने वनस्थली को अद्वितीय संस्था वताया। आखिर में उन्होंने वनस्थली के काम को राष्ट्रीय महत्व का और राष्ट्रीय एकीकरण में मदद पहुंचाने वाला काम वताया। गांधीजी ने एक वार हमको लिख भेजा—वनस्थली मेरे दिल में वसी है। गांधीजी ने मुझ से एक वार कहा—तुम्हारी शक्ति वनस्थली शिक्षा जैसे काम में नहीं लगनी चाहिए। फिर उन्होंने साफ किया कि उनका वनस्थली के वारे में अच्छा ही अच्छा अभिप्राय है। फिर भी वोले कि तुमसे मैं कुछ दूसरी ही अपेक्षा रखता आया हूं। मैंने उनसे कह दिया कि आप वनस्थली आकर पांच सात दिन रहें और फिर जो कुछ आपको कहना हो सो कहें, मैं आपकी वात को मानने की कोशिश करूंगा। गांधी जी ने अपनी हत्या के १५-१६ दिन पहले वादा किया था कि वे फरवरी [१९४८] में वनस्थली आयेंगे। वह शुभ दिन नहीं आ पाया।

जव शिक्षा-कुटीर का काम चालू हुआ तव हमारे हाथ में उस काम के लिए एक पैसा भी नहीं था। स्वभावतः वहुत छोटा सा वजट वना। एक साल निभ गया, दूसरा साल निभ गया, इस तरह साल आते गये और निभते गये। हम लोग सरकार के विरोधी थे, इसलिए सरकार रुपयों की मदद नहीं दे सकती थी और वह देती तो भी हम लोग उसे मंजूर नहीं कर सकते थे। संस्था के काम के लिए जमीन तो सरकार से ही मिल सकती थी और सड़क भी सरकार ही वना सकती थी। दोनों काम जयपुर सरकार ने हमारी दरख्वास्त के विना ही किये। शुरु में सरकार को इस तरह स्कूल का खोला जाना मंजूर नहीं था, वाद में उन्होंने ऐतराज किया कि सरकारी जमीन पर हमने मकान कैसे वना लिए। हमने कह दिया कि गांव वालों ने आवादी की अपनी जमीन में से हमें जमीन दी और हमने भी उस जमीन में जैसे गांव वाले वनाते हैं वैसे ही कच्चे झोंपड़े वना लिये। यह झगड़ा वहुत वढ़ सकता था, पता नहीं परिणाम क्या होता? जो कुछ होता, पर हम लोग सरकार को जमीन की कीमत कभी कहीं देते। परन्तु जव जमना लाल जी को यह मालूम हुआ तो उन्होंने समझौता कर लेने की राय दी तो हमने विद्यालय की उस समय की कब्जे की कुल जमीन की एक आना प्रतिगज के हिसाव से कीमत चुका दी। वाद में विद्यापीठ को जितनी जमीन मिली वह ज्यादातर तो वतौर वक्फ के मिली, और कुछ जमीन हमने लगान पर भी ले ली।

जवाहरलाल जी ने एक दिन मुझ से पूछा—वनस्थली का खर्चा कैसे चलता है? मैंने कहा रुपया मांग लाते हैं। उन्होने सवाल किया "सरकारी मदद क्यों नहीं ली? मैंने कहा "किस सरकार से लेते और कैसे लेते?" वे वोले—"अव तो सरकार अपनी है।" नतीजा यह आया कि वनस्थली को सवसे पहले सरकारी ग्रांट भारत सरकार से मिली। वाद में जयपुर सरकार से मिली। एकीकरण के वाद से राजस्थान सरकार से मिलने लगी। फिर एक के वाद दूसरे राज्य भी वनस्थली को लाक्षणिक

सालाना सहायता देने लग गये। आज राजस्थान सहित १७ राज्यों, १० केन्द्र प्रशासित प्रदेशों और नेफा से, भारत सरकार से, यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन से और नेपाल सरकार से वनस्थली को सहायता मिलती है। यह सब कुछ अभूतपूर्व है। इतनी व्यापक मान्यता देश की किसी भी दूसरी संस्था को पहले नहीं मिली, आज नहीं मिली हुई है और कल भी शायद ही मिल सके। वनस्थली को स्वभावतः इस बात का गर्व है।

देश की जनता के सभी अंगों ने वनस्थली की सहायता की है। कोई राज्य नहीं बचा, तो कोई मज़हब व जाति वाले भी शायद ही बचे हों। वनस्थली सबकी हो गयी। वनस्थली में रुपया बहुत आया। पर जितना आता गया उतना खर्च होता गया। खर्च से आमदनी कम हुई तो कर्ज़ा ले आये। वनस्थली की यह महिमा मानी जाती है कि उस पर हर साल कुछ न कुछ कर्जा रहा है, हमें वनस्थली पर कर्जे का न होना अपशकुन जैसा लगता था। हमने तो रुपये के इन्तजार में किसी काम को कभी रोका ही नहीं। बिना रुपये के काम चालू कर दिया गया और रुपया बाद में आता रहा। कई हजार रुपये रोजाना का खर्च और पास में एक हजार भी नहीं, ऐसे मौके कई बार आये हैं। मेरे मुख्यमंत्रित्व काल में वनस्थली विद्यापीठ बहुत घाटे में रहा। मेरे ओहदे की मर्यादा ने मुझे चन्दा मांगने से रोक दिया। मैंने ओहदा छोड़ा तब मुझ पर कुल मिलाकर ६ लाख के करीब का कर्जा था, वनस्थली का तथा दूसरे सार्वजनिक कामों का। लोगों ने मुझ से बहुत बार कहा—"मुख्य मंत्री अपने जमाने में संस्था के लिए लाखों रुपया जमा कर सकता था जो आगे चलकर काम आता।" मैंने अपना समाधान यह सोच कर कर लिया कि मैं ऐसा दूरदर्शी और समर्थ मुख्यमंत्री नहीं बन सका सो मेरे लिए अच्छा ही हुआ।

पिछले ३४-३५ सालों में वनस्थली सब तरह से बड़ी हो गयी है। जमीन क्या, मकान क्या, लड़कियों की और कार्यकर्ताओं की संख्या क्या और शिक्षा का विस्तार क्या, भारतीय वातावरण क्या, सभी तरह से वनस्थली विद्यापीठ को विशेष माना जा सकता है। रतनजी ने अपने आपको वनस्थली की भेंट कर दिया, मैं भी यथाशक्य योगदान करता रहा, प्रकाशचन्द्र गोयल ने लगभग ३५ साल तक बड़ी आस्था से काम किया, तीस साल हो गये हैं प्रो० प्रेमनारायण जी माथुर जैसे सुयोग्य और अभिन्न साथी को। सुशीला ने रतन जी से भी बढ़ कर अपने आपको संस्था की भेंट कर दिया है। दिवाकर सरकारी नौकरी छोड़कर वनस्थली का हो गया है। सज्जन और रामेश्वर जैसे भाई बहिन भी वनस्थली में हैं। सरजू बाई, मोहन जीजी, प्रह्लाद नारायण पुरोहित, मानसिंह गोयल, सन्तराम और हरजीराम आदि भी हैं। सुधाकर जयपुर में अपना काम करते हुए भी वनस्थली के लिए सदा बहुत काम करता ही रहता है। कलकत्ते में सीताराम जी, भागीरथ जी जैसे मित्रों का वनस्थली को बड़ा सहारा रहा है। वनस्थली के १९५१ के संकट काल में भागीरथ जी कानोड़िया ने घर बैठे जो आर्थिक

सहायता पहुँचाई उसे रतन जी और मैं कभी नहीं भूल सकता। एक वार तो भागीरथ जी ने वड़े भारी खतरे से हमारी रक्षा की। वैसे ही सीताराम जी ने भी वहुत खास सहायता देकर एकाध वार वहुत अच्छा मौका साधा। इस प्रकार हम कुछ लोगों के लिए वनस्थली अपने जीवन का मिशन जैसा हो गया है। अब हमें इस काम को मजबूत पाये पर खड़ा करना है। विश्वविद्यालय वनने की वात भी चल चुकी है। उस काम में मुश्किलें हैं सो तो हैं ही, पर मेरा मन वहुत कुछ वदल सा गया है। विश्वविद्यालय वनने से न जाने लाभ कितना हो और हानि कितनी हो जाय? शिक्षा का काम शिक्षकों का है, संस्था का काम कार्यकर्त्ताओं का है—उन्हीं का यह सव कुछ वना रहना चाहिए। उन्हीं की आहुतियों से इस यज्ञ की सिद्धि है। वाकी वाहर से, ऊपर से कोई तंत्र आरोपित हो जाय तो वह संस्था के लिए प्राणहर सिद्ध हो सकता है। वनस्थली विद्यापीठ अपनी सर्वतंत्र स्वतंत्र हैसियत में हमेशा और हर सूरत में जिन्दा रहेगा, प्राणवान रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

जीवनकुटीर के प्रकट यज्ञ की एक प्रकार से पूर्णाहुति १९३९ में हो गयी थी। पर जीवनकुटीर को हम लोगों ने प्रच्छन्न रूप में जिन्दा रखा। कुटीर अपने तरीके से कार्य-कर्त्ताओं की मदद करता रहा। एक समय ऐसा आया था जव वनस्थली और हटूंडी के कार्यकर्त्ताओं ने मिलकर राजस्थान संघ वनाया था जिसे चलाने का जिम्मा हरिभाऊ जी पर, मुझ पर रखा गया था। पर वह काम ज्यादा समय तक नहीं चला। जैसी भी परिस्थिति रही जीवनकुटीर की ओर से कुछ न कुछ होता रहा। जीवनकुटीर की भावना वनस्थली के कण-कण में व्याप्त है। जव जीवनकुटीर को २५ साल हो गये तो १९५४ में उसे नवजीवन कुटीर का रूप मिला। मेरा लोक शिक्षण का काम स्वराज्य से पहले तक तो कुछ न कुछ चलता रहा, वाद में वह वहुत शिथिल, एक प्रकार से खत्म जैसा हो गया। इसलिए फिर से नवजीवन कुटीर के द्वारा लोक शिक्षण का काम हाथ में लिया गया। पर मुझ पर वनस्थली विद्यापीठ का भार ज्यादा होने से मैं नवजीवन कुटीर के कामके लिए विशेष साधन नहीं जुटा पाया और वदले हुए जमाने में अच्छे और योग्य साथी भी दुर्लभ हो गये। प्रोफेसर प्रेमनारायण जी ने और मैंने एक वार "जीवन सन्देश" नाम का साप्ताहिक शुरु किया। फिर मैंने "नवजीवन संदेश" नाम का साप्ताहिक चलाया। पर मुझ में पत्रकार के गुण नहीं पाये गये। दूसरी परिस्थितियां भी थी। दोनों ही साप्ताहिक बन्द हो गये। वनस्थली विद्यापीठ की ओर से मुझे समाधान है कि स्त्री शिक्षा का काम ठीक चल रहा है जिसमें आयन्दा मैं अपनी थोड़ी शक्ति लगाऊं तो भी अच्छा निभाव हो जायगा। जन्म स्थान जोवनेर में महिलाओं और छोटे वच्चों की शिक्षा के लिए मातृ-मंदिर-विद्यालय के हाथ ४-६ सालों से ठीक ठाक काम हो रहा है। पर लोक-शिक्षण के काम को मैं अच्छी तरह जारी नहीं रख सका, इसका मुझे वड़ा खेद है और इस कारण से मैं कई वार क्षुव्ध हो जाता हूँ।

इसी सिलसिले में मुझे दैनिक लोकवाणी के बारे में भी कुछ कहना चाहिए। एक मामूली से साप्ताहिक के रूप में मैंने १९४३ में लोकवाणी को शुरू किया। उस समय सारे राजपूताना की किसी रियासत में कोई पत्र मेरी जानकारी में नहीं था। अजमेर में अवश्य ही दो-एक तेज-तर्रार से पत्र चलाने की कोशिश हो चुकी थी। लोकवाणी का काम श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट के जिम्मे किया था और सम्पादक बने थे हमारे साथी श्री देवीशंकर जी तिवाड़ी। कुछ समय के बाद मेरे परमप्रिय शिष्य सिद्धराज ढड्ढा ने लोकवाणी को संभाला और उसे दैनिक बना दिया। सिद्धराज के मंत्री बन जाने पर श्री जवाहरलाल जी जैन को लोकवाणी का जिम्मा दिया गया। श्री जवाहरलालजी जैन से श्री पूर्णचन्द जी ने लोकवाणी का चार्ज लिया। आखिर में मैंने लोकवाणी को सुधाकर के सुपुर्द कर दिया गया। इस लम्बे अर्से में एक ओर लोकवाणी के द्वारा लोक-शिक्षण का अच्छा काम हुआ तो दूसरी ओर उसे नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कई लाख रुपये का घाटा हो गया जिसे पूरा करने की भरपूर कोशिश होती रही। अन्त में कई कारणों से ऐसी स्थिति आ गयी कि लोकवाणी बन्द हो गयी। अर्से तक लोकवाणी बन्द रही। कई मामले मुकदमें खड़े हो गये। एक दूसरी सोसाइटी 'राष्ट्र दर्शन सोसाइटी' ने लोकवाणी को फिर से जारी किया, पर अभी स्थिति संतोषजनक नहीं है। मेरा पक्का विचार लोकवाणी को न केवल जिन्दा रखने का, बल्कि उसे शानदार दैनिक बनाने का रहा है। लोकवाणी का काम मिशन के रूप में शुरू हुआ था। उसी रूप में न सिर्फ जारी रहेगा, बल्कि चमकदार बनेगा।

इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले अपने दिल की एक बात मुझे कहनी चाहिए। वह यह है कि १९२९ से लेकर १९७० तक ४१ साल पूरे हो रहे हैं—एक ही जगह, एक ही धुन। जीवनकुटीर के जमाने में किसी भी दूसरे काम में मैंने अपनी शक्ति नहीं लगायी। बाद में मैं जिसे राजनीति कहते हैं उसमें भले ही घिसट गया पर मैं जानता हूँ और यह सब को पता है और बहुतों को शिकायत मालूम होती है कि मेरा दिल वनस्थली में रहा। लोगों ने वनस्थली को मेरी ताकत के रूप में देखा और वनस्थली को मेरी कमजोरी का कारण भी बताया। पर बताने वाले अपनी जानें, मेरी भावना है सो यह है :—

चिन्ता नहीं की कुछ साधनों की,
सहायकों की नहिं राह देखी।
वनस्थली में चिमटा अकेले
रोपा, उसी की करतूत देखी॥

अध्याय ३

राजनीति

१९३६ – १९६२

मैं बी० ए० में पढ़ता था तब १९१८ में पहले पहल कांग्रेस का अधिवेशन देखने के लिए दिल्ली गया था। नियमित रूप से समाचार पत्र पढ़ने की आदत मेरी उससे पहले ही पड़ चुकी थी। गांधी जी का असहयोग आन्दोलन देशी राज्यों में नहीं था और मेरा पढ़ना छूटा उस समय तक आन्दोलन का जोर भी कम हो गया था। दूसरे मैं जयपुर राज्य की नौकरी में भी पहुंच चुका था। मेरा सोचना था कि आखिर जयपुर महाराजा अंग्रेजों के अधीन हैं तब भी वे खुद अंग्रेज नहीं हैं। मेयो-कालेज में था तब वहां लार्ड रीडिंग के दरबार में मैं शामिल हुआ था। जयपुर में एक से अधिक बार जयपुर महाराजा के दरबारों में भी मैं गया था। साथ ही मेरे विचार देश की राजनीति के विषय में खूब चलते थे और मैं अपनी खास राय भी रखने लगा था। कांग्रेस में अपरिवर्तनवादी और स्वराजपार्टी का भेद हुआ तब मेरा दिल-दिमाग़ पूरे तौर पर गांधी जी के पक्के अनुयायियों अपरिवर्तनवादियों की ओर था। राजनीति में सीधा हिस्सा लेने के लिए मेरे सामने मौक़ा भी नहीं था और उस तरफ मेरा मन भी ख़ासतौर पर नहीं गया। मैं तो राजनीति को सर्पिणी समझने वालों में था। जीवनकुटीर की स्थापना के बाद तो मैं वनस्थली में ही रम गया। मैं देखता था कि अजमेर की कांग्रेस में उन दिनों भी

आपस का झगड़ा चलता था। झूठे सच्चे मेम्बर बनाने तक की शिकायत उस समय भी सामने आयी हुई थी।

जीवनकुटीर के काम के ७॥ साल के अनुभव के बाद मेरा विचार बना कि मुझे प्रचलित राजसत्ता का विरोध करना चाहिए, करना पड़ेगा। उसी जमाने में कांग्रेस की ओर से इस विचार ने जोर पकड़ा कि देशी राज्यों की जनता को अपना संगठन अपने बल बूते पर खड़ा करना चाहिए। १९३६ में जीवनकुटीर का जो जलसा वनस्थली में हुआ था उसमें मैं अपना पहला जोरदार राजनैतिक भाषण दे चुका था। १९३७ में जयपुर राज्य प्रजामंडल का पुनर्गठन करने की बात सोची गयी। १९३१ में प्रजामंडल के काम की कुछ शुरूआत जयपुर में हो गयी थी, पर बाद में वह काम ढिलाई में पड़ा रह गया था। बड़े लोगों की प्रेरणा से तय हुआ कि मैं प्रजामंडल के पुनर्गठन के काम में हिस्सा लूं। मैंने जयपुर राज्य प्रजामंडल का प्रधान मंत्री बनना मंजूर कर लिया। जयपुर के प्रसिद्ध वकील श्री चिरंजीवलाल जी मिश्र प्रजामंडल के अध्यक्ष बनाये गये। श्री कपूरचन्द्र जी पाटनी मेरे साथ संयुक्त मंत्री बने। श्री हरिश्चन्द्र जी शर्मा, श्री चिरंजीलाल जी अग्रवाल, श्री हंस डी० राय जी भी प्रजामंडल में शामिल हुए, जयपुर शहर के और राज्य के दूसरे हिस्सों के कई खास लोग भी। जयपुर सरकार की ओर से प्रजामंडल के काम में बाधा आनी शुरू से ही शुरू हो गयी। हमारी ओर से सोसाइटियों के रजिस्ट्रेशन के कानून को इस आधार पर टालने की कोशिश की गयी कि प्रजामंडल का संगठन तो बहुत पहले हो चुका था, अब उसका पुनर्गठन मात्र हुआ है।

राज्य के प्रभावशाली इन्सपेक्टर जनरल ऑफ पुलिस श्री एफ० एस० यंग बड़े होशियार आदमी माने जाते थे। उनसे मेरी कई मुलाकातें हुईं और बहुत सा पत्र व्यवहार भी। मैंने उनको बताया कि प्रजामंडल का विचार महाराजा को हटाने का नहीं है, प्रजामंडल तो सिर्फ़ जनता की शिकायतों को दूर करवाना चाहता है और अन्ततोगत्वा महाराजा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन की स्थापना भी। श्री यंग ने मुझे समझाने की कोशिश की कि प्रजामंडल के कार्यकर्ता गांवों में प्रचार न करें। आखिर में उन्होंने कहा कि अमुक आबादी से कम आबादी के गांवों को टाल दिया जाय। वस्तुतः हमारे पास उतने से गांवों में जाने की शक्ति भी नहीं थी। इसलिए मैंने श्री यंग की बात मान ली। प्रजामंडल का काम जोर शोर से शुरू हो गया, जिसमें मेरे जीवनकुटीर के प्रायः सब साथी जुट गये। वे सब लोग पूरा समय देने वाले कार्यकर्ता थे और उनके निर्वाह व्यय की व्यवस्था जीवनकुटीर की ओर से थी। न केवल जयपुर शहर में, बल्कि राज्य की प्रत्येक निज़ामत में प्रजामंडल के सदस्य बनाये गये और कमेटियों का संगठन कर दिया गया।

१९३८ के शुरू में तय हुआ कि सेठ जमनालाल जी बजाज को प्रजामंडल का सभापति बनाया जाय और जयपुर शहर में मंडल का पहला अधिवेशन किया जाय।

उन्हीं दिनों में सीकर के रावराजा और जयपुर महाराजा के बीच में विवाद खड़ा हो गया और सीकर की जनता ने रावराजा का पूरा साथ दिया। जयपुर सरकार और सीकर ठिकाने के बीच फौज़ी मोर्चाबन्दी जैसी हो गयी। सीकर शहर में जनता की इजाज़त के बिना किसी का भी प्रवेश नहीं हो सकता था। ऐसी स्थिति में श्री कर्पूरचन्द्र जी पाटनी और मैं दोनों सीकर गये। मैंने रावराजा को अपने निजी तौर पर बहुत समझाया, उनके पास पड़ौस के लोगों ने रावराजा को वर्ग़लाने की कोशिश की। परन्तु अन्त में रावराजा ने मेरे बताये हुए मस्विदे को मानकर जयपुर के प्राइममिनिस्टर सर बीचम के नाम के पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये और अन्ततोगत्वा झगड़ा शान्त हो गया। तब तक जमनालाल जी का जयपुर-सीकर आने का समय भी आ पहुंचा।

जयपुर सरकार की ओर से आपत्ति की गयी कि प्रजामंडल के मनोनीत सभापति का जुलूस मुख्य बाजारों में होकर न निकाला जाय बल्कि शहर के बाहर की सड़क से निकाला जाय। हमने यह बात मान ली और प्रजामंडल के सभापति का बड़ा भारी जुलूस निकाला जिससे सारे शहर और राज्य भर में प्रजामंडल का दबदबा हो गया। प्रजामंडल का अधिवेशन भी शानदार हुआ और उसमें उत्तरदायी शासन की मांग के अलावा कई एक प्रस्ताव पास हुए। १९३९ में प्रजामंडल ने जयपुर राज्य के अकाल पीड़ित क्षेत्रों को राहत पहुंचाने का काम हाथ में लिया और जमनालाल जी ने भी उस काम के लिए जयपुर आना चाहा। राज्य सरकार ने जमनालाल जी के प्रवेश पर पाबन्दी लगा दी। इस पर सरकार और प्रजामंडल के बीच झगड़ा शुरू हो गया। आखिर प्रजामंडल ने सत्याग्रह करने का फ़ैसला किया। हम लोग गांधीजी का आशीर्वाद लेने के लिए बारडोली पहुंचे। गांधी जी मुझे दूर से देखते ही बोले—"यह आ गया लड़वैया"। उस समय सरदार वल्लभभाई पटेल भी गांधी जी के पास थे। उन्होंने अपनी आदत के अनुसार कुछ तीखी-सी बातें हम को कहीं। मैंने भी उनको तीखे जवाब दिये। हम लोगों ने महाराजा के सामने कई मांगें पेश करने का इरादा किया था। पर गांधीजी ने जयपुर प्रजामंडल की ओर से जयपुर कौंसिल के प्रेसीडेंट को भेजे जाने वाले पत्र का जो मस्विदा अपने हाथ से लिख कर हमें दिया उसमें केवल बोलने, लिखने, संगठन करने के नागरिक अधिकारों को ही स्थान मिला। जो हो, जयपुर सरकार ने प्रजामंडल की बात नहीं मानी और प्रजामंडल ने सरकार की बात नहीं मानी। जमनालाल जी के द्वारा निषेधाज्ञा को भंग किये जाने का फैसला प्रजामंडल की ओर से हुआ। जयपुर सत्याग्रह शुरू हो गया और खेजड़े के रास्ते वाले 'शास्त्री सदन' में रात के समय में हो रही प्रजामंडल की वर्किंग कमेटी के लोगों की मीटिंग में से सर्व श्री हरिश्चन्द्र जी शर्मा, चिरंजीलाल जी अग्रवाल, श्री कर्पूरचन्द्र जी पाटनी, श्री हंस डी० राय जी को और मुझे गिरफ्तार कर लिया गया। श्री गुलाबचन्द जी कासलीवाल को सत्याग्रह के काम का चार्ज सम्भलाकर हम लोग विदा हुए। हम लोगों को रातों-रात मोहनपुरा नामक गांव के एक मकान में ले जाकर बन्द कर दिया गया। दूसरे दिन श्री चिरंजीवलाल जी मिश्र

भी पकड़े हुए हमारे पास आ पहुंचे एवं अन्य सत्याग्रहियों का भी आना जोर शोर से शुरू हो गया । जमनालाल जी भी जयपुर राज्य में प्रवेश करते समय पकड़ लिये गये । उन्हें 'मोरांसागर' में रखा गया ।

मोहनपुरा कैंम्प में कोर्ट लगा, उसमें हमारी पेशी हुई और हम लोगों को तीन 'काउंटों' पर ६-६ महीने की सजा दे दी गयी । हमने एक वक्तव्य देकर कोर्ट की कार्य-वाही का बहिष्कार किया । मोहनपुरा कैंम्प में आवश्यक सुविधाओं के लिए हम लोगों ने भूख हड़ताल कर दी और हम दसेक आदमियों को लाम्वा के किले में बन्द होने के लिए भेज दिया गया । उपरिलिखित ६ आदमियों के अलावा श्री कैवलचन्द्रजी मेहता, श्री छगनलालजी चौधरी, श्री रूपचन्द्रजी सौगानी और श्री सरदारमलजी गोलेछा को भी लाम्बा में रखा गया । हम दस आदमियों के लिए लाम्वा किले में पुलिस और फौज दोनों के पहरे का बड़ा भारी इन्तजाम किया गया था । हमारी भूख हड़ताल चलती रही । उधर जयपुर शहर में बड़ी जोरदार हड़ताल हुई । हमारे स्वास्थ्य के वारे में कई अफवाहें उड़ने लगीं । हम में से एक को तो मरणासन्न वता दिया गया । आठ दिनों के बाद हमारी भूख हड़ताल टूटी और हमारी व्यवस्था शाही ठाठ से हुई । फौज, पुलिस के पहरे के अलावा रसोईदार, नौकर आदि रखे गये और खाने पीने का सामान अच्छे स्टेण्डर्ड का हमारे लिए दिया गया । डॉ० मोहनलाल जी शर्मा कैम्प के चार्ज में रखे गये थे । बाहर से आने वालों को इजाज़त लेकर तो आना पड़ता था पर क़िले के अन्दर किसी तरह की रोक-टोक नहीं थी । खाने-पीने को वहुत सी सामग्री आती थी जिसका ढेर लगा हुआ मालूम पड़ता था । बाहर के समाचार आ ही जाते थे । और मैं अपनी ओर से हिदायतें लिखकर भेज देता था । मैंने यह काम मोहनपुरा में ही शुरू कर दिया था, जहां काफ़ी कड़ी निगरानी थी । रतन जी के साथ हमारा छोटा लड़का श्याम (दिवाकर) आठेक साल का उस समय था, वह बाहर के समाचारों की लिखित-रिपोर्ट छिपाकर लाता और मैं उसे अपनी लिखित-हिदायतें छिपाकर दे देता । बाहर से सम्पर्क के लिए दूसरा खुफिया इन्तजाम भी मैंने किया था, पर हमारे लाम्वा भेज दिये जाने के कारण उस इन्तज़ाम को अमल में लाने की ज़रूरत नहीं रही ।

मोहनपुरा कैम्प भर गया तो सत्याग्राहियों को सैन्ट्रल जेल में भेजा जाने लगा । वहां पर उन्हें मामूली कैदियों की तरह रखा गया । मैंने लाम्वा में अव्वल दिन से ही सिर्फ़ जौ की विना चुपड़ी रोटी और एक तरकारी भोजन में, और भूंगड़े-धाणी नाश्ते में लेने का फ़ैसला कर लिया था । वही मैंने किया । पर इस वात का ऐलान नहीं किया गया, न सरकार को ही लिखकर दिया । प्रॉपेगेंडा—पब्लिसिटी में मेरी विशेष रुचि कभी नहीं थी । जमनालाल जी मोरां सागर से पुराने घाट के पास के कर्णावतों के वाग में ले आये गये । उनके घुटनों में दर्द होने लगा था । हॉस्पिटल में विजली के सेक से उनका चमड़ा जल गया था । वे जयपुर सरकार को कुछ न कुछ लिखते रहते थे । उनके पास

समझौते के सन्देश भी आने लगे थे। एक वार हम लोगों में से कुछ को उनसे सलाह करने के लिए ले जाया गया था। वाद में हमको क़िले से हटाकर झालाना-कैम्प में ले आया गया था। वहां से मैंने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में छपने के लिए दो लेख भेज दिये। उस समय मैंने किसी को भी यह वात नहीं वतायी। लेखों को छपा देख कर सव लोग आश्चर्य में पड़ गये कि ऐसे लेख लिखने वाला कौन हो सकता है। वाहर के प्रवन्ध के वारे में मैं हर घड़ी चिन्तित रहता था, हालांकि वह प्रवन्ध माकूल था। श्री व० सा० देशपाण्डे जी और श्री राधाकृष्ण जी वजाज चार्ज में थे। रतन जी भी हिस्सा ले रही थीं और वे मुझे वरावर वाक़िफ़ रखती थीं। आखिर एक दिन हमको मालूम हुआ कि गांधीजी के हुक्म से जयपुर सत्याग्रह को स्थगित कर दिया गया है। उस समय दिल्ली में एक ख़ास मित्र ने रतन जी और श्री राधाकृष्ण जी वजाज से मज़ाक किया कि जव सत्याग्रह करने वाले नहीं थे तो गांधी जी और क्या करते। रतन जी ने कहा कि और कोई नहीं तो ये सीताराम जी सेकसरिया और सिद्धराज जी ढड्ढा तो यहीं मौजूद हैं। सच वात यह थी कि सत्याग्रहियों की कमी नहीं हुई थी। गांधी जी ने अपने किसी तरीके के अनुसार उस समय सत्याग्रह को स्थगित करवाया था, जव वह जोरों पर था। सत्याग्रह स्थगित होने के वाद से समझौते की संभावना का इन्तजार हमारे कैम्प में होने लगा। तव तक हमें चौथी वार वस्सी के पास के गांव में मोहनपुरा के डाकवंगले में पहुंचा दिया गया था। हमारा यह चौथा कैम्प तो पूरी आजादी का कैम्प था जिसमें से कोई चाहता तो घंटों तक गायव हो सकता था और भले ही रात को जयपुर शहर तक जाकर भी वापिस अपने ठिकाने आ सकता था।

५॥ महीने की सजा काटने के वाद हमें एक दिन छोड़ दिया गया। जयपुर शहर में हमारा अभूतपूर्व जुलूस निकला और वड़ी भारी सभा हुई। जिसमें एक सुन्दर स्वागत गीत गाया गया था। कुछ दिनों के वाद जमनालाल जी को भी छोड़ दिया गया। वाद में समझौते की वात चली। पहले प्रजामंडल की एक मांग हिन्दुस्तानी प्राइम-मिनिस्टर की नियुक्ति के विषय में थी। शायद इसीलिए राजा ज्ञाननाथ नाम के अंग्रेजों के हुक्मी वन्दे को प्राइम-मिनिस्टर वना दिया गया था। उस आदमी से जो वहस हुई, वह वहुत मज़ेदार थी। प्रजामंडल की ओर से वात करने वाले जमनालाल जी, पाटनी जी और मैं—ये तीन आदमी थे। एक दिन राजा ज्ञाननाथ कह उठे—इस ड्राफ्ट को आपने चुपके से कुछ वदल दिया मालूम होता है। इस पर मुझे वेहद गुस्सा आ गया, इतना कि राजा ज्ञाननाथ ने समझा कि मैं उनको उनकी कुर्सी पर से ढकेल दूंगा। वे डर के मारे पीछे की ओर इतने दवे कि गिरते गिरते वचे। राजा ज्ञाननाथ को एक वार पहले भी दूर दूर से मेरा परिचय हो चुका था। हिण्डौन में प्रजामंडल की ओर से राजनैतिक सम्मेलन की तैयारी हो रही थी। राजा ज्ञाननाथ हिण्डौन पहुंचे और उन्होंने दूर से ही देखकर पूछा—यह क्या डमडमी है। मैं हिण्डौन गया तव वहां के लोगों ने मुझको यह वात वतायी। मैंने अपने

भाषण में कहा—राजा ज्ञाननाथ को शायद यह पता नहीं है कि डमडमी बजाए बिना बन्दर नहीं नाचता है। हमारी मुलाकात के समय राजा ज्ञाननाथ ने मुझसे कहा—आपने मुझे बन्दर बना दिया। मैंने कहा ऐसा आपने समझ लिया होगा।

आखिर जयपुर सरकार से प्रजामंडल का समझौता हो गया, जिसके अनुसार प्रजामंडल का रजिस्ट्रेशन करके सरकार ने अपनी आबरू बचायी। हमने देखा कि रजिस्ट्रेशन के द्वारा सही, जनता के नागरिक अधिकारों की रक्षा तो हो गयी। परन्तु जयपुर सरकार के कर्त्ताधर्त्ताओं की नीयत साफ़ नहीं थी, वे प्रजामंडल के काम में कुछ न कुछ अड़ंगा लगाते ही रहते थे। उनकी परवाह न करते हुए प्रजामंडल अपने काम में लगा रहा। जमनालाल जी के बाद मुझे प्रजामंडल का अध्यक्ष बनना पड़ा था। उन्हीं दिनों मेरे खास साथियों के मनों में कुछ दुर्भावना की गंध मुझे आने लगी थी। झुंझुनूं अधिवेशन में वर्किंग कमेटी बनाने में मुझे बड़ा ज़ोर आया था। स्थिति यह थी कि श्री कर्पूरचन्द्र जी पाटनी, श्री भागीरथ जी कानोड़िया और सीताराम जी सेकसरिया की पूरी मदद न मिलती तो वर्किंग कमेटी बन ही नहीं पाती। उससे पहले जमनालाल जी के पास यह शिकायत की गयी थी कि हीरालाल शास्त्री अपनी मनमानी करता है। मैंने जवाब दे दिया था कि जब मुझे कोई सहयोग नहीं देता तो मैं—मुझको जो सूझता है, सो कर डालता हूं। इन भाइयों में जो चार्ज लेना चाहता हो उसे इसी क्षण दे दिया जाय। पर वहां चार्ज लेने वाला कौन था। बाद में एक समय श्रीमती जानकी देवी बजाज को प्रजामंडल के सभापति के पद पर लाया गया तो एक साथी ने कहा कि इस गाय को लाकर हमारे आड़े खड़ा कर दिया गया तब हम क्या करें? ऐसी हल्की बातों की ज्यादा चर्चा करने का मुझे उत्साह नहीं है।

१९४२ की फरवरी में जमनालाल जी का स्वर्गवास हो गया। कुछ समय से उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहने लगा था और मृत्यु के कुछ समय से पहले ही वे प्रजामंडल के काम से कुछ कुछ उदासीन से दिखायी देने लगे थे। शायद मेरे एकाध साथी ने उनको कह दिया था कि हीरालाल शास्त्री आपको नहीं चाहता है, हालांकि ऐसा कुछ भी नहीं था। मैं कभी यह जरूर कह दिया करता था कि हम लोग खुद अपने काम को करेंगे तभी हमारी ताकत बढ़ेगी, ऊपर की ताकत का सहारा ज्यादा लेंगे तो हम पंगु बने रह जाएंगे।

१९४२ के "अंग्रेजो भारत छोड़ो" आन्दोलन का समय आ पहुंचा। १९४२ की गर्मियों में हम लोग वनस्थली में राजपूताना मध्य भारत के कार्यकर्ताओं का शिविर कर चुके थे, खासकर आने वाले संघर्ष की तैयारी के तौर पर कांग्रेस महासमिति की बैठक के समय देशी राज्यों के कार्यकर्ताओं की बैठक भी ७-८ अगस्त, १९४२ को बम्बई में हुई थी। किसी ने राजाओं को लिखे जाने के लिए एक पत्र का मसविदा तय्यार किया

था। उसमें राजाओं को लिखने के लिए खास बात यह थी कि या तो अंग्रेजों से लड़ो या या २४ घंटों के भीतर हमको यानी प्रजामंडल को राज संभला दो। उक्त मसविदे पर विचार होता उससे पहले ही गांधी जी आदि पकड़े जा चुके थे और देशी राज्यों में क्या हो इस विषय में कुछ भी फैसला नहीं हो सका था। उस समय जिसके जो समझ में आया होगा वही उसने समझ लिया होगा, ऐसा मेरा मानना है। मैंने जयपुर पहुंचकर अपने साथियों से सलाह की और तुरन्त ही जयपुर प्रजामंडल की वर्किंग और जनरल कमेटियों की बैठकें की गयीं जिनमें हिन्दुस्तान की आज़ादी की राष्ट्रीय मांग का पूरा समर्थन किया गया और हिन्दुस्तान के प्रति जो ब्रिटिश राज था उसकी तथा नेताओं की गिरफ्तारी की निन्दा की गयी और महाराजा से जल्दी से जल्दी उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए कहा गया। उत्तरदायी शासन के सम्बन्ध में इस आशय का उत्तर आया कि महाराजा की नीति राजकाज के काम में जनता को शामिल करने की है। महाराजा को यह लिखने की बात मेरे नहीं जंच रही थी कि या तो आप अंग्रेजों से लड़ो या २४ घंटों के भीतर प्रजामंडल को राज संभला दो। इसके बजाय जयपुर प्रजामंडल की ओर से महाराजा को यह लिखना तय हुआ कि हम लोगों को ब्रिटिश विरोधी और युद्ध विरोधी कार्यवाही करनी पड़ेगी जिसका नतीजा आपके और हमारे बीच में लड़ाई छिड़ने का आ जाएगा। इस पर से उसी दिन प्राइममिनिस्टर सर मिर्जा इस्माइल ने मुझे मिलने को बुलाया और कहा कि महाराजा आप लोगों की ब्रिटिश विरोधी और युद्ध विरोधी कार्यवाही में दखल न दें तब भी आप उनसे लड़ेंगे क्या ? इस बात पर से प्रजा-मंडल के कार्यकर्ताओं की आपस में फिर सलाह हुई और उसके अनुसार सर मिर्जा से बातचीत की गयी जिसका नतीजा नीचे लिखे अनुसार समझौते का आया—

१. जयपुर राज्य में ब्रिटिश विरोधी और युद्धविरोधी प्रचार के लिए राष्ट्रीय झण्डे के साथ प्रभात फेरी व जुलूस निकाले जाएंगे तो राज्य सरकार की ओर से कोई बाधा नहीं पहुंचायी जायगी।

२. युद्ध के लिए अंग्रेजों को जयपुर राज्य की ओर से आगे धन जन की नयी सहायता नहीं दी जायगी।

३. ब्रिटिश भारत में चल रहे आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने वाले कोई भी लोग जयपुर राज्य में आयेंगे तो उन्हे प्रजामण्डल की ओर से सब तरह की सहायता दी जायगी और राज्य सरकार उनमें से किसी को भी गिरफ्तार नहीं करेगी।

४. जयपुर महाराजा की ओर से जनता को उत्तरदायी शासन देने की दृष्टि से कार्यवाही जल्दी से जल्दी शुरू की जायगी।

५. महाराजा की ओर से यह सब कुछ होगा तो जयपुर प्रजामण्डल की ओर से महाराजा के खिलाफ सीधी कार्यवाही नहीं की जाएगी।

इसके अनुसार जयपुर में आन्दोलन का काम चालू हुआ, परन्तु प्रजामण्डल के कुछ साथियों को, मैंने देखा, गिरफ्तार हुए बिना सन्तोष नहीं हो रहा है। आखिर उन्होंने मुझ पर बहुत दबाव डाला कि जयपुर महाराज के खिलाफ़ सीधी कार्यवाही होनी ही चाहिए। उनकी यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही थी तो मैंने सम्बन्धित साथियों को प्रजामण्डल का काम संभालने के लिए कह दिया। परन्तु वे उसके लिए तय्यार नहीं हुए। ऐसी हालत में प्रजामण्डल की एकता को क़ायम रखने की दृष्टि से मैंने एक सख्त पत्र महाराजा की अनुपस्थिति में सर मिर्ज़ा इस्माइल को लिख दिया कि जनता आज़ादी की लड़ाई के सिलसिले में महाराजा के विरुद्ध सीधी कार्यवाही करने के लिए उतावली हो रही है और उसे मैं नहीं रोक सकता। उस पत्र पर से फिर एक बार सर मिर्ज़ा ने हम लोगों से बातचीत करनी चाही। बातचीत होना शुरू हुआ। पता नहीं उसका क्या नतीजा आता। परन्तु उससे पहले ही प्रजामण्डल के कुछ साथियों ने प्रजामण्डल से अलग एक आज़ाद मोर्चा बनाकर महाराजा के खिलाफ़ लड़ाई का ऐलान कर दिया जिससे सर मिर्ज़ा को लिखे गये मेरे उस सख्त पत्र का आधार ही निकल गया और वह वास्तव में प्रभावहीन हो गया। फलस्वरूप प्रजामण्डल अपने पूर्व निश्चित ढंग से उपरिलिखित समझौते के आधार पर आन्दोलन में हिस्सा लेता रहा और दूसरे मित्रों की कार्यवाही उनके ढंग से चली जिससे उनमें से कुल मिलाकर ४–६ गिरफ्तार हुए। जयपुर सरकार और प्रजामण्डल दोनों की ओर से समझौते (Gentleman's Agreement) का ठीक-ठीक पालन हुआ। सरकार पर पोलिटिकल डिपार्टमेंट का बड़ा भारी दबाव आया, यहां तक कि खुद पोलिटिकल सेक्रेटरी सर हेनरी क्रेक जयपुर आये। उस सारे दबाव को महाराजा और सर मिर्ज़ा किसी भी तरह झेल गये। प्रजामण्डल ने भी अपने हिस्से की कठिनाइयों का हिम्मत के साथ मुकाबला किया।

लगभग उन्हीं दिनों राजपूताना के कुछ छोटे बड़े राज्यों में वैसा ही सत्याग्रह शुरू हुआ था जैसा जयपुर में पहले ही हो चुका था। उस सत्याग्रह की और १९४२ के आन्दोलन की बात कुछ राज्यों में मिलादी गयी। एक राज्य के कार्यकर्त्ताओं का शिष्ट-मण्डल जैसा मेरे पास आ चुका था और मैं उनको उस जमाने के हिसाब से तगड़ी आर्थिक मदद तत्काल दे चुका था। दूसरे कई राज्यों में भी मुझसे जितनी हो सकी मैंने सहायता पहुंचायी और अंग्रजी इलाके में आन्दोलन करने वालों को तो बहुत ज्यादा मदद में पहुंचाता रहा। जो लोग छिपने के लिए, मदद के लिए आये उनका जयपुर स्थित शास्त्रीसदन में और वनस्थली में सहर्ष स्वागत किया गया। एकाध के पूरे परिवार ने वनस्थली में आकर रहना चाहा तो लम्बे अर्से तक जीवनकुटीर के खर्चे से रखा गया। जयपुर प्रजामण्डल के पास आने वाला एक भी आन्दोलनकारी जयपुर राज्य में गिरफ्तार नहीं किया गया, खेजड़े के रास्ते का सुरक्षित शास्त्री सदन और वनस्थली दोनों के द्वार उनके लिए हर घड़ी खुले हुए थे। जयपुर राज्य कई प्रकार से युद्ध का

'वेस' जैसा बन गया था और १९४२ के आन्दोलन के सम्बन्ध में खुला और पोशीदा जितना और जैसा काम जयपुर प्रजामंडल की तरफ से हुआ उतना और वैसा काम शायद ही किसी देशी राज्य में हुआ होगा। मुझे किसी दूसरे की टीका नहीं करनी है, न अपनी सफाई देनी है, न किसी के द्वारा किये गये आक्षेप का उत्तर देना है। पर इतना मैं जरूर बताना चाहता हूं कि ऊपर से अच्छे दिखायी देने वाले अमुक अमुक प्रजामण्डलों के सत्याग्रह में पोल बहुत थी—अजीव-अजीव बातें मेरे सुनने में आती थी। एक बहुत बड़े कार्यकर्ता ने अपने राज्य के प्रधानमंत्री को जैसा पत्र लिखा था उसे देखकर मुझे शर्म आयी थी। उस पत्र में महाराजा को अपना बादशाह (किंग) और राज्य को अपना देश (कंट्री) बताया गया था। जयपुर में प्रजामण्डल ने महाराजा के खिलाफ सीधी लड़ाई न करने का जो फैसला किया था वह अमुक समझौते के नैतिक आधार पर था। महाराजा की ओर से जयपुर में जिस तरह ब्रिटिश विरोधी और युद्ध विरोधी आन्दोलन को सहा गया सो बड़े साहस की बात थी। जयपुर महाराजा और जयपुर प्रजामण्डल ब्रिटिश सरकार के मुकाबले में तत्वतः बहुत कुछ एक हो गये थे सो अपने आप में एक अभूतपूर्व योग माना जायगा।

ब्रिटिश भारत में १९४२ के आन्दोलन का वेग कम हुआ उसके बाद राजपूताना के कार्यकर्ताओं का सम्मेलन उदयपुर में हुआ जिसमें श्री गोकुलभाई भट्ट ने आगे बढ़कर हिस्सा लिया। राजपूताने के कार्यकर्ताओं का संगठन बनाया गया और बाद में अखिल भारत देशी राज्य लोक परिषद् की राजपूताना रीजनल कौंसिल बनी और राजपूताना के प्रजामण्डल अखिल भारत देशी राज्य लोक परिषद् अंग बन गये। रीजनल कौंसिल की ओर से राजपूताना के कोने-कोने में कभी गोकुलभाई को लेकर और कभी मैं अकेला पहुंचा। बड़े राज्यों के सवालों के हल करवाने की यथाशक्य कोशिश की गयी, बीच के कई राज्यों के झगड़े सलटवाये और छोटे राज्यों तथा उपराज्यों में पहुंचकर जनता का साहस जागृत किया गया। जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, कोटा, टोंक, अलवर, भरतपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, सिरोही, जैसलमेर, धौलपुर, झालावाड़, बूंदी, करौली, प्रतापगढ़, किशनगढ़, शाहपुरा तथा कुशलगढ़, नीमराना, लावा तक और इनके अलावा दांता, पालनपुर, ईडर तथा विजयनगर तक राजपूताना रीजनल कौंसिल के दायरे के सब राज्य संभाले गये। एक बार तो मैं लुहारू भी पहुँचा जो उस समय पंजाब में था। जैसलमेर, धौलपुर, टोंक जैसे राज्यों के दौरे तो बड़ी विचित्र परिस्थितियों के बीच किये गये। राजपूताना के कार्यकर्ताओं ने अखिल भारतीय स्तर पर लोक परिषद् के काम में बहुत अच्छा हिस्सा लिया जिसमें हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा और पंजाब आदि के छोटे-छोटे समस्त राज्यों के साथ-साथ कश्मीर और हैदराबाद जैसे बड़े राज्यों को संभालने में भी योगदान दिया गया। उस जमाने में साधारणतया किसी राजा के विरुद्ध शिकायत लेकर न जाने की नीति अपनायी हुई थी। परन्तु जैसलमेर में श्री सागरमल गोपा की 'हत्या' का मामला इतना विकट था कि मैंने अंग्रेज रेजीडेण्ट से पत्र व्यवहार करना और

मिलना आवश्यक और उचित समझा। मेरा वह प्रयत्न किसी हद तक फलदायी भी हुआ।

जयपुर में प्राय: उसी समय एक रिफार्म्स कमेटी बन गयी थी जिसमें प्रजामण्डल के प्रतिनिधि भी शामिल हुए थे। कमेटी की सिफारिशों के अनुसार रिप्रेजेंटेटिव असेम्बली और लेजिस्लेटिव कौंसिल बनायी गयी। असेम्बली में प्रजामण्डल को बहुत अच्छा बहुमत मिला, कौंसिल में प्रजामण्डल को दूसरी पार्टियों से ज्यादा सीटें मिलीं, पर उसका अकेले का स्पष्ट बहुमत नहीं हो सका। बाद में प्रजामण्डल के एक प्रतिनिधि श्री देवीशंकर तिवाड़ी को मिनिस्टर भी बनाया गया।

जब गांधीजी जेल से छूटकर आये तो मैंने उनको सारा हाल सुनाया। वे बोले तुम (यानी जयपुर प्रजामंडल) ने ठीक किया और कुछ दूसरे लोगों ने जो कुछ किया वह ठीक नहीं था। जो कुछ तुमने जयपुर महाराजा से ले लिया उससे ज्यादा होने वाला भी क्या था? पंडित जवाहरलाल नेहरू पी०ई०एन० कान्फ्रेंस के लिए जयपुर आने वाले थे तब प्रजामण्डल और वनस्थली की ओर से भी उन्हें निमन्त्रित किया गया। उनकी ओर से प्रजामण्डल को पूरा समर्थन मिला। भाई हरिश्चन्द्र जी ने पंडितजी को एक स्लिप लिखदी कि यह आजाद मोर्चा आपको भेंट है। पंडितजी ने स्लिप मुझको दे दी और उसे मैंने अपनी जेब में रखली। इस प्रकार आपसी झगड़े की सब बातें क्रमश: भूल में पड़ गयीं।

तीनेक साल बाद लोक परिषद् भंग हो गयी और प्रजामण्डल कांग्रेस के ही अंग बन गये। प्रजामण्डल के जमाने की दो बातें मुझे कभी कभी याद आजाती हैं। मैं किसी सरकारी पार्टी या भोज में कभी नहीं जाता था। एक बार सर मिर्जा ने मुझे बहुत दबाया तब मैंने उनको लिख दिया कि मैं तो अपने हिसाब से फकीर आदमी हूं। आप कृपा करके मुझे फकीर ही बना रहने दें। जयपुर, जोधपुर बीकानेर आदि राज्यों के नामी प्रधान मन्त्रियों से काम पड़ने पर मैं अवश्य मिला करता था और कभी कभी वे सब एक तरफ और मैं अकेला एक तरफ! पर पार्टी वार्टी जैसे मामलों से मैं हमेशा अलग रहा। वर्तमान जयपुर महाराजा की मूर्ति लगाने की तजवीज हुई जिसके लिए कमेटी बनी। कमेटी में मेरे नाम के लिए बहुत आग्रह किया गया तो मैंने कह दिया कि मैं जीवित व्यक्ति की मूर्ति लगाना अशुभ समझता हूं। लम्बे अर्से के बाद मूर्ति वाले स्थान पर वर्तमान महाराजा के बजाय सवाई जयसिंहजी की मूर्ति लगी।

राजपूताना के कार्यकर्त्ताओं की इच्छा कांग्रेस का अधिवेशन राजपूताना में बुलाने की हुई। एक बड़ा सा शिष्टमंडल सरदार पटेल के पास देहरादून पहुंचा। सरदार बड़ी देर तक सबकी बातें सुनते रहे। मैं खुद तो चुप ही रहा। आखिर में

सरदार ने मेरी तरफ देखकर कहा तुम कांग्रेस का अधिवेशन जयपुर में कर सकते हो ? मैंने कह दिया आप चाहेंगे तो हो जायगा। सरदार बोले—जाओ करो, राजेन्द्र बाबू से और बात कर लेना। कांग्रेस का अधिवेशन जयपुर शहर में हुआ जिसे चारों ओर उसके पहले हुए अधिवेशनों से ज्यादा शानदार समझा गया। अधिवेशन के लिए ५५ लाख का माल नकद या बतौर उधार आया। अधिवेशन में २६ लाख रुपया खर्च हुआ और १२॥ लाख की आमदनी। मैं मानता हुं कि आमदनी कम कराने में हमारे कुछ बड़े साथियों का भी कुछ न कुछ हाथ था। घाटे की पूर्त्ति में किसी ने हाथ बटाना नहीं चाहा। इतना बड़ा चंदा पब्लिक से करने के लिए मेरे पास समय नहीं था। आखिर वल्लभभाई की मदद से जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर के महाराजाओं से या राज्य सरकारों से चन्दा लेकर घाटे को पूरा करके कांग्रेस अधिवेशन का हिसाब साफ कर दिया गया।

देश का संविधान बनाने के लिए कांस्टीट्यूएण्ट असेम्बली बनी। उसमें जयपुर राज्य के तीन प्रतिनिधि गये। तीन में मैं भी एक था। पर असेम्बली के काम में मुझसे विशेष रस नहीं लिया जा सका। मेरी ताकत तो जयपुर राज्य के जोड़-तोड़ में ही लगती रही। श्री देवीशंकरजी तिवाड़ी के अलावा एक और मिनिस्टर लेने की बात आयी तो प्रजामंडल की ओर से श्री दौलतमलजी भंडारी का नाम दे दिया गया। मुझे लगता है कि यह बात मेरे कुछ साथियों को पसन्द नहीं आयी। शायद उनमें से कोई खुद मिनिस्टर होना चाहता होगा। बाद में जिसे मैसूर मॉडल कहने लगे थे उसके अनुसार जयपुर राज्य में मंत्रिमंडल बनाया गया। यानी एक दीवान, बाकी एक मुख्य मंत्री तथा दूसरे कुछ मंत्री। उस समय जयपुर राज्य में सर वी० टी० कृष्णमाचारी प्राइम-मिनिस्टर थे। कुछ ऐसा सोचा गया कि सर वी० टी० जैसे दीवान के मुकाबले में किसी मजबूत आदमी को मुख्य मंत्री बनना चाहिए। ऐसी हालत में जयपुर का मुख्यमंत्री बनने का भार मुझ पर आ गया। मेरे साथ प्रजामंडल के तीन साथी मिनिस्टर हुए—श्री देवीशंकरजी तिवाड़ी व श्री दौलतमलजी भंडारी तो थे ही, श्री टीकारामजी पालीवाल को तीसरा मिनिस्टर लिया गया। दीवान सर वी० टी० और हम चारों के अलावा दो मिनिस्टर ठाकुर कुशलसिंहजी गीजगढ़ और रावल अमरसिंहजी अजयराजपुरा जागीरदारों की ओर से भी लिए गये, क्योंकि लेजिस्लेटिव कौंसिल में उनके सदस्यों की संख्या काफी थी।

जयपुर के मंत्रिमंडल में पोर्टफोलियों का बंटवारा हुआ तब मैंने फायनेंस अपने पास रखा। उस साल जयपुर राज्य का ३ करोड़ १८ लाख का बजट था। मैंने सर वी० टी० कृष्णमाचारी के ऊपर होकर क्षण भर में तय किया कि बजट कम से कम ४ करोड़ का होगा। आमदनी वाले विभागों के अफसरों को बुलाकर मैंने उनकी पांती कर दी कि इतनी-इतनी आमदनी आप लोगों को ज्यादा देनी होगी, और वह भी लगान या टैक्स बढाये विना। वैसा ही हो गया। राज्य के काम काज में हिन्दी को स्थान देने के लिए यथाशक्य प्रयत्न मैंने किया। मैंने खुद ने किसी भी फाइल पर एक बार भी एक भी

'नोट' अंग्रेजी में नहीं लिखा। हमारे कुछ पुराने साथियों ने कुछ आन्दोलन-सा किया, जिसके फलस्वरूप मंत्रिमंडल ने कुछ साथियों को 'डिटेन' करने का फैसला कर लिया, सो बाद में मुझे लगा कि नहीं करना चाहिए था।

जयपुर के मंत्रिमंडल को एक साल भी नहीं हुआ था कि विशाल संयुक्त राजस्थान बनने की बात सामने आ गयी। पहले अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली को मिलाकर 'मत्स्य राज्य' बन चुका था। फिर जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, जैसलमेर, सिरोही को छोड़कर 'छोटा राजस्थान' बना था, कोटा की प्रमुखता में। उसका काम चालू होता उससे पहले ही उदयपुर की प्रमुखता में दूसरा (पहले वाले से बड़ा पर बाद वाले से छोटा) राजस्थान बन गया। अन्त में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर जैसलमेर, व सिरोही के शामिल होने से बड़ा राजस्थान बन गया। अजमेर को बाद में शामिल किया गया और माउंट आबू भी राजस्थान को बाद में ही मिला। जयपुर महाराजा को राजप्रमुख और उदयपुर महाराणा को महाराजप्रमुख बनाना तय हुआ। जयपुर महाराजा को राजप्रमुख बनाने के लिए मेरे अलावा श्री गोकुलभाई भट्ट, श्री जयनारायणजी व्यास व श्री माणिक्यलालजी वर्मा की लिखित राय शामिल थी। एक दिन सरदार पटेल के यहां हम चारों को बुलाया गया। पहले अकेले गोकुलभाई भीतर गये, फिर वर्माजी और व्यासजी और सबसे बाद में मुझे बुलाया गया। सरदार ने कहा—इन लोगों की राय आपको मुख्य मंत्री बनाने की है। मैंने पूछा—आप की राय क्या है। वे बोले मेरी राय तो है ही। तब मैंने 'ठीक है' कह दिया। मैंने किसी भी समय किसी के पास भी मुख्य मंत्री बनने की कोशिश नहीं की थी। हम चारों के बीच यह सोचा गया था कि गोकुलभाई और वर्माजी संगठन को संभालें और व्यासजी और मैं मंत्रिमंडल में जाएं। सरदार ने मेरे साथियों को विदा होते समय आगाह किया था कि देखो आपकी सबकी राय से यह काम हुआ है, अब आपस में झगड़ा नहीं करना। परन्तु दुर्भाग्य से झगड़ा तो उसी दिन से शुरू हो गया। कई लोगों को मेरा मुख्यमंत्री बनना पसन्द नहीं आया। जैसे तैसे प्रदेश कांग्रेस ने अपनी दिल्ली की बैठक में मुझे 'मुख्यमंत्री' पद के लिए चुना, और बड़ी ही मुश्किल से किशनगढ़ की बैठक में तय हुआ कि मैं मुख्यमंत्री की शपथ ले सकता हूँ।

संयुक्त राजस्थान के उद्घाटन के लिए सरदार पटेल २६ मार्च, १६४६ को जयपुर आने वाले थे पर उनका प्लेन समय पर जयपुर एरोड्रोम नहीं पहुंचा। हम लोग बहुत चिन्तित हो गये। श्री वी० पी० मेनन ने मुझसे कहा—सरदार की मृत्यु ही हो गयी हो, तो क्या होगा? फिर उन्होंने ही कहा कि मैं अभी दिल्ली जाकर जवाहरलालजी को ले आउंगा और राजस्थान का उद्घाटन समय पर करा दूंगा। आखिर रात के बारह बजे सरदार 'राम बाग़ पैलेस' में पहुंचे। पहुंचते ही उन्होंने मुझे फोन करके रामबाग बुलाया और मिलते ही मुझसे पूछा—क्या हुआ किशनगढ़ में? मैंने सब हाल बता कर कह दिया

कि मेरा शपथ लेना तय हो गया। फिर उन्होंने पूछा—खिलाफ तय हो जाता प्रदेश कांग्रेस कमेटी में, तो तुम क्या करते ? मैंने कहा आप जो कुछ कहते, सो मैं करता ! इससे सरदार खुश हुए। ३० मार्च, १९४९ को जयपुर महाराजा को राजप्रमुख की शपथ सरदार पटल ने तथा कोटा महाराव को उपराजप्रमुख की और मुझे मुख्यमंत्री की की शपथ राजप्रमुख ने दिलादी। उस दिन के 'दरवार' में वैठने का इन्तजांम सर वी० टी० कृष्णामाचारी ने करवाया था जिसमें शायद कुछ कमी रह गयी होगी, जिससे वर्मा जी आदि वहुत नाराज हुए। वे उठकर चले गये। उस दिन के वाद से झगड़ा वढ़ता ही गया। मैंने व्यासजी, वर्माजी और जयपुर के कुछ साथियों के आग्रह करने पर भी कुछ भाइयों को मंत्रिमंडल में नहीं लिया। मेरे कुछ कहने–सुनने पर भी खुद व्यासजी ने मंत्रिमंडल में आना मंजूर नहीं किया। प्रदेश कांग्रेस कमेटी की ओर से मंत्रिमंडल का वाकायदा विरोध शुरू होगया। सरदार ने मुझसे कह दिया कि आप तो अपना काम किये जाओ। जव प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने मेरे विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके सरदार को तार दिया तो उन्होंने वड़ा सख्त तार जवाव में दिया कि प्रदेश कांग्रेस कमेटी को इस काम में दखल देने का कोई अधिकार नहीं है। कांग्रेस वर्किंग कमेटी का निर्णय भी यही हुआ। गोकुलभाई प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष थे। उन्होंने त्यागपत्र दे दिया तव भी उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास किया गया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने व्यासजी को पत्र लिखा कि उनकी ओर से जो कुछ किया जा रहा है सो अनुचित और हानिकारक है।

मैं खुद तो राजस्थान के एकीकरण के अत्यन्त कठिन काम में लग गया। कांग्रेस संगठन की ओर ध्यान देने का मुझे मौका ही नहीं मिला। मेरी विशेष रूचि भी नहीं थी उस काम में। मेरी आन्तरिक मनः स्थिति यह थी कि राजस्थान के एकीकरण का काम मेरे सुपुर्द किया गया है, सो मुझे कर डालना है, यानी एकीकरण के वाद मुझे सत्ता में रहना ही नहीं है। मैंने किसी की रू–रियायत नहीं की, न किसी को अपने पक्ष में करने की कोशिश की। जयपुर के जमाने में मेरे एक साथी–मिनिस्टर की ओर से हमारे कुछ कार्यकर्ताओं को तकावी देने की तजवीज मेरे सामने आयी तो मैंने उसे नामंजूर कर दी। अमुक–अमुक को मंत्री न वनाने का कुसूर मैंने किया ही था, फिर ऐसे कुसूर भी मुझसे होते ही रहे। मेरे अप्रिय हो जाने में देर नहीं लगी। दो एक दूसरे वड़े राज्यों में राजस्थान वनने से पहले कर्मचारियों के अफसरों के वेतन मनचाही रीति से वढ़ा दिये गये। मैंने ऐसा नहीं किया, इसलिए जयपुर के अफसर घाटे में रह गये। राजधानी जयपुर में न रहे, ऐसी कोशिश दूसरों की ओर से थी। मुझे जयपुर के हक में कोशिश करने की जरूरत नहीं मालूम हुई। आखिर राजधानी जयपुर में ही रखना तय हो गया। जयपुर महाराजा राजप्रमुख, जयपुर का ही मुख्यमंत्री और जयपुर ही राजधानी यह सव कुछ कई लोगों को हजम होने वाला नहीं था।

७ अप्रेल, १९४९को जयपुर के श्री सिद्धराज जी ढड्ढा, उदयपुर के श्री प्रेमनारायण जी माथुर और श्री भूरेलाल बया और बीकानेर के श्री रघुवरदयाल जी गोयल ने मंत्री पद की शपथ ली। बाद में कोटा के श्री वेदपाल जी त्यागी तथा जोधपुर के श्री फूलचन्द जी बाफणा, श्री नरसिंह जी कछवाहा और श्री रावराजा हणूतसिंह जी ने शपथ ली। सब से आखिर में 'मत्स्य राज्य' के भंग होने पर उसके मुख्य मंत्री श्री शोभाराम जी ने शपथ ली। मुझ पर बड़ा दबाव डाला गया था कि मैं जोधपुर के दो दूसरे साथियों को, उदयपुर के कम से कम एक और साथी को, तथा जयपुर से भी एक और साथी को एवं बीकानेर के भी एक दूसरे साथी को मंत्रिमंडल में ले लूं। मैं थोड़ा बहुत भी ऐसा कुछ कर लेता, तो संभव है—कुछ समय तक झगड़ा स्थगित हो जाता। पर मेरा निश्चित मत था कि मंत्रियों की संख्या कम से कम हो। मैंने हिसाब लगाया तो जयपुर, जोधपुर और उदयपुर से दो-दो मंत्री, बीकानेर व कोटा से एक-एक और मत्स्य से एक इस प्रकार कुल ९ मंत्री काफी होंगे। साथ में यह जरूरी लगा कि एक गैर कांग्रेसी व्यक्ति को भी मंत्रिमंडल में लेना चाहिए। इससे आगे मैं संख्या बढाए जाता तो पता नहीं मुझे कहां जाकर रुकना पड़ता? दूसरे, मुझे बड़ा संदेह था कि अमुक-अमुक मंत्रिमंडल में आ जायेंगे तो मेरा काम करना मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि वे शायद भीतर आकर गड़बड़ करेंगे। मैंने सोचा कि उस हालत में मैं अपने किन्हीं सिद्धान्तों पर कायम नहीं रह सकूंगा। मेरे एक बड़े साथी के बारे में मुझसे जोर देकर सरदार ने कहा था कि उसे आप किसी भी हालत में मंत्रिमंडल में मत लेना। पर मैंने सरदार से कह दिया था कि ऐसे साथी को तो मुझे लेना ही चाहिए और लेना ही पड़ेगा। पर मेरे साथी ने अपने पूरे सहयोग का आश्वासन देते हुए मंत्रिमंडल में शामिल होने के लिए किये गये मेरे निवेदन को अस्वीकार दिया।

सच बात यह है कि मेरी समझ में ही नहीं आया था कि लोगों को अपना खुद का मंत्री बनना उन्हें इतना जरूरी मालूम हो सकता था। और अपने चाहे लोगों को मंत्री बनाने में तथा मेरे स्थान में अमुक को मुख्यमंत्री बनाने में कुछ साथी लोग अपना क्या लाभ सोच सकते थे। मेरे एक दूसरे बड़े साथी ने यह प्रस्ताव भी मेरे सामने रखा था कि मुख्यमंत्री भले ही मैं बना रहूं, पर राजधानी जयपुर के अलावा किसी दूसरे शहर में बनवा दूं। किसी समय साथियों की ओर से यह कोशिश भी हुई कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दूसरी जगह ले जाया जाय। हाईकोर्ट का जोधपुर में और उसकी एक बेंच जयपुर में रखा जाना तय हो गया। बाकी विभागों का बंटवारा मैंने राजस्थान के मुख्य मुख्य शहरों में जैसा हो सकता था कर दिया। आज मैं सोचने बैठूं या मुझसे कोई कहे कि मुझे ऐसा करना चाहिए था और वैसा नहीं, तो इसका कोई अर्थ नहीं। क्या करने से क्या होता, और क्या नहीं करने से क्या होता, सो सोचना भी बेकार है। परन्तु मैं यह जरूर महसूस करता हूं कि इस मामले में मेरा सोचना एक हद तक अव्यावहारिक था। व्यावहारिक राजनीति के तकाजे के अनुसार मुख्यमंत्री को कई एक

दावों का समाधान करना चाहिए था और उसे यह नहीं मान लेना चाहिए था कि किसी के मंत्री बनने न बनने का क्या महत्व है। जब सब काम नक्की हो गया और उसके बाद झगड़ा भी बढ़ गया तब तो मैं अपने स्वभाव के अनुसार झुककर कोई ऐसा वैसा लेने देने का सा समझौता नहीं कर सकता था। असल में, मुख्यमंत्री या मंत्री, कुछ भी बनना मेरी लाइन की बात नहीं थी। सर्वोत्तम बात तो यही होती कि मैं कुछ भी नहीं बनता, पर मैंने बनना मंजूर कर लिया—अमुक-अमुक परिस्थितियों में। स्वयं सरदार ने और मेरे तीन बड़े साथियों ने मुझसे कहा तो मेरा अस्वीकार करना बेमानी हो जाता। एक और बुरी बात हो गयी। सरदार को मेरे कुछ साथियों से बहुत ज्यादा चिढ़ हो गयी। उनके खिलाफ उन्हीं के राज्यों से शिकायतें भी सरदार के पास ज्यादा पहुँचीं। सरदार ने कुछ तहकीकात करवायी और उन्होंने अमुक-अमुक पर मुकदमा चलाने का हुक्म दे दिया। पता नहीं कि सरदार के हुक्म को मैं न मानता तो क्या होता? बहरहाल मुझे यह सूझा ही नहीं कि मुझे मुकदमे चलाने का विरोध करना चाहिए। जब कभी मुझसे किसी ने कुछ कहा तो मैंने कह दिया कि सरदार के मुकाबले में मैं क्या कर सकता हूं। कुछ साथियों ने बंबई पहुंच कर मेरे सामने सरदार से कहा तो उन्होंने कह दिया जिनकी जेब में बेजा पैसा गया उन्हें फल भोगना चाहिए। सरदार कड़े शासक थे। पर मुझे लगता है कि मुकदमे चलाने का फैसला करने से पहले उन्हें जितना सोच-विचार करना चाहिए था उतना सोच विचार शायद उन्होंने नहीं किया और मुझे भी जितना ध्यान इस तरफ देना चाहिए था, मैंने भी नहीं दिया। सरदार तो अब हैं नहीं, पर मुझे बड़ा भारी खेद इस बात का है कि मैंने दूसरे साथियों के खिलाफ मुकदमे चलाने का इल्जाम अपने ऊपर ख्वामखा आने दिया। बहरहाल मैं अब सोचता हूँ कि कि मुकदमें भले ही उनके हुक्म से चले हों, पर मेरा जिम्मा आये बिना कैसे रह सकता था, जबकि मुख्य मंत्री मैं था।

मुझ पर राजस्थान के एकीकरण की बड़ी भारी जिम्मेदारी थी। उसे निभाने के लिए तीन अनुभवी आई० सी० एस० आफिसर मुझे केन्द्र से दिये गये थे। मेरे पास उन आफिसरों का अच्छा उपयोग हुआ। मेरी राय में वे भले आदमी थे और योग्य भी। मेरी बात को वे मानते थे, तो मैं उनकी बात को मानता था। मेरा उनसे कभी झगड़ा नहीं हुआ, मुझे काम करना था, झगड़ा नहीं। केवल एक बार मैंने आग्रह किया कि वित्त-सचिव बाहर से नहीं आयेगा, अमुक स्थानीय व्यक्ति को मैं वित्त-सचिव बनाऊंगा। वह झगड़ा दिल्ली तक पहुंचा। बड़ी बदमज़गी भी हुई, पर उसमें हार जीत नहीं हुई। सरदार तक कोई बात जाती तो वे अवश्य ही मेरा समर्थन करते जैसा कि एक बार हुआ। सरदार एक तरफ बैठे थे, और मैं दूसरी तरफ श्री वी० पी० मेनन से बात कर रहा था। सवाल यह था कि मैं अपने एक कांग्रेसी साथी को पब्लिक सर्विस कमीशन का सदस्य बना सकता हूं या नहीं। मेनन इसका विरोध कर रहे थे। सरदार के कान तक हमारी आवाज पहुंची तो उन्होंने दूर से ही पूछा—"क्या बात है?" मैंने

कहा—"यह मेनन अमुक को पब्लिक सर्विस कमीशन का सदस्य बनाने का विरोध कर रहा है।" सरदार बोले—"नहीं कुछ नहीं, आप तो बनाओ।" जयपुर महाराजा राज्य के खजाने के कुछ सोने को अपना बता रहे थे। सरदार ने मुझसे एक दिन पूछा—"सोना किसका है?" मैंने कहा—"पहले तो राजा का ही रहा होगा, पर बाद में राज्य के बजट में दर्ज हो गया, सो अब सोना राज्य का मानना पड़ेगा?" सरदार ने पूछा—"आपकी राय क्या है?" मैंने कहा—"मेरी राय में सोना महाराजा को देना चाहिए।" सरदार बोले—"क्यों?" मैंने कहा—"इतना बड़ा राज्य किसी का आपने ले लिया है सो इतना सा (एक करोड़ के करीब का) सोना उसे दे देने में क्या संकोच करना चाहिए। हमें इन लोगों को खुश रखना चाहिए।" सरदार तुरन्त बोले—"ठीक है, आपकी राय ठीक है।"

अपने मुख्य मंत्रित्व काल में मेरा एक जरूरी काम तो रहा—नये राज्य की वित्तीय स्थिति को संभाले रखने का और दूसरा काम था शान्ति व्यवस्था बनाये रखने का, बाकी मेरा असली काम एकीकरण का था ही। कम से कम एक बड़े राज्य से बजट में बड़ा भारी घाटा मेरे सामने आया था। मुझे उतने ही पांव पसारने थे जितनी लाम्बी मेरी सौड़ थी। फिर भी मैंने राजस्थान भर में थोड़ा बहुत भला काम कर डालने के लिए एक साल की एक करोड़ की योजना बनायी और तीस लाख रुपया निकाला किसानों हरिजनों आदि की सेवा के लिए जो मैंने अलग-अलग मंडल बना कर उनके सुपुर्द कर दिया। एकीकरण का काम बड़ा भारी था, वह आफिसरों की मदद के बिना नहीं हो सकता था। मुझे या मंत्रिमंडल के अन्य सदस्यों को कोई खास बात कहनी होती तो हम लोग जरूर जोर देकर कह देते, पर मामूली तौर से हम लोगों ने इस व्यक्ति या उस व्यक्ति का पक्ष नहीं लिया, न किसी के विरुद्ध कुछ कहा।

एकीकरण के काम में व्यस्त रहते हुए, और पास में खास रुपया पैसा न होते हुए (राजस्थान का कुल बजट १६ करोड़ का था) हम लोग दूसरा काम ज्यादा नहीं कर सकते थे। मुझे राजधानी में बंधा रहना पड़ता था, और ज्यादा दौरे भी नहीं कर सकता था और टी. ए. डी. ए. तो मुझे लेना ही नहीं था। बिना जरूरत के दौरों पर जाने का मुझे शौक भी नहीं था। जयपुर में रहते हुए मैं हर खास व आम से मिलना अपना कर्तव्य समझता था। मेरे खेजड़े के रास्ते वाले मकान का द्वार सब के लिए हर रोज सवेरे कम से कम दो घंटों के लिए खुला रहता था। जितने व्यक्ति समय तय करके या ज्यादातर समय तय किये बिना मिलने को आते उन सबसे मैं जरूर ही मिलता था और उनकी बात सुनकर कार्यवाही करवाता था। मेरे ज़माने की तीन दर्दनाक घटनाओं की मुझे बहुत याद आती है। सुवाना (भीलवाड़ा) में गोलीकाण्ड हो गया और झालाना स्टेशन के पास शरणार्थियों पर गोली चल गयी। मुझे दोनों घटनाओं का पता बहुत देर से चला पर मैं मुख्यमंत्री था तो जिम्मेदारी से नहीं बच सकता था। तीसरे, करौली के इलाके में देहातियों ने पुलिस पर भयंकर और घातक हमला कर दिया था। उसकी

खबर भी कांड होने के कई दिन बाद जयपुर पहुंची, ऐसा ही दुर्गम स्थान था वह और समाचार भेजने के जरिये भी उस समय ऐसे ही थे। मैं भ्रष्टाचार का जानी दुश्मन था। मेरे शासनकाल में मजाल क्या कि कोई कुछ भी गोलमान कर ले। ऐसा मेरा अहद था। एक आफीसर योग्य थे, वे मेरे पुराने व्यवहारी भी थे। उन्होंने अनुचित रीति से बहुत ज्यादा वेतन ले लिया, अपने ही हस्ताक्षरों से। मैंने उसी समय आफीसर को बुलाकर कह दिया कि आप त्यागपत्र दे दें और जो रुपया ज्यादा ले लिया है सो वापस कर दें। इसी में आपकी खैर है और इसी में न सिर्फ आपकी बल्कि मेरी भी आबरू की रक्षा है। आफीसर मान गये। मेरा तो यही मामूली तरीका था। जयपुर के जमाने में सीकर, खेतड़ी व उणियारा के विशेष अधिकार वापिस लेने का सवाल आया। मैंने तीनों को बुलवाया और बहुत थोड़ी देर में उन्हें समझा दिया कि अपने को यह काम करना है, इसके बिना किये पार नहीं पड़ेगी। एक बहुत राजी से, दूसरे तटस्थ भाव से और तीसरे कुछ हुज्जत के बाद मेरी बात मान गये और सवाल तय हो गया। मैं जुए के बहुत खिलाफ था। किसी बाहर की कम्पनी ने खेल तमाशे के नाम पर भीतर ही भीतर जुआ शुरू कर दिया। मालूम पड़ते ही मैं खुद मौके पर चला गया। जब मैंने देखा कि बात सही है तो उसी समय कम्पनी के हक में दिये गये आदेश को खारिज कर दिया और कम्पनी को बाहर निकलवा दिया। इसके मुकाबिले में आजकल बहुत से राज्यों की ओर से लाटरी निकाली जाकर जनता को जुए की ट्रेनिंग दी जा रही है। शराब और जुआ दो ही तो जरिये हैं सरकार के पास ज्यादा आमदनी करने के। शायद एक जरिया और हो सकता है, पर वह इस कलम से लिखने लायक नहीं है।

मैं राज्य को स्वावलम्बी बनाने के पक्ष में बहुत था। मुझे किसी भी काम के लिए केन्द्र के सामने हाथ फैलाना पसन्द नहीं था। एक बार केन्द्रीय खाद्य मंत्री श्री के० एम० मुन्शी जयपुर आये। वे बोले आपको कितना अनाज केन्द्र से चाहिए। मैंने अपने खाद्य मंत्री से बात करके उसी समय कह दिया बल्कि लिखकर दे दिया कि राजस्थान को केन्द्र से कुछ नहीं चाहिए, हम अपना इन्तजाम कर लेंगे। इसी प्रकार मैं दिल्ली से आयी हुई उन बातों को नहीं मानता था जो मुझे ठीक नहीं लगती थी। प्रधानमंत्री पंडित नेहरू को मैंने एक से अधिक मौकों पर लिख दिया कि आपके पास जो बात पहुंची है, वह गलत है और मैंने जो काम किया है सो बहुत ठीक किया है। किसानों के खिलाफ और जागीरदारों के हक में हो, जागीरदारों के खिलाफ और किसानों के हक में हो, हिन्दू मुसलमानों के बीच की कोई बात हो, मैं हमेशा निर्भयता के साथ निष्पक्ष फैसला करता था। "जनतन्त्र" के जमाने में सारे सार्वजनिक क्षेत्र में और खासकर राजनीतिक क्षेत्र में काम करने वालों को काम करने की अपेक्षा यह दिखाने की ज्यादा फिक्र रहती है कि अमुक काम उनके हाथ से हो रहा है। इससे प्रायः झूठ, दंभ और एक खास तरह का भ्रष्टाचार आये बिना नहीं रहता, ऐसी मेरी मान्यता रही है। मुझको इस तरीके से हमेशा ग्लानि रही।

मैं १९५० के दिसम्बर तक इस भारी भरकम बोझे को उठाये रहा। १५ दिसम्बर १९५० को सरदार स्वर्ग सिधार गये। दिसम्बर की समाप्ति के आस पास पंडित जवाहरलाल नेहरू से मेरी मुलाकात हुई। प्रदेश कांग्रेस में मेरा बहुमत नहीं था, इस आधार पर मैंने त्याग पत्र दे दिया और ५ जनवरी, १९५१ को मैं मुक्त हो गया। एक बार पहले भी मैंने वैसे ही बतौर खेल के, अपना त्याग पत्र लिखकर दो एक मित्रों के हाथ में रख दिया था। मजा यह रहा कि बाद में मेरे उस 'त्यागपत्र' का सचमुच उपयोग करने की चेष्टा की गयी। अस्तु। मुख्यमन्त्री प्रकरण के प्रसंग में मुझे सबमें कटु अथवा मजेदार अनुभव यह हुआ कि मेरे जीवनकुटीर के कुछ पक्के साथियों ने मिनिस्टर बनना चाहने वाले एक तथा अमुक को मिनिस्टर बनवाना चाहने वाले दूसरे साथी से मिलकर मेरा योजनाबद्ध विरोध किया। मैं अपनी खूबी इस सिलसिले में यह मानता हूं कि मैं उन साथियों को आर्थिक सहायता देता भी रहा था, पर उनको मनाने के लिए कुछ भी नहीं किया, बल्कि जैसे उन्होंने मेरा विरोध किया वैसे ही मैंने उनकी उपेक्षा की। बाद में मेरा मन गंदी राजनीति से हट गया। फिर भी १९५२ के चुनाव के बाद कुछ कांग्रेसी साथी और बहुत से दूसरे लोग सहयोग मांगने को मेरे पास आये। उन लोगों के प्रयत्न से भीतर ही भीतर मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अच्छा बहुमत हो गया। पर अन्ततोगत्वा उन लोगों का वह आयोजन पार नहीं पड़ा। जब जनतापार्टी बनने को हुई थी, तब उसमें भी अपना नाम देने की मेरी इच्छा नहीं थी। एक दिन मजबूरी में नाम तो मैंने दे दिया, पर मेरा मन उस काम में नहीं था। मुझे पद का लोभ नहीं था, तब भी मेरे मन में विकार पैदा हुआ कि जिन्होंने मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया, उन्हें मुझको मजा चखाना चाहिए। यह बात मेरे लायक बिल्कुल नहीं थी। फिर एक बार व्यासजी के पक्ष के लोग मेरे पास इकट्ठे होकर आये। एक योजना बनी, पर वह आखिर पार नहीं पड़ी। दोनों ही बार कांग्रेसी साथियों की ओर से धोखाधड़ी हुई। मेरा मन ऐसी राजनीति से बिल्कुल हट चुका था, पर मैंने लालबहादुरजी शास्त्री और ढेबर भाई के दबाव में आकर बड़ी भारी लगती की १९५७ में लोक सभा के लिए चुनाव में खड़ा होना मंजूर करके। हालांकि मैंने कह दिया था कि मुझसे लोक सभा का काम नहीं होगा। फिर भी यह जिम्मा तो मेरा ही रहा कि मैं बेकार में लोक सभा का सदस्य हो गया और मैंने अपनी सदस्यता के कर्त्तव्य का पालन नहीं किया।

मेरा जन्मजात स्वभाव चुपचाप सेवा करने का रहा है। उसी भावना से मैं प्रजामण्डल के संगठन में लगा था। मन्त्री या मुख्यमन्त्री बनने की कल्पना मेरी नहीं थी, किसी चुनाव में खड़े होने का विचार तक मुझे अच्छा नहीं लगता था। फिर भी मैं मुख्यमंत्री बना और लोकसभा के चुनाव में भी खड़ा हुआ। यह सब होनहार की बात थी। पद छोड़ने के बाद मुझे शान्ति के साथ अपना काम करना चाहिए था सो तो मैंने किया सही, पर साथ ही मेरे मन में विकार आया जिसके वशीभूत होकर मैं दूसरों के कहने से दो बार गड़बड़ में पड़ गया। जयपुर प्रजामंडल का काम मेरे हाथ से

हुआ, फिर राजपूताना रीजनल कौंसिल का हुआ, अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के जनरल सेक्रेटरी की हैसियत से जो कुछ थोड़ा सा काम हुआ इस सबसे मुझे पूर्ण संतोष है। कान्स्टीट्यूएण्ट असेम्बली में मैं चला गया पर वहां भी मुझसे कोई खास काम नहीं बन पाया। जब मैं जयपुर का मुख्यमन्त्री था, वह कोई खास बात नहीं थी, पर उस जमाने में कांग्रेस का अधिवेशन हो गया जो स्वराज्य के बाद पहला अधिवेशन था और किसी देशी राज्य में होने वाला भी पहला अधिवेशन था। उस शानदार अधिवेशन की बहुतों को याद है और उसके खट्टे-मीठे अनुभव मुझे खुद को बहुत याद हैं। १९४८ की जनवरी में गांधीजी की हत्या हो चुकी थी और मुझे बड़ा डर लग रहा था कि मेरे घर आये हुए पंडितजी और सरदार के साथ कुछ न हो जाय इसलिए मुझे खास ध्यान रखना पड़ा, उन दोनों की सुरक्षा की सुव्यवस्था का। मैं उन्हें जीप में आड़े-टेढ़े रास्तों में लिए फिरता था, अपने आई० जी० पी० आदि को अपने साथ और आगे पीछे रख कर। मेरे कई साथियों ने कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव में उस तरह से काम नहीं किया था जिस तरह से सरदार चाहते थे और मैं खुद भी चाहता था। मैं इस खेद को लिए हुए चलता फिरता था। कांग्रेस की व्यवस्था मुख्यतः मेरे दो प्रिय पात्रों ने—सिद्धराज ढड्ढा और दौलतमल भंडारी ने की। स्वागत समिति के अध्यक्ष तो गोकुलभाई थे ही। राजस्थान के मुख्यमंत्री की हैसियत से मेरा एकीकरण का काम शान्ति के साथ हो गया, ऐसा मानता हूं। मेरी नीति थी कि राजाओं ने अपने राज्य छोड़ दिये तो उनके साथ मिठास का व्यवहार होना चाहिए, छोटी-छोटी बातों में उनको नाराज या उदास नहीं करना चाहिए। किसी भी राजा या रानी ने मुझसे कुछ चाहा तो मैंने तत्परता के साथ वह कर दिया। मैं व्यापारियों और उद्योगपतियों की मदद भी करना चाहता था, क्योंकि मेरा विश्वास माल के उत्पादन में था। पर वह मौका मुझे ज्यादा नहीं मिला। अपने उचित आत्म-सन्तोष के साथ जिसे मैंने नम्र भाव से अनुभव किया मुझे अफसोस रहा उन झगड़े टंटों का जो खड़े हो ही गये और जिनमें केवल दूसरों का नहीं बल्कि ज्यादा नहीं तो कुछ न कुछ मेरा खुद का जिम्मा भी मैं मानता हूं। मेरा आग्रह था कि सरदार के पास मैंने मंजूर किया तो राजस्थान के एकीकरण के काम को मैं अच्छी तरह से करके छोड़ूंगा। यह न होता तो मैं मुख्यमंत्री बनता ही नहीं और बन गया था तो क्षणभर में छोड़कर अलग हो जाता। और यदि मैं यह महसूस नहीं करता कि साथियों ने मेरे साथ अत्यन्त अयोग्य व्यवहार किया है तो मेरे मन में विकार नहीं आता और मेरे बारे में किसी को भी निकम्मे भ्रम में पड़ने का मौका नहीं मिलता। मुझे लालबहादुरजी शास्त्री या किसी और के भी दबाव में आकर लोकसभा में नहीं जाना चाहिए था। इस प्रकार मुझे कुछ दुर्भाग्यपूर्ण बातों का सख्त अफसोस है तो मुझे अपने काम से आन्तरिक सन्तोष भी है।

१९५९–६० की दशी में अपनी तमाम मुश्किलों में मेरा यह विचार बराबर चलता रहा था कि मुझे देश और समाज के लिए वनस्थली तथा लोकवाणी के अलावा

कुछ न कुछ और भी काम करना चाहिए। सर्वोदय कार्यक्रम की ओर मेरा विशेष झुकाव रहा है। मैं बिहार की पद यात्रा में विनोबाजी के पास पहुंचा और उनसे मेरी लगातार दो हफ्ते तक प्रतिदिन एक घण्टा बातचीत हुई। मैंने विनोबाजी से अनेक प्रश्न पूछे, जिनके बहुत अच्छे उत्तर उन्होंने मुझको दिये। मैंने अपने आपको विनोबाजी के विचारों से बहुत ज्यादा सहमत पाया। बाद में एक बार मैंने विनोबाजी से कहा कि आपके विचारों के अनुसार मैं राजस्थान के एक जिले का काम हाथ में लूं तो उसके आधारभूत सिद्धान्त और उसकी मर्यादाएं मुझे आप लिखवा दें, ताकि मैं एक आदर्श उपस्थित करने की कोशिश कर सकूं। विनोबाजी ने कहा कि यह सब कुछ आप ही लिख लें। उनके इस उत्तर से मुझे सन्तोष नहीं हुआ और मैंने उनसे कह दिया कि मैं खुद ही लिख सकूंगा तो आपसे क्यों बात करूंगा। सर्वोदय विचार से एक बड़ी हद तक मेरी भीतरी प्रीति और उसके लिए मेरी वास्तविक प्रतीति होते हुए भी मुझे यह लगता रहा कि जो काम हो सो प्रभावकारी होना चाहिए, उसका जन-मानस पर क्रांतिकारी प्रभाव होना चाहिए। जिस काम में यह न हो सके या न होता दिखायी दे तो फिर मुझ जैसा प्रत्यक्षवादी उस काम में अपने आपको कैसे झोंक दे। जो सवाल मेरे सामने उस समय था सो आज भी है। केवल पुण्यकृत्य के रूप में ही कुछ करना हो तो वह तो वनस्थली के द्वारा भी हो रहा है।

बात तो इस प्रकरण के दो एक साल बाद की है, पर लगता है मुझे उसका उल्लेख यहीं कर देना चाहिए। १९५२ के बाद मैंने जवाहरलालजी से राजनीति की बात तो कभी नहीं की पर कभी वनस्थली के काम के लिए और कभी बिना काम भी मैं उनसे मिलता रहा था। मैं अकसर दिल्ली में उनके साथ नाश्ता किया करता था। वे बहुत अस्वस्थ हो गये तब भी उनका अपने हाथ से परोसने का और बड़े प्यार से खिलाने का शौक कायम रहा। मैं उन्हें कई प्रकार के गुलाब के फूल दिया करता था और वे बहुत खुश होते थे। जवाहरलालजी की कई बातें मुझे नहीं जंचती थीं, तब भी उनके साथ मेरी मुहब्बत जो पहली बार मिलते ही हो गयी थी आखिर तक बनी रही। हां—तो वह घटना यह है। मैं उनको देखने के विचार से दिल्ली गया हुआ था और उनके मकान के बहुत पास साउथ ऐवेन्यू में ठहरा हुआ था। जिस दिन उन्होंने संसार से विदा ली उसी दिन सवेरे चार-पांच बजे के समय मुझे सपना आया। जवाहरलालजी मुझे जगाते हुए कह रहे थे—हीरालालजी उठो, शादी में चलें। मैंने सपने में ही कह दिया—पंडितजी आप ही जाओ शादी में, मुझे नहीं जाना है इस समय। सपना आया और उसी समय चला गया। पर दोपहर होते-होते श्याम ने मुझसे कहा कि पंडित

जी—मैंने समझ लिया—चले गये। शादी का सपना बड़े अशुभ का—मृत्यु तक का—सूचक माना जाता है। मैं पंडितजी को या उनके शव के जुलूस को देखने के लिए बाहर नहीं निकला और आज तक भी तीन मूर्ति भवन में या शांतिवन में जाने की मेरी ताकत नही हुई, जैसे बिड़ला हाउस के गांधीजी वाले उस कमरे में या उनके गोली लगने की जगह या उनकी समाधि पर जाने की मेरी ताकत कभी नहीं हुई। मुझे अपनी इस कमजोरी का कुछ घमंड सा है।

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र

(जन्म से आज तक)

बचपन में मुझे कई अजीब बातें सुनने को मिलीं। रामजी कहीं ऊपर आकाश में रहते हैं। वर्षा होती है तो रामजी पेशाब करते हैं। टिड्डियों जैसे जानवर उड़ते हैं, वे रामजी की गायें हैं—इत्यादि। मंदिर में जो कैसी भी मूर्तियां रखी हुई हैं, वे सब भगवान की हैं। भगवान के अलग-अलग नाम भी हैं। सूर्य भगवान का रथ है। रथ में घोड़े हैं, सारथि लंगड़ा है। हनुमानजी एक दिन सूर्य को निगल गये, सो जगत में सर्वत्र अंधेरा हो गया। चांद समुद्र में से पैदा हुआ है। चांद में जो धब्बे दिखायी देते हैं, वह असल में समुद्र का लगा हुआ कीचड़ होगा। यह भी सुना कि राहु-केतु चांद और सूरज को ग्रस लेते हैं और मनुष्य के पुण्य करने से उन बेचारों को मुक्ति मिलती है। कई तारों के नाम सुने थे। धूजी (ध्रुव) की पहिचान मुझे हो गयी थी, उससे उत्तर दिशा मालूम हो जाती थी। सातरसा (सप्तऋषि) जान लिये गये थे, हिरण्यां (मृगशीर्ष) और किरच्यां (कृत्तिका) भी। सवेरे उगने वाले तारे से समय जान लिया जाता था। तारा लग जाता, तब उन दिनों स्त्रियों का आना-जाना बन्द हो जाता था। उनको यहां से वहां जाने की 'गली' की जरूरत होती थी। मनुष्य के भाग्य का चन्द्रमा हुआ करता था। उसके शनि की दशा लग जाया करती थी। बहुत से विश्वास थे, बहुत से अनुमान थे। आज भी विश्वासों और अनुमानों की कमी नहीं मानी जा सकती।

रामायण की कथा-कहानी सुनते थे। राधाकृष्ण की रासलीला की बात भी सुनते थे। रामलीला और रासलीला देखी जाती थी। रामायण का संक्षेप भी सुना था, जो बाद में जाने गये "एतद्धि रामायणम्" से भी बहुत छोटा था और जिसका इतना ही आशय था—एक था राम, दूसरा था रावण—वह उसकी स्त्री को उड़ा ले गया और उसने उसके गांव को जला दिया। मैं अपनी दादी को मन्दिर में जाती हुई देखता था, थोड़ा अनाज वह ले जाती थी, दर्शन करके निकल कर मन्दिर के बाहर जरासी बैठा करती थी, ग्यारस (एकादशी) और मितीपात (व्यतिपात) को आटे आदि का सीधा दिया जाता था। ब्राह्मण लोग अनाज और आटा मांगने को आया करते थे। बहुत से व्रत उपवास किये जाते थे। व्रत के साथ एक न एक कथा लगी हुई थी। शाम को आरती हुआ करती, उसमें झालर बजाने को बच्चे बड़े शौक से जाया करते। जल झूलनी ग्यारस को ठाकुरजी की रेवाड़ी निकला करती थी। श्राद्धपक्ष में प्रतिदिन किसी न किसी का श्राद्ध होता था। नवरात्र की स्थापना होती थी। "जोत" की जाती थी। किसी मामूली से आदमी में तेजाजी का भाव आया करता था और तेजाजी बहुत सी बातें आगे-पीछे की बताते थे और सांप का जहर चूसकर उगल देते थे। एक दिन एक ब्रह्मचारीजी ने तेजाजी का भाव आते हुए आदमी के दो-एक थप्पड़ लगा दिये और उसका भाव उतर गया। एक खटीक झाड़ा लगाया करता था। वह बिच्छू उतारता था, भूतनी को निकाल देता था। कोई चीज खो जाती तो स्त्रियां बैठकर 'कलश' करती और चोर का पता लगा लेतीं। गुफा में रहने वाले एक साधु मर गये, तो बाद में एक ब्राह्मण में 'बाबाजी' आने लगे और वे 'पर्चे' देने लगे। बाबाजी दूर-दूर की चीजों को अपने स्थान पर से ही बता दिया करते थे। आर्य-समाज वाले मूर्ति का जोरदार खण्डन करते थे—वे गाते थे "पत्थर पूजे हर मिलें तो हम लें पूज पहार, इससे तो चक्की भली, पीस खाय संसार।" वे एक ईश्वर को मानते थे और उसे सर्व शक्तिमान, सर्व व्यापक बताते थे। तत्व पांच थे और शरीर उन पांचों तत्वों का बना हुआ था। कोई मर जाता तब गरुड़पुराण की कथा हुआ करती, उसमें पापियों को दी जाने वाली यातनाओं का वर्णन होता था। मृतक की सद्गति के लिए अनाज आदि और गाय का दान दिया जाता था, और गाय के जरिये से दूसरे लोक में वैतरणी पार कर ली जाती थी। इन पुरानी बातों में से आज भी कई एक सुनी जाती हैं। करोड़ों लोग ऐसी ही सैंकड़ों बातों को बड़ी श्रद्धा से मानते हुए देखे जाते हैं। मुझे ऐसा आभास होता है कि मनुष्य की भावना और श्रद्धा में जो शक्ति होती है उसी शक्ति के प्रभाव से कोई न कोई अच्छा या बुरा परिणाम सामने आ जाता होगा। विद्यार्थि काल में हम लोग किसी साथी का पीछा करते हुए उससे कहते कि अभी हम तुम्हारे बुखार चढ़ा देंगे। फिर उससे एक के बाद दूसरा साथी कहता—देखो तुम्हारा चेहरा लाल हो गया, इत्यादि। इस प्रकार सचमुच बुखार चढाया जा सकता हो तो वह उतारा भी जा सकता होगा।

कुछ लोग चांद तक पहुंच गये हैं और वहां से कुछ न कुछ ले आये हैं, जिसकी सूक्ष्म परीक्षा की गयी है। हमारी बाई ने एक दिन आग्रह के साथ कहा कि कोई चांद तक पहुंच ही नहीं सकता, यह सब झूठी बात है। काव्य साहित्य के प्रेमियों को चिन्ता हो गयी, उनके चांद का स्वरूप ही विगड़ गया। दमयन्ती ने सखी से कहा था 'समय पर अक्ल नहीं सूझती है। अमावस्या आयी और चली गयी। अबकी बार आवे तब ध्यान रखना, अमावस्या रांड को पकड़ कर रख लेंगे ताकि फिर चन्द्रमा कभी दिखायी ही नहीं देगा।' भगवान को नाना रूपों में देखा गया है। सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में बहुत सी बातें प्रचलित हैं। हमारे यहां एक संवत् चलता है, वह १ अरब ९७ करोड़ और कुछ है। नये लोग कहते हैं कि सभ्यता ज्यादा से ज्यादा ५-७ हजार साल पुरानी है। अपने लोग बहुत सारे कम से कम १४ लोक मानते आये हैं—आज अनुमान करते हुए सोचा जा रहा है कि पृथ्वी के अलावा और किसी ग्रह पर भी पानी, हरियाली, जीव-जन्तु हैं या नहीं। चांद पर प्राणी नहीं है और भी कुछ ग्रहों में प्राणी नहीं बताये जाते। किसी ग्रह पर प्राणी होगा भी तो कैसा होगा? पृथ्वी पर जैसा मनुष्य है वैसा ही दूसरे ग्रहों पर प्राणी होगा क्या? तारों-सितारों की गिनती नहीं। बेचारा चांद तो पृथ्वी से दो लाख चालीस हजार मील ही दूर है। परम प्रतापी सूर्य पृथ्वी से नौ करोड़ तीस लाख मील की दूरी पर है, जिसकी रोशनी को पृथ्वी तक पहुंचाने में आठेक मिनट लगते हैं। और ऐसे ग्रह भी बताये जाते हैं जिनकी रोशनी अनादिकाल से चली आ रही है, पर वह आज तक पृथ्वी तक नहीं पहुंच पायी। यह हद हो गयी, कितना बड़ा वह ग्रह होगा और हमसे कितनी दूर होगा।

मैं विद्यार्थिकाल में सोचा करता, इसके बाद वह उसके बाद वह, उसके बाद वह। आखिर वाले "वह" के बाद में क्या? इतने साल पहले वह उतने साल पहले वह और उससे पहले क्या? और सबसे बाद में क्या? वही सोच विचार आज भी चलता है। अनादि है, अनन्त है, असीम है, अज्ञेय है। अनन्त में से बहुत से बहुत जाना गया वह भी बहुत कम ही माना जाएगा। इसलिए मैंने तो कह दिया "अनन्त में जान किताक पावें, क्यों जानके भार वृथा बढ़ावें।" मैं तो आश्चर्य और विस्मय के साथ देखता हूं यह सब क्या है, कहां से आ गया, कैसे आ गया, क्यों आ गया, कब तक रहेगा, कभी प्रलय होगा तो वह कैसे क्या होगा? और प्रलय के बाद में क्या? यह सारा खेल उत्पत्ति का और प्रलय का होता ही रहा होगा क्या? जरा से बीज से कितना विशाल वट-वृक्ष हो जाता है। बड़ के बीज से बड़ ही होगा और पीपल के बीज से पीपल ही। मनुष्य के शुक्र से मनुष्य ही होगा और घोड़े के शुक्र से घोड़ा ही। प्रत्येक की संतान ठीक उस जैसी ही होती है। और शुक्र की एक बूंद में करोड़ों न जाने क्या हैं—मनुष्य आदि को बनाने के लिए उन करोड़ों में से वह एक ही काफी है। पहले पुत्रादि रामजी के दिए से मिलते थे अब ट्यूब के जरिये से भी मिल सकते हैं। मैं तो खुद न जाने कब से सोचता आ रहा हूं कि मैं पैदा ही क्यों हुआ, पैदा नहीं होता तो क्या होता और

अब न रहूँ तो क्या गजब हो जाए । किसी के भी न रहने से 'सांमर, सूनी नहीं हो जाती । कहते हैं मोक्ष हो जाती है तो संसार के आवागमन का बंधन छूट जाता है । उस आनन्द की बराबरी संसार का कोई सुख नहीं कर सकता । मनुष्य बहुत चीजें बनाने लग गया, पर किसी भी पेड़ का जो छोटा सा पत्ता होता है, ठीक वैसा का वैसा पत्ता तो शायद नहीं बनाया जा सका है । मोर के पंख को देखिए, क्या ठीक वैसी चीज (यानी केवल शक्ल नहीं) को मनुष्य बना सकता है ? और मोर तो अपने आप ही बनता है ।

मैं सोचता हूं पहले–पहल आग को पहचाना गया, वह बहुत बड़ी बात हुई । मिट्टी का बर्तन बना दिया गया सो बड़ी बात हुई, पहिए का आविष्कार होगया सो बहुत बड़ी बात हुई । कैसे पता चला होगा कि गेहूं, चावल, जौ खाने की चीजें हैं और धतूरा खाने से आदमी मर जाता है । मेरे तो यही समझ में नहीं आता कि एक जरा सी दवा दी जाती है, वह किस तरह से उसी जगह जाकर असर करती है, जिस जगह कोई बीमारी है । यही बड़े आश्चर्य की बात है कि शरीर में एक-एक अंग को किस तरह से जंचाकर रखा हुआ है और कैसे कैसे विभिन्न अंग अपने-अपने काम मशीन की तरह करते रहते हैं । आजकल असली की जगह नकली अंग लगा दिया जाता है और इस सिलसिले में खोज जारी ही है । यह शरीर की मशीन क्या सचमुच किसी की बनायी हुई है ? जिस मनुष्य ने इतनी सारी चीजें बना डाली वह क्या कभी अपने जैसा दूसरा मनुष्य भी बना देगा, वैसा ही जीता जागता, चलता–फिरता, बकता–बोलता, खाता–पीता, हंसता–रोता, जीता–मरता ! इस समय तो मुझे लगता है कि ठीक वैसा का वैसा तो एक बाल ही नहीं बन पाता तो पूरा मनुष्य कैसे बन जायगा ?

इन बिखरी बातों का, इन अनेक सवालों का, कोई खास मतलब नहीं है । मतलब तो है, मनुष्य का जन्म हो गया है तो उसके जब तक और जैसे भी हो सके, सुखपूर्वक बने रहने से । जो जितना जानता है, उतना जानता है, समझता है उतना समझता है, मानता है उतना मानता है । जो मुझ जैसे अत्यन्त अल्पज्ञ हैं—वे कभी आश्चर्य कर सकते हैं, कभी मजा ले सकते हैं कि यह भी खूब तमाशा है । प्रत्यक्ष के मुकाबले में बहुत ज्यादा परोक्ष है, ज्ञात के मुकाबले में बहुत ज्यादा अज्ञात है, मनुष्य में ज्ञेय की मीमांसा भी है और अज्ञेय की भी । मुझे खुद को तो अज्ञेय ही अज्ञेय बहुत ज्यादा लग रहा है । अज्ञेय का केवल कुछ अनुमान किया जा सकता है और अनुमान का क्या पता ? वह सही निकले या ग़लत । इसलिए अपने–राम तो प्रत्यक्ष पर, यानी जो एक स्थूल रूप में दिखायी दे सके, उस पर टिकना चाहते हैं । मैं पैदा हो गया, यह पक्की बात है, मैं इस समय जिन्दा हूं, यह पक्की बात है, मुझे अच्छे बुरे का भेद कुछ न कुछ मालूम है, यह पक्की बात है । कैसी भी स्थिति बन जाय, लोग अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा कहेंगे ही सही, भले ही वे अच्छे को बिल्कुल न मानें और बुरे को उठाकर सिर पर

रख लें। मनुष्य की श्रद्धा किसी न किसी चीज़ पर, बात पर, जरूर जाकर ठहरती है। जिसकी जिस में श्रद्धा हो, वह उसी को माने। मुझे सारी शक्ति श्रद्धा में दिखायी देती है। जिसकी जैसी श्रद्धा वैसा ही वह। अणु–परमाणु की बात मैं बिलकुल नहीं समझता हूं, पर इतना मुझे लगता है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म होता जाएगा तो उसकी शक्ति बढ़ती जाएगी। सूक्ष्म होते होते:इतना निराकार–जैसा हो जाय कि बडी से बड़ी खुर्दबीन से भी वह दिखलायी ही नहीं दे, वही तो आत्मा नहीं होता होगा जो सर्व शक्तिमान माना जाता है। आत्मा के स्वरूप आदि का सही अन्दाजा लगाना तो मुझे मुश्किल मालूम पड़ता है पर प्राणी में प्राणशक्ति अवश्य होती दीखती है जो शरीर के लिए मोटर का काम करती मालूम होती है। सम्भवत: वही शक्ति जीवन और मृत्यु का आधार हो सकती है। वही प्राण शक्ति श्रद्धा का रूप ले लेती होगी ? ऐसा हो तो फिर भीतर की श्रद्धा के मुकाबले में बाहर की किसी भी बात की क्या कीमत हो सकती है। श्रद्धा चलती ट्रेन को रोक ले, पहाड़ को इधर से उधर ले जाकर रख दे। मेस्मेरिज्म को बहुत आगे बढ़ाया जा सकता है, ऐसी मेरी कल्पना होती है। मैं मानता हूं कि सवाल भले ही कितने ही खड़े होते रहें, उनसे मनुष्य को परेशान होने की जरूरत नहीं है। सवाल का यह जवाब लगे या वह जवाब लगे, जवाब लगे या न लगे, अपने को निश्चिंत और मस्त रहना चाहिए। जो जिसे मानने लायक लगता है वह उसे माने, जो जिसे करने लायक लगता है वह उसे करे। आपको जो अच्छा लगता है, वह दूसरों को बुरा लगेगा तो लगता रहेगा। परन्तु यदि आपकी कोई हरकत दूसरे की शान्ति में बाधा पहुंचायेगी तो वह आपकी खुद की अशान्ति का कारण बन जाएगी। मुझे तो अपनी सुनी हुई एक बात बहुत याद आती रहती है—एक थे पण्डित जी, दूसरा था कोई गंवार। दोनों प्रति दिन नदी पार करके एक मूर्ति की पूजा करने को जाया करते थे। एक की पूजा बहुत बाकायदा होती, दूसरे की पूजा यही होती कि वह मूर्ति के दो चार जूते मार देता। एक दिन आ गयी नदी में बाढ़—पण्डित जी की हिम्मत नदी पार करने की नहीं हुई, वे इस किनारे पर धरे ही रह गये। पर गंवार, जान की परवाह छोड़ कर नदी में कूद पड़ा और उसने उस पार जा कर मूर्ति की पूजा की। मैं मानता हूं कि गंवार ज्यादा अच्छा और पक्का भक्त था और पण्डित जी की भक्ति नकली थी, बेकार थी। भक्ति का कोई फल मिलना होगा तो पण्डित जी को कुछ नही मिलेगा और गंवार को सब कुछ मिल जाएगा।

इस प्रकार मेरे लिए प्रत्यक्षजीवन सिद्धान्त यह बन गया कि जो मानो सो ईमान से मानो, वही ईमान से बोलो और वही ईमान से करो, पर इतना ध्यान जरूर रखो कि आपकी कोई कार्यवाही किसी दूसरे के लिए बाधक-रूप तो नहीं बन जाती है—"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।" "Do to others as you would that they should do to you," इस बात का ध्यान न रखने से ही सब तकलीफें पैदा होती हैं। मेरे नजदीक यही सत्य है, यही अहिंसा है और मेरे लिए मेरा वह सत्कार्य ही भगवान् है, जिसे मैं श्रद्धापूर्वक करता हूं। इस सत्य को छोड़िए, आपस का संघर्ष

पैदा हो जाएगा; इस अहिंसा को छोड़िए—झगड़े खड़े हो जायेंगे। आप ऊपर-ऊपर से सच्चे दिखायी देंगे—अपने आपको सच्चा दिखाने की कोशिश करेंगे तो उससे काम नहीं चलेगा। आप छानकर पानी पी लेंगे, पर मनुष्य को ठगकर उसका नुक़सान कर देंगे तो आपकी अहिंसा निकम्मी चीज़ होगी। जो अपना फर्ज हो, उसके पालन में अपने को ज़ोर आना चाहिए और ज़ोर आने में मज़ा लेना चाहिए। दुनियां उसे तकलीफ़ माना करे, आपको उसमें मज़ा आता है तो आपके लिए वह तकलीफ़ नहीं होगी। जो चीज आपको बहुत प्रिय लगती होगी, जिसके बिना आप बेचैन हो जाते होंगे, उसे छोड़िए तो त्याग हो जाएगा। बाक़ी आपकी जिस चीज़ में रूचि नहीं है उसे छोड़ने में क्या त्याग होगा ? आप तकलीफ़ उठाकर दूसरे को आराम पहुंचाते हों तो वह सेवा होगी। पर आप अपने मज़े से रहते होंगे और दूसरों की असुविधाओं को मिटाने की केवल बात करते होंगे तो समझिए कि आप अपने आप को धोखा दे रहे हैं और दुनिया को भुलावे में रखने की कोशिश कर रहे हैं।

संसार का सिलसिला तेजी से बदलता जा रहा है। पुराने मूल्यों का ठिकाना नहीं है, नये मूल्य सामने आ नहीं रहे हैं। अपने वर्णाश्रम की व्यवस्था थी। अब न कहीं वर्ण है, न आश्रम। केवल सांप की लकीर पीटी जा रही है। ब्राह्मण होता तो उसका कोई धर्म भी था, आज नाम से आप ब्राह्मण बने रहें और जो काम आप करते हैं उनमें से ब्राह्मण का काम एक नहीं। ऐसे ही आश्रम भी नहीं हैं। मनुष्य शुरू से आखिर तक प्रायः एक ही तरह एक ही आश्रम में रहता है। जाति के विरोध में बहुत कहा जाता है, पर जाति को न चाहने वाले लोग जाति के नाम से ज्यादा लाभ उठाने की कोशिश करते देखे जाते हैं। वर्गहीन समाज की बात होती है, पर मुझे लगता है कि वर्गों में विभाजित होना मनुष्य का स्वभाव है। एक प्रकार के वर्ग नहीं होंगे, दूसरे प्रकार के वर्ग हो जायेंगे। चालू जाति को तोड़कर विवाह करने वालों की अपनी एक अलग जाति बन जाएगी। सब पन्थों को छोड़कर अलग होने वालों का अलग पन्थ बन जाएगा और पन्थों की सूची में एक पन्थ और जुड़ जाएगा। ऐसी हालत में सुधार की बात करना और सुधार का दावा करना बहुत बेकार सा लगता है मुझे। राजनीति में जो पार्टियां बन जाती हैं वे भी एक प्रकार से जातियों का रूप ले लेती हैं और पार्टी में जो ग्रूप बन जाते हैं, उन्हें उपजाति समझ लीजिए।

आजकल स्त्रियों के सवाल ने बड़ा जोर पकड़ रखा है। मुझे खुद को सावित्री की कल्पना बहुत अच्छी लगती है। पर अकेली सावित्री क्या कर सकती है ? सावित्री की निष्ठा जैसी निष्ठा सत्यवान की भी होनी चाहिए। ऐसा नहीं होगा तो अकेली सावित्री बनी हुई नही रह सकेगी। स्त्री की सबसे बड़ी बात यह है कि उसे माता बनना पड़ता है, माता बने बिना उसका खुद का काम नहीं चलता दिखायी देता। उसकी वह प्रवृत्ति है। और माता बनती है तो उसका खास जिम्मा हो जाता है। जो माता बच्चे

है। वह हक प्रायः वेजा होता है। वेजा हक़ को पाने के लिए वह वेजा तरीके अपनाता है। ऐसे छोटे समाज का कोई एक नेता, उनमें कुछ वड़ा सा या चालाक सा होता है सो वन जाता है और उन नेताओं का नेता वह हो जाता है जो उनसे ज्यादा आकार का है। ये नेता लोग एक दूसरे के सावक वन जाते हैं, फिर समाज का साधारण आदमी तो कहीं का कहीं पड़ा रहा जाता है। नेता लोगों में झगड़ा होता है, तव पार्टियां वन जाती हैं, और पार्टियों में भेद होता है तव उनमें पहले ग्रूप वनते हैं, फिर वे ग्रूप ही छोटी छोटी अलग पार्टियों का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार की दलगत राजनीति में कोई किसी का सखा नहीं होता, सव अपने अपने स्वार्थ की लगन रखते हैं, जिनका स्वार्थ मिलता हुआ-सा होता है वे आपस में मिल जाते हैं और उसी स्वार्थ में होने वाले भेद के कारण वे विखर जाते हैं। ऐसी राजनीति में कोई कुछ भी करके सफलता प्राप्त करले, उसका अयोग्य-आचार भूल में पड़ जाएगा और लोग उसकी तारीफ़ करने लगेंगे। वेशर्मी की हद राजनीति में देखी जा सकती है।

अपने हीन-स्वार्थ की खातिर मनुष्य भ्रष्टाचार में रत होता है। किसान अपने माल में कुछ न कुछ मिला देने की कोशिश करता है दूधवाला अपने दूध में पानी मिला देता है, दवा वाला दवा में कुछ न कुछ मिला देता हैं, व्यापारी तो अपने माल को एक न एक प्रकार की मिलावट से वढ़ाना चाहता ही है। जिनके पास कोई माल नहीं है, वे किसी का वेजा तरीके से काम वनाकर वेजा तरीके से ही अपने लिए कुछ न कुछ ले लेते हैं। इस तरह समाज में भ्रष्टाचार का वोलवाला हो जाता है। आजकल हर किसी को यह कहते सुना जा सकता है कि सरकार में रिश्वत दिये विना कागज एक से दूसरी टेवल पर नहीं सरकता है। जिसका कार्य भ्रष्टाचार को रोकने का है, वही भ्रष्टाचारी वन जाय, तव क्या हो ? समाज में भय न हो, दंड न हो, तो कितनी सुन्दर स्थिति वन जाय। पर दंड के विना काम चले नहीं, भय के विना प्रीति नहीं। दंड-व्यवस्था असमर्थ उस समय हो जाती है, जव दंड देने का अधिकारी अपने आपको दंड का पात्र वना लेता है।

स्त्री को और पुरुप को, दोनों को अपनी अपनी मर्यादा में रहना चाहिए। स्त्री की रचना प्रकृति से ही एक प्रकार की है और पुरुप की रचना दूसरे प्रकार की। इस कारण दोनों की मर्यादा में कुछ न कुछ भेद का होना अनिवार्य-सा दिखायी देने लगता है। स्त्री धर्म की, शील की, रक्षिका होती है। यदि वह शील के मार्ग को छोड़ देगी तो फिर समाज में अव्यवस्था फैल जाएगी। आजादी वही अच्छी होती है जो धर्म की मर्यादा में वंधी हुई हो।

मैंने इस अध्याय में वहुत कुछ लिख मारा है। मुझे खुद को यह सव कुछ विखरा हुआ-सा लगता है। पर इसी में से वह नवनीत निकल आता है जिसे मैं प्रत्यक्ष

जीवनशास्त्र के नाम से पुकारना पसन्द करता हूं। उस शास्त्र का सार नीचे लिखे अनुसार समझा जा सकता है :—

(१) संसार में मनुष्य के लिए "ज्ञात" बहुत कम है और अज्ञात बेहद ज्यादा। बहुत कुछ ज्ञेय है, पर अज्ञेय की कोई सीमा ही नहीं है। जिन्हें मंथन में रस हो, वे मन्थन करते रहें। जो कुछ नतीजा आयेगा उससे मानव का कुछ न कुछ लाभ हो ही सकता है, जैसा कि अब तक होता आया है।

(२) मुझ जैसे साधारण मनुष्यों का काम इतने बड़े मन्थन में पड़ना नहीं है। मैं कैसे पैदा हो गया, कहां से पैदा हो गया, ज़िन्दा क्यों हूं, मर क्यों नहीं जाता, मरने के बाद का क्या होगा, मोक्ष के माने क्या ? इन सवालों का सही जवाब शायद ही कभी कोई दे पाया हो। मुझे तो बहुत कुछ अनुमान ही लगता है। इसलिए जिसे जैसा मानना हो मानता रहे, अपना मन्तव्य दूसरों पर लादने का अधिकार किसी को नहीं हो सकता।

(३) जिसका ऊपर संकेत है उस प्रकार की बहस में पड़े बिना मनुष्य को सहज-भाव से अच्छे बुरे की पहिचान है और उसे आमतौर से मालूम है कि अच्छा करने योग्य है और बुरा न करने योग्य। तब फिर जो अपना माना हुआ अच्छा है, उसे प्रत्येक को करना चाहिए और बुरे को छोड़ना चाहिए। मनुष्य को अपने अच्छे का आग्रह होना चाहिए पर अपने अच्छे को किसी पर आरोपित करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

(४) प्रत्येक मनुष्य को अच्छा करते हुए सन्तोष का अनुभव करना चाहिए। जो अपने बस की बात नहीं है, उसकी चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं। आखिर एक ही मनुष्य के जिम्मे संसार का सारा काम थोड़े ही है ? कोई मनुष्य अपना काम ठीक नहीं करता है, उसे समझा सकें तो हम समझायें, बाकी तो फिर वह अपनी जाने, हम चिन्ता क्यों करें।

(५) कमी—दोष-सब में हैं। तो फिर कमी देखनी हो तो मनुष्य अपनी कमी को ही क्यों न देखें ? दोष को ठीक करना हो तो अपने दोष को ही हम क्यों न ठीक करें ? हम दूसरे की कमी को कम देखें, अपनी को ज्यादा। दूसरों की कमियों से जो नुक़सान हो सकता है, उससे अपने आपको बचाकर रखें और उनके गुणों से जो मिल सकता हो, सो लाभ हम उठावें। अपनी कमी को देखने—पहिचानने वाले और उस कमी को दूर करने वाले मनुष्य को एक प्रकार का बल मिलेगा। दूसरों की कमियों को खोजने वाला मनुष्य निराशावादी हो जाएगा—बलहीन हो जाएगा।

(६) मनुष्य को भूत का विचार आये बिना नहीं रहेगा, वह भविष्य को सोचे बिना भी नहीं रहेगा। भूत में से वर्तमान निकलता है, वर्तमान में से भविष्य बनेगा।

पर मुझे लगता है कि जो कुछ है, सो वर्तमान ही है। भूत तो जैसा था, हो ही चुका। उसमें से वर्तमान के लिए जो लाभ लेना हो, सो ले लिया जाय। बाकी भविष्य अपनी फिक्र कर लेगा। जहां तक हमारा ताल्लुक है, हम वर्तमान को अच्छा से अच्छा बनावें जो भविष्य के लिए अच्छी बुनियाद का काम दे सके। वर्तमान में लीन रहने वाला-मनुष्य बहुत मज़े में रह सकता है। जिसका पता ही नहीं है, उसकी चिन्ता करना बुद्धिमानी का काम नहीं है।

(७) संसार में क्रिया-प्रतिक्रिया होती आयी है, सो मुझे सनातन धर्म जैसा लगता है। यह सब कुछ शाश्वत-जैसा लगता है मुझे। ऐसा हो, तब भी, मनुष्य 'जो होता है सो ही होगा' कहकर अपने कर्त्तव्य से विमुख या उदासीन नहीं हो सकता। मनुष्य को अपने करने का ज़रूर करना चाहिए, बाकी सब अपने आप ठीक होता रहेगा।

(८) अपने देश में व्याप्त बुराइयों से घबड़ाने की कोई ज़रूरत नहीं है। न यही उचित हो सकता है कि बुराई को व्यापक मानकर हम भी उसके वशीभूत हो जाएं। हमें सारा संसार बुरा दिखायी दे, तब भी हमें तो अपनी अच्छाई पर क़ायम रहना ही चाहिए।

इस प्रकरण को समाप्त करते-करते मैं सोचने लगा हूं कि इस सब में नयी बात क्या है? मेरा जवाब यही है कि नया कुछ नहीं हो सकता खासकर मुझ जैसों के पास। पर मामूली से मामूली आदमी को भी चाहिए कि वह अपने अनुभव को, अनुभूति को प्रकट करे। उस अनुभूति से स्वयं लाभ उठावें और दूसरे लोग उससे कुछ ग्रहण करने योग्य मानेंगे तो वे भी ग्रहण कर ही लेंगे। मनुष्य-जीवन में आत्मसन्तोष का होना आवश्यक है, आत्म सन्तोष से शान्ति मिलती है, शान्ति से सुख और अन्ततोगत्वा सुख ही मनुष्य-जीवन का परमध्येय हो सकता है।

अध्याय ५

उपसंहार

मेरे पास जो कुछ पाया गया उसका सार पिछले पृष्ठों में प्रकट हो चुका है। मेरे जीवन की घटनाएं, उन पर की गयी मेरी टीका, मेरी पद्य रचना, मेरे लेख व भाषण, मेरा पत्र व्यवहार, मेरी डायरियों के अंश इत्यादि सब कुछ का निचोड़ प्रस्तुत कर देने के बाद मेरे पास कुछ विशेष बचा हुआ नहीं है। फिर भी बाद में जो कुछ मेरे ध्यान में आया है उसमें से थोड़ा बहुत मैं यहां पेश कर देता हूं।

मेरा स्वभाव संकोची रहा है। इसलिए मैं आसानी से अपनी बात दूसरों से नहीं कह सकता। परन्तु जब कहने लगता हूं तो सब कुछ कह डालता हूं, लिखने लगता हूं तो भी कुछ बाक़ी नहीं रखता। जैसा सोचा कह दिया, लिख दिया। दूसरों के ऊपर उसका कैसा क्या प्रभाव पड़ा उससे मुझे बहुत मतलब नहीं रहा करता। इसी को मैं प्रत्यक्ष-जीवन कहता हूं।

मैं अपने आपको देखता हूं तो मुझे लगता है कि मैं एक विचित्र सा प्राणी हूं। मुझे खाने-पहनने का शौक नहीं रहा—दूसरों को जो स्वादिष्ट लगे वह मेरे लिए अस्वादिष्ट है। मैं अपने आप से तो कपड़ा पहिनना चाहूं ही नहीं, जब पहिनना पड़ता है तब

पहिन लेता हूं। मैंने बालों में कभी कंघा नहीं लगाया, पैंट पाजामा कभी नहीं पहिना, मोजे भी सख्त ज़रूरत के समय पहिने होंगे।

मेरी कहीं जाकर कुछ देखने की इच्छा नहीं होती। मैं मेला देखने को शायद ही कभी कहीं गया हूंगा। मेरे इन्तजाम में लगायी हुई प्रदर्शनियों को भी मैंने कभी ध्यान से नहीं देखा। नाटक, रामलीला, रासलीला आदि भूलचूक से भले ही देखने में आ गये होंगे। सिनेमा घर में मैं देखने की निगाह से कभी नहीं गया। मैं सिनेमा को संखिया बताया करता हूं। चाय, कॉफी, कोकाकोला जैसी चीजों के स्वाद का भी मुझे पता नहीं है।

मुझे आकाश को देखते रहने का शौक है, चांद-तारे मुझे अच्छे लगते हैं। मैं पहाड़ों और जंगलों का शौक़ीन हूं। समुद्र और नदी देखने के लिए मैं सदैव लालायित रहता हूं। पशु-पक्षियों में मुझे सिंह, घोड़ा, बैल, मोर और काला नाग अच्छे लगते हैं। फूलों में गुलाब, मोगरा, चम्पा, चमेली और जुही को मैं प्यार करता हूं। आम, सेब, अमरूद, सन्तरा, मतीरा मेरे खास फल हैं। तीर्थों में जाने और मंदिरों को देखने की मेरी बड़ी इच्छा रहती है।

मेरी गिनती "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" में की जा सकती है। किसी भी कारुणिक प्रसंग को पढ़ते ही, देखते ही मेरे आंसू आ जाते हैं। शान्ताबाई का नाम लेते ही मैं सिसकने लगता हूं। इसके मुकाबले में मैं माकूल कारण से, ना काफी कारणों से और बिना कारण भी, बहुत बेमौके भी और किसी पर भी बुरी तरह चिढ़ जाता हूं, जिसमें कई बार नाटक का सा दृश्य सामने आ जाता है, सारा वातावरण क्षुब्ध हो जाता है।

मैं अपने आपको प्रेमी मनुष्य मानता हूं किसी के साथ भी मेरा अतिमोह हो सकता है। उस व्यक्ति का मैं ज़रूरत से ज्यादा विश्वास कर लेता हूं और उससे धोखा खा सकता हूं। इस हिसाब से मैं अपने आपको चतुर के बजाय मूर्ख ज्यादा मानता हूं। कामकाज के सिलसिले में बात करने की कुशलता तो शायद मेरे पास समझी जा सकती है।

मुझे भूख शायद ही कभी सताती होगी। पानी पीना तो मैं प्रायः रोजाना ही भूल जाता हूं। परन्तु मेरी धुन होती है तो मैं तमाम पानी पी जाऊं, जितना सामने आ जाये वह सारा खा जाऊं। ज्यादा खा जाने से मेरे शायद ही कभी गड़बड़ हुई होगी। सबसे अच्छी चीज़ मेरे लिए गर्मागर्म जौ की रोटी है जिसे मैं बिना घी के, बिना साग-सब्जी के बड़े शौक से खा जाता हूं। पर रोटी में घी दिया जाए तो वह भरपूर होना चाहिए।

कई मामूली काम हैं जिन्हें मैं नहीं कर सकता। हाथ का छोटा सा रूमाल मैं नहीं धो सकता, बाजार से कोई चीज मैं नहीं खरीद सकता, कुली को पैसे नहीं दे सकता, तांगे-टैक्सी वाले को हिसाब करके पैसे नहीं चुका सकता। होटल में नहीं ठहर सकता, वहां का भोजन नहीं कर सकता इत्यादि। ऐसा कोई भी काम कभी करना पड़ता है तो मुझे बड़ा जोर आता है।

वैसे तो मैं रात के एक दो बजे उठकर दूसरे दिन शाम या रात तक लगातार काम कर सकता हूं, बिना खाये-पिये और बीच में उठे बिना। पर मैं इतना जबरदस्त आलसी भी हूं कि उठकर पानी नहीं पी सकता। मैं बीमार होता ही कम हूं, पर कभी थोड़ा बहुत भी बीमार हो जाता हूं तो अपने पास-पड़ौस वालों को नचा-नचा कर छोड़ता हूं, क्योंकि मुझे बचपन में बेहद लाड़-प्यार मिला हुआ है।

कुल मिलाकर मेरी दिनचर्या बहुत कुछ बंधी हुई सी है। सवेरे बहुत जल्दी उठना घूमना, मालिश, व्यायाम, स्नान, नित्यविधि, डायरी लिखना सब कुछ नियम से होता है। मुझे नींद आने में मिनट भी नहीं लगते हैं और मैं किसी भी समय पर जागकर उठ सकता हूं, बिना अलार्म के। मैंने कभी-कभी १६-१६ घंटे पूजा में लगा दिये।

आम सभा के भाषण में और बात चीत में भी कुछ तीखा-सा, सख्त-सा बोल जाने का मेरा स्वभाव है। मैं जो बोलता हूं सहज स्वभाव से बोलता हूं। अलवर राज्य के जावली के ठाकुर ने मेरे नाम खुली चिट्ठी छपवायी। मैंने बड़ी भारी आम सभा में उसका जवाब दिया—ठाकरां, कुछ भी हो, आपकी या जावली तो जावैली। झिलाय के ठाकुर गोर्धनसिंह जी के कामदार का नाम छीतरमल था। मैंने सभा में कहा—मनै दीखे छै गोर्धन नै छीतरी पोखरजी पूंचार मानसी ! इसके अलावा अपने आप में ज्यादा लीन रहता हूं, अपने पास-पड़ौस की तरफ कई बार मेरा ध्यान नहीं जाता। इस पर से कोई मुझ में मेरी पांती से ज्यादा अहं समझ ले तो ताज्जुब नहीं।

मैं अपनी बात का बहुत पक्का हूं। मैंने कह दिया, सो कह दिया, अपने कहै हुए को पूरा करने के लिए मैं कुछ उठा नहीं रखता। मैं अपने समय की पाबन्दी कमाल की मानता हूं। यह हो ही नहीं सकता कि मुझे देर हो जाय, किसी बड़ी भारी बेबसी के मौक़े को छोड़कर। यदि मुझे देर होने का अन्देशा हो जाय तो में सम्बन्धित लोगों को पहले से सूचना देने की पूरी कोशिश करता हूं।

अपने शरीर से मैं किसी की कुछ भी सेवा नहीं कर सकता, अपनी खुद की ही नहीं कर सकता। पर दूसरों की मदद करने का मेरा स्वभाव हैं। कोई भी मुझसे कुछ मांग ले तो मुझे देना ही चाहिए, कोई काम मुझे बता दे तो मुझे करना ही चाहिए। मुझसे नहीं होने वाला काम होगा तो मैं उसी क्षण इनकार दूंगा। मुझ पर किये हुए उपकार का बदला चुकाने का यत्न करना मैं बहुत आवश्यक मानता हूं।

जीवन में मैं दो वार ऐसा वीमार हुआ कि मरमर कर वचा। एक वीमारी १९१२–१३ में आयी होगी, दूसरी १९१८ में। १९१८ से १९४३ तक के २५ सालों में मुझे एक वार भी ज्वर नहीं आया। मेरे थर्मामीटर पहले पहल उस समय लगा जव मैं १९३९ में लांम्वा कैंप में भूख हड़ताल पर था। पहला इंजेक्शन १९४३ में लगा। मेरा ऐनिमा लगाने का काम कभी नहीं पड़ा। सामान्यतया मेरा स्वास्थ्य वहुत अच्छा है। पर कुछ भी शिकायत मुझे होती है तो मैं तुरन्त उपाय करता हूं।

संख्याओं से मेरा वहुत लगाव है। उनमें पांच की संख्या वहुत खास है। मैं अपने मन में तिथि का हिसाव भी लगाता रहा हू। कितने वजकर कितने मिनट पर मैं अपने काम को शुरू करूं सो भी मेरे ध्यान में रहता है। वाकी मैं दूसरों के निकाले हुए मुहूर्त को, दिशाशूल आदि को नहीं मानता हूं। मेरे लिए अपने मन का मुहूर्त सवसे अच्छा होता है। पर विवाहादि में मैं अपने विचार को लागू नहीं करता।

ज्योतिष की वातें कुछ होती होंगी, हस्तरेखा की भी होती होंगी। मैं इन चीजों का खंडन नहीं करता, पर मेरी खुद की श्रद्धा नहीं है—हालांकि मैं अपनी जन्मकुंडली को (जिनमें ७–८ ग्रह एक ही स्थान पर आये हुए हैं) और अपने हाथ और पांव की रेखाओं को गर्व के साथ देखा और दिखाया करता हूं। साधुओं और पंडितों के प्रति मेरा सहज आदर भाव है। मुझसे किसी मूर्ति के सामने हाथ नहीं जोड़े जाते, पर मैं मूर्ति से कभी कभी वात करने लग जाता हूं।

प्रोपेगैण्डा, खोखले प्रचार से मुझे नफ़रत है। मैं कभी रेडियो नहीं सुनता। एक वार तो मैं मुख्यमंत्री की हैसियत से रेडियो पर वोला, दूसरी वार जवाहरलाल जी के देहान्त के सम्वन्ध में। अखवार, मैं विद्यार्थिकाल से ही देखता आया हूं, मेरी प्रेरणा से अखवार निकलता भी है। पर अखवार मुझे अच्छे नहीं लगते उनमें छपी वेकार वातों पर से कभी नगण्य लोगों का वड़ा-सा और कुल मिलाकर झूठा व्यक्तित्व वन जाता है। एक वार मैंने लगातार २८ महीनों तक कोई-सा भी अखवार नहीं देखा। आजकल भी अखवार देखने में मुझे वहुत जोर आता है।

मुझे उपाधियों व पदवियों से वड़ी चिढ़ है। शास्त्री की उपाधि न जाने कव और कैसे मेरे नाम का हिस्सा वन गयी और यह वात मुझे खुशी से मंजूर हो गयी। मुझे अपने ब्राह्मण होने का कुछ गर्व-सा है। इसलिए मेरे नाम के साथ पण्डित लग गया। मेरे मुख्यमंत्रित्व काल में राजस्थान विश्वविद्यालय से सम्वन्धित दो व्यक्तियों ने मेरे लिए डाक्टरेट का प्रस्ताव करने का इरादा मेरे सामने जाहिर किया। मुझे वड़ा गुस्सा आ गया और मैंने उनसे कह दिया-खवरदार ! ऐसा कुछ सोचा या किया तो। प्रयाग की किसी संस्था ने मुझे साहित्य-चक्रवर्ती की उपाधि दे रखी है, इसका पता

मुझे अपने पुराने कागजों को देखने से लगा। रतन जी को पद्मश्री देने की बात मेरे सामने आयी तो मैंने उसका विरोध किया।

मैं फोटो से भी प्रायः दूर रहता हूं। कुछ मौकों पर मैंने अपने प्रिय-जनों के साथ अपना फोटो उतरवाया सही, पर अपना या किसी का भी फोटो अपने पास रखने की इच्छा मेरी नहीं होती है। अपने पास पड़ौस में मुझे सजावट अच्छी नहीं लगती। फर्श पर बैठना, वहीं काम करना, वहीं भोजन करना, वहीं लोगों से बात करना, वहीं सोजाना, मेरा यह तरीक़ा शुरू से रहा है। मैं मुख्यमंत्री था तब भी मैं प्रायः ऐसा ही करता था, सचिवालय तक में।

मैं बिलकुल नहीं मानता हूं कि मैंने कुछ भी त्याग किया है। मुझे अच्छा नहीं लगता था सो मैंने छोड़ा और जो अच्छा लगता था सो मैंने अपनाया। अपने परिवार के प्रति मेरा जो कर्त्तव्य था उसे निभाने की पूरी कोशिश मैं करता रहा। देश-सेवा का यह मतलब मैंने कभी नहीं लगाया कि बच्चों की शिक्षा की उपेक्षा कर दी जाय या परिवार के बुजुर्गों की सेवा में कोताही हो जाय। जिसके परिवार हो ही नहीं, वह भले ही कुछ भी करे, परन्तु परिवार वाला ऐसी कोताही करेगा, तो वह मेरी राय में अपने धर्म से विमुख होगा।

जो काम मुझे जरूरी लगा, मेरे करने लायक लगा, मैंने उसे शुरू कर दिया और यह विचार मैंने कभी नहीं किया कि उस काम के लिए साधन कहां से आयेगें, साधन आयेगें भी या नहीं भी आ सकते हैं। आम तौर से तो यही होता रहा है कि साधन आ ही गये और काम में कोई खास रुकावट नहीं आयी और मुश्किल जो हुई उसका मैंने हंसते खेलते मुक़ाबला कर लिया और तकलीफ़ का मजा ले लिया। कर्ज़ा हो गया सो उसे ईमान से चुका दिया और एक मौक़े पर दो-तीन लोगों का सार्वजनिक कर्ज़ा मुझसे चुकाया नहीं जा सका तो मैंने उनको हाथ जोड़ लिये।

प्रजा मण्डल के लिए, अ. भा. देशी राज्य लोकपरिषद् के लिए, वनस्थली आदि के लिए चन्दा मांगने को मैं बहुत ज्यादा घूमा हूं। मैं अनेक शहर, कस्बे, गांव नाप चुका हूं। पर दौरे की खातिर दौरा करना मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। मुख्यमंत्री था तब भी मैंने बहुत कम दौरे किये, मुझे अपने काम से फुर्सत ही नहीं मिली। मैंने जिन्दगी में एक बार भी जयपुर या राजस्थान सरकार को और वनस्थली विद्यापीठ को भी टी० ए० डी० ए० का बिल नहीं दिया।

पहले प्रजा मण्डल के जमाने में और बाद में रीजनल कौन्सिल के जमाने में मैंने अपने क्षेत्र के प्रचार संगठन के लिए बहुत दौरे किये। क्षेत्र के कोने-कोने में पहुँचने की कोशिश मैंने की। जहां मुकाबला था या छोटा-बड़ा कुछ भी खतरा था, वहां मैं

ज्यादा आग्रह के साथ गया। जैसलमेर की यात्रा उन दिनों बहुत कठिन थी और वहां कैसी भी स्थिति बन सकती थी। जैसलमेर की आम सभा के अपने भाषण में मैंने कह दिया—सागरमल गोपा नहीं मरा, गोपा अमर हो गया; पर जैसलमेर का महारावल जवाहरसिंह जरूर मर गया। टोंक के दौरे में हम लोगों पर पत्थरों की वर्षा हुई। धौलपुर में जाना तो "बहती तलवारों" के बीच जाना था। वहां बन्दूकों के मोर्चे लगे हुए थे। कई ऐसे स्थानों पर हम लोग पहुंचे जहां हमारी सभा में पहले एक भी आदमी नहीं आया और मेरे बोलना शुरू करने के बाद सारा कस्बा उलट कर आ इकट्ठा हुआ।

विद्यार्थियों की, कार्यकर्ताओं की, प्रजामण्डल आदि संस्थाओं की मदद करने का मुझे शुरू से शौक है, एक प्रकार की लगन ही है मुझे। मेरे जीवन में कई मौके ऐसे आये कि मेरे पास कुछ भी नहीं था और मैंने उधार रुपया मंगवाकर मांगने वालों को दे दिया। मुझ पर ऐसा कर्जा होता ही रहा और मैं उसे चुकाने की तकलीफ उठाता ही रहा। जिनकी मदद मैंने की, उनसे किसी तरह के एवजाने की अपेक्षा कभी नहीं की। एक बार राजपूताने के एक ज्यादा शान रखने वाले राज्य के प्रजा-मण्डल के कुछ साथी-साथिन मेरे पास अचानक आ गये सो मैंने उनको उसी समय कई हजार रुपये दिलवा दिये। वनस्थली में अनेक कार्यकर्ता साथियों के बच्चों की मुफ्त शिक्षा की व्यवस्था करना तो मैं अपना फर्ज ही समझता रहा।

मेरे हाथ से बहुत-सा पराया पैसा खर्च हुआ है। पर मुझे पैसा बहुत बुरा लगता है। पैसा भी इस बात को जानता है, वह मेरे पास ठहरना ही नहीं चाहता। मैं अपने हाथ में आये हुए पैसे को जब तक किसी को दे नहीं डालता तब तक मुझे चैन नहीं पड़ता। मुझे चीजों के भाव-ताव का पता नहीं रहता। मेरे लिए शुरू से आज तक "रावले से कांसा" आता रहा है, वैसे ही जरूरत की दूसरी चीजें भी आ जाती हैं। मेरे जीवन का बीमा रामजी के घर से हो रहा है, किसी की भी जीवन बीमा कराने की बात मुझे नहीं सुहाती।

मेरा निर्वाह ज्यादातर तो मित्रों के प्रेम से होता रहा, अब अपने घर में से भी हो जाता है। सफर खर्च मुझे कहीं न कहीं से मिल जाता है। किसी भी संस्था से सफ़र खर्च लेना मुझे कभी भी मंजूर नहीं हुआ। मेरे पास-पड़ौस में कुछ ज्यादा खर्च होता रहा है, खास कर सफ़र में। इसका एक कारण यह भी रहा कि मेरे साथ जाने वालों का सफ़र खर्च उनसे न लेकर मैं खुद उठाता रहा हूं। दूसरे, मेरी जरूरत की जो चीज चाहिए सो मुझे मिलनी ही चाहिए। किसी चीज के पैसे कितने लगेंगे यह हिसाब लगाने को मैं नहीं बैठता।

मैं अकेला तो मुश्किल से ही कहीं जाता हूं। मेरे साथ वाले मेरी जरूरत का सामान अपने पास रखते हैं। किसी दूसरे की चीज काम में लेना मुझे अच्छा नहीं लगता।

मेरे लिए किसी से कुछ भी मांगना नहीं पड़ना चाहिए। मैं अपने खुद के पास सिर्फ जरूरी कागजों की एक छोटी-सी पेटी रखता हूं। चन्दे आदि के काम में वैसे ही मुझे ज्यादा परिश्रम करना पड़ता है, इसलिए पिछले तीसेक सालों से मैंने कभी थर्ड क्लास में यात्रा नहीं की।

मुझे जमीन-जायदाद रखने की वात बहुत निकम्मी लगती है। अपनी पैतृक जमीन से मैंने कभी कोई लाभ नहीं उठाया। जयपुर शहर के खेजड़े के रास्ते में जो मकान है उसे मैंने २,०००) में खरीदा था, उसे दे डालने का मेरा विचार कई वार हुआ, पर मुझे वताया गया कि तुमको कल कोई अपने घर में घुसने नहीं देगा, तो शहर में ठहरोगे कहां ? इसलिए मकान है तो सही, पर मैंने उसे किराये पर देने का विचार कभी नहीं किया। उक्त मकान में एक न एक संस्था चलती रही और अब भी मेरी इच्छा मकान को सार्वजनिक उपयोग का मकान वना देने की है। जोवनेर में मेरे जन्म के स्थान से सटा हुआ एक मकान मुझे संविधान परिषद् से जो कुछ अलाउंस मिला था, उससे मकान की कीमत चुकाने के अलावा मैंने मातृ-मन्दिर नाम से एक अच्छा-सा कमरा आदि वनवा दिया है। मकान में कई सालों से 'मातृमन्दिर विद्यालय' चल रहा है।

गांवों, कस्बों और शहरों के भीतर पैदल चल पड़ने का मुझे बड़ा भारी शौक रहा है। जब मैं मुख्य मंत्री था, तो एक दिन एक किसान के घर में अकेला घुस गया और छाछ-रावड़ी व वासी रोटी का कलेवा कर आया। किसान को वाद में मालूम पड़ा होगा कि मैं कौन हूं। ऐसा डाका मैंने कई घरों में कई वार डाला है। बहुत मजा आता है मुझे किसी की रसोई में से अपने हाथ से जो मिले सो निकाल कर खा डालने में।

एक वार जोधपुर में बड़ी भारी आम सभा हुई जिसमें मेरे स्थानीय साथियों के कुछ चेलों ने गड़बड़ करने की नाकामयाव कोशिश की। यह वात मेरे चुभ गयी। मैंने कलक्टर और एस० पी० को वता दिया कि मैं कल अकेला शहर में निकलूंगा— मेरे आगे पीछे कोई न आवे, मेरे लिए कोई इन्तजाम न किया जाय। सवेरे शहर के एक गेट के वाहर मोटर छोड़कर मैं एक साथी गाइड के साथ पैदल चल पड़ा।

मैं तुरन्त पहचान लिया गया। लोगों ने मुझे घेर लिया। दुकानदार अपनी अपनी चीजें मुझे देने लगे और मैंने उन चीजों को चखना शुरू कर दिया। एक दुकानदार ने अफीम की अच्छी-सी डली मेरे हाथ पर रख दी, मैं उसे भी खा गया। लोग घवड़ाये, पर मेरे उस अफीम का कोई खराव असर नहीं हुआ। मुझे मिली हुई ज्यादा जलेवी मैंने एक ऊंट को खिलादी।

मेरे गाइड ने मुझे आगाह किया "आगे आने वाला मुहल्ला आपके बहुत खिलाफ है। वहां लोग जरूर गड़बड़ करेंगे। एक पहलवान तो आपके ऊपर हमला तक कर सकता है।" मैंने पहलवान को देखा कि मैं उससे चिपट गया और बोला—'उस्ताज पहलवान जी घणां दिनां में आज तो मिलणो हुयो आपणों।' सारा मुहल्ला मेरे पीछे हो गया और लगा गुलाल लगाने और माला पहिनाने। बड़ा मज़ा आया ।

मेरी आदत सब कुछ अपनी कलम से लिखने की है। बड़ी-बड़ी पचासों रिपोर्ट मैंने लिखी हैं, सब एक बैठक में। दो बार अपने बजट के भाषण भी मैंने शुरू से आखिर तक अपनी कलम से लिखे। दूसरे के लिखे पत्र या नोट पर मैंने शायद ही कभी हस्ताक्षर किया होगा, पुराने जमाने के उर्दू हुक्मों की और कैफ़ियतों की कैफ़ियत अलग थी।

विद्यार्थिकाल में मैंने अपनी पढ़ाई की पुस्तकों के अलावा बहुत कम पढ़ा। भाषण अपने काम के बारे में दिये, लेख व पत्र अपने काम के बारे में लिखे। पढ़ने के लिए पढ़ना, लिखने के लिए लिखना, बोलने के लिए बोलना, यह काम मेरा नहीं रहा। मनुष्य को उतना ही जानना चाहिए, जिसके अनुसार वह कुछ कर सके, ऐसी मेरी सनक है।

मेरी हिन्दी की लिखावट इतनी खराब हो गयी है कि वह कभी-कभी मुझसे खुद से नहीं पढ़ी जाती। एक बार मेरी अनुपस्थिति में पुलिस ने मेरे खेजड़े के रास्ते के मकान की तलाशी ली। बहुत से कागजों को उलट पलट करके पुलिस ने देखा, तो उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ा। क्योंकि मेरा "सुन्दर लेख" उन कागजों में था। पुलिस उन कागजों को लेजा कर क्या करती, जब उनकी समझ में नहीं आया कि कागज की लिपि हिन्दी है या अंग्रेजी ? उन काग़ज़ात में शायद ये मेरी डायरियां भी थीं। पुलिस की तलाशी की सारी मेहनत बेकार गयी।

एक अर्से तक मुझे दूसरों के दोष ज्यादा दिखायी देते रहे। पर अनुभव ने मुझे सिखाया कि जहां तक हो दूसरे के गुण ही देखना और उन गुणों से फ़ायदा उठाना। किसी के दोषों का कोई इलाज हो सके तो हम करें, बाकी हम क्यों चिन्ता करें, क्यों बात करें दूसरों के दोषों की। किसी में खुद में दोष नहीं हों तब तो वह दूसरों की बात करेगा ही नहीं, बाकी जिनमें खुद में दोष हों, उनके लिए भी दूसरों के दोषों की बात न करना ही अच्छा होगा।

जो कुछ मुझे याद आया, जो कुछ मुझे लिखने लायक मालूम पड़ा, वह प्रायः सभी कुछ यहां मेरे लिखने में आगया मालूम होता है। जिन दो एक प्रकरणों का उल्लेख करना रह गया होगा उनके विषय में मैं इस ग्रंथ के दूसरे संस्करण में कुछ कर सकूंगा, तो कर दूंगा। लड़कपन में ही मेरे हिस्से में बुजुर्गी आ गयी, और बुजुर्गी में बचपन ने मुझे नहीं छोड़ा। विचित्र सम्मिश्रण है।

७१ वें साल में भी मुझे अपनी बढ़ती हुई उम्र का कुछ भी खयाल नहीं होता है और कोई भूल से भी मुझको वयोवृद्ध बतादे, तो मेरे मन में उसके थप्पड़ मार देने की आजाए। अपने खुद के बारे में इतना लिख देने पर मुझे थोड़ा सा अपने प्रियजनों के बारे में भी लिखना चाहिए जो एक या दो को छोड़कर सब मुझसे छोटे हैं। कई पुश्त दूर का मेरा एक बड़ा भाई गंगाराम अर्से तक मेरा बालगोठिया जैसा रहा। मेरा एक चचेरा भाई रामेश्वर व एक चचेरी बहिन सरजूबाई मेरे साथ वनस्थली में अच्छा काम कर रहे हैं। दूसरे चचेरे भाई-बहिनें अपने अपने कामों पर हैं। मेरी दो काकियां मौजूद हैं, जिनमें से एक मेरे पास रहती है, दोनों मेरे लिए मां के स्थान पर हैं। रतन जी के पिताजी के स्वर्गवास के बाद उधर का परिवार हमारे साथ रहने के लिए आगया। जो लोग नहीं आये, वे मध्य प्रदेश (रतलाम, भोपाल आदि) में रहते हैं। रतन जी के तीनों भाई मोहन, सोहन, हरीश अपना धन्धा करते हैं, साथ में बनता है, उतना मेरा काम भी कर देते हैं। हरीश की पत्नी उमा बी० ए० के बाद बी० एड० कर रही है, सोहन की पत्नी प्रेम पेन्टिग डिप्लोमा होल्डर है, उसे जयपुर में अपने घर को देखना पड़ता है। मोहन की पत्नी दया वनस्थली में अर्थशास्त्र की लेक्चरार है। मोहन दया की दो बड़ी लड़कियां आभा व शुभा एम० ए० करके बी० एड० कर रही हैं। सोहन-प्रेम की बड़ी लड़की विभा एक विषय में एम० ए० करके दूसरे में एम० ए० कर रही है। विभा से छोटा वसन्त पी० यू० सी० करके बी० ए० में जाने वाला है। सोहन-प्रेम की बच्ची दुर्गा और मोहन दया का बच्चा अतुल दोनों सैकेन्ड्री स्कूल में हैं। हरीश का बच्चा (नन्हें-भैया) और मोहन-दया की एक बच्ची (बबली) दोनों बाल मन्दिर में हैं। हमारा बड़ा लड़का सुधाकर (एम० ए०, बी० एल०) लोकवाणी का काम करता रहा है और वह वनस्थली का पक्का कार्यकर्ता भी है। छोटा लड़का दिवाकर (श्याम) वनस्थली विद्यापीठ का मंत्री है। सुधाकर की पत्नी कमला (एम० ए० एम० एड०) जयपुर में हाई स्कूल की हैडमिस्ट्रेस है। दिवाकर की पत्नी शकुन्तला (एम० ए०, एम० एड०) वनस्थली में रिसर्च आदि का काम संभालती है। सुधाकर का बड़ा लड़का सिद्धार्थ (भैयाजी) इस साल बी० ए० होजाने वाला है, उससे छोटी बहिन सुहासिनी (मुनिजी) अगले साल बी० ए० कर लेगी। मुनिजी से छोटे आशुजी (आशुतोष) इस साल पी०यू० सी० कर के बी० ए० में जाने वाले हैं। दिवाकर का बड़ा बच्चा आदित्य (छोटे भैयाजी) प्रायमरी स्कूलमें हैं। सुधाकर-कमला की गुटकी और श्याम-शकु की छुटकी अभी बच्चियां हैं। रतनजी की दूसरे नम्बर की बहिन सुशीला शान्ताबाई के स्थान पर वनस्थली की आधार शिला है, उसने वनस्थली की खातिर विवाह करने से इन्कार किया। सुशीला अपने खुद के लिए अपने पास एक पैसा भी नहीं रखना चाहती। उसके बराबर त्याग-भावना वाली दूसरी लड़की मेरे देखने में नहीं आयी है। रतनजी की माताजी (बाई) लक्ष्मी का रूप है, उन्होंने मेरी उस मां का स्थान लेलिया है जो जो मुझे १६ महीने का छोड़कर चली गयी थी। रतन जी की दादीजी (बासाहब) व

बड़ी बुहाजी ने मेरी दादी और बुहा का स्थान ले रखा था। वे दोनों अब नहीं हैं । वा साहव जैसी मां भाग्य से ही किसी को नसीव हो सकती है । रतन जी के पिताजी दा साहव शुरू से आख़िर तक मेरे परिवार के जनरल-मैनेजर रहे। वे विलक्षण पुरुष थे । उन्हें न तो अपनी अस्वस्थता की पर्वाह थी, न अपने घरके घटते हुए साधनों की । वे केवल हमारे लिए ही नहीं वल्कि कई दूसरों के लिए भी खर्चा करने और तकलीफ उठाने के लिए हर घड़ी तैयार रहते थे। उन जैसा दूसरा सत्पुरुष मिलना मुश्किल है। अव रतनजी के लिए तो मैं क्या लिखूं ? हम दो नहीं हैं एक ही हैं और हमारा अर्धनारीश्वर का रूप है। रतनजी की छोटी वहिन चित्रा (एम० ए०) और और उसका पति गोपाल (एम० ए०, पी० एच० डी०) उनकी छोटी वेवी सहित हमारे अपने परिवार में ही हैं । और आगे इससे भी ज्यादा हमारे वनते जायगे, ऐसी मेरी कल्पना है।

अव मुझे इस प्रत्यक्षजीवनशास्त्र को सम्पूर्णता पर लाना है । उससे पहले मुझे कुछ और वातों का लोभ हो रहा है। मुझे राजनीति में उस युद्ध या उस प्रेमलीला का रूप दिखायी देता है, जिसमें कुछ भी कर डालना अनुचित नहीं माना जाता। कोई व्यक्ति कितना भी अनैतिक काम करले, किसी भी अनुचित उपाय से वह अनुचित सफलता प्राप्त कर ले, दुनिया उसकी अनैतिकता को, उसके अनौचित्य को भूलकर उसकी सफलता की सराहना करने लग जाएगी। एक दिन प्रसंग चलने पर सरदार ने मुझ से कहा—राज तो तुम्हारे हाथ में है न ? उनका मतलब एक तो यह हो सकता है कि विरोध करने वालों को ले-देकर मैं उनका मुंह वन्द कर दूं । दूसरा, शायद यह कि राजकीय शक्ति का उपयोग करके उनका सफाया कर दूं। ये दोनों ही काम मुझसे नहीं हो सकते थे। चुनाव ऐसी वला है कि जिसमें अच्छे से अच्छे आदमी के हाथ से भी कुछ न कुछ गड़बड़ हो जाने की संभावना मानी जा सकती है। जब जीतना ही एक मात्र उद्देश्य हो जाता है, तो फिर येन केन प्रकारेण जीतना ही चाहिए। मेरा खुद का कोई खास काम नहीं पड़ा, पर मुझे दुःख के साथ याद है कि एकाध वार मैं भी दूसरों के जरिये से होने वाली गोलमाल से अपने आपको नहीं बचा सका, यानी एक प्रकार से मैं गोलमाल का भागीदार वन गया। दल वदलूपन का थोड़ा बहुत नमूना मेरे देखने में उन्हीं दिनों आगया था। उस समय भी रुपया पाकर कोई व्यक्ति एक तरफ से दूसरी तरफ हो सकता था या धोखा देकर रुपया चट कर सकता था। पर उन दिनों दल वदलू आजकल जितने पक्के नहीं हो गये थे। जवाहरलाल जी चुनावों में उन व्यक्तियों को खड़ा करने की वहुत वात करते थे जो न केवल ईमानदार हों वल्कि जिनकी ईमानदारी सवके सामने रोशन हो। इस सिलसिले में मैंने उनको एक कड़ा पत्र लिख मारा—जिस तरीके से टंडन जी को हटा कर आप खुद कांग्रेस अध्यक्ष वन गये सो मुझे विलकुल भी आपके लायक काम नहीं लगा है—और ईमानदार व्यक्तियों की आप वात करते हैं तो मेरे यहां आप देखिए-प्रदेश चुनाव समिति में वहुमत उन लोगों का है जिनको आपने कांग्रेस

टिकट के लायक नहीं माना था। जवाहरलाल जी को मेरा वह पत्र बहुत बुरा लगा और उन्होंने कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों को ले जाकर बताया कि हीरालाल शास्त्री ने मुझको ऐसा पत्र लिखा है।

यह सब तो बीती हुई बात है। उसकी अब क्या कथा ? सवाल है आगे का मेरे सामनें कि मुझे क्या करना चाहिए, क्या मैं कर सकता हूं। एक बार तो मेरी यह लहर पक्की हो गयी थी कि मैं वनस्थली की भूमि में ऐसे एकान्त स्थान में जाकर बैठूं कि समय आने पर मुझे निकालने वाले ही उठाकर बाहर निकालें। साधु की सी वृत्तियों के होते हुए भी मुझे कायदे से संन्यास नहीं लेना था, पर लगाना था ऐसा ध्यान, ऐसी एकाग्रता के साथ कि उस ध्यान से ही जगत का कल्याण हो सके। बाद में मेरे विचार चलते रहे हैं और वर्तमान में देश के जो हाल–चाल मेरे सुनने देखने में आये हैं तो मेरा मन हो रहा है कि मुझे भी मैदान में आकर कुछ न कुछ करना चाहिए। जनतंत्र और समाजवाद दोनों शब्द ही इस देश में मुझे बहुत भ्रमोत्पादक लगते हैं। मुझे तो न जनतंत्र दिखता है, न समाजवाद। जो सशक्त हैं, वे आमतौर से स्व-तंत्र में और स्व–वाद में लिप्त दिखायी देते हैं। जो सचमुच अच्छे हैं उन्हें भी वही खेल खेलना पड़ता है, भले ही वह आत्मरक्षा के रूप में ही होगा। इस जमाने में हर किसी को नेता बना देने का रिवाज सा हो गया है। मुझे शुरू से ही नेता–लीडर शब्द से नफ़रत रही है। मेरी सत्ता से कभी जान पहिचान नहीं हुई। कुछ न कुछ कर गुजरने की इच्छा ही मेरे लिए सत्ता है। आज–कल देखा जाता है कि लोग सत्ता के पीछे पड़े हुए हैं, उसके लिए कुछ भी किया जा सकता है। आज बेईमानी नियम है और ईमानदारी अपवाद। कुछ ले देकर काम करा लेना मामूली बात है। सबका, नेताओं तक का यह धर्म जैसा हो गया है, देश में चारित्र्य का संकट है, नेतृत्व का संकट है। ऐसी घोर अंधकारमयी कलयुगी स्थिति में किस का भरोसा किया जाय। परन्तु बुराई को चुपचाप देखते रहना भी बुराई में शामिल होने के बराबर माना जा सकता है। इसलिए मुझे भी कुछ न कुछ तो करना ही चाहिए, करना ही पड़ेगा। मैं किसी पार्टी से वास्ता नहीं रखना चाहता, मुझे खुद को किसी चुनाव में नहीं खड़ा होना, मुझे "पार्टी", नहीं चाहिए "पद" नहीं चाहिए, "पावर" नहीं चाहिए, "प्रोपेगेंडा" नहीं चाहिए और नहीं चाहिए मुझे किसी भी हालत में वह सूगली चीज "पेल्फ"। इस सत्र में मुझे कुछ भी मुश्किल नहीं लगता। क्योंकि मनुष्य की जो आखिरी कमजोरी प्रसिद्धि, कीर्ति है उसे मैं मानता ही नहीं हूं। मृत्यु के बाद वाली कीर्ति तो किसी के भी काम की चीज नहीं हो सकती, पर जीवनकाल वाली कीर्ति भी अपने खुद के हिसाब से तो, मुझे बेकार से ज्यादा लगती है—मनुष्य को छोटा बनाने वाली और अकसर उसे गिराने वाली ! अपने को तो अपना सन्तोष चाहिए, शान्ति चाहिए जो अपने 'सत्कार्य' से मिल सकते हैं। सत्कार्य वह–जिसे मनुष्य निरपेक्ष होकर, फलाशा छोड़कर, निर्भय होकर ऐसा करे कि उसी में अपने आप को लीन और समाप्त कर दे। वनस्थली और लोकवाणी के लिए

मुझे थोड़ा थोड़ा समय देना ही पड़ेगा। मैं अपने अब तक के अङ्गीकृत कामों को छोड़ नहीं सकता। मैं अपने बाकी समय को लगाना चाहूंगा मुख्यतया सर्वोदय की लाइन पर, लोक शिक्षरण करने में, लोक को जागृत करने में और संगठित करने में, निर्बल को बलवान बनाने में, नामर्द को मर्द बनाने में, आम जनता को छोटी बातों के लिए नेताओं से न चिपकने की विद्या सिखाने में और आखिर जनता में बुराई का डट कर मुकाबला करने की शक्ति पैदा करने में। मैं व्याकुल हो रहा हूं कि जो कुछ किया जाय वह प्रभाव कारी हो, वह कैसे होगा सो बड़ा सवाल है, जब बाड़ बेल को खा रही हो, जब गरीब जनता में से पैदा हुए मामूली आदमी उसे नेता बन कर खुद खा जाने और दूसरों को खिला देने का धन्धा करते दिखायी दे रहे हों। परन्तु इस विषय का अधिक विस्तार करने का यह स्थान नहीं है, यह अवसर नहीं है। जो हो, अपने लिए कुछ भी न चाहते हुए, किसी के लिए बुरा चिन्तन या कथन न करते हुए, सबके लिए मंगल कामना करते हुए भौतिक–साधनों की चिन्ता न करते हुए और सत्कार्य पर अडिग रहते हुए रागद्वेष रहित और मोह मुक्त होकर अपने आपको समुद्र में फेंक देना, जलती आग में झोंक देना, यह मेरी कामना है, जो कौन जाने कब कैसे और कितनी पूरी होगी ? इति शुभं भूयात्।

भाग ३

रचनापञ्चशती

भाग ३

रचनापञ्चशती

प्रस्तावना

१६–१७ साल की उम्र में मैंने कुछ 'बांकी बावली' रचना करना शुरू कर दिया था। उन सभी तरह की रचनाओं के बहुत थोड़े नमूने आगे 'अतिरिक्त सामग्री' में दिये गए हैं। 'रचनापञ्चशती' का नाम मैंने उन ५०० छन्दों को दिया है जो अप्रेल, १९६७ से मार्च, १९७० तक के तीन सालों में बने हुए १२०० छन्दों में से 'प्रत्यक्षजीवनशास्त्र' के लिए छांटे गए। उक्त तीनों सालों में देश के एक कोने से दूसरे कोने तक मेरे लम्बे दौरे होते रहे। तभी सुबह शाम टहलते हुए, रेलगाड़ी में या मोटर में चलते हुए, थक थकाकर पड़े हुए जब जो खयाल हो गया उसी को पद्यबद्ध कर दिया। सामान्यतया किसी एक पद्य का दूसरे पद्य से सम्बन्ध नहीं है। कहीं-कहीं एक पद्य का दूसरे पद्य से विरोध जैसा भी है। जो हो, इन रचनाओं में मेरा आन्तरिक मन्थन देखने को मिल सकता है। किन्हीं पद्यों में कुछ प्रश्न प्रकट हुए हैं जिनके उत्तर जैसे दूसरे साधारण लोगों के पास होंगे, वैसे मेरे पास भी मिल सकते हैं। मेरी प्रत्यक्ष अनुभूतियों का दिग्दर्शन इन छन्दों में हो सकता है। ५०० छन्दों को मैंने बराबर के पांच भागों में बांट दिया है पर जो बंटवारा किया गया है वह पूरे तौर पर सही नहीं है। आखिर छांट और बंटवारे का काम भी दौड़ते हुए दौरों के बीच ही तो हुआ है। दूसरों की दृष्टि से मैं देखने लगता हूं तो ५०० में से मुझे कई छन्द एकदम बेकार से लगते हैं। फिर भी मैंने अपनी सूझ-बूझ के अनुसार उन छन्दों को भी छपने के लिए दे डाला है। जो प्रत्यक्ष है वह तो प्रत्यक्ष ही है, वह देखने में अच्छा बुरा या बीच का कैसा भी लगे। इन शब्दों के साथ यह रचनापञ्चशती प्रस्तुत की जाती है।

हीरालाल शास्त्री

जीवनवृत्त : जीवनसिद्धान्त

(१)

जिसे नहीं मैं पहिचानता हूं,
जिसे जरा सा अनुमानता हूं।
प्रणाम मेरे उसको, उसी पैं,
तमाम मैं जीवन वारता हूं ॥

(२)

माता दादि बुहा गयी अर गयी दादी बुहा दूसरी,
पत्नी एक व दूसरी चल वसी, वच्ची अपर्णा गयी।
सान्ता म्हालिछमीर म्हासुरसतीम्हाकालकारूपणी,
नौंवा ने कर याद धार हिरदै मातेसरी मैं भजूं ॥

(३)

शिरोमणी भारत देश मेरा,
है राजिया स्थान विशाल मेरा।
प्रख्यातनामा जयपूर मेरा,
अत्यन्त प्यारा जुवनेर मेरा ॥

(४)

पारीक है वंश पराशरा का,
जोशी उसी में सकराणियां हैं।
श्रीयुक्त नारायणजी पिता थे,
भली सुनी मां पर याद नां है ॥

(५)

उन्नीस सौ छप्पन जन्म मेरा,
पला पढ़ा मैट्रिक जोबनेरा।
शास्त्री व बी०ए० जयपूर माहीं,
की नौकरी भी जयपूर माहीं॥

(६)

पीछे रहा जाकर कालिकाता,
घूमा फिरा बन्थलि गांव हेरा।
ली राजनीती भल लोकवाणी,
बनी रही बन्थलि धाम मेरा॥

(७)

निन्दा किसी की हम क्यों करेंगे,
आलोचना भी हम क्यों करेंगे।
कमी किसी की हम क्यों निकालें,
कर्त्तव्य पूरा अपना करेंगे॥

(८)

आये हुए हैं हम कोहिमा में,
प्रसन्न पूरा मन हो रहा है।
लुभावनी है रचना यहां की,
यहां वसेंगे दिल हो रहा है॥

(९)

घूमूं फिरूं मैं रगड़ूं तनू को,
व्यायाम भी मैं कर लूं मजे से।
दवा-ववा मैं कुछ भी नहीं लूं,
खाऊं पिऊं मैं बस कायदे से॥

(१०)

करूं बने तो कुछ साधना भी,
प्रसन्नता के जरिये निकालूं ।
नहीं सहारा कुछ बाहरी लूं,
बिना चिकित्सा तन स्वस्थ रखूं ।।

(११)

खाना घटाना हम को पड़ेगा,
व्यायाम ज्यादा करना पड़ेगा ।
चिन्ता जरा भी करनी न होगी,
काया तभी स्वस्थ विशेष होगी ।।

(१२)

चिकित्सकों के मत भिन्न देखे,
विरोध भी आपस में बड़ा है ।
होता भरोसा उनका नहीं है,
निजी भरोसा सबसे बड़ा है ।।

(१३)

चाहा मिले तो परहेज क्यों हो,
नहीं मिले तो परवाह क्यों हो ।
हो पास में तो दरियादिली हो,
लेना नहीं तो फिर चाह क्यों हो ।।

(१४)

जरूरतें वो रखनी नहीं हैं,
दुश्वार पूरा करना जिन्हें हो ।
वो हाजतें ही रखना मुझे हैं,
आसान पूरा करना जिन्हें हो ।।

(१५)

शरीर मेरा कुछ मांगता है,
किसी दिशा में दिल भागता है।
दिमाग़ मेरा कुछ सोचता है,
मेरा अहं तो सब लोपता है।।

(१६)

जो देखता हूं कमजोरियों को,
ज़रूर ज्यादातर तो मिटेंगी।
शरीरसेवा अनिवार्य ना जो,
वो ना मिले तो भल नां मिलेंगी।।

(१७)

स्वभाव क़ाबू रखना पड़ेगा,
आवेश अपना तजना पड़ेगा।
कर्त्तव्य पूरा करना पड़ेगा।
होना अनासक्त मुझे पड़ेगा।।

(१८)

विकार मेरे मन में न होवे,
होवे कभी तो मिटना ज़रूरी।
देखूं गुणों को, नहिं दोष देखूं,
जोभी स्थिती हो निभना ज़रूरी।।

(१९)

शरीर में ताव उठाव आता,
उसे क़रूं कोशिश रोकने की।
रुकें न साधारण यत्न से तो,
ज्यादा करूं कोशिश रोकने की।'

(२०)

सुमार्ग से तो हटना कभी न था,
तभी उसी पै चलता सदा रहा।
तथापि जो भूल हुई यदा-कदा,
मुझे उसी का दुख है सता रहा।।

(२१)

नवीन मेरा युग आज से है
आरम्भ होता, खुशियां मनाऊं।
अशुद्धता मानस - कर्म - वाणी
की मैं निकालूं, खुशियां मनाऊं।

(२२)

मैं ही अकेला सब चाहता हूं,
खिलाफ मेरी वह शान के है।
चाहूं न देखूं मुंह फेर लूं मैं,
वही सभी लायक शान के है।।

(२३)

उन्नीस सौ संवत था छयासी,
शुभा मिती अक्षय की तृतीया।
वनस्थली जीवन की कुटी में
डेरा जमा, चिम्मट रोप दीया।।

(२४)

चाहूं न मांगूं कुछ भी निजी मैं,
काफी नहीं है इतना इरादा।
करूं न मंजूर दिया हुआ भी,
पक्का करूं मैं अब से इरादा।।

(२५)

सेवा निजी जो चहिए जरा सी,
करूं व्यवस्था उसकी जरा सी।
दे दूं दिला दूं जिसको जरा सा,
मैं काम ले लूं उससे जरा सा॥

(२६)

दिमाग में और शरीर में भी,
शैथिल्य सा व्यापक हो गया है।
मनुष्य में भी भगवान में भी,
विश्वास मेरा हिल सा गया है॥

(२७)

नहीं किसी से कुछ चाहना है,
नहीं ज़रा भी कुछ बोलना है।
अच्छा बुरा हो सब झेलना है,
नहीं ज़बां से कुछ बोलना है॥

(२८)

आशा किसी से करनी न ज्यादा,
तभी निराशा मिलती न ज्यादा।
दूरी किसी से रखनी न ज्यादा,
जाना नहीं है नजदीक ज्यादा॥

(२९)

जी चाहता है कर लूं प्रतिज्ञा,
तभी महाशक्ति मुझे मिलेगी।
शंका न होगी डर भी न होगा,
सम्पूर्ण सिद्धी झट से मिलेगी॥

(३०)

दे दूं सभी को यदि हो सके तो,
चाहूं किसी से कुछ भी न लेना।
वनूं यथासम्भव स्वावलम्बी,
स्वतः मिले सोहि कबूल लेना।

(३१)

सहायता स्वीकृत मैं किया करूं,
नहीं मिले सोच नहीं किया करूं।
खशी खुशी जो करना किया करूं,
न ठीक होजो नहिं वो किया करूं।।

(३२)

शरीर का स्वास्थ्य वना रहेगा,
बनी रहेगी मन स्वस्थता भी।
अखण्ड स्वान्तःसुखशान्ति होगी,
अन्तःस्थता वाह्य विशुद्धता भी ।।

(३३)

सदैव निश्चित रहा करूं मैं,
विचार चाहे कितना करूं मं।
प्रवाह यों जीवन का चलाऊं,
सदा त्रिधा शांति रखा करूं मैं ।।

(३४)

अच्छा वुरा जो कुछ हो चुका है,
विना हुआ हो सकता नहीं है।
कर्त्तव्य जो है उसके विषै में,
जो सोच लें हो सकता वही है ।।

(३५)

सदैव देवाल बड़ा रहेगा,
लेवाल छोटा बनके रहेगा।
ठगा हुआ ठाकुर ही रहेगा,
जो भी ठगेगा ठग ही रहेगा ॥

(३६)

चाहूं यदी तो मिलना जरूरी,
नहीं मिले ना चहना ज़रूरी।
ऊंचा रहे मस्तक सो ज़रूरी,
बेगर्ज़ होना सबसे ज़रूरी ॥

(३७)

नहीं सुने तो हम क्यों सुनावें,
न जानना हो हम क्यों जनावें।
अभक्त जो हो तपहीन जो हो,
ऐसे किसी को हम क्यों बतावें ॥

(३८)

न दोष देखूं कमियां न देखूं,
न खूबियां क्यों गुण क्यों न देखूं।
मानूं बुरा मैं न कभी किसी से,
राज़ी रहूं या कि तटस्थ देखूं ॥

(३९)

किया ज़रा भी उपकार मेरा,
कृतज्ञ आजीवन मैं रहूंगा।
भला बड़ा भी मुझसे हुआ तो,
जबान से मैं न कभी कहूंगा ॥

(४०)

चाहें नहीं नाम न मान चाहें,
ऐसे जनों का अपमान क्या हो।
सर्वस्व की आहुति दे चुके हों,
ऐसेन की शौकत शान क्या हो॥

(४१)

गम्भीरता धीरज चाहिए मुझे,
सहिष्णुता बेहद चाहिए मुझे।
विनम्रता पुष्कल चाहिए मुझे,
सशक्त आत्मा बल चाहिए मुझे॥

(४२)

किसी से कुछ चाहना क्यों,
यों ही मिलेगा हक़ मांगना क्यों।
शान्ता व दुर्गा हनुमान से क्यों,
मङ्गेश, नागेश गणेश से क्यों॥

(४३)

नये नये स्थान मनुष्य देखे,
नये नये दृश्य विभिन्न देखे।
नये तजुर्बे कड़वे व मीठे,
होते हुए रोज़ बरोज़ देखे॥

(४४)

श्रीकृष्ण का नाम हमें पियारा,
स्वधर्म सत्कर्म सदा हमारा।
है भक्ति अत्यन्त हमें पियारी,
श्रीकृष्ण-गीता निधि है हमारी॥

(४५)

मीनाक्षिदेवी शिव सोम सुन्दरम्,
विशिष्ट प्राचीन महान मन्दिरम्।
अतीव उच्चं अति भव्य गोपुरम्,
मनोहरं सर्व सुरम्य सुन्दरम् ।।

(४६)

जो बात सोचूं अथवा कहूं मैं,
सच्ची खरी वो निकले अवश्यम् ।
ऐसा नहीं तो नहिं सोचना हो,
न बोलना हो कुछ भी अवश्यम् ।।

(४७)

कभी उपालम्भ न दें किसी को,
शाबास ही दें सबको खुशी से ।
जो दोष दीखे उसको भुला दें,
करें प्रशंसा गुण की खुशी से ।।

(४८)

है दोष भी तो गुण भी खरे हैं,
अच्छा बुरा मेल मिला दिया है ।
अच्छा बने कोशिश की तभी भी,
बुरा कभी तो बन ही गया है ।।

(४९)

पता नहीं है मुझको यहां पै,
क्या साधना योग सिखा रहे हैं ।
विकार जैसे दिखते कहीं भी,
वही यहां लोग दिखा रहे हैं ।।



(५०)

निरर्थक सोच विचार सारा,
बेकार क्यों बात करू किसी से।
जो भक्त होंगे उनसे कहूंगा,
वाकी सरोकार नहीं किसीसे ।।

(५१)

चिन्ता नहीं की कुछ साधनों की,
सहायकों की नहिं राह देखी।
वनस्थली में चिमटा अकेले
रोपा, उसी की करतूत देखी ।।

(५२)

कसो कसाओ जितनी खुशी हो,
मसोस के ही रख दो भले ही।
करू नहीं चू तक भी जरा सी,
हो वेदना भी कितनी भले ही ।।

(५३)

नाराज़ राज़ी कुछ भी रहा करो,
बुरा कि अच्छा कुछ भी कहा करो।
न मान दो तो अपमान ही करो,
वखान जो हो करना किया करो।।

(५४)

विकार मेरे मन में नहीं हों,
जो हो सके सो समभाव होवे।
नहीं भले ही चिपकू किसी से,
नहीं कभी मैं अकड़ू किसी से ।।

(५५)

ज़रा नहीं हूं खुदगर्ज तो भी,
आज़ाद मैं बिल्कुल भी नहीं हूं।
कर्त्तव्य का बंधन ज़ोर का है,
बाकी किसी के बस में नहीं हूं॥

(५६)

मानूं बुराई अपनी समूची,
देखूं भलाई सब दूसरों की।
विनम्र होऊं अभिमान त्यागूं,
करूं बड़ाई सब दूसरों की॥

(५७)

तेईस को जन्म दिनं पवित्रम्,
बाई व शिक्षाकुटि का हुआ था।
मुझे नहीं बिल्कुल याद आया,
आश्चर्य सा विस्मरणं हुआ था॥

(५८)

चला गया जन्म-दिनं तुम्हारा,
बाई हमें याद ज़रा न आया।
यूं तो हमारे दिल में बसी हो,
आश्चर्य बाई तुमको भुलाया॥

(५९)

है जोबनेरं मम मातृभूमी,
माता यहां पै ममतामयी थी।
वो हैं नहीं याद मुझे जरा भी,
सालेक का छोड़ चली गयीं थी॥

(६०)

माता सिधारी जब स्वर्ग मेरी,
पच्चीस के थे पितृदेव मेरे :
विवाह की बात नहीं विचारी,
त्यागी बड़े थे पितृदेव मेरे ।।

(६१)

छै भाइयों में सबसे बड़े थे,
पांचों उन्होंने इक़ बार ब्याहे ।
ब्याहा दुबारा इक भाइ पीछे,
नहीं स्वयं दूसरि वार व्याहे ।।

(६२)

जागीर छोटी पर लक्ष्य ऊंचा,
श्रीकर्णसी ने अपना बनाया ।
हुआ नहीं था जब जन्म मेरा,
हाई यहां स्कूल तभी बनाया ।।

(६३)

मदरसे पढ़ने बिठला दिया,
बहुत तेज़ करार मुझे दिया ।
मिडिल फर्स्ट डिवीज़न पा गया,
प्रथम मैट्रिक में फिर आ गया ।।

(६४)

इंटर किया पास द्वितीय श्रेणी,
मिली उपाध्याय में फर्स्ट श्रेणी ।
द्वितीय श्रेणी फिर शास्त्रि मांही,
था फर्स्ट पोज़ीशन बी.ए. मांहीं।।

(६५)

न नाम नाहीं गुणगान चाहूं,
न मान चाहूं नहिं शान चाहूं।
धर्मार्थ मोक्ष नहिं काम चाहूं,
सम्पन्न अंगीकृत काम चाहूं॥

(६६)

नहीं किसी के प्रतिकूल होना,
जो हो सके तो अनुकूल होना।
प्रसन्न होना वस में नहीं है,
तटस्थ होना करडा नहीं है॥

(६७)

धोखा कई बार मुझे हुआ है,
ठगा गया किन्तु ठगा नहीं है।
भला खुशी से सबका किया है,
चाहा कभी एवज़ में नहीं है॥

(६८)

संकल्प हो सिद्ध अवश्य होवे,
मनोरथ पूर्ण अवश्य होवे।
संकल्प ना हो न मनोरथ तो,
ऊंची स्थिती निश्चित रूप होवे॥

(६९)

सोचो भले ही पर दूसरों को,
धोखा दिया जा सकता नहीं है।
धोखा यदी हो सकता किसी को,
सिवा स्वयं हो सकता नहीं है॥

(७०)

सच्चे रहेंगे यदि आपसे तो,
झूठे नहीं हो सकते किसी से।
सोचो व बोलो सत ही सदा ही,
झूठा न सोचो न कहो किसी से॥

(७१)

कमी किसी की यदि सामने हो,
चाहे बतादूं खुद को सुने तो।
विचार रक्खूं न कहूं किसीसे,
बुरा लगे जो यदि वो सुने तो॥

(७२)

मैं अपने से क्या कहूं, मुझ को चहिए शान्ति।
लगा रहूं सत्कर्म में, छिन भर हो न अशान्ति॥

(७३)

मन की हो एकाग्रता, समतामय व्यवहार।
स्वस्थ रहूं तन से रखूं, युक्ताहारविहार॥

(७४)

कहूं वही जो कुछ सोचता हूं,
करूं वही जो कुछ बोलता हूं।
हो कर्मवाणी मन एक जैसा,
यही हमेशा बस सोचता हूं॥

(७५)

सदैव माता मन में रखा करो,
सदैव माता मुख से कहा करो।
सदैव चिन्ता तज के रहा करो,
सदैव अन्तः सुख से रहा करो॥

(७६)

कर्त्तव्य आगे अधिकार पीछे,
सिद्धान्त पक्का सबसे यही है।
जो फर्ज़ पूरा नहिं हो सके तो,
यों जान लीजे हक़ भी नहीं है॥

(७७)

नहीं किसीसे अपनी कहूंगा,
कोई कहेगा तब ही कहूंगा।
जो हानि होगी उसको सहूंगा,
जो लाभ होगा उसको लहूंगा॥

(७८)

चिन्ता न होती नहिं दुःख होता,
विचार आना रुकता नहीं है।
सवाल ऐसा नहिं एक भी है,
जवाब जिसका मिलता नहीं है॥

(७९)

शुभ देखूं शुभ ही सुनूं, शुभ सोचूं शुभ भाव।
शुभ बोलूं शुभ ही करूं, ऐसा बने स्वभाव॥

(८०)

अवश्य संकल्प बड़ा करूंगा,
हो रूप कैसा यह खोजना है।
प्रभावकारी वह हो सके सो,
उपाय पक्का बस सोचना है।।

(८१)

स्वाधीनता का जनतन्त्र का भी,
होवे समारोह भले भले ही।
उत्साह होता मुझको नहीं सा,
जाऊं नहीं मै कुछ हो भले ही।।

(८२)

ज़रूरतें जो अपनी कई हैं,
पूरा उन्हें है करना ज़रूरी।
जो भी बने सो सब शान से हो,
न हो ज़रा भी झुकना ज़रूरी।।

(८३)

महेश का है दिन आज जन्म का,
प्रसन्न हो वे वरदान दे रहे।
न मांगना तो अपना स्वधर्म है,
बिना कहे जो मिल जाय ले रहे।।

(८४)

कहो सुनाओ उस प्यार की कथा,
हमें न होवे जिससे कभी व्यथा।
चाहो न लेना नहिं लो दिया हुआ,
सभी तुम्हारा कर दो दिया हुआ।।

(८५)

आया हुआ हूं शुभ जोवनेरं,
देवी जहां शंकर भी जहां है।
है जन्म का स्थान पवित्र मेरा,
है स्कूल मेरा घर भी जहां है ।।

(८६)

आशा निराशा समभाव रक्खूं,
विश्वास पक्का रखता चलूं मैं।
छाया अंधेरा कितना भले हो,
प्रकाश देखूं चलता चलूं मैं ।।

(८७)

हो मित्र की दृष्टि सदा हमारी,
सभी जनों को हम मित्र मानें।
अमित्रता का व्यवहार कोई,
करे उसे भी हम मित्र मानें ।।

(८८)

सहायता जो कुछ भी करेतो,
पूरा उसीका अहसान मानें।
करे कदाचित् नुकसान तो भी
बुरा ज़रा भी उससे न मानें ।।

(८९)

मुझे पड़ेगा सहयोग देना,
आदेश कैसे धर दूं किसी पै।
देवे खुशी से खुश हो भले लूं,
देवे न तो क्यों बिगड़ूं किसी पै ।।

(९०)

बोलूं वहीं पै चलती जहां हो,
नहीं चले तो न कहूं कहीं पै।
अन्दाज़ पूरा करलूं सही मैं,
जबान खोलूं तब ठीक ही मैं॥

(९१)

नहीं किसीसे कुछ भी चहा करूं,
मुझे पड़ी क्या कुछ भी हुआ करे।
परन्तु चाहूं अथवा कहूं कभी,
अवश्य पूरा झट से हुआ करे॥

(९२)

मैं जो करूं सो अपनी खुशी से,
वो भी करे सो अपनी खुशी से।
दोनोंन की जो खुशियां मिलें तो,
मेरी खुशी सो उनकी खुशी से॥

(९३)

मुझे मिले सो चुपचाप ले लूं,
हो मान भी या अपमान चाहे।
आराम हो या तकलीफ़ चाहे,
चाहे रहे जाय कि शान चाहे॥

(९४)

मैं जीत लेऊं कमजोरियों को,
स्वयं बनूं मैं मजबूत माता।
कभी नहीं दुर्बलता सतावे,
मुझे बना दे मजबूत माता॥

(९५)

नहीं सुनाना तपहीन जो हो,
अभक्त को नांहि कभी सुनाना ।
न जानना हो सुनना नहीं हो,
ऐसे जनों को न कभी सुनाना ॥

(९६)

आशा अपेक्षा ममता समेटूं,
मैं लालसा आदि सभी समेटूं ।
आहार की मैं अति को समेटूं,
विहार की भी परिधी समेटूं ॥

(९७)

मेरी मुझे कोमलता सताती,
मैं चाहता हूं मज़बूत होना ।
मेरी मुझे दुर्बलता सताती,
मैं चाहता हूं बलवान होना ॥

(९८)

न चाह हो और विरक्ति भी हो,
स्वकर्म तो भी करना पड़ेगा ।
समत्व में भी अपने जनों का,
ख़याल ज्यादा रखना पड़ेगा ॥

(९९)

ईमान का नाम निशान खोजूं,
स्वदेश भक्ती अवशेष खोजूं ।
विवाद संघर्ष अशान्ति फैली,
ऐसी स्थिती में सुख शांति खोजूं ॥

(१००)

है जा रहे सुन्दर जोवनेरा,
पहाड़ माता लगती पियारी ।
कालेज मैदान सभी पियारे,
है जन्मभूमी लगती पियारी ॥

परिवार : परिजन

(१)

रतनजी जब से प्रिय सा बनी,
उस घड़ी हम भी प्रिय सा बने।
जगत को दिखते हम दो जने,
असल में हम एक, न दो जने ।।

(२)

मिठास होवे सब काम में सा,
खरास लाना मन में नहीं सा।
निजी खुशी से दुनियां चलेगी,
विकार लाना मन में नहीं सा ।।

(३)

विश्वास मेरा जिनमें रहेगा,
विशेष नाता उनसे रखूंगा।
बाकी जनों से जितना सरिश्ता,
होगा जरूरी उतना रखूंगा ।।

(४)

इच्छा हमारी प्रबला बनी है,
पूरी करेंगे मिलके उसे सा।
शरीरसेवा जितनी जरूरी,
स्वयं करें जो प्रिय हो करें सा ।।

(५)

आस्था व निष्ठा अरु भावना सा,
अभिन्न पूरी अपनी बने सा।
सम्पूर्ण शक्ती अपनी जुटे सा,
सत्कार्य सारे अपने बनें सा ।।

(६)

शरीर साधें मन साध लें सा,
विचारशक्ती वस में करें सा
हो स्वास्थ्य अच्छा मन का तनूका,
अवश्य इच्छाबल से करें सा ॥

(७)

भाभी सुशीला प्रिय आरजी सा,
श्यामा सुधा आदि सभी तुम्हारे ।
बाई सभी के दिल में बसी हो,
सत्कार्य सारे सिध हों हमारे ॥

(८

वनस्थली को दरजा मिलेगा,
संवृद्ध होगी नव लोकवाणी ।
गृहस्थ सारा बढ़िया चलेगा,
संशुद्ध होवे मन कर्म वाणी ॥

(९)

सकुन्तला सा कमला सुशीला,
स्यामा सुधा पूरण सिद्धि पावें ।
सारा सुखी हो परिवार वाला,
सारा सिवा सूं वरदान पावें ॥

(१०)

शरीर दो हों जब जीव एका,
उसको कहेंगे सब लोग जोड़ा ।
मिला हुआ हो जब रूप एका,
वो अर्धनारीश्वर है न जोड़ा ॥

(११)

आदित्य भैयो तकलीफ पायी,
इलाज सूं वो झट ठीक होसी।
चिन्ता हुई सो सगली मिटैली,
खुशी खुशी वन्थलि जाण होसी॥

(१२)

सहायता तू करती सुशीला,
संतोष देता सब काम तेरा।
अनन्त शक्ती तुझको मिलेगी,
पाती रहे आशिर्वाद मेरा॥

(१३)

वनस्थली जैपुर में हमारे,
प्यारे दुलारे सब मौज में हैं।
तथापि चिन्ता हमको सताती,
चिता न होवे इस खोज में हैं॥

(१४)

सिद्धार्थ भैया मुनि और आशू,
तीनों जने पास न हो सके हैं।
चौड़े बुराई दिखती हमें जो,
होगी भलाई इससे रुके हैं॥

(१५)

भला किसीका यदि हो करूं मैं,
मिले किसी का सहयोग पालूं।
अभेद सा से अपना बना है,
वाको किसी की नहिं गर्ज पालूं॥

(१६)

बच्चे हमारे रुकते नहीं थे,
तीनों रुके तो सदमा हुआ है।
सोचा विचारा कितना भले ही,
मेरा समाधान नहीं हुआ है।।

(१७)

सा में मिला सा इक सा हुआ है,
अद्वैत साकार बना रहे सा।
बाकी जरा भी नहिं चाहना हो,
स्वधर्म पूरा करता रहूं सा।।

(१८)

पड़ोस में जो नहिं सा हमारे,
लगे अकेलापन सा करें क्या।
जरा सहारा चहिए किसीका,
नहीं मिले तो कहिए करें क्या।।

(१९)

दुराव नांहीं परदा नहीं सा,
शंका नहीं सा धड़का नहीं सा।
पूरा भरोसा अपना बना सा,
न भेद है अन्तर है नहीं सा।।

(२०)

अशान्ति होणी नहिं चायजे सा,
उद्वेग होणो नहिं चायजे सा।
तटस्थ आपां भल हो सकां छां,
विकार नाहीं पण चायजे सा।।

(२१)

हो सत्य खारा न कभी कहें सा,
असत्य मीठा न कभी कहें सा,
जराक झूठा न कभी कहें सा,
मीठा सही सत्य सदा कहें सा ॥

(२२)

शरीरसेवा न पराश्रिता हो,
विहार आहार बंधा हुआ हो।
प्रसन्न मुद्रा अपनी सदा हो,
विचार आचार सधा हुआ हो ॥

(२३)

शरीर दो आतम एक है सा,
स्वरूप संयुक्त सदैव है सा।
नहीं जरा भी अलगाव है सा,
है अर्धनारीश्वर रूप ऐसा ॥

(२४)

मनुष्य के से गुण दोष हैं सा,
समानरूपेण हमें मिले सा।
बेकार चिन्ता करनी न है सा,
संतोष शान्ती हमको मिले सा ॥

(२५)

भले बुरे की पहिचान है ही,
बुरा करें ना करना भला सा।
सूझे बुरा तो मन रोक रक्खें,
करें सदा ही तन से भला सा ॥

(२६)

विचार हो या कुछ ध्यान होवे,
संकल्प हो या कुछ काम होवे।
अच्छा बुरा या कुछ और होवे,
समान ही श्या बस एक होवे ।।

(२७)

शरीर को सा मन ठीक रक्खे,
बुद्धी रखे सा मन को ठिकाने।
आत्मा करे निर्मल बुद्धि भी सा,
आत्मा सही तो सब ही ठिकाने ।।

(२८)

शरीर दो हैं तब दो दिखाते,
सा वस्तुतः दो नहिं एक ही है।
विचार भावादि सभी हमारे,
अस्तित्व जो है सब एक ही है ।।

(२९)

जरूरतें ही कम हों हमारी,
हों स्वावलम्बी जितना बने सा।
लेना पड़े तो हम काम ले लें,
चाहे न कोई करना भले सा ।।

(३०)

हो भावना सोच विचार या हो,
पै चाहिए शान्ति अभेद सा से।
इच्छा रहे सीमित दायरे में,
हो जाए पूरी निज भावना से ।।

(३१)

संभाल मेरी सब सा करेंगी,
सारी व्यवस्था उनसे बनेगी।
मैं ध्यान पूरा उनका रखूंगा,
जोड़ी हमारी इकड़ी बनेगी।।

(३२)

स्वभाव मेरा कुछ सख्त है ही,
सा भी करें भूल कभी कभी तो।
मौके बिना मैं जब जोर बोलूं,
होता मुझे है अफसोस भी तो।।

(३३)

वो सा यही सा यह सा वही सा,
सदैव सा से बनता सही सा।
सा से घटे सा बच जाए सा ही,
सा में जुड़े सा बन जाए सा ही।।

(३४)

सा से हुई है यह बात मेरी,
या मैं करूं जो लगता सही हो।
या मैं करूं वो उनकी सही से,
मेरी सही हो अथवा नहीं हो।।

(३५)

छोटी बड़ी जो कुछ बात होवे,
करूं न चिन्ता गहरा सतोला।
सा के भरोसे खुद के भरोसे,
सदा रहूं मैं मन मस्त मोला।।

(३६)

मैं और सा भी तफसील छोड़ें,
थोड़े जनों से व्यवहार जोड़ें।
बातें करें नैतिक प्रेम से तो,
गुस्सा व चिन्ता अफसोस छोड़ें।।

(३७)

प्रिया करे सो प्रिय के लिए हो,
प्रिया लिए ही प्रिय का किया हो।
निःस्वार्थ होना प्रियको प्रियाको,
चाहें न लेना, दिल ही दिया हो।।

(३८)

मुझे जरा भी नहिं चाहना जो,
खयाल क्यों हो उसका जरा भी।
अच्छा बुरा जो कुछ भी रहे तो,
चिंता करूं क्यों उसकी जरा भी।।

(३९)

मेरा व सा का नहिं द्वित्त बाकी,
एकत्व का हो व्यवहार पक्का।
बाकी रही मंजिल पार होवे,
हो सच्चिदानन्द स्वरूप पक्का।।

(४०)

सेवा मुझे जो चहिए किसी की,
सा ही करेंगी उसकी व्यवस्था।
सा से बने सो खुद वे करेंगी,
बाकी करेंगी कुछ भी व्यवस्था।।

(४१)

सा का व मेरा कुछ सोचना है,
न्यारा जरा सा यह देखता हूं।
जो भेद है सो चल ही रहा है,
कैसे मिटेगा यह देखता हूं ॥

(४२)

मेरे लिए त्याग किया खुशी से,
सा ने सदा सो सब सामने है।
सा के लिए भी कुछ तो करूं मैं,
यही कसौटी अब सामने है ॥

(४३)

कोई न मेरे वस में यहां है,
मैं भी किसी के वस में कहां हूं।
.. और मैं आपस में मिलेंगे,
सा हो जहां भी वस में वहां हूं ॥

(४४)

हो ऐक्य सच्चा परिवार मांहीं,
हो ऐक्य पूरा हर गांव मांहीं।
हो एकता राज्य व राष्ट्र मांही,
हो एकता विश्व तमाम मांहीं ॥

(४५)

सुधा कई झंझट झेलता है,
शाबास दूं हिम्मत के लिए मैं।
है लोकवाणी फिर राजनीती,
आशीस देऊं जय के लिए मैं ॥

(४६)

प्यारे दुलारे कइ एक मेरे,
जराक चिन्ता उनको न होवे ।
चिन्ता उन्हें सो मुझको सतावे,
चिन्ता जरा भी अपनी न होवे ॥

(४७)

प्यारे जनों को नहिं होय चिन्ता,
उदास प्यारे मुखड़े न होवें ।
मुझे उन्हों की नहिं होय चिन्ता,
ऐसे कभी कारण भी न होवें ॥

(४८)

सिद्धार्थ भैया मुनि और आशू,
तीनों हुए पास द्वितीय श्रेणी ।
चिन्ता मिटी है उनकी हमारी,
नहीं मिली यद्यपि उच्च श्रेणी ॥

(४९)

यहां वहां आज तथा सदा ही,
सा और मैं एक बने रहेंगे ।
अभेद होगा तब वो तथा मैं,
न्यारे नहीं एक बने रहेंगे ॥

(५०)

सा के व मेरे कुछ भेद सा है,
उसे मिटाना हमको पड़ेगा ।
सा मोड़ लेंगी अपनी दिशा को,
नहीं मुझे ही मुड़ना पड़ेगा ॥

(५१)

जो भेद सा था मिट वो गया है,
न दो जने हैं बस एक ही हैं ।
जो बात मेरी वहि बात सा की,
शरीर दो हों दिल एक ही है ।।

(५२)

दुर्गा भवानी हम देखते थे,
शान्ता उसी का शुभ नाम देखा ।
दुर्गा व शान्ता भइ एक रूपा,
महान संयोग विशेष देखा ।।

(५३)

शान्ताकुमारी अपनी सुपुत्री,
कन्याकुमारी प्रिय इष्ट देवी ।
हैं एक दोनों शुभशब्दरूपा,
पुत्री कहें या निज इष्ट देवी ।।

(५४)

जन्माष्टमी का दिन आज अच्छा,
तभी हमें मोहन याद आया ।
पैदा हुआ था वह आज ही सो,
सहर्ष जन्मोत्सव भी मनाया ।।

(५५)

बाई हमें शाश्वत देखती है,
वो प्रेरणा भी सब दे रही है ।
बेकार चिन्ता करती नहीं है,
वही व्यवस्था कर ही रही है ।।

(५६)

सा को कभी नींद मिले सुहानी,
नहीं कभी बिल्कुल नींद ग्राती।
पता नहीं कारण कौन होता,
इसीलिए नांहि उपाय होता ॥

(५७)

श्यामाशकू का कमलासुधा का,
प्रेमा दया मोहन सोहना का।
उमा हरी बालक चेलकों का,
विचार ग्राता रहता सबों का ॥

(५८)

बेटी हमारी दिल की दुलारी,
माता हमारी ममतामयी है।
पत्नी सदा संगिनि है हमारी,
तू शक्ति रूपा करुणामयी है ॥

(५९)

माता भले ही बहिना भले ही,
पत्नी भले ही बिटिया भले ही।
है एक ही तो वह शक्ति तेरी,
विभिन्न नामादिक हों भले ही ॥

(६०)

हो देवि सारे जग की भलाई,
हो राष्ट्र की भारत की भलाई।
प्यारे जनों की सब की भलाई,
होवे हमारी ग्रपनी भलाई ॥

(६१)

बड़ी समस्या उलझी हुई है,
मुझे नहीं मारग सूझता है।
सहायता सा करतीं खुशी से,
नहीं उन्हें भी हल सूझता है ।।

(६२)

हरीश का जो कल ऑपरेशन्,
प्रसिद्ध जी. सी. कर से हुआ है।
डेढ़ेक घण्टा उसमें लगा पै,
वो ऑपरेशन् बढ़िया हुआ है ।।

(६३)

शरीर सेवा चहिए मुझे जो,
स्वीकार हो केवल इच्छुकों को।
मुझे भले ही तकलीफ होवे,
स्वीकार सेवा न अनिच्छुकों की ।।

(६४)

सुधा मुनी सालगिरे मनाई,
कालै हुई गोठ उड़ी मिठाई।
असीस माला खुश ह्वै र पाछै,
दोन्यू जणां नै दिल सूं दिलाई ।।

(६५)

राजी मेरा चित्त है, बढ़िया तुमरा काज।
विकसित तुम होते रहो, प्यारे मेरे श्याम ।।

(६६)

स्वस्थ रहो खुश दिल रहो, तन मन से बलवान।
आपा जैसे तुम बनो, पक्के निष्ठावान ॥

(६७)

छोटी बड़ी जो कुछ बात होवे,
करूं न चिन्ता गहरा सतोला।
सा के भरोसे खुद के भरोसे,
सदा रहूं मैं मन मस्त मोला ॥

(६८)

लिछमी जलमी शुभ घड़ी, सागे लिछमी रूप।
हीरा नै चिमका दियो, देकर रतन अनूप ॥

(६९)

सान्ता गहरी रम रही, जीं को यो विस्तार।
लिछमी काली सुरसती, तीन्यां को औतार ॥

(७०)

वच्ची सुस्सी वह रही, सीतल निर्मल धार।
सान्ता की लीनी जगां, पायो प्यार अपार ॥

(७१)

चितरा सूं आसा करां, करसी बढ़िया काम।
दया प्रेम कमला सकू, सोवै उमा तमाम॥

(७२)

आभा विभा सुभा मुनी, दुर्गा ववलि अनाम।
वांके विच में आ गयी, जगमग ज्योति सुनाम॥

(७३)

मिली खबर कल फोन से, चला गया सुखदेव।
कितना मेरा मोह था, था अभिन्न सुखदेव॥

(७४)

कमला के गुटकी हुई, शक्ती रखा नाम।
'जलवा' का है आज दिन, उत्सव अपने धाम॥

(७५)

बापू कहीं भी दिखते नहीं है,
खोजे कहां वो मिलते नहीं हैं।
विचार कोरा उनका धरा है,
यहां जरा काम वहां जरा है॥

(७६)

आशु और वसन्त मुनि की बोलते जय बोलते।
आभा विभा गुन्नू उमा की बोलते जय बोलते॥
छोटी मुनी छोटे भया की बोलते जय बोलते।
अतुल और बड़े भया की बोलते जय बोलते।

(७७)

श्यामा सुशीला की रतन की बोलते जय बोलते ।
मोहन हरी सोहन सुधा की बोलते जय बोलते ।।
प्रेमा शकू कमला दया की बोलते जय बोलते ।।
नन्हें गुटी बबली छुटी की बोलते जय बोलते ।।

(७८)

गोपाल की चित्रा गुडी की बोलते जय बोलते ।
वनस्थली दोनों कुटी की बोलते जय बोलते ।।
मातृ मन्दिर लोकवाणी की सदा जय बोलते ।
बाइ की आपा सभी की बोलते जय बोलते ।।

(७९)

कहो कथा क्या अपनी सुनाएं,
श्यामा सुधा सा सब जूझते हैं ।
आसार पूरी अब जीत के हैं,
प्यारे हमारे सब जूझते हैं ।।

(८०)

आनन्द माता सबका मनाऊं,
हो छत्रछाया सब पै तिहारी ।
प्यारे जनों को तुम स्वस्थ एवं,
प्रसन्न रक्खो जननी पियारी ।।

(८१)

प्यारे जनों को तकलीफ ना हो,
हमें भले हो तकलीफ भारी ।
प्यारे जनों को यदि होय चिन्ता,
चिन्ता हमें भी तब होय भारी ।।

(८२)

बाई सुशीला रतना पियारी,
हैं शक्तियां तीन बड़ी हमारी ।।
बाई दुलारी शिवशक्तिधारी,
है प्रेरणाशक्ति सदा हमारी ।।

(८३)

पैली तो हजरत मिल्या,
फेर मिल्या कप्तान ।
पाछै मन्नै सा मिल्या,
तीन्यूं एक समान ।।

(८४)

सामान्य हो याकि विशेष होवे,
मांगी हमारे दिल की दिला दे ।
चिन्ता व्यथा को दिल से हटा दे,
मुराद पूरी दिल की करा दे ।

(८५)

अभिन्न है सा प्रिय सा प्रिया से,
अभिन्न है सा प्रिय से प्रिया सा ।
अभिन्न सा है प्रिय से प्रिया से,
अभिन्नसत्ता प्रिय सा प्रिया सा ।।

(८६)

उत्कण्ठित मेरा हृदय, मिलन हेतु परिवार ।
उत्कण्ठा कुण्ठित करे, कठिन कठोर विचार ।।

(८७)

गांधी हुए खास बड़े महात्मा,
प्यारे बने सादर राष्ट्रबापू।
जानें न मानें उपदेश कोई,
कोरे रहे वे अब राष्ट्रबापू ॥

(८८)

मैं सोचता हूं तुम जो न जाते,
क्या राष्ट्र का सुन्दर हाल होता।
वनस्थली का खुद का हमारा,
कदाच न्यारा सब हाल होता ॥

(८९)

मा के दुलारे तुमको नमामः
बा के पियारे तुमको नमामः।
बापू हमारे तुमको नमामः,
सहस्रवारं तुमको नमामः ॥

(९०)

क्या चाहता मैं बिटिया ! बताऊं,
प्यारे जनों का सुख मैं मनाऊं।
बाई सुखी हो दुलरे दुलारी,
सारे सुखी हों बिटिया ! हमारी ॥

(९१)

तुझे इन्हीं से पहिचानते हैं,
बाकी जरा भी नहिं जानते हैं।
है शक्ति तेरी सब प्यार में ही,
है प्यार तेरा हम जानते हैं ॥

(९२)

मुझे सदा शंकर ये वतातीं,
औ पार्वती मैं इनको वताता।
मिले हुए शंकर पार्वती जो,
सो अर्धनारीश्वर मैं वताता॥

(९३)

शब्दार्थ जैसे मिल जो रहे हैं,
वो पार्वती औ परमेश्वरा हैं।
सा सा मिला रूप वता रहे हैं,
सो अर्धनारीपरमेश्वरा हैं॥

(९४)

जैसे रहा पब्लिक में हमेशा,
लेगा सुधा स्थान विशेष मेरा।
सुराजनीती अरु लोकवाणी,
फूले फले आशिर्वाद मेरा॥

(९५)

पाबन्दि होगी अरु पुख्तगी भी,
सख्ती जरूरी नरमी जरूरी।
कभी न चूकूं अपना निशाना,
ठंडी जरूरी गरमी जरूरी॥

(९६)

भली वहादुर तुम वनो, वड़ा करो शुभ काम।
प्राणों से प्यारी मुनी उज्जवल करना नाम॥

(९७)

किया जिन्होंने उपकार मेरा,
हुआ जिन्हीं से व्यवहार मेरा।
मिला जिन्हों को कुछ प्यार मेरा,
संसार सारा परिवार मेरा।

(९८)

स्वस्थ रहो राज़ी रहो, शक्ति बढ़े दिन रात।
आपा आशिष दे रहे, श्याम दुलारे तात ॥

(९९)

मुझसे बढ़कर तू बने, उन्नति हो बेनाप।
वनस्थली चमकाय दे, तेरा कार्यकलाप ॥

(१००)

सा और सा मांहि अभेद ही है,
अभेद में भी कुछ भेद सा है।
हो एक सत्ता तन दो भले हों,
रहे नहीं जो कुछ भेद सा है ॥

सत्कर्म : कर्मक्षेत्र

(१)

शुभकर्म करें तन से मन से,
न रुकें न झुकें न टरें डर से।
अधिकार यही करते ही चलें,
फलहेतु कभी न ज़िया तरसे ॥
विसवास बड़ा अपना हमको,
हमको न जरा दुविधा दरसे।
किमु आस करें इससे उससे,
हम आस करें न विसम्भर से ॥

(२)

दशा हमारे इस देश की जो,
बनी उसी में हमको निभाना।
सत्कार्य पूरे सब हों हमारे,
भला बुरा जो गुजरे जमाना ॥

(३)

सम्पूर्ण निष्ठा शुभ काम में हो,
तभी किसी से शुभ काम होगा।
सदा करेगा शुभ काम बन्दा,
कल्याणकारी परिणाम होगा ॥

(४)

सदा सभी हों शुभ काम पूरे,
प्रसन्न मुद्रा रहनी हमारी।
सदा भला हो सबका भला हो,
प्रसन्न आत्मा चहती हमारी ॥

(५)

कुटीर है जीवन – तत्व वाली,
है सत्य शान्ती अरु न्यायवाली ।
सिद्धान्त चौथा सत्कार्यसिद्धी,
ऐसी हमारी कुटिया निरा ल

(६)

जो हो जमाना करनी न चिन्ता,
कर्त्तव्य पूरा करना खुशी से ।
चिन्ता किये से मिलता कभी क्या,
चिन्ता विना कर्म करें खुशी से ।

(७)

दुष्कर्म चाहे करना बुरा है,
सत्कार्य चाहे करना भला है ।
दुष्कर्मकारी सुख पा रहे हैं,
सत्कार्यकारी दुख पा रहे हैं ।।

(८)

आनन्ददायी ममतामयी तू,
मैया हमारे दिल में बसी है ।
कहें तुझे सो सुनती हमारी ।
पूरी सुरक्षा करती हमारी ।।

(९)

संकल्पसिद्धी पुख्ता हमारी,
यही हमें तो लगता रहा है ।
पूरे हमारे सब कौल होंगे,
यही हमेशा दिखता रहा है ।।

(१०)

पूजा करू मैं किसकी बताओ,
मैं ध्यान बोलो किसका लगाऊ ।
विचार आता जप पाठ कैसा,
सत्कार्य में मैं मन को रमाऊं ।।

(११)

प्रयत्न चालू रखता रहूंगा,
सोचू यही मैं परिणाम जो हो ।
प्रयत्न अच्छा परिणाम अच्छा,
जानू यही मैं फिर हो नहीं हो ।।

(१२)

हालात सारे इस देश में तो,
बने हुए हैं बिगड़े हुए हैं ।
आगे उन्हीं में बढ़ना पड़ेगा,
इसीलिए मस्त जमे हुए हैं ।।

(१३)

जो हो गया सो अब हो चुका है,
बीते हुए का अफसोस क्यों हो ।
आगे संभालो रख सावधानी,
गल्ती न हो तो अफसोस क्यों हो ।।

(१४)

छिपा हुआ जो कुछ काम होवे,
ग्लानी उसी से हम चाहते हैं ।
हमें न चाहे परहेज रक्खें,
मुक्ती उसी से हम चाहते हैं ।।

(१५)

भला करेंगे सब सिद्धि होगी,
विश्वास होना सबसे जरूरी ।
सत्कार्य होना सत् के लिए ही,
निःस्वार्थ होना सबसे जरूरी ॥

(१६)

मेरा मना तू बन मस्तमौला,
नहीं किसी के रहना भरोसे ।
नहीं किसी से रखनी अपेक्षा,
सदा सुखी हो अपने भरोसे ॥

(१७)

जो काम मैंने अपना लिया है,
उसे खुशी से करता रहूंगा ।
जहां-जहां से जितनी मिलेगी,
सहायता ले करता रहूंगा ॥

(१८)

सही बनाएं हम योजनाएं
चला करें नित्य सही दिशा में ।
सही नतीजा मिलता रहेगा,
क्रिया करें यत्न सही दिशा में ॥

(१९)

आवै खुशी सूं चल दे खुशी सूं,
आवै न जावै अटकाव कांई ।
बोलै खुशी सूं चुप रै खुशी सूं,
बोलै न चालै अटकाव कांई ॥

(२०)

कैलाश होगा जग में जहां भी,
चले महादेव वहीं चलेंगे ।
वनस्थली जो दिल में वसी है,
वापू वहीं शंकर से रमेंगे ।।

(२१)

विचार हो सो निज काम का हो,
वेकार चिन्ता करना नहीं सा ।
सवाल आवे तव सामना हो,
थोथी व्यथा में पड़ना नहीं सा ।।

(२२)

शुरू किया था अपनी खुशी से,
चला रहे हैं अपनी खुशी से ।
निमित्त वाई अपनी वनी सा,
करें किसी पै अहसान क्या सा ।।

(२३)

कर्त्तव्य है सो करते सदा सा,
प्रसन्न होके करना सदा सा ।
कर्त्तव्य ना हो करना नहीं सा,
विषाद लाना मन में नहीं सा ।।

(२४)

नहीं रखेंगे खटका जरा भी,
कभी किसी के व्यवहार से सा ।
प्रसन्नता भीतर की प्रकाशे,
मीठे हमारे व्यवहार से सा ।।

(२५)

कभी उपालम्भ न दो किसी को,
नहीं किसी को उपदेश दो सा।
कभी जंचे तो हंसते हुए से,
संकेत थोड़ा चुपके करो सा॥

(२६)

यहां वहां से कुछ तो सहारा,
लेना सदा ही मुझको पड़ेगा।
न शर्त कोई न विवाद कोई,
लूंगा जहां से जितना मिलेगा॥

(२७)

वनस्थली है हमरी पियारी,
वनस्थली के हम हैं पियारे।
हस्ती जुड़ी है इसकी हमारी,
न्यारी न है ये हम हैं न न्यारे॥

(२८)

बिना अपेक्षा समभाव से भी,
प्रत्यक्ष सत्कार्य करें खुशी से।
होवे नहीं अन्य उपासना तो,
या साधना भी तज दें खुशी से॥

(२९)

डर नहीं सा झिझकें नहीं सा,
पराक्रमी निर्भय हो चलें सा।
वहादुरी से कठिनाइयों का,
मुकावला ही करते चलें सा॥

(३०)

सर्वत्र मेरी समदृष्टि होनी,
प्रसन्नता शान्ति सदैव होनी।
चाहूं सभी के दुख को मिटाना,
मांगू किसी से नहिं एवजाना ॥

(३१)

कभी किसी से कुछ काम लेना,
लगे जरूरी झट बोल देना।
आशा किसी से करना न ज्यादा,
निराश होना मन को न देना ॥

(३२)

पूरी सुनूं मैं जब दूसरों से,
थोड़ी सुनाऊं अपनी तभी मैं।
जो जोश हो वो सब दूसरों का,
ठण्डी सुनाऊं अपनी सभी मैं ॥

(३३)

लेना न देना जिससे जरा भी,
क्यों बात भी वो करनी किसी से।
न हो अपेक्षा नहिं चाहना हो,
नाराज होना तब क्यों किसी से ॥

(३४)

किये चलूं जो करना मुझे हो,
सन्देह बाकी रखना नहीं है।
निःशंक हो के करना सदा ही,
शंका रहे तो करना नहीं है ॥

(४५)

संकल्प मेरा वन ही रहा है,
भले करूं मैं न करूं प्रतिज्ञा।
यां विश्वविद्यालय तो बनेगा,
संकल्प होवे अथवा प्रतिज्ञा ॥

(४६)

गाड़ी हमारी पटरी चढ़ी है,
सही दिशा में चलती रहेगी।
निश्चिन्त पूरे हम हो रहे हैं,
जल्दी ठिकाने पहुंची रहेगी ॥

(४७)

हमें उजाला दिखने लगा है,
आगे दिशा भी खुलने लगी है।
पूरे हमारे सब काम होंगे,
आशा हमारी बंधने लगी है ॥

(४८)

ज्यादा रही है अनुकूलता ही,
आया नतीजा अनुकल ही है।
कभी दिखायी प्रतिकूलता तो,
सो भी नतीजा अनुकूल ही है ॥

(४९)

मनुष्य मेरे नजदीक काफ़ी,
मुझे सहारा नहिं है किसी का।
ऐसी स्थिती में पहुंचू खुशी से,
नहीं सहारा चहिए किसी का ॥

(५०)

सत्कार्य में ही रमता रहूं मैं,
विचार अच्छे करता रहूं मैं।
निश्चिंत पूरा रहता रहूं मैं,
मां का भरोसा रखता रहूं मैं ॥

(५१)

कठोर भारी सब काम मेरा,
तभी सभी से सहयोग चाहूं।
मेरा निजी है कुछ काम ऐसा,
जिसके लिए भी इमदाद चाहूं ॥

(५२)

मैं तो वही हूं पर हो गया क्या,
तटस्थ जैसा अब हो रहा हूं।
कर्त्तव्य पूरा करदूं बने तो,
बाकी सभी से हट मैं रहा हूं ॥

(५३)

क्या मोह था क्या ममता भरी थी,
पीछे किन्हीं के दिल दौड़ता था।
पीछा छुड़ाते लगते मुझे थे,
परन्तु मैं तो नहिं छोड़ता था ॥

(५४)

सतत कार्य हमें करना पड़े,
उचित कर्म सदा करना भला।
न फल की करनी परवा कभी,
सुखद शान्ति सदा रखना भला ॥

(५५)

संसार में मानव का सहारा,
सुना हुआ केवल राम ही है।
सत्कार्य के आश्रय में जिऊं मैं,
मेरे लिए तो वह राम ही है ।।

(५६)

है राम तो निश्चय ही करेगा,
सत्कार्य है निश्चय ही बनेगा।
सत्कार्यकर्ता यह बोलता है,
सत्कार्य होगा तन या गिरेगा ।।

(५७)

बने भला तो सबका किया करूं,
नहीं किसी से कुछ भी चहा करूं।
न रोष वा द्वेष कभी किया करूं,
प्रसन्न सारे जग से रहा करूं ।।

(५८)

कर्त्तव्य जो है करना पड़ेगा,
करें नहीं क्यों अपनी खशी से।
न शक्ति को बाहर खोजना है,
शान्ती मिले भीतर की खुशी से ।।

(५९)

मनुष्य में, भक्ति जरूर होनी,
ज्यादा न होवै पर ज्ञान होना।
सत्कर्म होना सबसे जरूरी,
सो ज्ञानभक्तीमय कर्म होना ।।

(६०)

करूं मरूं मैं यह मंत्र मेरा,
या काम साधूं तन या गिराऊं ।
उद्देश्य पूरा करके रहूं मैं,
मातेश्वरी से यह शक्ति पाऊं ।।

(६१)

स्वधर्म सत्कर्म सदा किया करूं,
नहीं अपेक्षा फल की किया करूं।
न लूं किसी से सब को दिया करूं
प्रतिक्षणं मैं सुख से जिया करूं।।

(६२)

जिसे किये से सबका भला हो,
सत्कार्य होता परमार्थ युक्तम् ।
[illegible]ा किसी का जिससे न होता,
सत्कार्य वो जो नहिं स्वार्थयुक्तम् ।।

(६३)

संकल्प पक्का करना पड़ेगा,
जरूर पीछे पड़ना पड़ेगा ।
सम्पूर्ण आयोजन सोचना है,
तमाम गुंजाइश खोजना है ।।

(६४)

अंगीकृतं कार्य बचा हुआ जो,
पूरा उसे तो करना जरूरी।
संकल्प पीछे करना नहीं है,
हो जाए सो ही करना जरूरी ।।

(६५)

मुझे कहां क्या करना पड़ेगा,
सो तो नहीं मैं कुछ जानता हूं।
आराम से हो तकलीफ से हो,
पै काम होगा यह मानता हूं॥

(६६)

जो कर्म मेरा निज धर्म होवे,
उसे खुशी से करता रहूं मैं।
बाकी करूं चिन्तन आत्म का ही
यों आत्मसाक्षात् करता रहूं मैं॥

(६७)

अधीन हो जो कुछ काम मेरे,
मैं भूत होके उसको समेटूं।
कैसे चलाऊं बस दूसरों पै,
कैसी कला से उनको समेटूं॥

(६८)

न काम मेरा भगवान का है,
चिन्ता मुझे क्यों भगवान को हो।
संकोच क्यों हो मुझ को जरा भी
संकोच हो तो भगवान को हो॥

(६९)

आशा करूं मैं न निराश होऊं,
निश्चिन्त होऊं न सचिन्त होऊं।
स्वधर्म में मैं तल्लीन होऊं,
मैं आप में ही अलमस्त होऊं॥

(७०)

विचार संकल्प करूं नहीं मैं,
नहीं प्रतिज्ञा करनी मुझे है।
जो काम हो सो फल जो मिले सो,
नहीं फलाशा रखनी मुझे है ।।

(७१)

हो कष्ट में तो करुणा करेगी,
प्रयास में शक्ति अवश्य देगी।
है देवि तेरा हमको भरोसा,
तू पार नैया हमरी करेगी ।।

(७२)

अंगीकृतं धर्म निभा रहे हैं,
वनस्थली काम चला रहे हैं।
जो शक्ति आवश्यक सो दिला दे,
दयामयी देवि मना रहे हैं ।।

(७३)

विशेष कार्यक्रम लोकवाणी,
आया अभी भी वस में नहीं है।
मातेश्वरी साधन तू जुटा दे,
तुझे हमारा कहना यही है ।।

(७४)

वैराग्य मेरा बढ़ ही रहा है,
ममत्व मेरा घट ही रहा है।
कर्त्तव्य पूरा करता रहूंगा,
सो मैं खुशी से करता रहूंगा ।।

(७५)

वनस्थली के काम में, बढ़ना चहिए प्राण ।
कमजोरी अरु पोल से, होना चहिए त्राण ।।

(७६)

नहीं ढिलाई चाहिए, नहीं चाहिए पोल ।
पाबन्दी ही चाहिए, यही हमारा कोल ।।

(७७)

वनस्थली का जब काम नक्की,
हो जाएगा मैं तब देखलूंगा ।
अच्छा करूंगा सबके हिताय,
क्या श्रेष्ठ है सो सब देख लूंगा ।।

(७८)

न काम हो तो तकलीफ क्यों दें,
जो काम होवे मिल लें सभी से ।
बेकार मानें नहिं खास मानें,
समान सा भाव रखें सभी से ।।

(७९)

जो विश्वविद्यालय ना बने तो,
बिगाड़ होता दिखता नहीं है ।
प्रयत्न से वो बन जाय तो भी,
सुधार होता दिखता नहीं है ।।

(८०)

भला करो और बुरा न सोचो,
आराम छोड़ो तकलीफ पाओ।
अशान्ति त्यागो सुविधा न सोचो,
सत्कर्म में से सुख शान्ति पाओ ।।

(८१)

है एक ऐसा जिसने कहा यों,
चन्दा न दूंगा मिलने न आओ।
है दूसरा जो दिल खोल बोला,
चन्दा तथा भोजन साथ पाओ ।।

(८२)

तारीफ सच्ची करते कई हैं,
कोई बड़ाई नकली करें या।
सहायता दें नहिं दे सकें या,
सच्ची बड़ाई नकली करें या ।।

(८३)

पूरा करूं काम कुटीर का मैं,
पूरा करूं मैं अखबार का भी।
वनस्थली का करता रहूं मैं,
लूं हाथ में काम प्रचार का भी ।।

(८४)

दबाव भारी अपना कुटी का,
दबाव भारी अखबार का है।
चिन्ता नहीं खास वनस्थली की,
आगे बड़ा काम प्रचार का है ।।

(८५)

पूरी करूं दौड़ यहां वहां मैं,
सा का सहारा मुझको मिलेगा ।
सोचा हुआ जोहि मिले रुपय्या,
तो चैन का सांस हमें मिलेगा ।।

(८६)

सुधाकरां का अखबार याद है,
वनस्थली का कुछ ध्यान है मुझे।
भविष्य का सोच विचार हो भले,
अभी नशा और चढ़ा हुआ मुझे ।।

(८७)

आसान है मुश्किल ना जरा भी,
बहुत ही मुश्किल नांहि सीधा ।
कभी लगे क्या कबहूं लगे क्या,
पता नहीं मुश्किल या कि सीधा ।।

(८८)

जा सूझता है करता वही हूं,
जो हो नतीजा बस देखता हूं ।
उल्टा व सीधा कुछ भी पड़े सो,
उपाय क्या है सब झेलता हूं ।।

(८९)

थोड़ा हुआ ठीक सुधाकरां का,
हर्षाश्रुसुधारा बहने लगी ओम्।
नमः शिवायोम् नमः शिवायोम,
नमः शिवायोम नमः शिवायोम ।

(९०)

हल्का हुआ काम वनस्थली का,
बाकी बचा पूर्ण अवश्य होगा ।
पुकारते मन्दिर लोकवाणी,
सो भी समाधान अवश्य होगा ।।

(९१)

कभी लगे उत्तम काम होगा,
कभी लगे मध्यम ही बनेगा ।
कोई करे क्या कुछ भी कहो तो,
स्वीकार होगा वह जो बनेगा ।।

(९२)

मैं देश की खातिर क्या करूं सो,
विचार सारा करना दुबारा ।
सारी प्रणाली सब योजना का,
विचार होगा करना दुबारा ।।

(९३)

आयी हुई मंजिल पास मेरी,
बाकी पड़ी मंजिल है अधूरी ।
सा का सहारा मुझको मिलेगा,
होगी तभी मंजिल पार पूरी ।।

(९४)

फंदा पुराना झट काट दे तू,
भविष्य की भी कर दे व्यवस्था ।
स्वकर्म में मैं जब लीन होऊं,
निष्कामना की तब हो व्यवस्था ।।

(९५)

पड़ा पड़ा क्या करता रहूं मैं,
कितांक बोलूं किसको सुनाऊं
कितांक सोचूं कितना लिखूं मैं,
किता हरी का गुण गीत गाऊं ॥

(९६)

विश्वास आशा अरु धैर्य रक्खूं,
जो कष्ट हो सो सहना पड़ेगा ।
न शान रक्खूं अपमान हो तो,
उसे खुशी से सहना पड़ेगा ॥

(९७)

वनस्थली पत्र कुटीर के हों,
राजत्व के पन्थ फकीर के हों ।
हैं काम बेटी ! सब आपजी के,
हों कौल पूरे सब आपजी के ॥

(९८)

मैं ले रहा हूं अपनी परीक्षा,
जो पास में हैं उनकी परीक्षा ।
देखूं जरा क्या कर लूं अकेला,
सहायता के बिन ही अकेला ॥

(९९)

मैं चाहता सो सब जानती हो,
चाहूं न सो भी सब जानती हो ।
चाहूं नहीं सोहि निषिद्ध होवे,
जो चाहता सो सब सिद्ध होवे ॥

(१००)

सहायकों को कितनीक चिन्ता,
मेरी करें या खुद की वो चिन्ता ।
रहूं नहीं मैं पर के भरोसे,
रहूं स्वयं के घर के भरोसे ॥

शतक ४

संघर्ष : आत्मविश्वास

(१)

विश्वास-भक्ती हम चाहते हैं,
सद्भाव-शक्ती हम चाहते हैं।
सत्कार्यसिद्धी हम चाहते हैं,
सन्तोष-शान्ती हम चाहते हैं ।।

(२)

किसे बताऊं किसको सुनाऊं,
गुबार मेरे दिल का निकालूं ।
मेरी सुनें सो सब दूर बैठे,
आहें अकेला दिल की निकालूं ।।

(३)

जरा किसी से करना न आशा,
तभी न होगी कुछ भी निराशा ।
प्रयत्न पूरा करना हिहोगा,
मैया दया से सब सिद्ध होगा ।।

(४)

ऐसा करना पराया,
पक्का भरोसा निज का करो जी ।
सिद्धी मिलेगी जिसके भरोसे,
मैया भरोसे अथवा कहो जी ।।

(५)

घिरे हुए हैं हम मुश्किलों से,
निकास होना दिखता नहीं है ।
तथापि विश्वास दबंग मेरा,
देखो जरा भी दबता नहीं है ।।

(६)

आराम से हो तकलीफ से हो,
मुझे मिलें साधन जो जरूरी।
सदा बनेंगे सब काम मेरे,
नहीं रुकेगा कुछ भी जरूरी ॥

(७)

आंसू हमारे नयना निकारे,
सो क्या हमारे मन की व्यथा है।
प्रत्येक आंसू कहता चले है,
व्यथा कहो क्या दिल की कथा है ॥

(८)

विश्वास पक्का अपना बना है,
ढीला न होगा कुछ भी स्थिती हो।
तथापि तेरा मुझको सहारा,
लेना पड़ेगा कुछ भी स्थिती हो ॥

(९)

जरूरतें सीमित हो रही हैं,
पदार्थ भी सीमित हो रहे हैं।
मनुष्य भी सीमित हो रहे हैं,
लगाव भी सीमित हो रहे हैं ॥

(१०)

विश्वास मेरा बढ़ता हुआ है,
सन्देह होता मुझको नहीं है।
विचार मेरे दबते नहीं हैं,
जबान मेरी रुकती नहीं है ॥

(११)

कभी किसी से रखनी न आशा,
होगी बताओ तब क्यों निराशा।
शक्ती निजी से निश्चिन्त होना,
मुझे हमेशा अलमस्त होना ॥

(१२)

चढ़ाव आवै व उतार आवै,
आसा कदे हो कद हो निरासा।
गाड़ी भलां ही रुकती चलै छै,
चाल्यां चलैली भरपूर आसा ॥

(१३)

कभी कभी तो कुछ भी न सूझे,
सूझे घनेरी हमको कभी तो।
इसीलिए चक्कर हो कभी तो,
इसीलिए काम बनें कभी तो ॥

(१४)

कभी कभी तो हम हों खुशी में,
कभी कभी चिन्तन में पड़े हों।
खुशी भलें चिन्तन हो भले हो,
सदैव सीना तन के खड़े हों ॥

(१५)

विचार में था कल मैं सवेरे,
निश्चिन्त पीछे कुछ हो गया था।
ऐसी लगी टक्कर बाद में जो,
संभालना मुश्किल हो गया था ॥

(१५)

जाऊं कहां मैं नहिं सूझता है,
कहूं किसे क्या नहिं सूझता है।
सोचूं करूं क्या नहिं सूझता है,
नहीं मुझे तो कुछ सूझता है॥

(१७)

अशान्त तो मैं दिखता नहीं हूं,
निश्चिन्त भी तो लगता नहीं हूं।
जैसा बने सो कर मैं रहा हूं,
जो हो नतीजा निभ तो रहा हूं॥

(१८)

खारे कड़े स्वाद अनेक मीठे,
कभी खुशी हो फिर हो उदासी।
अच्छी बुरी सो अनुभूतियां हों,
आनन्द सा हो फिर हो व्यथा सी॥

(१९)

उपाय होगा सब काम होगा,
प्रकाश होगा भ्रम दूर होगा।
विचार होगा सुलझाव होगा,
संतोष होगा चित शान्त होगा॥

(२०)

जो मुश्किलें हैं हमको दिखातीं,
आसान होंगी हल भी मिलेगा।
अच्छी हमारी सब कोशिश हैं,
अच्छा नतीजा हमको मिलेगा॥

(२१)

सवाल टेढ़ा इक सामने है;
जवाव पक्का हमको दिखाना।
जहां उजाला दिखता नहीं है,
रस्ता वहीं तो हमको दिखाना ।।

(२२)

कभी कभी काम अनेक होते,
कभी कभी वे कम ही दिखाते।
आधार होता कुछ दूसरों का,
हिसाव मेरे लगने न पाते ।।

(२३)

सोचूं सुचाऊं कुछ भी नहीं मैं,
दिमाग मेरा चलता नहीं है।
आलस्य में मैं दुबका पड़ा हूं,
शरीर मेरा हिलता नहीं है ।।

(२४)

बुद्धी ठिकाने मन है ठिकाने,
शरीर को भी वस में करेंगे।
हो कष्ट काफी नुकसान काफी,
बेकार धंधा हम क्यों करेंगे ।।

(२५)

अच्छे बुरे का नहिं है ठिकाना,
सारा जमाना वदला हुआ है।
हमें यहां जो चहिए मसाला,
सारा वही तो मंहगा हुआ है ।।

(२६)

डरें नहीं विघ्न भले डराएं,
मुकाबला हो जब विघ्न आएं ।
खाते रहें टक्कर विघ्न बाधा,
बहादुरी से हम जीत जाएं ॥

(२७)

अधीन मेरे कुछ भी नहीं है,
पूरा जहां हो बस दूसरों का ।
मेरे कहे ना कुछ हो सकेगा,
सारा चलेगा बस दूसरों का ॥

(२८)

प्रभाव मेरा मिट ही गया है,
घमण्ड था खण्डित हो गया है ।
जो जोर था गायब हो गया है,
बेहाल मेरा दिल हो गया है ॥

(२९)

जो चाहता सो मिल जायगा ही,
नहीं मिले मस्त बना रहूंगा ।
क्या खोजना है नकली जनों को,
मिले उसी से सब साध लूंगा ॥

(३०)

सवाल जो मुश्किल सामने है,
जवाब नक्की मिलता नहीं है ।
बुद्धी बताती हल एक जो है,
शरीर से वो मिलता नहीं है ॥

(३१)

आया नतीजा कल सामने जो,
आना वही था अफसोस क्या है।
जैसी स्थिती जो दिखती रही थी,
पक्की हुई वो तब सोच क्या है।।

(३२)

था ही नहीं सो मिलता कहां से,
है ही नहीं वो नहिं पावना है।
सहारा कुछ और खोजें,
सा के सहारे सुख पावना है।।

(३३)

प्रवाह है जीवन का सभी का,
निर्विघ्न होना व सविघ्न होना।
चढ़ाव आना व उतार आना,
कृतार्थ होना अकृतार्थ होना।।

(३४)

देती दिखायी कठिनाइयां जो,
मुकाबला मैं उनका करूंगा।
जो ना हटेंगी झट सामने से,
धक्का लगा दूर उन्हें करूंगा।।

(३५)

चोला उतारा जब से फटा है,
जंजाल झूठा जब से हटा है।
तमाम टंटा झगड़ा मिटा है,
सन्ताप मेरे दिल का मिटा है।।

(३६)

पहाड़ जैसा लगता कभी है,
मुझे जरा सा लगता कभी है।
जो हो मुझे निर्भय जूझना है,
शंका न होनी मुझको कभी है ॥

(३७)

जहां तहां चक्कर खा रहे हैं,
अनेक कार्यक्रम ले रहे हैं।
पहाड़ से टक्कर खा रहे हैं,
मजा जरा वेढव ले रहे हैं ॥

(३८)

विचार पक्का जब एक होवे,
आरूढ़ होना चहिए उसी पे।
किसी वहाने डुलना न होवे,
प्रयत्न से कायम हों उसी पे ॥

(३९)

जो काम पूरा करना पड़ा है,
पहाड़ जैसा लगता मुझे है।
किये चलेंगे सब ठीक होगा,
विश्वास पक्का इसका मुझे है ॥

(४०)

सवाल वोला अटक्या पड़्या छै,
विचार वांको करणो पड़ै छै।
जवाव श्री वेंकट की दया सूं,
तलाश वांका करणा पड़ै छै ॥

(४१)

पता नहीं है मुझको मिलेगा,
कहां कहां से कितना सहारा।
अवश्य मेरे सब काम होंगे,
पूरा रहेगा मिलता सहारा ।।

(४२)

विचित्र मेरे मन की दशा है,
संघर्ष सा भीतर हो रहा है।
देता दिखायी कुछ भी नहीं है,
आंखों अंधेरा बस हो रहा है ।।

(४३)

प्रकाश थोड़ा दिखने लगा है,
आशा जरा सी बंधने लगी है।
मैं ठोस देखूं कुछ सामने है,
हवा सुहानी चलने लगी है ।।

(४४)

सोचूं करूं क्या नहिं सूझता है,
सर्वत्र सूनापन छा रहा है।
मुझे उजाला नहिं दीखता है,
आगे अंधेरा जब छा रहा है ।।

(४५)

नहीं रुकूंगा चलता रहूंगा,
जैसा बनेगा करता रहूंगा।
चट्टान से भी मुठभेड़ लूंगा,
नहीं झुकूंगा टुकड़े करूंगा ।।

(४६)

अरणा चुकी मुश्किल आ पड़ी छै,
ओदी हुई छै मदरास में तो।
सुपुर्द होस्यूं भगवान कै मैं,
कमी न होसो विश्वास में तो ।।

(४७)

जो भी बने सो करते रहो जी,
बने नहीं तो करनी न चिन्ता।
लेते रहो जो मिलता रहे जी,
मिले नहीं तो करनी न चिन्ता ।।

(४८)

आशा निराशा कुछ भी नहीं है,
न फिक्र है बेफिकरी नहीं है।
दिमाग खाली न भरा हुआ है,
अजीब सी हालत हो रही है ।।

(४९)

सवाल चाहे कितने पड़े हों,
जवाब सारे दिख ही रहे हैं।
आशा यही है सब ठीक होगा,
प्रयत्न पूरे चल ही रहे हैं ।।

(५०)

विरक्ति मेरी बढ़ ही गयी है,
फिरण्ट मेरा मन हो रहा है।
बेगर्ज पूरा बनके रहूंगा,
संकल्प पक्का यह हो रहा है ।।

(५१)

कड़ी परीक्षा चलती हमारी,
सवाल टेढ़े कुछ आ रहे हैं।
उत्तीर्ण सारी करनी परीक्षा,
जवाब माकूल जुटा रहे हैं॥

(५२)

प्रयत्न चालू सब हो रहे हैं,
सवाल सारे हल हो रहे हैं।
कभी कभी चिन्तित हो रहे हैं,
निश्चिन्त बाकी हम हो रहे हैं॥

(५३)

उतार होते व चढ़ाव होते,
होते परेशान प्रसन्न होते।
संकल्प होते व विकल्प होते,
पूरे हमारे सब काम होते॥

(५४)

फंसी हुई है कठिनाइयों में,
प्यारी हमारी यह लोकवाणी।
मुकाबला मुश्किल है तभी भी,
फूले फलेगी यह लोकवाणी॥

(५५)

तूफान जैसा उठता कभी है,
हो शान्त जाता फिर वो कभी है।
विशेष चिन्ता उठती कभी है,
समस्त चिन्ता मिटती कभी है॥

(५६)

मैं काम की बात करूं सभी से,
बेकार बातें किससे करूं मैं।
फंसा अकेलेपन में हुआ हूं,
उपाय कैसे इसका करूं मैं।।

(५७)

मैं ही अकेला सब सोचता हूं,
जो है समस्या हल खोजता हूं।
सवाल मेरे व जवाब मेरे,
मैं ही सुनूं जो कुछ बोलता हूं।।

(५८)

दो तीन बातें अटकी हुई हैं,
अभी उन्हीं में रुक सा रहा हूं।
छलांग आगे अब मारनी है,
बेताब हो मैं उकता रहा हूं।।

(५९)

अधीन ज्यादातर दूसरों के,
पहाड़ सा काम अड़ा हुआ जो।
लेऊं जरा टक्कर जोर की मैं,
रहे नहीं काम पड़ा हुआ जो।।

(६०)

तूफान जैसे उठते कभी हैं,
डूबे हुए से लगते कभी हैं।
लगे किनारे दिखते कभी हैं,
निश्चिन्त जैसे लगत तभी हैं।।

(६१)

डरावना संकट छा रहा है,
मुकाबला मां करना पड़ेगा।
तेरा भरोसा हमको बड़ा है,
उबारना मां तुझको पड़ेगा॥

(६२)

उपाय सारे हम सोचते हैं,
यहां वहां चक्कर काटते हैं।
जो भी मिले सो हल खोजते हैं,
विपत्ति के से दिन काटते हैं॥

(६३)

थकान मेरे तन में न होवे,
तनाव मेरे मन में न होवे।
दबाव मेरे दिल में न होवे,
स्वभावतः शान्ति प्रसाद होवे॥

(६४)

जहां अंधेरा उठने लगा था,
वहां उजाला बढ़ ही रहा है।
शंका जहां पै उठने लगी थी,
वहां भरोसा बढ़ ही रहा है॥

(६५)

पूरा भरोसा भगवान का है,
जरूर अच्छा परिणाम होगा।
हो बीच में तो तकलीफ चाहे,
पक्का हमारा सब काम होगा॥

(६६)

छाया अंधेरा प्रतिकूलता का,
सही दिशा मैं नहिं देख पाता।
होती जरा व्याकुलता मुझे जो,
विश्वास मेरा पथ है दिखाता।।

(६७)

शरीर मेरा हिलता नहीं है,
दिमाग़ मेरा चलता नहीं है।
चेता कहीं भी टिकता नहीं है,
विश्वास तो भी डिगता नहीं है।।

(६८)

विचार मेरा बनता रहा है,
तथापि चेता डुलता रहा है।
संकल्प पक्का अब हो गया है,
सन्देह का लेश नहीं रहा है।।

(६९)

बढ़ा हुआ बेहद काम मेरे,
बोझा नहीं है महसूस होता।
चिन्ता नहीं है मुझको सताती,
दिमाग हल्का महसूस होता।

(७०)

कोई मिले कोमल भाव वाले,
चट्टान से भी मुठभेड़ होती।
कंजूस दाता यजमान दोनों,
आराम होता तकलीफ होती।।

(७१)

मातेश्वरी है सिर हाथ तेरा,
तेरे भरोसे हम मौज में हैं।
चिन्ता नहीं है नहि फिक्र ही है,
हैं मस्तमोला हम मोज में हैं ।।

(७२)

छै काम संगीन उठाय राख्या,
बोझो बडो छै कमजोर कांदा।
ईखान म्हारो सब काम साधै,
पड़े भलां ही तकलीक दांदा ।।

(७३)

सहानुभूती मुझसे रखे जो,
उसे सुनाऊं मन की व्यथा मैं।
जाने नहीं जो दिलदर्द मेरा,
उसे कहूं क्यों निजकी कथा मैं ।।

(७४)

हमें हमारा न पता जरा भी,
चलें चलावें बस दूसरों के।
प्रवाह के साथ बहे चले हैं,
लगें किनारे बस दूसरों के ।।

(७५)

जिम्मे हमारे तगड़ी व्यवस्था,
संगीन जिम्मा सिर बोझ भारी।
तथापि निश्चिन्त नहीं रहें तो,
जीना हमारा पड़ जाय भारी ।।

(७६)

कैसी भले ही प्रतिकूलता हो,
रस्ता रुका हो कितना हमारा।
आधार चाहे कुछ भी नहीं हो,
विश्वास पक्का रहता हमारा॥

(७७)

आयी नहीं रोकड़ हाथ में है,
नहीं किराया तक पास में है।
तथापि चिन्ता करता नहीं मैं,
कैसे चलेगा डरता नहीं मैं॥

(७८)

मेरा समाधान नहीं हुआ था,
संतोष तो भी कुछ हो रहा था।
पै मर्म की चोट लगी यहां है,
कैसे भरे घाव हुआ यहां है॥

(७९)

इच्छा न होती कुछ सोचने की,
न सूझती बात न खास कोई।
जो भी बनेगा बन जायगा ही,
चिन्ता मुझे तो करनी न कोई॥

(८०)

विचारधारा चलती न होवे,
विश्वास पक्का सब ठीक होगा।
बढ़े चलें बेखटके अगाड़ी,
आवाज आती सब ठीक होगा॥

(८१)

परिश्रम जो मुझसे बना किया,
जहां हुआ जो अपमान सो सहा।
महा यहां मानस दुःख जो हुआ,
मिला न चन्दा नुकसान सो सहा ।।

(८२)

जैसे महाभाव भरा हुआ हो,
जैसे नशा घोर चढ़ा हुआ हो।
धावा जहां बोल दिया हुआ हो,
कोई जहां वीर डटा हुआ हो ।।

(८३)

नहीं कहूं जो दिल में भरा है,
कहा चहूं तो किससे कहूं ।
जी की व्यथा को दिल मांहि राखूं
जो बीतती हो चुपके सहूं मैं ।।

(८४)

सवाल सारे यदि साथ लें तो,
बोझा इक्ट्ठा महसूस होता।
ल एक को लें फिर दूसरे को,
प्रत्येक का यों हल ठीक होता ।।

(८५)

विचार गम्भीर चला हुआ है,
ऐसा लगे सांस रुका हुआ है।
कोई नतीजा निकला नहीं है,
दिमाग जैसे अटका हुआ है ।।

(८६)

विचारधारा मतभेद भी हैं,
व्यक्तित्व का भी झगड़ा बड़ा है।
चारित्र्य का लोप बुरा हुआ है,
फंदा गले मानस के पड़ा है॥

(८७)

भूकम्प तूफान उठे भले ही,
फटे समूची धरती भले ही।
आकाश टूटे सिर पै भले ही,
न हो अशान्ती कुछ हो भले ही॥

(८८)

होगा न होगा किसको पता है,
पै मुश्किलों का सबको पता है।
न काम हो तो करना पड़े क्या,
सोचूं मुझे तो मरना पड़े क्या?

(८९)

दिमाग में सोच विचार ना हो,
महान संकल्प दबा हुआ हो।
हो शून्यता सी चहुँ ओर छायी,
ऐसा लगे सांस रुका हुआ हो॥

(९०)

सन्त्रस्त मैं हूं अरु दीन मैं हूं,
पड़ा अकेला असहाय मैं हूं।
उद्विग्न हूं चिन्तित हो रहा हूं,
तेरे सहारे असहाय मैं हूं॥

(६१)

दवाब भारी पड़ता रहा है,
थका हुआ सा अब हो रहा हूं।
तेरा सहारा लग जो रहा है,
तभी समुत्साहित हो रहा हूं॥

(६२)

नहीं प्रतिज्ञा कुछ भी करूं मैं,
संकल्प से मुक्त रहूं सदा मैं।
जो सामने हो करता रहूं मैं,
आनन्द में मग्न रहूं सदा मैं॥

(६३)

मैया मनाऊं मन से मनाऊं,
विषाद मेरे चित से हटा दो।
थका हुआ सा लगने लगा हूं,
तमाम बोझा सिर से हटा दो॥

(६४)

सवाल के चिह्न बने हुए हैं,
देता दिखायी धुंधला सभी है।
आशा व विश्वास बढ़े हुए हैं,
विचित्र मेरे मन की स्थिती है॥

(६५)

पड़ा रहूं तो कितना पड़ा रहूं,
कितीक मैं नींद कहो लिया करूं।
पढ़ूं कहो क्या कितना पढ़ा करूं,
चलूं कहां मैं कितना चला करूं॥

(९६)

शरीर मेरा हिलता नहीं है,
दिमाग़ मेरा चलता नहीं है।
तो भी भरोसा सब काम होगा,
सौ मुश्किलों का अब अन्त होगा ॥

(९७)

कड़ी परीक्षा यह हो रही है,
न सोचने में कुछ आ रहा है।
कैसा बनेगा कबसी बनेगा,
दिमाग ही चक्कर खा रहा है ॥

(९८)

हो अंधकार अथवा उजाला,
सपाट रस्ता मुझको मिलेगा।
कैसे बनेगा नहिं जानता हूं,
पै काम मेरा बढ़िया बनेगा ॥

(९९)

मेरे भरी है भरपूर शक्ती,
विश्वास भी है बलवान मेरा।
हजारहा मुश्किल हों भले ही,
अच्छा बनेगा सब काम मेरा ॥

(१००)

तूफान सा भीतर हो रहा है,
सूनापना बाहर हो रहा है।
मर्दानगी बेबस हो रही है,
अजीब सी हालत हो रही है ॥

प्रत्यक्षजीवनशास्त्र : ज्ञात, अज्ञेय

(१)

अनादिं अनन्तं अखंडं अभेद्यं,
अरूपं अनामं अमेयं नमामः।
अजातं अनाशं अदृश्यं अचिन्त्यं,
अजीर्णं पुराणं नवीनं नमामः ॥

(२)

न कामना मैं कुछ भी करूं कभी,
करूं कभी पूरण हो सभी तभी।
अपूर्ण जो भी मम कामना रही,
प्रपूर्ण ओंकार करें अभी वही ॥

(३)

संस्थानशक्ती हम चाहते हैं,
सत्संगशक्ती हम चाहते हैं।
संकल्पशक्ती हम चाहते हैं,
स्वायत्तशक्ती हम चाहते हैं ॥

(४)

करूं भरोसा किसका बताइए,
बढ़ूं कहां मैं पथ तो लखाइए।
करूं भला क्या मुझको सुनाइए,
नया उजाला कुछ तो दिखाइए ॥

(५)

सुस्वस्थ होना मन शान्त होना,
अशान्ति का तो नहि नाम होना।
जैसा बने सो करते हि जाना,
लगा रहेगा फल का ठिकाना ॥

(६)

दे दे खुशी से तब तो भले लें,
नहीं किसी से कुछ चाहना हो।
लेवे उसी को कुछ दे रहे हों,
सदा इसी में हमको खुशी हो ।।

(७)

कुछ काम नहीं कुछ क्रोध नहीं,
कुछ लोभ नहीं कुछ मोह नहीं।
कुछ राग नहीं कुछ द्वेष नहीं,
कुछ हर्ष नहीं कुछ शोक नहीं ।।
कुछ सांच नहीं कुछ झूंठ नहीं,
कुछ पुण्य नहीं कुछ पाप नहीं।
कुछ प्यार नहीं कुछ खार नहीं।
कुछ लेन नहीं कुछ देन नहीं ।।

(८)

जो है उसी को हम ठीक मानें,
वृथा असंतोष हमें नहीं हो।
बुरा हमें जो लगता कदाचित्,
अच्छा न जाने कब से यही हो ।।

(६)

न राग भी हो नहिं द्वेष भी हो,
समान दृष्टि चहिए हमारी।
आवे समस्या हल हो उसी का,
बनी रहे शांति सदा हमारी ।।

(१०)

मिलै जठी सूं इमदाद पाल्यां,
नहीं मिलै तो अपणों चलाल्यां।
ज्यो भी मिले सो खुश होर पाल्यां,
नहीं मिलै खास विना चलाल्यां ।।

(११)

हमें नहीं हो जिस गांव जाना,
रस्ता टटोलें उसका भला क्यों ।
जो काम हो ना करना नहीं हो,
हो कल्पना भी उसकी भला क्यों।।

(१२)

शरीर अच्छा रखना मुझे हो,
शान्ती मना की रखना मुझे हो ।
जो काम मेरा करना मुझे हो,
सहायता भीतर से मुझे हो ।।

(१३)

क्यों चावणों भी कतरो बुरो छै,
न पावणों भी कतरो बुरो छै ।
बुलावणों भी कतरो बुरो छै ।
उडीकणों भी कतरो बुरो छै ।।

(१४)

आने न आने महिं फ़र्क क्या है,
जाने न जाने महिं फ़र्क क्या है ।
होने न होने महिं फ़र्क क्या है,
जीने न जीने महिं फ़र्क क्या है ।।

(१५)

जो है व्यथा क्लेश उन्हें मिटाके,
निश्चिन्त होना हम चाहते है ।
बेकार सारे अब बन्धनों से,
उन्मुक्त होना हम चाहते हैं ।।

(१६)

जो सत्य है सो भगवान ही है,
सत्कर्म है सो भगवान ही ।
मनुष्यसेवा भगवानसेवा,
मनुष्य है सो भगवान ही है ॥

(१७)

भावें न बातें नकली किसी की,
सच्ची खरी बात हमें सुहावे ।
नहीं सुहावे यदि चापलूसी,
उद्दण्डता भी न हमें सुहावे ॥

(१८)

नहीं किसी पै अहसान मेरा,
नहीं किसीसे कुछ स्वार्थ मेरा ।
स्वायत्त स्वाधीन हिसाब मेरा,
होता खुशी से सब काम मेरा ॥

(१९)

जो मार्ग चाहो पकड़ो खुशी से,
चाहा हुआ काम करो खुशी से ।
चाहो चलो और करो खुशी से,
ले लो नतीजा हंसते खुशी से ।

(२०)

हुआ पुर्नजन्म पता नहीं है,
होगा नया सो नहिं जानते हैं ।
नहीं किसी को कुछ याद जूनी,
नयी न होगी यह मानते हैं ॥

(२१)

अच्छा भला जो लगता हमें हो,
वही यथाशक्ति करें हमेशा।
नहीं अपेक्षा फल की हमें हो,
समत्व शान्ती रखनी हमेशा ॥

(२२)

बना यहां ब्रह्म सुचारु मन्दिरम्,
उपासनास्थान अतीव सुन्दरम्।
भरे यहां शुद्ध सतोगुणार्णवम्,
प्रज्ञान सद्भक्ति सुधारसार्णवम् ॥

(२३)

हवा यहां स्नेहमयी बनी है,
अदृश्य सत्ता हम खोजते हैं।
मिटे दुखी का दुख देखते ही,
उपाय ऐसा हम खोजते हैं ॥

(२४)

जो शक्तियां भीतर ही छिपी हैं,
उन्हें नहीं बाहर खोजना है।
देखें जरा भीतर जो मिलें तो,
बेकार क्यों बाहर खोजना है ॥

(२५)

पता नहीं है मुझको जरा भी,
रहस्य क्या है इस जीवनी का।
अच्छा बने सो करता रहूं मैं,
यही नतीजा इस जीवनी का ॥

(२६)

उद्विग्न होना मुझको नहीं है,
उद्विग्न नाहीं करना किसी को ।
प्रसन्न मेरा रहना जरूरी,
नाराज नाही करना किसी को ॥

(२७)

सोचूं नहीं जो नहिं सोचना है,
बोलूं नहीं जो नहिं बोलना है ।
करूं नहीं जो करना नहीं है,
करूं वही जो करना सही है ॥

(२८)

थी शक्ति जो दुर्बलता वही थी,
दौर्बल्य था जो वह शक्ति होगी ।
मैंने किया निर्णय सोच के जो,
पैदा उसी से अब शक्ति होगी ॥

(२९)

छोटा रहेगा यदि गर्ज रक्खे,
बेगर्ज हो सो बनता बड़ा है ।
छोटा रहे वो यदि चाहता है,
चाहे नहीं तो बनता बड़ा है ॥

(३०)

अच्छा हुआ जो अथवा बुरा जो,
हो ही चुका सो नहिं सोचना है ।
बीते हुए का अफसोस क्या है,
आगे करें क्या यह सोचना है ॥

(३१)

कोई करे जो गलती बुराई,
मुझे जरा भी तकलीफ क्यों हो।
करे उसी को फल भोगना है,
मुझे पराई तकलीफ़ क्यों हो ॥

(३२)

विचारधारा सब स्पष्ट होवे,
उद्देश्य अस्पष्ट कभी न होवे।
सिद्धान्त का ध्यान सदैव होवे,
सदैव पक्का व्यवहार होवे ॥

(३३)

अनेकता में बस एकता है,
अभेद होता बस भेद मांही।
विरोध मांही अनुकूलता है,
आराम होता तकलीफ़ मांही ॥

(३४)

प्रत्यक्ष जो है दिखता नहीं है,
अच्छा बुरा भी लगता सही है।
संकल्प होता रुकता नहीं है,
जो चाहते सो मिलता नहीं है ॥

(३५)

धनाढ्य की दुर्गति देखते हैं,
अनन्त सन्ताप भरा पड़ा है।
दिमाग़ खोटा दिल है जरा सा,
असत्य पाखण्ड भरा पड़ा है।

(३६)

क्यों राज़ क्या है इस जिन्दगीका,
पैदा हुए क्यों मरते न क्यों है ?
आये कहां से चलना कहां है,
जाते चले क्यों रुकते न क्यों हैं ?

(३७)

प्रगाढ़ भक्ती सबसे बड़ी है,
निःस्वार्थता नम्बर दो हमारे।
न द्वेष हो बिल्कुल भी किसी से,
शान्ती सदा अन्तस में हमारे ।।

(३८)

शरीर सुस्वस्थ सदा रखा करो,
दिमाग़ निश्चिन्त सदा रखा करो।
अनन्य भक्ती अपनी दिया करो,
महेश मेरे मन में रमा करो ।।

(३९)

असत्य में प्यार नहीं मिलेगा,
अप्यार में सत्य नहीं मिलेगा।
सत्यं प्रियं रूप बने वही तो,
सत्यं शिवं सुन्दर रूप लेगा ।।

(४०)

स्वभावतः मैं हरि ओम बोलूं,
मैं तथैव भागवती उचारूं ।
बाई दुलारी दिल में बसी है,
है कौनसा इष्ट जिसे विचारूं ।।



(४१)

बीते हुए की परवाह क्यों हो,
भविष्य को मैं नहिं खोजता हूं।
मौजूद में मैं रत हो रहा हूं,
तथापि आगे कुछ सोचता हूं ।।

(४२)

जो वस्तु सर्वत्र रमी बताते,
शरीर में व्याप्त कही वही है।
पता नहीं क्या बदलाव होता,
न लाश में क्या रहती वही है ।।

(४३)

प्रत्यक्ष भी है और परोक्ष भी है.
देता दिखायी नहिं दीखता है।
ता जिन्दगी वो महसूस होता,
ज्यों मौत आयी नहिं दीखता है।।

(४४)

चिंता हमें क्यों किस बात की हो,
खेलें हरी की हम गोद में है।
जो भी बने सो कर ही रहे हैं,
इसीलिए तो हम मोद में हैं ।।

(४५)

जो भी स्वयं है वह आतमा है,
जो आतमा वो परमातमा है।
स्वयं हुआ यों परमातमा है,
क्या भिन्न कोई परमातमा है ।।

(४६)

हो राम चाहे हर या हरी ओं,
देवी हनूमान्निज धर्म भी हो।
अनन्य भक्ती निज इष्ट की हो,
हो ईंट भाटा कुछ वस्तु भी हो ॥

(४७)

आराम क्या है तकलीफ़ क्या है,
मैं सोचता हूं सुख दुःख क्या है।
आश्चर्य है जीवन मृत्यु क्या है,
पता नहीं बन्धन मोक्ष क्या है ॥

(४८)

भक्ती उसे उत्कट मानता हूं,
सदा हथेली सिर काट रक्खे।
ऐसी तयारी यदि हो किसी की,
तो इष्ट पूजा कुछ क्यों न रक्खे ॥

(४९)

जो सामने हो सत बोलते है,
चैतन्य हो सो चित बोलते हैं।
हो भीतरी शान्ति समत्व हो तो,
आनन्द या तो सुख बोलते हैं ॥

(५०)

क्या खोजने को हम दूर जावें,
पड़ौस में भीतर क्या न पावें।
अनन्त में ज्ञान कितोक पावें,
क्यों ज्ञान के भार वृथा बढावें ॥

(५१)

जो चाहते हो मिलता नहीं है,
तो चाहना वो किस काम का है।
पीछा किये से मिल जाय चाहा,
वो चाहना ही बस काम का है।।

(५२)

सिन्धू किनारे हम देखते हैं,
आवाज होनी नहिं बन्द होती।
तरंग आती फिर लौट जाती,
न जोर आता न थकान होती।।

(५३)

क्या आतमा है अरु जीव क्या है,
बुद्धी परे जो परमातमा क्या ?
शरीर को नश्वर है बताया,
शरीर के बाहर आतमा क्या ?

(५४)

सेवा न जानूं नहिं सेव्य जानूं,
निष्काम सत्कर्म जराक जानूं।
समत्व शान्ती अनुभाव्य जानूं,
अदृश्य शक्ती अनुमान्य जानूं।।

(५५)

पैदा न होता नुकसान क्या था,
पैदा हुआ तो निभना पड़ेगा।
शान्ती चहें तो तज के फलाशा,
स्वकर्म जो है करना पड़ेगा।।

(५६)

एकाग्रता और समत्व होवे,
अदृश्य सत्ता पहिचान होवे ।
स्वधर्म की ओर प्रवृत्ति होवे,
हो शान्ति तो जीवित मोक्ष होवे ।।

(५७)

मुझे पुनर्जन्म न पूर्व का पता,
न आत्म जानूं नहिं जीव जानता ।
नहीं सही जीव प्रसार का पता,
न आत्म की व्यापकता हि जानता ।

(५८)

हो आत्म सत्ता भगवान या हो,
वो ही हमारे दिल में वसे हैं ।
जो काम है अर्पण है उन्हीं के,
इसी भरोसे हम मौज में हैं ।।

(५९)

क्या हर्ष और विषाद क्या है,
क्या सुन्दरं और असुन्दरं क्या ?
क्या है भला और वुरा, सभी है
नहीं भला हर्ष व सुन्दरं क्या ?

(६०)

अच्छा वुरा केवल जिन्दगी में,
पीछे हमारा कुछ भी नहीं है ।
सुकीर्ति क्या है अपकीर्ति क्या है,
देहान्त के वाद पता नहीं है ।।

(६१)

होती अहिंसा मन की अवस्था,
शरीर से शान्ति अशान्ति होती ।
कभी कभी तो यदि मार भी दें,
तो भी अहिंसा नहिं भंग होती ।।

(६२)

धावा करे तो यदि आततायी,
आगे डटा जाए निकाल सीना ।
बना रहे प्यार विकार ना हो,
जाने अहिंसा मरना न जीना ।।

(६३)

खूंखार होके हमला करे तो,
बराबरी की तलवार ले लें ।
हिंसा अहिंसा कुछ भी न होगी,
या जान जाए नहिं जान ले लें ।।

(६४)

चाहे अहिंसा कुछ व्यक्ति साधे,
समूह के वो बस की न होगी ।
समूह शान्ती रखले भले ही,
सीमा कहीं तो उसकी भि होगी ।।

(६५)

बहादुरी धर्म मनुष्य का है,
मुकाबले में नहिं होय हिंसा ।
अधर्म है कायरता हमेशा,
बूदव्पने से नहिं हो अहिंसा ।।

(६६)

हिंसा न होवे परमार्थ हो तो,
हिंसा बनेगी यदि स्वार्थ हो तो।
रक्षा बने निर्बल की जहां पै,
तो मार दे हिंसक को वहां पै ॥

(६७)

सापेक्ष सत्यं निरपेक्ष सत्यम्,
है तीसरा भी व्यवहारसत्यम्।
कभी नहीं जो परिवर्तनीयम्,
जो शाश्वतं सो निरपेक्ष सत्यम् ॥

(६८)

जो देश काले परिवर्तनीयं,
सापेक्षतायुक्त द्वितीय सत्यम्।
सत्कार्य में बाधक जो नहीं हो,
वही कहाता व्यवहारसत्यम् ॥

(६९)

हे राम तेरी हम गोद में है,
इसीलिए तो हम मोद में है।
है काम सारा भगवान तेरा,
सेवा हमारी अधिकार तेरा ॥

(७०)

न भूत का खास विचार आता,
भविष्य की मैं करता न चिन्ता।
मैं मानता केवल वर्तमानम्,
सोचूं अभी की कल की न चिन्ता ॥

(७१)

आता नहीं है कल तो कभी भी,
आता यदी होकर आज आता।
जो आज बीता कल वो बनेगा,
ऐसा मजेदार विचार आता ।।

(७२)

जो भी हमार शुभ कामना है,
अवश्य पूरी सब शीघ्र होगी।
निःशेष होंगी सब कामनाएं,
समस्त निष्काम प्रवृत्ति होगी ।।

(७३)

प्रत्यक्ष सो कुछ देखता हूं,
परोक्ष को मैं नहिं देखता हूं।
छिपी हुई शक्ति अवश्य होगी,
वो भी कभी तो अनुभूत होगी ।।

(७४)

संकल्पहीनं मम जीवनं हो,
निष्कामना की मम वृत्ति होवे।
चाहूं यही पूर्व परन्तु मेरा,
अवश्य अंगीकृत कार्य होवे ।।

(७५)

समाधि क्या है मुझको पता नहीं,
आनन्द कैसा उसमें मिला करे।
एकाग्रता शांति जराक जानता,
आगे न जानूं कुछ भी हुआ करे ।।

(७६)

पूरा भरोसा खुद का करे तो,
होवे भरोसा सब दूसरों का ।
जो हैं मनस्वी बल दे सभी को,
न दोष मानें कुछ दूसरों का ॥

(७७)

विश्वास देता हमको सहारा,
विश्वास से काम जरूर होता ।
विश्वास ढीला जब देर होती,
विश्वास पक्का जब काम होता ॥

(७८)

हो माल कैसा बढ़िया रसोई,
हो काठ कैसा बढ़िया खिलोना ।
शिष्य कैसा बढ़िया गुणी हो,
निर्माणकर्त्ता हुशियार होना ॥

(७९)

उपासना क्या मुझ से बनेगी,
अभ्यर्थना क्या मुझ से बनेगी ।
न कामना ही मन में रहेगी,
न कल्पना ही करनी पड़ेगी ॥

(८०)

कैसे बनाया किसने बनाया,
जैसा बना मानव वो वही है ।
जो शक्ति जैसी जिसको मिली है,
जो हो उसी से करता वही है ॥

(८१)

है रक्त मांस चमड़ी व हड्डी,
अदृश्यतत्वं कुछ और ही है ।
वो साथ हो तो सब ठीक ही है,
न्यारा हुआ तो कुछ भी नहीं है ।।

(८२)

चिंता न होती न विचार होता,
शंका न होती नहिं तर्क होता ।
पीड़ा न होती नहिं दर्द होता,
स्व इष्ट में जो जब लीन होता ।।

(८३)

ज्ञातव्य है सो इतना बड़ा है,
कि कल्पना भी नहि हो सकेगी ।
हो जाय थोड़ा यदि ज्ञान पक्का,
तो शान्ति तो भी कुछ हो सकेगी ।।

(८४)

हे देवि तू दानवध्वंसकारी,
हे देवि तू मानवदोषहारी ।
जो दुष्ट हों देवि समेट लेगी,
निर्दोष देवी हम को करेगी ।।

(८५)

स्वधर्म सत्कार्य प्रवृत्ति होवे,
एकाग्रता ध्यान समाधि होवे ।
देवेश्वरी एक यही मनावें,
समत्व हो शाश्वत शान्ति होवे ।।

(८६)

मनुष्य का हो कितना भरोसा,
विश्वास हो तो भगवान का हो।
विश्वास ही से सब काम होगा,
पूरा भरोसा भगवान का हो ॥

(८७)

है द्रव्य का धर्म सुभुक्त होना,
है काल का धर्म अतीत होना।
है प्राण का धर्म निकास होना,
विचार बोलो किस काम होना ॥

(८८)

न कर्म काफी नहिं ज्ञान काफी,
न योग काफी कुछ और भी हो।
न वासना हो नहिं लालसा हो,
हो भक्ति हो सत्य समत्व भी हो ॥

(८९)

सजीव निर्जीव असंख्य होते,
संसार में भेद अनन्त होता,
होता सभी में यदि आत्मतत्वं,
तो भेद का कारण कौन होता ॥

(९०)

है प्राणशक्ती फिर भावशक्ती,
विचार शक्ती फिर शब्दशक्ती।
है एक आगे फिर कर्मशक्ती,
संसार की चालक पांच शक्ती ॥

(९१)

अजान मैं हूं मुझको पता नहीं,
सुजान माने उनको पता नहीं ।
अनादि बोले बिन अन्त बोले,
रहस्य क्या है कुछ भी पता नहीं ।।

(९२)

न आदि है तो नहिं अन्त भी कहीं,
न कल्पना की कुछ बात है कहीं ।
विचार मेरा चलता नहीं कहीं,
मुझे बताओ यदि हो पता कहीं ।।

(९३)

संकल्प ना हो न विकल्प होवे,
न तर्क उट्ठे न वितर्क उट्ठे ।
चिंता न होवे न अशान्ति होवे,
न धैर्य छूटे नहिं चित्त उट्ठे ।।

(९४)

मेरा किया तो कुछ भी न होवे,
सुपुर्द मैं तो भगवान के हूं ।
मर्जी चलेगी भगवान की सो,
पूरा भरोसे भगवान के हूं ।।

(९५)

मैं राम का रूप अनूप हूं तो,
है राम भी रूप अनूप मेरा ।
जो काम मेरा सब राम का है,
है राम का काम समस्त मेरा ।।

(९६)

है सत्व जो भी पर रूप कैसा,
क्रिया कलापं कुछ है कि नाहीं ।
दीखे नहीं और हिले डुले ना,
है शक्ति कैसी फिर सत्व माहीं ।।

(९७)

संसार छै यो कुरण को बरणायो,
संसार चालै कुरण को चलायो ।
छै प्रारण को रूप कस्योक कांई,
व्याप्यो हुयो सत्व कस्योक कांई ।।

(९८)

विश्वास का वेग मनुष्य का जो,
चराचरं को गति दे रहा वो ।
है सत्व वो ही अनुमान मेरा,
संसार का चालक हो रहा वो ।।

(९९)

है क्या कहीं वो जिसको पता हो,
संसार क्या जीवन मृत्यु क्या है ।
हो भी कहीं तो मुझको कभी वो,
क्या दे बता सत्य रहस्य क्या है ।

(१००)

अनित्य हो जीवन जो हमारा,
तो नित्य क्या है यह तो बताओ ।
प्रत्यक्ष को नश्वर क्यों बताते,
परोक्ष क्यों नित्य हमें बताओ ।।

कुछ और छन्द

(अप्रेल से जुलाई, १९७० तक की रचनाओं में से)

(१)

है ग़र्ज बाकी कुछ और मेरी,
पूरी उसे तो करनी पड़ेगी।
बेगर्ज होके फिर बाद में तो,
गाड़ी मजे में चलती रहेगी॥

(२)

सत्कर्म होता सब पुण्यकृत्यम्,
धनार्जनं है बहुपापकृत्यम्।
चन्दा मिले सो बहुपाप में से,
दें एवजाना निज पुण्य में से॥

(३)

दिमाग से ये कुछ और सोचें,
जबान से ये कुछ और बोलें।
जो बोलते सो करते नहीं ये,
हो स्वार्थ तों भी परमार्थ बोलें॥

(४)

प्रातः उठें ये इक बात बोलें,
मध्याह्न में दूसरि बात बोलें।
संध्या पड़े तीसरि बात बोलें,
करें न ये जो दस बार बोलें॥

(५)

बेजा किया हो कितना भले ही,
प्रचार झूठा करता चले तो।
शैतान पा ले झट वाहवाही,
दीखें बुरे नाहक ही भले तो ॥

(६)

भला भले ही उसका न होवे,
गरीब का नाम सदैव लेवें।
ले वोट सारे झट लोट जावें,
नेता फिरें सो सब लाभ लेवें ॥

(७)

रहे नहीं नैतिक मूल्य बाकी,
फैला हुआ झूठ प्रपंच भारी।
ऐसी स्थिती में किसका बताओ,
करे भरोसा जनता विचारी ॥

(८)

जिस देश हुआ जिस धाम हुआ,
जिस जात हुआ जिस लिंग हुआ।
यह जन्म हुआ कि शरीर हुआ,
यह चित्त हुआ जो हुआ सो हुआ ॥
सतकर्म हुआ अपकर्म हुआ,
उपकार हुआ अपकार हुआ।
बहुमान हुआ अपमान हुआ,
जब होश हुआ अलमस्त हुआ ॥

(९)

मैं चाहता आज तमाम छोड़ूं,
तमाम मैं बन्धन आज तोड़ूं।
नाता नया मैं न कदापि जोड़ूं,
तमाम से मैं मुख आज मोड़ूं ॥

(१०)

सत्कर्म में मैं लवलीन तो भी,
है मोह मेरा परिवार से भी।
उपास्य मेरी जनता पियारी,
चेता हटाऊं परिवार से भी ॥

(११)

मनुष्य हो या पशुपक्षि होवे,
हो वृक्ष या पुष्प कछूक होवे।
जो बीज जैसा वह रूप वैसा,
आश्चर्य कैसे सब सृष्टि होवे ॥

(१२)

स्वराज हो और सुराज होवे,
सत्ता त्रिकेन्द्रीकृत पूर्ण होवे।
निर्भीक होवे जनता पियारी,
विनम्र हों सेवक सत्यधारी ॥

(१३)

कर्तव्य आगे अधिकार पीछे,
हो देश आगे सब बात पीछे।
ईमानदारी सब ठौर होवे,
समग्र चारित्र्य विशुद्ध होवे ॥

(१४)

ईमान के हैं हम पक्षपाती,
ईमान खोया तब क्या न खोया।
ईमान खो के धन जो कमाया,
यहां वहां वो किस काम आया ॥

(१५)

सेवा बने सो चुपके करेंगे,
ज़रा न चाहें हम एवज़ाना।
विना किये ही जस लूट लें जो,
ऐसे जनों का कब क्या ठिकाना ॥

(१६)

जिसका कहुँ आदि न अन्त पता,
जिसका कहुं नाम न रूप पता।
जिसकी कहते अमिता प्रभुता,
कहते रमता हर फूल पता ॥
नहिं मालुम है उसकी प्रभुता,
वह व्यापक है हमको न पता।
जग जीवन है चलता फिरता,
हमको यह केवल एक पता ॥

भाग ४

अतिरिक्त सामग्री

भाग ४

अतिरिक्त सामग्री

प्रस्तावना

"जीवनवृत्त" लिखते समय किसी रेकार्ड की सहायता नहीं ली गयी। और "रचनापञ्चशती" भी कुल मिलाकर अपने दिमाग की उपज ही है, भले ही किन्हीं रचनाओं में मेरे पढ़े हुए का असर देखने को मिल जाए। आगे के पृष्ठों में जो अतिरिक्त सामग्री दी गयी है उसमें ज्यादातर मेरी कलम से लिखे गये और मेरी जवान से बोले गये शब्द हैं। मुझे चूंकि अपने बारे में ही लिखना था इसलिए खासतौर पर मेरी लिखी या बोली हुई बातों को ही "अतिरिक्त सामग्री" में स्थान मिलना चाहिए था। पर चूंकि दूसरों का सम्बन्ध भी मुझसे और मेरे काम से आता रहा है, इसलिए कुछ सामग्री दूसरों के लिखे हुए पत्रादि में से भी देना जरूरी हो गया। "अतिरिक्त सामग्री" में से (१) १९१७ से १९७० तक की मेरी डायरियों में से लिए हुए कुछ अंश हैं (२) शुरू से लेकर जुलाई, १९७० तक के कुछ पद्यों के नमूने विविध पद्यावलि के नाम से हैं, (३) मेरे कुछ भाषण और वक्तव्य हैं, (४) मेरे भेजे हुए और मेरे पास आये हुए कुछ पत्र हैं और (५) मेरे कुछ लेख तथा रिपोर्टों और बुलेटिनों के कुछ अंश दिये गये हैं। अपने जीवन में समय समय पर मैं दूसरों के लिए बहुत लिखता रहा। उस सामग्री का भी थोड़ा बहुत अंश "अतिरिक्त सामग्री" में शामिल करने के लोभ को मैं रोक नहीं सका। हिन्दी की चीज हिन्दी में और मेरी अपनी बोली की उसी बोली में, ज्यों की त्यों दी गयी है, संस्कृत की संस्कृत में, उर्दू की उर्दू में और अंग्रेजी की अंग्रेजी में। मैं सोचता हूं कि "अतिरिक्त सामग्री" से जिज्ञासु पाठकों को मेरे विषय में कुछ विशेष जानकारी हो जाएगी। इसी विचार से मैं इस "अतिरिक्त सामग्री" को प्रस्तुत करता हूं।

हीरालाल शास्त्री

(१)

मेरी डायरियों में से

भूमिका

मैंने १९१७ में अपनी डायरी लिखना शुरू किया। अधिकतर सालों में प्रतिदिन एक से अधिक डायरियां लिखने में आयी हैं। मुख्य डायरी साधारणतया हिन्दी में और कभी अंग्रेजी में भी लिखने में आयी है। इतने सालों की डायरियों में सामग्री बहुत है। परन्तु इस ग्रन्थ में १९१७ से १९७० तक की डायरियों के कुछ अंश नमूने के तौर पर ही दिये जा सके हैं। उक्त अंशों की छांट में साधारणतया किसी सिद्धान्त विशेष का आधार नहीं लिया गया अर्थात् जिस अंश पर निगाह पड़ गयी वही छंटने में आ गया और अतिरिक्त सामग्री का यह खंड तैयार हो गया। जाहिर है कि डायरियों की बाकी अप्रकट सामग्री फिलहाल पेटियों में बन्द पड़ी रहेगी।

हीरालाल शास्त्री

Jaipur, 7-9-17

Composed 2 Sanskrit shlokas on the present Rajniti of Jaipur State. Very much praised by Purohitji Sahib.

Delhi. December, 1918

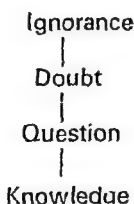
Attended the annual session of the Indian National Congress held at Delhi under the presidentship of Pandit Madan Mohan Malaviya.

जयपुर, १-८-१९

ॐविश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव ।।

प्रातः काल दिल्ली से प्रयाण किया। सायंकाल जयपुर पहुंच गये। मार्ग में बात चीत करते-करते ही जापान जाने की उत्कट इच्छा का प्रादुर्भाव हुआ। (वहां पर एक तो संस्कृत का प्रचार करने का विचार। आचार्य, एम० ए० व एल० एल० बी० पास करने के बाद)।

Jaipur, 15-8-20



Thus knowledge is the great grandson of ignorance ! Knowledge generated out of Ignorance !

जयपुर, २५-८-२०

Rebirth को नहीं मानने वाले western materialistic philosopher बालक की बुद्धि के विकास के सम्बन्ध में क्या सोचते हैं ? यही कहते होंगे कि माता-पिता के भले या बुरे असर से बात होती होगी। पर नितान्त मूर्ख माता-पिताओं के कभी-कभी बड़े तीक्ष्ण बुद्धि और होनहार बालक उत्पन्न होते हैं तो फिर माता-पिता के असर की बात कहां रही ? Rebirth को मानने वाले पुराने पूर्वजन्म के सिद्धान्त के सहारे इस बात की रक्षा कर लेंगे, पर Rebirth को नहीं मानने वाले materialistic philosopher कैसा करते होंगे—इस पर स्वयं भी विचार करना तथा और पूछताछ करनी तथा कुछ पढ़ना भी।

कलकत्ता, ३०-८-२०

अबकी बार जोवनेर चलें तब किन्हीं जोलाहों के यहां जाकर उनके looms को देखना चाहिए। वे उससे किस प्रकार कपड़ा बुनते हैं, फिर किसी समय दूसरे प्रकार के looms को देखना चाहिए और विचार करना चाहिए।

जोवनेर, ११–११–२०

जागीरदारों के अत्याचार—थानेदारों के हृदय विदारक अत्याचार, मूर्ख जनता के भीषण दुःख क्या नहीं मिटाये जा सकते हैं ? इतने विचार पार पड़ना सहज नहीं है । इनको पार पटकने के लिए निःस्वार्थ होकर महान् उद्योग करने की आवश्यकता है ।

जयपुर, १४–१–२१

पतंग उड़ाने का कैसा तमाशा है, इसमें कितनी हायहूय मचती है ? कितना आनन्द होता है ? कितना क्रोध आता है ? टूटे हुए पतंगों को पकड़ लेने के लिए कितने नहीं दौड़ते हैं ? और ऐसे पतंगों के लिए कितने नहीं लड़ पड़ते हैं ? पतंगों के लिए भाग दौड़ करने वालों से पूछा जाय कि वे इनका वास्तव में क्या करेंगे, तो उनमें से अधिकांश के पास उत्तर नहीं है । और जिनके पास जो है, वह भी ऐसा हास्यजनक सा ही है । पर फिर भी दौड़ने वाले अपने कार्य में कितनी वास्तविकता देखते हैं ? क्या वे अपने कार्य से यह नहीं दिखा रहे हैं कि जैसे वे किसी भी बड़े भारी महत्व के कार्य में परिश्रम कर रहे हों ? क्या उनको तनिक भी विचार होता है कि वास्तव में तो वे एक तुच्छ वस्तु के पीछे पड़े हुए हैं ? संसार की सारी माया का यही हाल है ।

जयपुर, ४–२–२१

भविष्य में लोकशिक्षण, ग्रामसुधार आदि के लिए यथासंभव स्वार्थ परित्याग करना, अपने ऊपर दिन-दिन दबाव डाल रहा है और दूसरा विचार ठहरता ही नहीं है । यह भारी कार्य कैसे हो, इसका वास्तविक स्वरूप कुछ समझ में नहीं आया है । खूब सोचने पर भी घबड़ाहट सी और अंधेरा सा देखने में आता है । पर देखो, अन्त में कभी न कभी मार्ग सूझेगा ही—

जयपुर, १७–२–२१

आम सभा में पहला भाषण । उसमें आशा से अधिक सफलता हुई । अपन वक्ता बन सकते हैं । थोड़े अभ्यास की आवश्यकता है । सो कर लेंगे ।

इस सभा में जाने से और भी विचारों का परिष्कार हुआ । सारे वाङ्मय की यथासंभव खोज करना चाहिए । ज्योतिष और व्याकरण तो परीक्षा के पीछे पढ़ना है ही ।

संस्कृत विद्या के प्रचार के लिए समिति का संगठन होना चाहिए । यह प्रस्ताव । सो अभी तक तो इसके लिए एक रात्रि पाठशाला खोली जा सकती है । अपने को भी लाभ हो । इस पर पं० सूर्यनारायणजी से कल विचार करना चाहिए । अब धीरे-धीरे कह देना चाहिए कि अपन देश सेवा के लिए अपने आपको अर्पण करना चाहते हैं ।

जयपुर, २०-३-२१

अहो ! कैसा विचित्र दृश्य है । क्या रचना है । किसकी है । हम कुछ नहीं समझते हैं । क्या Darwin का कहना ही ठीक है ? क्या survival of the fittest का सिद्धान्त ही मान्य है ? मनुष्य अपने भाई को कितना दवाना चाहता है ? What man has made of man ? मनुष्य की प्रकृति में एक बड़ा अंश तो यह है कि अपने साथियों पर प्रभाव डालने का प्रयत्न करना । अथवा मनुष्य में ही क्यों कहें ? प्राणिमात्र की क्या ऐसी चेष्टा नहीं है ? क्या सब कोई rational beings यह नहीं चाहते हैं कि हम जो कुछ नहीं हैं, वे समझे जावें ? "people try to seem what they are not" विचित्र है ? ऐसा क्यों होता है ? मनुष्य अपने दोषों की गुप्ति क्यों करना चाहता है । गुणों की प्रसिद्धि क्यों ? जैसा है वैसा ही क्यों नहीं दीखना चाहता है ?

आगरा, ७-४-२१

आज ७ अप्रेल, १६२१ को प्रातः समय मैं हीरालाल पाराशर, सूर्य, यमुना, मेरे मित्र तथा सबसे अधिक अपने अन्तरात्मा को साक्षी मानकर और शान्त चित्त से प्रतिज्ञा करता हूं कि

[१] मैं खान-पान में, आचार-व्यवहार में, वातचीत में, कपड़े-लत्ते में और सारे रहन-सहन में ही जितनी सादगी सम्भव है, उतनी सादगी रखूंगा;

[२] अबसे विदेशी चीज काम में नहीं लूंगा;

[३] खान-पान में शरीर और मस्तिष्क को कार्य करने के लिए चंगा रखने के पदार्थों को छोड़कर और अनावश्यक पदार्थों का उपयोग नहीं करूंगा;

[४] आचार-व्यवहार वैसा ही रहेगा, जैसा किसी साधारण सच्चे भारतवासी का रहना चाहिए, विदेशी आचार कभी नहीं होगा;

[५] कपड़ा-लत्ता सर्वथा स्वदेशी काम में लूंगा तथा ऐसा पहनूंगा कि जिससे देखने वाले झट से मुझे पुराने ढंग का भारतीय जान जावें ।

जयपुर, जनवरी, १६२२

आज़ प्रातःकाल चार बजे के आस-पास अपने को स्वप्न आया जिसमें अपन दो बार महाराजा साहब से मिले । एक बार सोमदेवजी गुलेरी अपनी सिफारिश कर रहे हैं । अपनी प्रशंसा हो रही है । महाराजा साहब प्रसन्न होकर अपने से प्रश्न कर रहे हैं । दूसरी बार पंडित विहारीलालजी सिफारिश कर रहे हैं । चन्द्रधरजी गुलेरी भी दीखते हैं । उनके विवाह सा है । जिसमें वे अपने को अजमेर ले जाना चाहते हैं ।

Ajmer, 16-4-22

Raghunath Singh caught *smoking*. He first denied that he smoked at all. He then confessed and I gave a very strong slap on his cheek.

Ajmer, 15-8-22

Offender punished. The newly invented punishment has brought a praise-worthy discipline and whatever may be thought wanting will be soon coming in. I should use an iron hand. There is no other alternative.

अजमेर, २७-३-२३

मानसिंहजी, पुरोहितजी, रूपसिंहजी, ने इस्तीफे दे दिये। Cleveland से इस्तीफा दिलवाया था पर Govt. ने उसका पक्ष लिया। Watson भी वहीं पर है। किसी बात पर तन गई, इन लोगों ने एका करके इस्तीफा दे दिया। अब शायद कल तक सारी कौंसिल भी इस्तीफा दे दे, सो देखो।

अजमेर, १६-६-२३

फेन्शां साहब की चिट्ठी मिली है—लिखा है कि Glancy साहब ने स्पष्ट करके समझाया है कि तुम्हारे transfer का विचार पहले से ही हो रहा है। एक तो ठाकुर लोग चाहते हैं। वे तुम से खुश नहीं हैं-दूसरे तुमको finance की ट्रेनिंग में भेजना बहुत जरूरी है। तुमको Glancy पांचों में से ज्यादा होनहार समझते हैं। मेनसाहब ने खास बात नहीं लिखी-Glancy तुमसे नाराज नहीं है। कहते हैं कि तुम उधर अपनी योग्यता सिद्ध करोगे। ठीक है।

बम्बई, ३०-१-२४

पत्नी की शिक्षा के विषय में विचार। अच्छी अध्यापिका २-४ महीने में हिन्दी और हिसाब का ठीक अभ्यास करा दे। थोड़ा भूगोल और इतिहास अपन पढ़ा दें। रामायण, मासिक पत्र आदि पढ़ती रहे। फिर थोड़ा बहुत अभ्यास अंग्रेजी का भी हो जाय तो हानि नहीं। पाक शास्त्र, सीना आदि का अभ्यास भी शनैः शनैः होता रहे।

Bombay, 23-4-24

P. W. A. Code. Several things made clear by the Madrasi Superintendent in the Office. He knows much more than Shetti. I feel I could have saved much trouble if I had gone to him before this. I am very hopeful in view of my test today. I have penetrated very far into the spirit of things. I have understood things which people do not understand even after long years of school-work.

Jaipur, 3-2-25

I must make my opinion definite on several problems of the day. Sethiji in a desperate mood. What to do is the question before

him. I have told him that it would not be good for him to leave the Congress. Why not work in villages ! Why not a paper? He is considering and will decide. I must seriously consider everything before taking such a tremendous step as going out for selfless public service. There should be men who want to and can do things fearlessly.

Jaipur, 7-5-25

Sent a note on the New Account Rules to Majorogilvie (the President), Pandit Amarnathji Atal and Thakur Hari Singhji of Achrol. Also put up a copy of the note before the S.A.O. who kindly forwarded it to the Secretary, Council. The note describes the Jaipur System and the British India System and criticises the Rules framed by the S.A.O.

जयपुर, १३-५-२५

वैष्णवदासजी के पास अचरोल का लिखा हुआ आया कि Account Code को कौंसिल ने unanimously पास कर दिया है। unanimously? यह सच हो तो जयपुर के मेम्बरों को पोच न समझे जाने का कोई कारण नहीं है। Dissent का नोट देने में जोर ही क्या आता है? मौके पर चुप रह जाना कितना बुरा है और अवश्य हीनता का प्रमाण है। वैष्णवदास जी ने यह समाचार कुछ triumph के साथ सुनाया। अपने ऊपर असर पड़ा है। बंशीलालजी से इस बारे में बातें। जयपुर वालों की कमजोरी की हृद नहीं है, जिससे दुःख हुए बिना नहीं रह सकता।

जयपुर, ३०-५-२५

जोबनेर से विश्वेश्वरजी की चिट्ठी। पिताजी के पेट में दर्द हो गया। उनकी बड़ी चिन्ता। भोजन कर ही रहे थे कि रामनारायणजी काकाजी आ गये। उनसे मालूम हुआ कि पू० पिताजी का स्वर्गवास हो गया। बिलकुल अचानक। दो दिन पेट में दर्द रहा और वैसे बैठे-बैठे बातें करते-करते ही प्राणान्त हो गया। आश्चर्यजनक। अपने ऊपर वज्रपात। विचारधारा बन्द हो गयी। गांव चलने की तैयारी। सरदारों के पास। उनसे बातचीत। उनका शोक प्रकाशन। अपनी कमजोरी। पत्नी आदि को रवाना किया। घर पर पहुंचा। ब्रह्मपुरी सिगरी करना। प्रत्येक को १ रु० दक्षिणा। १०० रु० पारीक पाठशाला को। पूज्य पिताजी की स्मृति में और कुछ भी हो।

खाचरोद, १८-११-२५

सवेरे जल्दी ही आंख खुल गयी थी। गाड़ी में पं० श्यामसुन्दरजी से विविध बातें। एक विचित्र प्रकार की हल-चल। अपने मन में बड़ा उल्लास। खाचरोद के स्टेशन पर उतरे। वहां पर बिछायत आदि मिली, गर्म जल भी। दूध और चाय भी।

कुछ लोग निवटे । दूध चाय भी हो गया । कपड़े पहिनकर तांगों में सवार होकर गांव के पलसे तक पहुंचे । वहां पर लवाजमें की प्रतीक्षा करनी पड़ी । प्रवन्ध का ढीलापन मालूम हुआ । अपने को घोड़े पर सवार कराया । पूरा Procession जरा शान के साथ निकला । अपना और वनाजी का डेरा गोपालजी के मन्दिर में । वड़ा ही उत्तम स्थान है । कुशादगी । पास ही मैदान । स्नानादि से निवृत्त । भोजन कच्चा । वहुत अच्छा रहा ।

जयपुर, ६–५–२६

अपन कई वार विना आवश्यकता भी किसी को वातें कह जाते हैं, यह उचित नहीं है । काम की वात कह कर चुप हो जाना ही सर्वोत्तम है ।

जयपुर, ३१–१२–२६

पंडित विहारीलालजी आ गये । अश्लेषा नक्षत्र ६ गुरुवार और ७ शुक्रवार के वीच की रात्रि के २–२॥ वजे थे । इसलिए अपना जन्म ६ वृहस्पतिवार का गिना जाना चाहिए । इस पर से अपने ग्रह देखे । एक-दो को छोड़कर कुल ग्रह एक ही घर में आ गये—वोले ३४ वर्ष की उम्र में पूर्ण उन्नति होगी—३४ से ४० वर्ष तक रुपये की तंगी रहेगी, वाद में ठीक । अच्छे ग्रह हैं । राजपक्ष प्रवल है ।

प्रयाग, १४–३–२७

कृष्णरामजी (संपादक लीडर) के पास पहुंचे । मामूली वातें । जयपुर का हाल-चाल पूछने पर कहा । खवासजी आदि की सव वातें पूछी । एडीटर के आफिस में तार आते हैं । उनका edit करना, छपना और कई वार प्रूफ देखा जाना, यह सव देखा । अभ्यास का काम है । अपने को उतना उत्साह नहीं रह सका । सीखने का समय थोड़ा है । शायद समय ही व्यर्थ जाय, ऐसा खयाल हुआ । कृष्णरामजी ने थोड़ा सा काम भी दिया, जिसको घर पर करना है । सव-एडीटरों से वातें ।

जयपुर, ७–१२–२७

रजिस्ट्रार के पास । वोले-आप चाहो तभी चार्ज दे सकते हो । परन्तु दो एक दिन ठहरकर दो तो अच्छा हो । अपन ने तो कल से ही विदा होने का विचार कर लिया । गोकुलनारायणजी से वात करली और चार्ज देने का पत्र लिख लिया । वीरेश्वर शास्त्री जी के यहां । वे वोले-काशी के कागजात तो यों ही पड़े हैं । कविराजजी खुद छोड़ना चाहते हैं । सुनकर खुश ही हुए ।

पिलानी, २६–१–२८

निश्चय हुआ कि पिलानी के आस-पास के गांवों में कथा वांचने का तथा वालकों को पढ़ाने का कार्य किया जाय । मास्टर वंशीधरजी भी ऐसा सोच ही रहे थे । उनसे

कलकत्ता, २६–४–२८

इस समय मुझको निम्नलिखित सार्वजनिक कार्य देखने पड़ते हैं :

(१) जयपुर में—

(१) राजस्थान छात्रालय (मय विद्यार्थी जीवन)

(२) छात्र मंडल

(३) प्रयास परिषद् (मय प्रयास)

(४) जयपुर हितकारिणी सभा (प्रकाशन कार्य)

(१) पिलानी में—

खेड़ला को रात्रि पाठशाला—

(३) कलकत्ते में—

(१) मारवाड़ी बालिका विद्यालय

(२) अबलाश्रम

(३) अछूत पाठशालाएं

इनके अलावा पिलानी के बिड़ला हाई स्कूल, जयपुर की पारीक पाठशाला, जोबनेर का हाई स्कूल, कलकत्ते की हिन्दू सभा की भी बराबर जानकारी रखना है—तथा त्याग भूमि के लिए लेख लिखना है—और सस्ता साहित्य मंडल की जानकारी रखना है।

वनस्थली, २१–५–२६

निवाई से वनस्थली के लिए एक बजे रवाना हुए। धूप गहरी थी। पैदल ही चल दिये। लगभग दो घण्टे में आये। वनस्थली के बालाजी के मन्दिर में। निवाई के सरावगी बोहरे बाटियां सेक रहे थे। उनमें से एक दो बोले इन्हीं किसानों से कमाकर खाते हैं। असल तो वसूल कर ही लेते हैं। नहीं देते हैं तो भी डूबने तो क्या देते है! शिकारी अपनी शिकार की बातें करता हो, वैसा ही इनका ढंग था। भोजन की तैयारियां हो गयीं। गांव में कोई बाहर के खास लोग आते हैं तो बड़ा भार सा हो जाता है। हर एक आदमी को कुछ न कुछ करना पड़ता है। राज के आदमी का बड़ा सम्मान करना पड़ता है, चाहे वह अनिच्छा पूर्वक ही हो। सुरेन्द्रजी आदि भी आ पहुंचे। ऊपर छत पर ही जीमने की तय्यारी—दाल-बाटी, बूरा, खरबूजे आदि। अच्छा जीमना हो गया। भीड़ पड़ने पर साधारण ब्राह्मण भी चौके की परवाह नहीं करते हैं। भोजन के बाद केसरलालजी और तहसीलदारजी ने किसानों को हमारे बारे में कहा। जहां ये चाहें मकान के लिए जमीन बतादें और अच्छा सा कुआ भी बना दिया जाय। भोजन का खर्च देने की अपन ने बड़ी कोशिश की। परन्तु गांव वाले नहीं माने सो उन्हीं के रुपये चिपके। दूसरा उपाय भी क्या है। तहसीलदारों के मारफत आने

वनस्थली, २६–१–३०

शिवनारायण और प्रतापा ने थान उतार लिये । वे बहुत प्रसन्न हुए और जूते और साफे के लिए आग्रह करने लगे । मैंने साफा भी बांध लिया और जूते भी पहन लिये । चलो यह तो छुट्टी मिली । कुछ लोग देखने को आये और देखकर प्रसन्न हुए । चन्द्रशेखर शायद कल उतारे । दुर्गा परसों । फिर तो देवीनारायण, छोगा व नानगा तीन रहेंगे ।

Banasthali, 20-5-30

I subjected myself to a severe self-examination today and found myself wanting in several ways.

If I really have any great qualities, let those be utilised for the service of mankind; they are not to be thought about, nor are they to be permitted to be made the topic of other people's praise.

वनस्थली, ७–११–३०

आज प्रातः मालूम हुआ कि गोपी की कोठी पर से दो जूड़े, दो नाड़े, बालटी व नेज व पन्ना की अंगरखी कोई ले गया । खोज साफ दिखाई देते थे । खोज जेबवालों के यहां पहुंच गये । जेबवाले रणजीता ने अच्छा उत्तर नहीं दिया, टेढ़ा ही बोला बताया । इतना साफ है कि उसके यहां ठहरने वाला कोई गया है । इसलिए मैंने रणजीता को बुलवा लिया और उससे कह दिया कि मैं जोबनेर का हूं और तेरा भी जोबनेर से सम्बन्ध है । मैं चोरी का माल तुझसे लूंगा । जब तक मेरे पास असल माल न आ जाय तब तक तू मेरे पास ही रहेगा । इसका नतीजा यह आया कि चोरी का माल ज्यों का त्यों आ गया । और आस-पास के गांवों में "पंडितजी" का दबदबा हो गया ।

Calcutta, 9-4-31

I advised Sitaramji finally to devote his life to female education; his field of activities should be in Rajasthan. He is not inclined towards Rajasthan. His मोह for friends is now gone and says that he is in Calcutta owing to personal weakness, but Calcutta's expensiveness will drive him out some day.

Bombay, 15-6-31

Visit to Bombay. I was in my usual shabby dress which did not fit in with Bombay conditions, but I care very little about these things. Met Ramnarainji Chaudhary for the first time-he seemed to be greatly impressed with my frankness-he said "इनका काम विकट है, तेज

की तो यही प्रसादी है। गांव वालों को भी शक है कि यह मामला क्या है। अपन तहसीलदारजी के साथ आये सो सिद्धान्त की दृष्टि से भी अच्छा नहीं, और वैसे भी ठीक नहीं। यह गांव सरावगियों की वोहरगत के जाल में गहरा फंसा हुआ दिखायी देता है। गांव के लोगों से थोड़ी ही बातें हो सकीं। अब करते ही रहेंगे। अब तो आखिर आ ही पहुंचे।

वनस्थली, २८–८–२६

मेरा सारा दिन भर आज चूने ईंटे और टीए में गया। टीणों के लिए लकड़े खड़े कराये हैं। इन पर तो २०–२१ टीए गिर सकेंगे, बाकी के लिए जगह पीछे देखनी पड़ेगी। चूने के लिए गाडियां जुतवाने में कठिनाई। हरनाथ सुंवाल, शिवनाथा कुम्हार और गोरू पटेल तक ने ना कह दिया। लच्छा कहीं चल दिया—दो गाड़ी जैसे-तैसे गयीं। फिर तो गोरू आदि भी तैयार हो गये। इन लोगों को चलाकर किसी काम के लिए कहा जाय तो नहीं करेंगे और अपने आप झक मारकर निहोरे खाते फिरेंगे। जुगलपुरे वाला चूना १००–१२५ मन से अधिक नहीं निकलता मालूम होता है, उसे ४० रु० दे देते तो गड़बड़ ही रहती। पन्ना पटेल को भी आज रुपयों के लिए टहलाया ही। ईंटें निकालने को दो आदमी भेजे थे। एक को थाने में ले जाने को एक सिपाही आ गया। आज तो कुटीर के मकानों का ही विचार होता रहा। कार्तिक में ईंटें तैयार हो जावें और बाकी के मकान बनें। फल-फूल के पेड़ लगें, तब आनन्द आवे। इसी वर्ष में रुपया बहुत चाहिएगा, उस सबका प्रबन्ध भी करना ही होगा और कुछ न कुछ हो ही जायेगा।

वनस्थली, १५–१–३०

...की नाराजी आज तो बहुत गहरी मालूम हुई। मालूम हुआ वे कई बातों के कारण भरे ही बैठे थे, जरा सा मौका मिलते ही उफण पड़े। एक तो यह है कि मैं बड़ी कठोरता से उनकी कमी बता दिया करता हूं। वे चाहे जब ही तरंग में कुछ न कुछ निश्चय कर डालते हैं, उसका विरोध मुझको करना पड़ता है। तीसरे मैं....को आजकल ज्यादा पास रखता हूं। सो भी उनको द्वेष सा हो सकता है। अच्छे आदमी हैं परन्तु गहराई तो जरासी भी नहीं है।....घाणी के बैल की भांति हैं सो चारों ओर जोर से घुमाये ही जाओ। काम की हार नहीं है, परन्तु मुस्तकिल-मिजाजी बिल्कुल नहीं है। संभव है वे ज्यादा ही उकताये हुये हों और कहीं छोड़ने का विचार भी कर रहे हों—इसकी मुझको कोई परवाह नहीं है। वे अपने चंचल स्वभाव के कारण कुछ भी निश्चय कर सकते हैं। मैंने जीवनकुटीर का काम किसी भी साथी के भरोसे नहीं छेड़ा है, अपने खुद के भरोसे छेड़ा है सो एक भी पढ़ा लिखा साथी नहीं रहे तो भी मुझको विश्वास है कि काम चलता रहेगा। आशा तो यह है कि अपनी गलती को संभाल लेंगे, पश्चाताप कर लेंगे और नहीं तो चाहे न भी सही।

वनस्थली, २६–१–३०

शिवनारायण और प्रतापा ने थान उतार लिये। वे बहुत प्रसन्न हुए और जूते और साफे के लिए आग्रह करने लगे। मैंने साफा भी बांध लिया और जूते भी पहन लिये। चलो यह तो छुट्टी मिली। कुछ लोग देखने को आये और देखकर प्रसन्न हुए। चन्द्रशेखर शायद कल उतारे। दुर्गा परसों। फिर तो देवीनारायण, छोगा व नानगा तीन रहेंगे।

Banasthali, 20–5–30

I subjected myself to a severe self-examination today and found myself wanting in several ways.

If I really have any great qualities, let those be utilised for the service of mankind; they are not to be thought about, nor are they to be permitted to be made the topic of other people's praise.

वनस्थली, ७–११–३०

आज प्रातः मालूम हुआ कि गोपी की कोठी पर से दो जूड़े, दो नाड़े, बालटी व नेज व पन्ना की अंगरखी कोई ले गया। खोज साफ दिखाई देते थे। खोज जेबवालों के यहां पहुंच गये। जेबवाले रणजीता ने अच्छा उत्तर नहीं दिया, टेढ़ा ही बोला बताया। इतना साफ है कि उसके यहां ठहरने वाला कोई गया है। इसलिए मैंने रणजीता को बुलवा लिया और उससे कह दिया कि मैं जोबनेर का हूं और तेरा भी जोबनेर से सम्बन्ध है। मैं चोरी का माल तुझसे लूंगा। जब तक मेरे पास असल माल न आ जाय तब तक तू मेरे पास ही रहेगा। इसका नतीजा यह आया कि चोरी का माल ज्यों का त्यों आ गया। और आस-पास के गांवों में "पंडितजी" का दबदबा हो गया।

Calcutta, 9–4–31

I advised Sitaramji finally to devote his life to female education; his field of activities should be in Rajasthan. He is not inclined towards Rajasthan. His मोह for friends is now gone and says that he is in Calcutta owing to personal weakness, but Calcutta's expensiveness will drive him out some day.

Bombay, 15–6–31

Visit to Bombay. I was in my usual shabby dress which did not fit in with Bombay conditions, but I care very little about these things. Met Ramnarainji Chaudhary for the first time-he seemed to be greatly impressed with my frankness-he said "इनका काम विकट है, तेज

है—दूसरे जमनालाल जी हैं। घनश्यामदास जी से तर्ज मिलता है। आपके पास पूंजी अधिक है इत्यादि"

Haribhauji was also impressed as usual—

"बुनने में से आध्यात्मिकता निकालोगे—आपका मन्दिर बनेगा—हिन्दू कहेंगे चादर हमारी है—मुसलमान कहेंगे हमारी"

Jamanalalji appreciated my work, admired my courage and self confidence. The membership of Gandhi Sewa Sangh was offered to me, but I did not accept the offer. I think this means some courage. This Bombay visit has shown me that silent solid work is bound to invite the attention of the world and I shall therefore care more for my work than for anything else.

Banasthali, 19–3–32

Almost in a fit of loneliness-Ratanji not quite free to return early. Durga and Prakash on leave-no communication with any of those whom I have regarded as dear ones. Jamanalalji and Sitaramji in jail. No inclination to write anything in detail to Jethalalji. Some anxiety about Jobner. Overpowering burden of Kutir's work. There is none who might be consulted; I am grateful to my companions for their hard work. But I find myself in a strange predicament. Money not coming according to promises. People for whose good the Kutir exists, do not seem to understand the Kutir's real object. To whom may I look forward for help? To the Almighty, of course. These are trials for which I had bargained, let me therefore go on with full faith and resolution; difficulties shall be overcome and all will be well some day.

Banasthali, 19–8–33.

.....has agreed to pay Rs. 450/- to me (for the repayment of an old loan) but this incident gives me a most severe object lesson; to ask for money is to degrade oneself, I hope this incident will prove to be the last of its kind, my inner self revolts against many things: my self-confidence should never be shaken; I should refuse to degrade myself in any circumstances. I should not want anything from anybody, but I should accept help voluntarily given.

Banasthali, 3–3–34

Real affection is a rare thing. There are people who would show one thing while they may actually be a different thing altogether.

I used to trust......and a few other people, but I am being gradually disillusioned by one after the other

I have to do Coolie work as well as other work, e. g. thinking out policies. I should have necessary help for my various works. I cannot cope with every work singlehanded, most difficult for ordinary persons to perform all jobs.

Banasthali, 26-4-35.

—Bai suddenly expired on the 25th April, about 11 p.m. As regards the depth of my feeling on this point, it is simply indescribable. Heaps of past memory are rolling on before my eyes and I simply cannot forget the most innocent face of that most remarkable child. What great hopes I had formed about her future and how suddenly all these hopes have been shattered to pieces. What is all this mystery of birth and death. Nobody seems to have ever understood. All this is wonderful. After the terrible shock, the feeling uppermost in my mind is how to attempt the unbegun work cut short by her passing away.

Banasthali, 10-3-36.

Everything eclipsed by Navin's sad passing away. A severe attack of secondary brancho—pneumonia ended fatally. Taken ill on the 11th February—measles suspected; influenza; pneumonia complication appeared on the 18th—passed away in the morning of 19th March. Between hope and despair all those long days, Dr. Prabhudayalji did his utmost, Ratanji did the best possible nursing, Prakashji, Chauthmall, Virendra, Nanu all helped to their utmost. Nandkishoreji also attended. Compounder Jugal Kishore did his best. But all to no purpose. Navin was a most beautiful baby. This sudden event has affected Ratanji and me profoundly, we have decided that there will be no new children, even if Ratanji may have to undergo an operation. I don't see any other way out except operation,

जयपुर, २०–२–३७

हरलालसिंहजी आदि जाट भाई मिलने को आए। हरलालसिंहजी ने प्रजामंडल की बातें पूछीं।

वनस्थली, २१–७–३७

मि० यंग और कर्नल ह्यूवन वनस्थली आये। ८। के आस-पास पहुंचे। सड़क

छोड़कर सगगड़ में आना पड़ा, उसी में गये। ३।। वजे तक ठहरे। नाश्ता किया वड़ी प्रशंसा की। सहायता का वादा किया। रास्ते में प्रजामंडल की वात। समझौते की वड़ी संभावना।

कलकत्ता, ३–६–३७

सरदार वल्लभभाई पटेल से देशी राज्यों में काम करने की नीति के विषय में वातचीत की।

जयपुर, १५–१०–३७

किसे सभापति वनाना, किससे प्रदर्शनी का उद्घाटन कराना यह सवाल है। मि० यंग तथा मि० ओविन्स की राय लेनी। मिसेज ओविन्स और जोवनेर ठा० सा० का निश्चय। यह भार हल्का हुआ।

जयपुर, १७–१०–३७

प्रदर्शनी का उद्घाटन मिसेज ओविन्स ने किया। अच्छी उपस्थिति हो गयी। ठीक समय पर काम शुरू हुआ—मेरे पैर में जोरों से दर्द। पड़े ही रहना पड़ा। कामकाज पाटणीजी आदि ने किया, सभा में जाने से पहले ऑपरेशन। सभा वड़े समारोह से। मुझको दूसरों के सहारे से हिलना पड़ा, वैठे-वैठे वोलना पड़ा।

Calcutta, 4-3-38

System of election—how is it possible to find out suitable persons in the present circumstances, the best man would be more and more inclined to keep away.

Always difficult to know who stands where. The right men and the wrong men—ordinary people can seldom know whose worth is what.

Calcutta, 5-3-38

Subhas Babu--how he was elected President of the Congress. I never thought that he could be so greedy of 'मान' !

Power alone counts, nothing else does.

सीकर, २७–४–३७

गढ़ में वालसिंहजी से वात। नवलगढ़ व खूड़ ठा० सा० से-रावराजाजी से। सेठ वा० कृ० पोद्दार आदि से लम्वी चौड़ी वातें। रावराजाजी के लिए Draft लिखा। गढ़ के और आसपास के विचित्र अनुभव। रात को मि० यंग को ड्राफ्ट

दिखलाया। उन्होंने पसन्द किया। फिर टाइप कराया। गढ़ के कुछ लोगों को सुनाया। प्रातः ४ बजे के करीब रावराजाजी के हस्ताक्षर हुए। कपूरचन्दजी और मैं दोनों रवाना। लादूरामजी भी।

जयपुर, ६–५–३८

मि० यंग के पास कपूरचन्दजी के साथ। किशोरसिंहजी आये थे। इन्होंने जुलूस के सवाल को बहुत बड़ा बना लिया है। मि० यंग से जोरदार झपट हो गई। जुलूस शहर में होकर तो नहीं निकल सकता। निकाला जाय तो लड़ाई सही। वर्किंग कमेटी में मुश्किल से तय हुआ कि शहर के बाहर जुलूस निकालना मंजूर कर लिया जाय। फिर भी घिसघिस चलती ही रही। जमनालालजी से भी बात की गई। आखिर निकालना तय रहा।

जयपुर, ११–२–३९

जयपुर दिवस के प्रोग्राम के बारे में। दिन में अग्रवालजी आदि से बात। रात को ९ बजे के बाद वहीदुद्दीन आदि आये। कपूरचन्दजी, हरिश्चन्द्रजी, अग्रवालजी, रायजी और मुझको गिरफ्तार किया। अच्छे समारोह के साथ विदा। गांव मोहनपुरा के एक मकान में लाकर रखे गये। ऐसा अनुभव किया कि एकाध दिन पहले पकड़ लिए गये क्या ?

मोहनपुरा कैम्प, १२–२–३९

सवेरे मिश्रजी आ गये। जमनालालजी वैराठ के पास पकड़ लिये गये।

मोहनपुरा कैम्प, २२–२–३९

उपवास का पांचवां दिन

दारोगा बहुत जल्दी चला गया। कुछ न कुछ शिकायत करेगा, ऐसा मालूम पड़ा। हम लोगों ने भी एक पत्र I. G. Prisons को लिखा। तीसरे पहर चांदविहारीजी आये। हम कुछ आदमियों को हटाने की बात। पीछे रहने वालों को सब बातें समझा दीं। शाम को ८। बजे लाम्बा पहुंचे। खराब मकान, बड़ा दुःख और क्रोध।

लाम्बा कैम्प, १४–३–३९

मेरे lowest scale पर रहने की बात authorities को लिखकर देना साथी लोग ठीक नहीं समझते। अग्रवालजी और हरिश्चन्द्रजी ने साफ तौर से खुद की कमजोरी बता दी। मैं सोच विचार में–पहले पता तो लगे कि दूसरे जेल में हाल क्या है ?

लाम्बा कैम्प, १६–३–३९

सृष्टि के आदि अन्त के बारे में सोचने से कुछ लाभ नहीं मालूम होता।

सांख्य वेदान्त के सिद्धान्तों के अनुसार मैं कुछ समझने का प्रयत्न करता हूं तो मोटी-मोटी बात समझ में तो आ जाती है, परन्तु उससे चित्त को संतोष नहीं होता : किसी भी परमेश्वर, परपुरुष, ब्रह्म, मूल, प्रकृति या अन्य तत्व को यह जरूरत ही क्या पड़ी थी कि सृष्टि की रचना हो और प्रलय हो ? यही मान लेना पड़ता है कि जो कुछ भी है सो है। न जाने कब से है और न जाने कब तक रहेगा। मोक्ष का स्वरूप भी कुछ समझ में नहीं बैठ रहा है। एक प्रकार की शान्ति को मोक्ष कहते होंगे। परन्तु अलग-अलग व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त होते होंगे और जीवन मरण के प्रपंच से मुक्त होते होंगे, यह कुछ जमता नहीं। इन मामलों के झंझट से मुझको कभी-कभी एक तरह का वैराग्य होने लग जाता है। मैं सोचने लगता हूं आखिर कितने दिन तक जीना, कितने दिन कामकाज और फिर उसका नतीजा। मृत्यु के बाद की किसी बात के बारे में मुझको कुछ विश्वास नहीं होता है। मर तो जाना ही है, संसार में अच्छी बुरी सभी तरह की बातें रहती आई हैं। और वे रहने वाली भी हैं। आजतक किसी के मिटाने से बुराई मिट नहीं गयी। तो फिर इस झंझट में पड़ने से ही क्या लाभ है ? जैसा होता है उसे वैसे ही होने दिया जाय, वह वैसे भी होकर भी रहता ही है। विरक्ति की इस लहर का विशेष जोर तो नहीं हो पाता। फिर भी इस लहर का असर मुझ पर होता रहता है।

एक बात मेरे जमती है—वह यह कि जब तक जीना है तब तक कुछ न कुछ तो करना ही है। फिर जो काम अच्छा माना जाता है, जिसके अच्छा होने का मुझे खुद को भी विश्वास है, जिसके कर लेने में थोड़ा या बहुत आत्मसंतोष होता है - क्यों न मैं उसी काम को तन्मयता के साथ करता रहूं। फलाफल जो हो सो हो। मैं अपने आपको उस काम में लगाये रहूं। बस यही मेरे काम में लगे रहने का एकमात्र आधार है।

लाम्बा कैम्प, १७-३-३६

प्रजामंडल के काम को तो संभालना ही होगा। साधारणतया इस काम को सम्भालने वाला दूसरा आदमी फिलहाल तो नहीं मिलेगा। मैं यह चाहता हूं कि प्रजा-मंडल के लिए, जयपुर शहर में हैड क्वार्टर्स कायम किये जावें। एक लम्बी चौड़ी जगह हो जिसमें मकानात व खाली जमीन काफी हो। वहीं पर मेरा डेरा रहे। वहीं पर प्रजामंडल का प्रधान कार्यालय हो। वहीं पर स्वयं सेवकों की ट्रेनिंग हुआ करे। वहीं पर प्रजामंडल के अलग-अलग विभागों के कार्यालय हों। वहीं पर मीटिंग हुआ करे। वहीं पर प्रजामंडल का प्रेस हो। वहीं से प्रजामंडल का पत्र निकले। गर्ज यह कि सार्वजनिक जीवन का एक केन्द्र हो। जहां से जीवन की किरणें बराबर निकलती रहें। खेतड़ी, उणियारा आदि स्थानों में भी प्रजामंडल के कार्यालय हों। प्रवासी संगठन के लिए एक प्रचारक अलग हो। एक इन्सपेक्टर रियासत के भीतर घूमता रहे। शहर में

अच्छे कार्यकर्त्ता लगाये जावें। २४ घंटे इसी काम में रहने वाले कुछ अच्छे लोग और बढ़ाये जावें। ऐसे आदमी भी पैदा किये जावें जो अपना रोजगार करते हुए भी प्रजा-मंडल के काम में नियमित रूप से समय लगाते हों—और अपने जिम्मे कुछ न कुछ खास काम रख सकते हो। मुसलमानों में काम करने की तरफ खास ध्यान दिया जावे। स्त्रियों में भी काम किया जावे। मुसलमान कार्यकर्त्ता रखे जावें। स्त्री कार्यकर्त्ता भी रखी जावें। थोड़ा वहुत रुपया रियासत के भीतर पैदा किया जावे। ताकि वाहर के रुपये पर सारा दारोमदार न रहे।

लाम्वा कैम्प, ११–५–३६

सुवह ७ वजे पहले-पहले मि० वील लारियों सहित पहुंचे। जल्दी में तैयार हो गया। १०। वजे लाम्बा से विदा हुए। फाटक के वाहर गांव के वहुत लोग इकट्ठे हो गये। कुछ स्त्रियां भी आगईं। उनसे मामूली वातचीत हुई। वाद में आने का वादा किया। मुझको व्यक्तिशः जानने वाले और नाम से पूछने वाले कई आदमी निकले।

झालाना कैम्प, ११–५–३६

१२ वजे के करीव श्री गाजीहुसैन (सुपरि० पुलिस) आये। हरिश्चन्द्रजी, अग्रवालजी और मुझे सेठजी के पास चलने को कहा। तीनों को ही क्यों वुलाया इस पर आश्चर्य हुआ, परन्तु आपस में थोड़ी सी वात करके चल दिए। सेठजी के पास पहुंचे। उन्होंने सारा हाल वतलाया। मि० यंग का मिलना,उनसे पत्र व्यवहार, कौंसिल को पत्र लिखे सो। गांधीजी को लिखा सो। पीरामलजी की वातें। मि० टॉड की और अचरोल की। सरकार की समझौते की शर्तों पर वहस—शर्तें नक्की की गईं। सेठजी समझौते के लिए झुके हुए से मालूम पड़े।

झालाना से वस्सी, १८–६–३६

भोजन के वाद एक लॉरी आई हुई देखी। थोड़ी देर में मि० वील आये। दूसरी लॉरी आई। वसी डाक वंगला चलो। यहां मुसलमान कैदी आयेंगे। थोड़ी वहुत वहस हुई। परन्तु तैय्यार हो गये। और तीसरे पहर वस्सी पहुंच गये।

वस्सी से. ५–८–३६

मि० वील लॉरी लेकर आये। कुछ देर वाद छोड़ने की वात कह दी। पहले सरदारजी और छगनलालजी को न छोड़ने की वात थी। वाद में उनको भी छोड़ दिया। गोठ, अपनी और सिपाहियों की। वैनाड़ा के लिए रवाना। जयपुर में खवर हो ही गयी। वहां जोरदार जुलूस निकला।

वनस्थली से जयपुर, १०–८–३६

झट सांगानेर दर्वाजा। जुलूस की तैयारियां। आध घण्टे की देर हुई। भारी

जुलूस। ऐसा कभी निकला ही न होगा। मैं बराबर सेठजी के साथ रहा। मेरा भाषण कुछ जोशीला हो ही जाता है। सेठजी घर पर भी पहुंचे। देर बहुत हो गई थी। जुलूस में लड़कियों का काम भी अच्छा रहा।

जयपुर, २–४–४०

मैं और पाटणीजी भी जमनालालजी के साथ प्राइममिनिस्टर के यहां। १ से ३।। वजे तक तीनों साथ। आध घण्टे के लिए वीच में मि० ग्रोविन्स से वात करने को प्रा० मि० चले गये। ४ वजे ज० ला० चले गये। फिर लगभग ५।।। तक पाटणीजी और मैं। प्रा० मि० की मनोवृत्ति विल्कुल खराब है। पर वैसे efficient तो हैं। लम्वी बहस में दोनों ओर से दृष्टिकोणों के फर्क को साफ किया। कल फिर मिलना है। ज० ला० व साथियों से फिर सलाह। मेरा प्रस्ताव कि कुछ दव कर भी रजिस्ट्रेशन होता हो तो कराने की कोशिश करनी चाहिए। उनके डिटेल्स की चर्चा। मतभेद स्पष्ट हुए।

घर पर आकर एप्लीकेशन के ड्राफ्ट आदि तैयार करके टाइप करवाये। एक वजे सोना।

जयपुर, ३–४–४०

दुवारा मैं प्रा० मि० के पास नहीं गया। ज० ला० और पाटणीजी ही गये। प्रा० मि० नर्म पड़ा। शायद एच० एच० ने उससे कहा है। कम से कम ये लोग झगड़ा चाहते हुए नहीं मालूम होते। ज० ला० से उनकी कुछ खानगी वातें भी हुई, मेरे वारे में। एच०एच० की शादी के वारे में। मिनिस्ट्री के वारे में।

माणिकलालजी से वातें। लड़कियों की छात्रवृत्ति। मेवाड़ में रचनात्मक काम।

जयपुर, ७–४–४०

जमनालालजी, पाटणीजी और मैं नाटानी के वाग प्राईममिनिस्टर के पास। एक कागज जिस पर प्रा० मि० के किए हुए corrections थे मिला नहीं। उसके वारे में गर्मा-गर्म हुज्जत हो गई। प्रा० मि० ने यह कहना चाहा कि मैं उन्हें धोखा दे रहा हूं। मैंने कह दिया कि मैं यह सुनने को तैयार नहीं हूं। मुझे इतना बुरा लगा कि मैं उठ खड़ा हुआ जिसपर से प्रा० मि० ने समझा कि मैं उनको धक्का लगा देने वाला हूं। इस डरके मारे वे अपनी कुर्सी पर से ही पीछे की ओर दवने लगे, इतने कि गिरते-गिरते वचे।

आखिर आज constitutional channel की वात को लेकर समझौते की वातचीत टूट गयी। हमारा खयाल रहा कि प्रा० मि० तोड़ने को तो अव भी तैयार नहीं है। न्यू होटल पहुंचकर हम लोगों ने साधारण सलाह की। शायद कल पाटणीजी का प्रा० मि० से मिल लेना ठीक रहे।

झुंझुनू. ४-४-४१

पाटणीजी ने वताया कि वे खुद प्रधानमंत्री वनने को तैयार नहीं हैं। हरिश्चन्द्रजी अब सभापति वनने को तथा मिश्रजी वर्किंग कमेटी में रहने को तैयार नहीं। इसके वाद मैंने पालीवालजी, लादूरामजी और हरलालसिंहजी से वात की। हरलालसिंहजी न रहने को कहते थे। नरोत्तमजी की सिफारिश करते थे।

वर्किंग कमेटी में और काम के अलावा नई व० क० की वात भी कही। मिश्रजी न रहने के लिए अड़ गये। पाटणीजी ने ७ दिन के उपवास और मौन का निश्चय कर लिया। इस पर मिश्रजी ने जयपुर जाने का विचार कर डाला। वड़ा भारी संकट चला।

मैंने रतनजी, भागीरथजी, सीतारामजी को परिचित किया। रात को २॥ वजे सोना हुआ। जनरल कमेटी, विषय-निर्वाचन समिति। एक या अधिक प्रस्तावों की वहस।

पुलिस की ओर से आज की सभा को विफल करने का प्रयत्न किया गया।

झुंझुनू, ५-४-४१

भागीरथजी, सीतारामजी की सहायता से व० कमेटी की समस्या को सुलझाना चाहा सो सुलझ गई। मिश्रजी के लिए शहर कमेटी के सभापति वनना तय हुआ। जमनालालजी या सीतारामजी, भागीरथजी में से एक आदमी को लेने की वात रही।

बम्बई, ९-८-४२

सुवह वहुत जल्दी हलचल सुनी। प्रार्थना में आना चाहने वाले लोग फाटक खुलवाना चाहते हैं। फिर सुना कि पुलिस कमिश्नर गांधीजी को पकड़ने के लिए आया है। मैं भी गांधीजी के कमरे में पहुंचा। पुलिस वाले तो वाहर थे। वैष्णवजन गाया गया। फिर गांधीजी, महादेव भाई और मीरा वहन रवाना हो गये। वा को और प्यारेलालजी को भी कहा गया था कि चलना है तो चलो। फोन वन्द रहे। वाद में वड़ी चहल-पहल रही। लोगों को आना और जाना। गांधीजी कुछ विशेष कहकर नहीं गये— Every one is free to go to the fullest length under non violence. करेंगे या मरेंगे। घनश्मामदासजी को रचनात्मक कामों को सम्भालने के लिए कहा वताया।

रामकृष्ण के साथ मैं कमलनयन के यहां पहुंचा। वर्किंग कमेटी के मेम्वर तथा और भी खास-खास आदमी पकड़े गये।

सीतारामजी का पता लगाकर वहां पहुंचा। स्नान भोजनादि। फिर गोविन्दराम जी के यहां। कोई खास वात नहीं हुई।

सीतारामजी से वातें। भगवान देवी ठीक-ठाक। खुद का स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं।

रामदेवजी पोद्दार के यहां । उनकी बातें मुझे नापसन्द । काम की बात तो कुछ हो नहीं सकी । मेरी इच्छा भी नहीं हुई । हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्न करने की बातें करते थे । स्वराज आने पर आपको खूब रुपया मिलेगा ।

मारवाड़ी सम्मेलन में झालाणीजी, रघुवरदयालजी, श्रीनिवासजी आये । डॉक्टर कैलाश भी मिल गया ।

शहर में हड़ताल । लाठी चार्ज, Teargas इत्यादि ।

वसन्तलालजी के साथ बिड़ला हाऊस में । कस्तूरबा को पकड़ने के लिए पुलिस आई हुई थी । कहते थे मीटिंग में न जाओ तो नहीं पकड़ें । उनको, सुशीला तथा प्यारेलालजी को ले गये ।

वनस्थली से जयपुर, ३१–१–४३

बिड़ला बिल्डिंग में मन्मथकुमार आये थे । जुगलकिशोरजी बिड़ला का काम था । चन्द्रगुप्त वेदालंकार आदि से । सोहनलालजी आदि आये । उनके साथ रामचन्द्र शर्मा के यहां । सारी बातें सुनकर मुझे घोर ग्लानि हुई ।

जयपुर, १–२–४३

प्रा० मि० से फोन पर बात की । फिर जु० कि० बिड़ला के पास नवलगढ़ हाउस पहुंचा । उनसे साधारण सी बात हुई । नवलगढ़ ठा० सा० से भी मालूम होता है, उनके गस भरी है ।

प्रा० मि० के यहां जु० कि०, नवलगढ़ ठा०, मन्मथ और मैं । बाद में आर्मी मिनिस्टर आये और उनके साथ चन्द्रगुप्त वेदालंकार । प्रा० मि० ने सख्त रुखं अख्तियार किया ।

रामचन्द्र शर्मा के यहां और आदमियों को हटाकर बात करने की व्यवस्था । पर मेरी उपस्थिति शर्मा को नहीं जंची । मैं भी हट गया हिन्दी की बात तो वह मान गये बताये । गायों का सवाल उलझा है । जु० कि० व वेदालंकार आदि सब अजीब तरह से सोचते हैं ।

उदयपुर को, १--४--४४

मारवाड़ जंक्शन पर गोकुल भाई भट्ट मिल गये । भोजन आराम के बाद उनको जयपुर की स्थिति से परिचित किया । १६ सितम्बर को अल्टीमेटम भेजना ठीक नहीं था । साथियों के व्यवहार से उन्हें दुःख हुआ ।

उदयपुर, ३–४-४४

देर से उठना हुआ । खुले सम्मेलन के लिए चले । रास्ते में सर्वटेजी से और गोकुल भाई से बात । पहिले वर्माजी से हुई ।

रियासतों के हाल-चाल पेश होते ही हरिश्चन्द्रजी का भाषण भी हुआ। कुछ ज्यादा बुरा नहीं था। मेरा भाषण बहुत युक्तियुक्त था। लोगों को वह पसन्द आया।

सेवाग्राम, १६-२-४५

स्वामी आनंन्द के यहां भोजन। उनसे बातचीत। गांधीजी से हुई बातचीत का संशोधन किया। नरहरि भाई भी थे। महादेव भाई का लड़का और इनका लड़का एक कालोनी बसायेंगे। वनस्थली को स्वावलम्बी कैसे किया जाय। स्वामीजी की राय रही कि किशोरलाल भाई आदि के साथ सलाह करके फिर करना हो तो गांधीजी से बात करनी चाहिए।

बम्बई, २३-६-४५

जवाहरलालजी के सेक्रेट्री उपाध्यायजी से परिचय किया। वे अपनी लड़कियों को वनस्थली भेजना चाहते हैं। जवाहरलालजी ने काफी जोर दिया मालूम होता है। जवाहरलालजी से मिलना हुआ। वनस्थली का नाम सुनते ही बोले कि लीजिए अब ये कहेंगे कि वनस्थली चलो। उन्होंने वनस्थली जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु उस समय पक्की बात नहीं कही। बाद में व्यासजी से बात होकर उनका कार्यक्रम ठीक हो गया। २० को सुबह जयपुर पहुंचना। उसी दिन शाम को स्टेंडिंग कमेटी। २१ को मीटिंग। २२ को वनस्थली। उसी दिन जयपुर को। यह सब कुछ ठीक हो गया। उनके स्वागत आदि के बारे में व्यासजी से बात जुलूस, थैली भेंट करना।

दिल्ली, १९-१०-४५

जवाहरलालजी के डिब्बे में साथ रहा। दिल्ली स्टेशन की भीड़। कश्मीर के शेख अब्दुल्ला भी आ गये थे। रेवाड़ी, अलवर आदि स्थानों में लोग आये। बीच-बीच में जवाहरलालजी को जागना पड़ा। मैं कुछ सोया कुछ नहीं। कई विचार चलते रहे लोकप्रियता के विषय में। क्या लोग तेज व्यक्ति को पसन्द करते हैं। यही इसका रहस्य है। गांधीजी की लोकप्रियता दूसरी तरह की है।

जयपुर, २०-१०-४५

सुबह जयपुर स्टेशन पर पहुंचे। भीड़ काफी थी। हरिश्चन्द्रजी के चेले बड़ा शोर कर रहे थे। उन्होंने गार्ड ऑव ऑनर में भी दखल देना चाहा था पर उनकी यह चली नहीं। जोशीजी ने पंडितजी को माला पहिनायी कुछ और लोगों ने भी। सोहनलाल दूगड़ भी वहां आ फंसे थे। आखिर दूसरी तरफ से उतर कर जवाहर लालजी निकले। गार्ड ऑव ऑनर में वनस्थली की लड़कियां भी थीं। मोटर में बैठकर स्वामीजी के बाग में। मैं साथ में था ही। पंडितजी ने मुझे कहा था now I am entirely in your hands. मैंने कहा था कि मेरे हाथ छोटे हो सकते हैं पर मेरी grip बहुत मजबूत है, आप सावधान रहियेगा।

जयपुर में रहे तब तक जवाहरलालजी सचमुच मेरे सुपुर्द रहे। मेरे बिना, मेरी राय के बिना कुछ भी तय नहीं हुआ। मैं भी बॉडी गार्ड की भांति उनके चिपका ही रहा। मैं दूसरी सब बातों की सुधबुध भूल गया।

हरिश्चन्द्रजी आदि पंडितजी से मिले। उन्होंने प्रजामंडल की शिकायत की। रुपयों की बाबत उनको कह दिया गया कि या तो सभा में दे दो या कल सुबह ८। बजे यहां आकर दे दो। सभा में जाने से उन्होंने इन्कार कर दिया। बाद में उन्होंने पंडितजी को कहलवा दिया कि हम लोग रुपया देना नहीं चाहते।

जयपुर, २१–१०–४५

सभा स्थान को मैंने भी देख लिया। सारी व्यवस्था ठीक हो गयी थी। पंडितजी को लेकर मैं सभा में पहुंचा। उपस्थिति बहुत अच्छी थी। शायद एक लाख तक होगी। बड़ी शान्ति थी। सारा दृश्य बड़ा मनमोहक था। जोशीजी सभापति बने। मैंने स्वागत भाषण दिया। ३१००० की थैली जोशीजी ने भेंट की। पंडितजी का लम्बा शान्त भाषण हुआ। तालियां दो एक बार ही बजी होंगी। पंडितजी प्रजामंडल के पक्ष में बोले। यह सब कुछ ठीक होगया। मुझे बड़ा संतोष और गर्व रहा। पंडितजी महाराजा की गार्डन पार्टी में गये और फिर सर मिर्ज़ा के यहां के डिनर में भी। भागीरथजी शाम को आ पहुंचे हैं।

पंडितजी ने रात को जाकर वनस्थली सोना मंजूर कर लिया। सरोजनीदेवी अस्वस्थ हो गयीं। पंडितजी ने कहा कि इन्हें ले जाने की जिम्मेदारी मत लो। मैंने उनकी बात मानली। सोफिया वाडिया के लिए सरोजनी देवी ने पत्र लिख दिया। पंडितजी ने भी उनका पत्र लिखकर समर्थन किया।

अटलजी के यहां भोजन के बाद पंडितजी को लेकर वनस्थली को। रात को बड़ी देर से पहुंचे। उसी समय बैण्ड के साथ स्वागत आदि हो गया। पंडितजी ने वनस्थली का आवश्यक हाल जान लिया और फिर सो गये। शेख अब्दुला आदि भी आ पहुंचे।

वनस्थली से जयपुर, २२–१०–४५

बिलूचिस्तान के तीन सज्जन आ पहुंचे। वनस्थली में पंडितजी का कार्यक्रम बड़ा सुन्दरता के साथ निभ गया। वे बहुत प्रभावित हुए। सभा में वे बोले कि मैं एक छोटी सी लड़की होता तो वनस्थली में शिक्षा पाने का अवसर मुझे भी मिलता। भोजन करके १२ बजे बाद पंडितजी जयपुर के लिए रवाना हो गये।

आजाद मोर्चा वाले बाजार में एक जगह पंडितजी को अपनी थैली देने वाले थे। परन्तु उन्होंने तरकीब से एक सभा जैसी कर डाली, जिसकी बात नहीं थी। पंडितजी ने सुन्दर भाषण दिया जिसमें उन्होंने प्रजामंडल के पक्ष का पूरा समर्थन कर

दिया। हरिश्चन्द्रजी ने एक स्लिप पंडितजी को लिख दी कि थैली के साथ आजाद मोर्चा भी आपको भेंट है। इस पर पंडितजी बोले—मैं इसे कहां ले जाऊं, मैं इसका क्या करूं। पंडितजी ने हरिश्चन्द्रजी का स्लिप मुझे दे दिया जिसे मैंने अपनी जेब में रख लिया। अन्त में मैंने भी दो वाक्यों में अपना संतोष प्रकट कर दिया। इस प्रकार आजाद मोर्चा खत्म हो गया।

पंडितजी मेरे घर पर आये। वहां पर कुंकुमादि से उनका स्वागत किया। उनसे साथियों का परिचय भी वहीं करा दिया।

कलकत्ता, १४–१२–४५

कलकत्ते में गांधीजी से तीन बार मिलना हुआ। पहिली बार तो ठक्कर बापा के साथ रतनजी का और मेरा जाना हुआ। कस्तूरबा कोष की प्रान्तीय और रियासती समितियां तोड़ दी गयी हैं। रतनजी को राजपूताना के लिए प्रतिनिधि (एजेन्ट) बनाया गया है—गांधीजी से बात करके रतनजी ने यह काम स्वीकार कर लिया। स्वीकार ही करना भी था। दुबारा गांधीजी ने समय दिया कस्तूरबा कोष का कार्य समझाने के लिए। सो उन्होंने बड़ी देर तक सब कुछ कहा। फिर तिबारा मैंने कुछ बातें पूछने के लिए समय ले लिया था—सब कुछ अच्छा रहा। सुधाकर को तीनों बार साथ रखा था—एक बार मोहन भी। सतीश बाबू के साथ थोड़ी देर बैठना पड़ा। पर उनसे विशेष परिचय करने का अवसर नहीं आया। गांधीजी के परिजनों में से और किसी से भी ज्यादा बात नहीं हुई—हालांकि राजकुमारी अमृतकौर, डॉ० सुशीला, प्यारेलालजी को गांधीजी के यहां देखा देखी तो हुई। प्रभावती (श्रीमती जयप्रकाशनारायण) से थोड़ी सी बातें हो गयीं। गांधीजी से मिलकर सन्तोष काफी होता है। वनस्थली के बारे में वे बोले–मुझे वहां बुलाओगे तो कीमत भी चुकाओगे? मैंने कहा कि वहां एक बार आजाइए कीमत का सब हिसाब वहीं हो जायेगा। कृपलानीजी से मिलना हुआ। प्रजामंडल के अधिवेशन के उद्‌घाटन की हां उन्होंने करली। राधाकृष्णजी बजाज भी साथ चले गये थे। प्रजामंडलों का कांग्रेस से सम्बन्ध होने की बाबत उन्होंने मजबूती के साथ इनकारी का उत्तर दिया।

कलकत्ता, १६–१२–४५

सरदार वल्लभ भाई पटेल से बहुत देर तक बात हुई। उन्होंने साफ बतलाया कि अभी प्रजामंडल का कांग्रेस से सम्बन्ध करने का समय नहीं आया है। और भी बहुत सी बातें उन्होंने सुनायी। सर मिर्जा के बारे में उनकी राय ठीक है, जैसी कि गांधीजी की भी है। सरदार की कांग्रेस प्रेसीडेण्ट होने की संभावना है। इसलिए उनसे उद्‌घाटन की विशेष बात नहीं कही। बाकी वे जयपुर आना चाहते हैं और वनस्थली की बात तो उन्होंने अपने आप ही छेड़ी। मौलाना आजाद से भी देरतक बातें। बसन्तलालजी और कमलनयन भी आये थे। कांग्रेस सम्बन्ध की, बीकानेर की, वनस्थली की

सभी बातें हुई। डॉ० पट्टाभि से थोड़ा मिलना जुलना होता रहा—जरा सा मिलना पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त से भी हुआ। शंकररावदेव तो रामकुमारजी के यहां ठहरे थे, जहां मैं ठहरा था। उनसे बहुत सी बातें होती रहीं—कांग्रेस की, कार्यकर्ताओं के निर्वाह आदि की। जवाहरलालजी के तरीके ऐसे लोगों को ज्यादा पसन्द नहीं हैं। राजेन्द्र बाबू आये नहीं थे।

उदयपुर, २७–१२–४५

छत्रछाया को सबसे पहले जयपुर प्रजामंडल ने ही उड़ाया है। दूसरे लोग अभी तक झिझक रहे हैं। अपनी ओर से यह जल्दी हो गयी क्या? आखिर तो यह अच्छा ही है। इस बात पर झगड़ा होगा तो हो जाएगा। पब्लिक सोसाइटीज ऐक्ट को रद्द करवाने की कोशिश फिर होनी चाहिए।

जयपुर ७–१–४६

पाटणीजी इलाज के लिए बम्बई को। सर मिर्जा से मालूम हुआ कि डॉक्टर लोग पाटणीजी के कैंसर समझते हैं। डॉ० प्रभुदयाल जी से बात हुई है। वे भी गम्भीर स्थिति बतलाते हैं। जान का पूरा खतरा जान पड़ता है।

कोटा, २४–१–४६

पाटणीजी की बीमारी बम्बई में कुछ ठीक नहीं हुई। उनकी गांठ का बिजली से इलाज किया है। उससे कुछ लाभ तो हुआ, परन्तु दूसरी पेचीदगियां हो गयीं। पेट की गड़बड़, मूत्राशय की गड़बड़, इत्यादि। इससे एक बार तो बम्बई बड़ा खतरा बढ गया था। मैं बम्बई जाना चाहता रहा, पर जा ही नहीं सका। आखिर १ जनवरी को वे खुद ही जयपुर आगये। कोटा स्टेशन पर मुझे मिल गये। सारा हाल चाल सुभद्रकुमार से जाना। डॉ० ताराचन्दजी से जाना। प्रभुदयाल जी से भी बात की। उनके बचने की आशा बहुत कम बन्धी। जयपुर में उनकी हालत काफी गड़बड़ सी मालूम पड़ी। पर ३ जनवरी से कुछ सुधार जैसा मालूम पड़ने लगा है। खतरे से बाहर तो अभी कहां? पर कुछ कुछ आशा बंधने लगी है। मेरा उनके पास जाना बैठना कम ही हो पाया, हिसाब से तो ज्यादा होना चाहिए था, पर कैसे पार पड़े। रतन जी भी चाहती रही कि मैं पाटणी जी के लिए और उनके साथ ज्यादा समय लगाऊं। मैं जाता हूं तब रतन जी के खयाल से उन्हें राहत मिलती है। बहरहाल पाटणी जी की बीमारी का एक खास बोझा मेरे चित्त पर रहता ही है।

जयपुर ३–२–४६

अंग्रेजी शिष्टमंडल के कुछ सदस्यों के आने की खबर मुझे कल सुबह १०॥ बजे लगी। रतन जी और मोहन के साथ मैं कार में जयपुर पहुंचा। नाटाणी के बाग गये।

मालूम हुआ कि सर मिर्जा सादि सब खासा कोठी में हैं । वहां चले गये । वे लोग भोजन करके बाहर आये तो सर मिर्जा ने मुझ से कहा कि आप इनसे बात करें । परिचय करा दिया । थोड़ी देर बातें हुई । लॉर्ड मन्स्टर और ब्रिगेडियर लो थे । पहला तो यां ही सा लगा, दूसरा आदमी जरा होशियार मालूम हुआ । डेली ऐक्सप्रेस के प्रतिनिधि से भी मिलना हुआ । वह तो एक बार फिर जयपुर आयेगा । और काफी ठहरेगा । ५ ता० को मिसेस निकोल, मि० निकलसन, लार्ड चार्ले आये । मिसेज निकोल दो दिन ठहरने को थी पर ऐसा नहीं हुआ । इसलिए उनका वनस्थली जाने का सवाल नहीं रहा । और मैं उनसे मिला भी नहीं । ता० ६ को प्रो० रिचार्डस, मि० बाटमले और मि० सोरेन्सन आने वाले थे । लेकिन आये सिर्फ मि० सोरेन्सन ही । उनसे मैं मिल लिया । राजपूताना की रियासतों के विषय में उन्हें एक लिखित नोट भी दिया । रतन जी भी साथ गयी थीं और दौलतमल जी को भी ले गया था ।

अलवर, ६–२–४६

जेल में पहुंचे । चार आदमी अलवर के भी साथ थे । साधारण बातें हुईं । इन लोगों के मन में, बापना के प्रति रोष बहुत है । गिरफ्तारियां जागीरदारों के प्रभाव से हुई मालूम होती हैं । इन लोगों के विषय में कुछ शिकायतें थीं, गर्म बोलने की, हल्का बोलने की ।

प्राइममिनिस्टर बापना सा० के यहां उनके सेक्रेटरी ने स्वागत किया । थोड़ी देर बाद उनसे मिलना हुआ । खुलकर बातें हुईं । मैंने उन्हें यही बतलाया कि गिरफ्तारियां करके आपने भूल की है । वे लोग क्या चाहते हैं सो बात भी हुई । उनका रुख छोड़ने का मालूम पड़ा । वे हमसे सहयोग करें, यही वे कहते रहे । भोजन के बाद दुबारा जेल में गया । वहां पर कई घण्टे ठहरा । बहुत बातें उन लोगों से कीं । आखिरकार यह तय हुआ कि राज ने जैसे गिरफ्तार किया है, वैसे छोड़ दें । आइन्दा दोनों ओर से नजदीक आने की अवश्य कोशिश की जाय । बापना सा० के यहां दुबारा । उनसे तय होगया कि कल ११ बजे के करीब सब लोग छोड़ दिये जायेंगे । आइन्दा के लिए मैं भी थोड़ा ध्यान रखूंगा कि यहां की स्थिति बिगड़ने न पावे ।

उदयपुर, २०–११–४६

व्यास जी लगन वाले और परिश्रमी आदमी हैं । मैं हरएक पंचायत में शामिल कर लिया जाता हूं । कोई भी कमेटी सब कमेटी बने । उसमें मैं ले लिया जाता हूं । एक कमेटी पदाधिकारियों की बनी उसमें भी मेरा नाम आ गया । कश्मीर वाले ने पूछा कि कोई सभापति है, कोई मंत्री है, कोई कोषाध्यक्ष है, पर शास्त्रीजी क्या हैं ? व्यास जी बोले कि शास्त्री जी हमारे High Priest हैं । मुझ से जितना बनता है उतना योग मैं देता भी हूं । पर मेरे सामने फिर वही समय और शक्ति बचाकर लगाने का

है। मैं तो सभी जगह बुरी तरह से फंसा हुआ हूं, तब कैसे किसी काम के साथ न्याय करूं।

मुझे इस बात का सन्तोष है कि मेरी पहुंच सब जगह है। गांधी जी से मेरा अच्छा सम्बन्ध है। जवाहरलालजी के साथ भी अच्छा सम्पर्क हो गया है। वल्लभभाई और राजेन्द्र बाबू से भी ठीक है। कृपलानीजी से ठीक हुआ जा रहा है। मौलाना और राजगोपालाचारी से ठीक ठीक। राजाओं और उनके प्रधान मन्त्रियों से मैं बराबरी के पैमाने पर बात करता हूं। पैसे वाले लोगों में भी पहुंच जाता हूं। आम सभा में भाषण भी दे डालता हूं। मैं कोरा नेता बनने के लायक साबित नहीं हो रहा हूं। कारण यह है कि मुझे दिखावा और आडम्बर पसन्द नहीं। मैं झूंठमूठ बहादुरी की बातें नहीं कर सकता। मैं ठोस तरीके से व्यावहारिक बात सोचकर चलना चाहता हूं। बड़े लोगों पर प्रभाव रखता हूं। कोई बात गांधी जी या जवाहरलालजी के पास पहुंचाने की होती है तो लोग मुझ से आशा करते हैं कि मैं पहुंचा दूंगा। वैधानिक सुधारों की बात चली तब कुछ लोगों ने कहा कि जयपुर में तो मामला ठीक ठीक बन रहा है, पर और जगह हाल ठीक नहीं है। इस पर किसी ने कहा कि और जगह हीरालाल शास्त्री भी नहीं है। कोई बोले जयपुर भाग्यशाली है तो किसी ने कहा जयपुर के कार्यकर्ता भी भाग्यशाली हैं। ये बातें किसी हद तक चित्त को प्रसन्न करने वाली हैं, पर इनमें खतरा भी है। मेरे बहुधंधी होने से काम में गड़बड़ रह सकती है। बलवन्तराय मेहता ने कहा कि सबसे ज्यादा व्यवस्थित काम राजपूताना रीजनल कौंसिल का है। यह ठीक भी हो सकता है, परन्तु मैं सब कामों को इतने ज्यादा व्यवस्थित कैसे कर दूं? मेरे पास आदमी चाहिए, हाथ पांव चाहिए। ऐसा हो तब तो मैं सबसे ज्यादा काम कर गुजर सकता हूं। आदमियों के बिना मैं किसी दिन बैठ सकता हूं। उम्र भी ५० के पास पहुंची जा रही है। मुझे चिन्ता ज्यादा करनी पड़ती है। शायद ही किसी दूसरे अकेले आदमी पर इतना भार होगा। रुपये पैसे का भार ही बहुत ज़्यादा है। फिर अकेली वनस्थली ही क्या कम है। फिर जयपुर प्रजामंडल भी पूरी शक्ति की मांग कर सकता है। राजपूताना के लिए भी पूरी शक्ति चाहिए। अखिल-भारत में भी पूरी शक्ति लगाने से मैं कायम रह सकता हूं। इतनी पूरी शक्तियां कहां से आवे? फिर जीवनकुटीर है ही। लोकवाणी भी है, जिसके लिए पिछले महीनों में मुझे बैंक ही बन जाना पड़ा। कहीं से भी ला लू कर रुपया देना पड़ा। कस्तूरबा कोष, हरिजन संघ जैसे भी है। प्रसंग से दूसरे काम भी आही जाते हैं। कपूरचन्द्रजी पाटणी का स्वर्गवास हो गया। मेरी भुजा ही टूट गयी। उनके स्मारक के काम में मेरा बड़ा दिल है। परन्तु उसके लिए रुपया चाहिए। रुपया लाने के लिए मुझे खड़ा होना पड़े। सभा भवन की कल्पना मेरी थी। बसन्तलालजी मुरारका पचास हजार रुपया लगाना चाहते रहे हैं। यह काम भी अपने आपसे कम नहीं है। इन कामों के लिए मैं शक्ति कहां से लाऊं? प्रजामंडल के उद्घाटन के लिए कृपलानीजी को लाऊं।

वनस्थली में शंकररावदेव को लाऊं। वनस्थली के उत्सव के लिए मौलाना और विजयलक्ष्मी को तय करूं। इन कामों में भी शक्ति तो चाहिए न? वह कहां से आवे।

आगरा से धौलपुर बसई, ३१–३–४७

ज्वालाप्रसाद जी के यहां। धौलपुर के पुलिस अफसर आये। एक पत्र लाये, जिसमें लिखा था कि आपका इस समय आना बे मौके होगा। मैंने कह दिया कि मुझे तो जाना ही है, जाना तै हुआ। पुलिस की एक मोटर आगे, एक पीछे, बीच में दो मोटरें हमारी जिन पर तिरंगे लहरा रहे थे। अच्छा नजारा था। गोकुलभाई आगरा-फोर्ट पर मिल गये। प्रकाशनारायण जी शिरोमणि, देवेन्द्रजी, सैनिक के प्रतिनिधि तथा धौलपुर के कुछ लोग भी साथ थे।

धौलपुर पहुंचे। लोगों में बड़ी उत्सुकता थी। दंगे के डर से सारी दुकानें बन्द थीं। बदमाश लोगों को तो शायद इकट्ठा करवाया था। दफ्तर में कुछ नाश्ता किया। फिर वहां तो सभा जुड़ गयी। बहुत अच्छी सभा हुई। मुस्लिम भी आये। बाद में बसई पहुंचे।

सरदार अजमेरीसिंह धौलपुर से आ गये। गुरदित्तसिंह, तहसीलदार शमशेर आदि मिले। थानेदार अलीआजम, रामसिंह आदि मिले। कार्यकर्त्ता भी मिल गये। कुल मिलाकर अच्छा रहा। गांव से मंगाकर रोटी खायी। देर से सोना हुआ। पुलिस गार्ड मौजूद था।

बसई से आगरा–जयपुर, १–४–४७

सुबह कुछ जल्दी उठा। गांवों के लोगों के आने की उम्मीद थी। पर लोग कुछ आ नहीं पाये। गांव में इधर-उधर घूमे। हालचाल देखा। फिर जहां पर पुलिस वाले ठहरे थे वहां पहुंचे। वहां जमघट हो गया। गुरदित्तसिंहजी ने तहकीकात शुरू करवाकर खुद बयान से देने लग गये। अलीआजम थानेदार ने बयान से दिये। एक हुक्मा गूजर ने उनकी शिकायत शुरू की। कहते कहते कह गया कि ये गुण्डा पार्टी है। इस पर कुछ हथियारबन्द लोगों ने उस पर हमला करना चाहा। गुरदित्तसिंह ने उसे बचाने के बहाने अन्दर ढकेल दिया, पुलिस वालों ने उसे कुछ पीटा। मैंने उसे बाहर निकाल लिया। मामले को ठण्डा किया। गुरदित्तसिंह गोकुलभाई से भिड़ने लग गया, मैंने उससे मांफी मंगवाई।

बसई के रास्ते में कलेवा करते गये। १२ बजे पहुंचे। थोड़ा सा भोजन। लोगों में उत्साह था। विरोधी इकट्ठे हो रहे थे। किलेबन्दी में सभा हुयी। बन्दूकों वाले पहरा लगा रहे थे। सब काम ठीक हो गया। शान्ति के साथ भोजन करके आगराफोर्ट पहुंचे। यह विचित्र दौरा आनन्द के साथ पूरा हुआ।

दिल्ली, १७–४–४७

स्थायी समिति का काम शुरू ही नहीं हुआ । शुरू हुआ तो कुछ जमा नहीं । बड़ी बेमतलब की बहस होती रही । मेरा जी उचटता रहा । आखिर पण्डितजी आये । उन्होंने फिर समझाना शुरू किया । प्रस्ताव की रूप रेखा भी बनायी । परन्तु फिर भी सारे बेमतलब की बहस करते रहे । जो मेम्बर नहीं हैं वे भी आ जाते हैं और मेम्बरों की अपेक्षा ज्यादा समय ले लेते हैं । आखिर कुछ भी किए बिना ही काम समाप्त हो गया । बहुत से लोग ग्वालियर के लिए रवाना ।

ग्वालियर, १९–४–४७

प्रो० प्रेमनारायणजी सिद्धराज आदि आये । उन लोगों को मैंने अपनी मनोदशा बतायी । कहा कि मैं निर्णय नहीं कर पा रहा हूं कि मुझे क्या करना चाहिए । प्रधान कार्यालय का कार्यभार संभालूंगा या नहीं ? उनकी राय में संभालना चाहिए । कमलनयन तो जोर लगा ही रहा है ।

विषय निर्वाचन समिति की बैठक होटल में ही हुई । पण्डितजी चार प्रस्तावों के मसविदे लिखकर ले आए । उनके आधार पर विचार विनिमय हुआ । स्थायी समिति की बैठक नहीं हो सकी और उसमें प्रस्तावों पर विचार नहीं हो सका । यह संगठन की कमजोरी का लक्षण है । यह बात मुझे बहुत अखरी ।

दुबारा विषय निर्वाचन समिति पंडाल में हुई, जहां बड़ी गर्मी थी । मुख्य प्रस्ताव विधान परिषद् सम्बन्धी था । उसी पर काफी गर्मा गर्मी रही । पंडितजी भी बोले । काश्मीर वालों ने काफी गड़बड़ मचायी । खुले अधिवेशन में प्रस्ताव को रखने का भार मुझ पर रखा गया ।

ग्वालियर, २०–४–४७

पंडितजी से मिलने के लिए । वे रास्ते में ही मिल गये । वे होटल आये सो कमल और मैं भी होटल पहुंचे । पर वहां से वे अचानक चल दिये । इसलिए हम दोनों हवाई अड्डे पर पहुंचे । मैंने पंडितजी से पूछा कि डॉ० पट्टाभि मुझे कार्यालय को संभालने के लिए कहते हैं । मुझे क्या करना चाहिए । वे बोले कि आप समय दे सको तो संभाल लो । मैंने कहा कि काचरू को नहीं दिया जा रहा है, इसलिए यह मामला कुछ नाजुक हो गया और इसीलिए मैं आपसे पूछ भी रहा हूं ।

दिल्ली, १४–५–४७

मैंने २२ मई को अ० भा० देशी राज लोक परिषद् के प्रधान कार्यालय का कार्यभार संभाला तब से बराबर नियमपूर्वक जा रहा हूं । काम को बनाने की कोशिश कर रहा हूं । कामकाज का हाल कुछ अच्छा नहीं है और तो क्या कैशबुक तक मुझे नहीं दी गयी है,

कार्यवाही की किताव नहीं दीखी। पुराना हिसाब किताव वैठ जाने की कोई आशा नहीं है। लेकिन नया काम तो मुझे अच्छी तरह चलाना है। वह काम करना पड़ेगा मुझे अकेले को ही। व्यासजी सहायता शायद नहीं दे सकेंगे। डॉ० पट्टाभि तो वहुत अव्यवस्थित हैं। वैसे भी वे वड़े निराश हो रहे हैं और दूसरे लोगों की निन्दा स्तुति में काफी लगे रहते हैं। यह उनके लिए विलकुल अच्छा नहीं है।

दिल्ली, १७–५–४७

गांधीजी दुःखी और निराश से मालूम पड़ते हैं अन्य लोग उनका कहना नहीं मानते। जवाहरलालजी से मिलना हुआ। उनके यहां की पार्टी में भी गया। राजेन्द्र वावू के यहां हम लोग गये। वड़ा सुख मिला। उनसे विधान परिषद् की कमेटियों से रियासती जनता के प्रतिनिधियों को लेने की वात भी हुई। सत्यनारायणजी सिन्हा से मिलना हुआ। कृपलानीजी और शंकररावजी के यहां गया। जयप्रकाशनारायणजी से मिला। काफी वातें उनसे हुईं। राजपूताना की रियासतों की स्थिति उन्हें वताकर मैंने उनसे पूछा कि क्या होना चाहिए। कोई खास वात नहीं वता सके। वोले व्यावहारिक आधार पर ही काम करना पड़ेगा। राजाओं से मेल रखकर उनकी मदद से जागीरदारों को दवाना चाहिए। वे मुझसे वात किये विना राजपूताना में कुछ नहीं करेंगे। उनका खयाल पार्टी वनाने का नहीं है, वोले प्रजामण्डलों के अन्तर्गत काम करना चाहिए।

जयपुर, जून, १९४७

राजपूताना प्रान्तीय कार्य समिति की वैठक हुई। गोकुलभाई, व्यासजी आदि सभी थे। माणिक्यलालजी यहां नही आ सके थे। नई रीति नीति और कार्यक्रम का सवाल था। मैंने कुछ लिखकर देने का वादा किया है। प्रान्तीय कार्यालय के काम के लिए मैंने गोकुलभाई को दवाया है कि वे सिद्धराज की मदद करें तथा एक अच्छासा कार्यालय मंत्री तलाश किया जाय जो काम अच्छी तरह से चला सकता हो। पैसे का जिम्मा मुझ पर ज्यादा आ जाता है। मैं उत्साह में आकर कुछ ज्यादा ही कर देता हूं। जयपुर प्रजामण्डल की कार्यकारिणी हुई। जिनको मैं साथी मानता रहा उनसे मैं तो सर्वथा ही निराश हो गया हूं। ये तो किसी भी तरह मुझे भरोसे के लायक नहीं जान पड़े। मेरे पीछे से दूसरी वात करते हैं और मेरे सामने दूसरी वात करते हैं।''''का भी मुझे कोई भरोसा नहीं होता है। मूझे वड़ा दुःख है कि मैंने अपनी वेदना कई वार अच्छी तरह से प्रकट कर दी। कोई समझे या न समझे। इधर उधर की वातें खूब चल जाती हैं।

टोंक-वनस्थली, ४–१२–४७

टोंक के लिए रवाना। रामेश्वर आदि भी साथ। १०। वजे के करीव पहुंचा। कुछ लोग गांव के वाहर मिले। वाद में दूसरे लोग भी आगये। मंजूर आलम आदि भी थे। एक थे नवाव साहव के भाई जिनकी तनख्वाह रुकी हुई है। एक धर्मशाला में ले

जाया गया। वहां लोगों से बातें हुई। जुलूस निकाला गया। नारे जोर शोर से लगे। सभा का ऐलान कर दिया गया। रामरतन के घर पर भोजन आदि। लोगों को अन्देशा हो रहा था कि मुसलमान गड़बड़ करेंगे। प्राइम मिनिस्टर के यहां १। घंटे तक बातें हुई। वैसे आदमी कुछ बुरा नहीं लगा। लेकिन डरता हुआ सा जंचा। विविध बातें की। नवाब साहब के यहां प्राइम मिनिस्टर के साथ। थोड़ी प्रतीक्षा के बाद बुलाया गया। १। घंटे तक बातें हुई। कुछ देर प्राइम मिनिस्टर और प्राइवेट सेक्रेटरी के सामने। एक मिनिस्टर की जगह खाली है। जिस पर हिन्दू को ही लेंगे। दो लोकप्रिय मंत्रियों में से एक हिन्दू होगा। मेरी राय की कद्र करेंगे। पढ़े लिखे नहीं हैं, कुछ सीधे भी है, डरते हैं।

रामरतन की दूकान पर, फिर सभा में। लाउडस्पीकर के लिए बिजली आने में देर। फिर नमाज के कारण से देर की। भाषण शान्त गम्भीर था। पांच सात हजार आदमी थे जिनमें मुसलमान भी काफी थे।

सभा के बाद मैं लौट रहा था। भीड़ नारे लगा रहि थी। कुछ समय कुछ मुसलमान बदमाशों ने गड़बड़ की। पत्थर फेंके, एक पत्थर रामेश्वर के लगा। झंडा ले गये बताये। बिदा होते होते मैं प्राइम मिनिस्टर से मिला। उनसे कहा आपसे राज नहीं चलेगा। बिदा होकर वनस्थली आये।

वनस्थली, ५–१२–४७

देर से उठने वाला था। अचानक आवाज आई। मालूम हुआ कि टोंक के नवाब साहब आये हैं। मैं बाहर निकल कर आया तो देखता हूं कि नवाब साहब, प्राइम मिनिस्टर, आई० जी० पी०, डॉक्टर आदि मौजूद हैं। नवाब साहब ने कहा कि रात को मुझे खबर लगी तो मैं बेचैन होगया और मैंने जल्दी से जल्दी यहां पहुंचना चाहा। जिन बदमाशों ने गड़बड़ की है उन्हें गिरफ्तार किया जा रहा है। आप मेरे साथ चलिए। मैं आम जलसा करूंगा उसमें आप खुद उन्हें सजा दीजिए। मैंने जरा आनाकानी की। आखिर यह तय हुआ कि मैं ६ दिसम्बर को इस काम के लिए टोंक पहुंचूं।

टोंक-वनस्थली, ६–१२–४७

टोंक के नवाब साहब की मोटर आगयी। उसी में मैं टोंक पहुंचा। सड़क पर सिपाहियों की व्यवस्था करवा दी थी, घुड़सवारों की भी। सीधा नवाब साहब के यहां पहुंचा। उन्हीं की कोठी में डेरा। कुछ लोगों से बात। कोठी में ही दीवान साहब आ गये। ४–१२ के अभियुक्तों को बुलवाया गया। मेरे अनुरोध पर नवाब साहब ने उन्हें छोड़ दिया। दूसरी बातें। फिर बिदा। बाहर हजारों की भीड़ लगी हुई थी। जोरदार जुलूस बन गया। मालाओं का ढेर। स्त्रियां भी बहुत आयीं। घण्टाघर पर छोटा सा व्याख्यान। ६ बजे चल दिये।

जयपुर १४–१२–४७

तीन बजे से कुछ पहिले रेजीडेन्सी पहुंच गया। वहां पर मालूम हुआ कि रवानगी का समय ३.३० कर दिया है। कोटा वाले ठीक समय पर आ पहुंचे। बीकानेर ३.४० पर निकले तब रवाना हुए। एक गाड़ी में पिछली सीट पर बीकानेर और मैं। दूसरी गाड़ी में कोटा और महाराजकुमार उदयपुर। बाकी दो गाड़ियों में दूसरे लोग। बीकानेर झंडे की बात करते रहे। मैंने दूसरे सवाल उठाये जिनसे जनता का समाधान हो। बीकानेर सोच रहे हैं कि कल रामबाग में जयपुर, उदयपुर, बीकानेर और कोटा के साथ मेरी बातचीत हो। वनस्थली में समय की तंगी रही लेकिन फिर भी निभ गया।

जयपुर से वनस्थली, १५–१२–४७

मालूम हुआ कि जाम साहब अभी वनस्थली नहीं आ सकेंगे। कारण कि स्वास्थ्य ठीक नहीं है। पीछे जायेंगे। दरभंगा से ठीक सम्पर्क नहीं हो सका।

मैं रेजीडेन्सी पहुंचा। रावलजी से बातें हुईं। खिताब बहुत लोगों को दिये गये हैं। मुझे यह बहुत ही अटपटा लगा। आखिर बीकानेर महाराजा बाहर ही आ गये। खास कर झण्डे के सवाल को लेकर उन्होंने एक नोट तैयार किया था। मैंने उसे पढ़ लिया। उस पर बहस हुई। मैंने कहा कि झण्डे की बात हो सकती है, पर उसके साथ ही कुछ दूसरी बातें भी होनी चाहिएं। वे दूसरी बातों को टालना चाहते थे।

बीकानेर के साथ एक ही मोटर में रामबाग पहुंचे। वहां पर जयपुर और जोधपुर मिले। जयपुर के महाराजकुमार भी। कोटा अस्वस्थ होने के कारण नहीं आये। बीकानेर के महाराजकुमार भी थे। पहले उन लोगों ने कुछ बात की। इस बीच में मैं जामसाहब से बात करता रहा। यह आदमी होशियार है। वनस्थली बाद में अवश्य आयेंगे। तीनों राजाओं और दोनों महाराजकुमारों से मेरी बात। मैंने बहुत साफ-साफ़ बातें कहीं। रियासत का झंडा माना जा सकता है। पर कुछ दूसरी बातें भी साफ होनी चाहिएं। जोधपुर का वनस्थली आना तय करवा लिया। जामसाहब के द्वारा कूचविहार की राजमाता भी तैयार हो गयीं। जल्दी से भोजन करके खासा कोठी पहुंचा। जोधपुर समय पर तैयार थे। पर राजपूत बोर्डिंग में जाना जरूरी हो गया। वह दृश्य मैंने देखा। रामबाग से कूचविहार राजमाता को लिया। रास्ते में बातें। वनस्थली को महाराजा ने एक प्लेन दिया।

जयपुर, १७–१२–४७

रतनजी के साथ एरोड्रोम पहुंचा। प्लेन के आने में देर मालूम पड़ी। भीड़ बहुत ज्यादा हो गयी। कृष्णमाचारी के साथ बातें चलती रहीं। जिधर हम दोनों गये उधर बहुत से लोग पीछे-पीछे चलते रहे। फ़ोटो उतारते रहे।

प्लेन के पहुंचने पर भीड़ जरा बेकाबू हो गयी। रतनजी फंस गयीं। बड़ी मुश्किल

से सरदार को मोटर में बैठाया। मेनन ज्यादा फंसे। उन्होंने कुछ बुरा भी माना। मैंने जवाब में थोड़ा ही कहा। रेजीडेन्सी पहुंचे। बीकानेर, जयपुर, जोधपुर के राजाओं की बात कही। झण्डे के बारे में बोले कि अभी तुम कोई बात क्यों मानते हो। तुम तो हमारे लिए कह दो। उड़ीसा की बातों से खुश हो रहे थे। महाराजा के आने पर सायंस कालेज के उद्घाटन के लिए गये। प्रोग्राम तय नहीं हो सका था इसलिए मैं आमेर भी गया। देखने में साथ रहा। बातें होती रहीं। फिर दलाराम बाग में भी। वहां कार्यक्रम तय हुआ। फिर महाराजा की निगाह पड़ गयी। उन्होंने खाने-पीने की मनुहार की। काफी देर तक बातें होती रहीं। बाद में अमरसिंह जी ने आने नहीं दिया। खाने में हिस्सा लेना पड़ा। खड़े-खड़े भोजन हुआ। डॉ० मुँजे से जरासी बात, फिर रेजीडेन्सी। वहां पर सरदार को यहां की मिनिस्ट्री का पूरा हाल बताया। खास जोर इसी बात पर दिया गया कि कृष्णमाचारी रहेंगे तो सही, पर चीफ मिनिस्टर यहां के आदमी को बनाया जाय। मुझे भीतर आना चाहिए, सरदार ने कहा।

सभा की तैयारी देखने और करवाने को। फिर घर की तैयारी। घर पर सरदार का स्वागत दुबारा। सभा के स्थान पर गया।

जयपुर से बनस्थली, १८-१२-४७

रेजीडेन्सी पहुंचा। सरदार घूमने के लिए जाने वाले नहीं थे। इसलिए घनश्यामदासजी और मैं साथ गये। घनश्यामदासजी बहुत सी बातें बता रहे थे। जवाहरलालजी की, सरदार की, राजेन्द्र बाबू की, मौलाना की, अपनी खुद की, गांधीजी के ठहरने न ठहरने की, बनस्थली की स्थिति भी उन्हें बतायी।

सरदार और मणिबेन से मिलकर सर मिर्ज़ा के पास गया। सर मिर्ज़ा ने मुझसे कहा कि आपको भारत सरकार में होना चाहिए। आप जैसा आदमी रियासतों में नहीं है। मैसूर वाले आपको कहीं भी नहीं पहुंचते हैं। बड़ी प्रशंसा की। मैं सोच नहीं सका कि वे ऐसा ही मानते हैं या सिर्फ कहते हैं। और मानते ही हों तो ऐसा है क्या?

फिर रेजीडेन्सी। चांदकरणजी शारदा भी मिल गये। ९ बजे के कुछ पहले बनस्थली को। घनश्यामदासजी सहित। रास्ते में बातें होती रहीं। देर कुछ ज्यादा हो गयी। सरदार को वापिस भी आना था। इसलिए घण्टे भर का कार्यक्रम ही रह सका। लेकिन उर्स। में सब ठीक हो गया।

जयपुर, ३०-१-४८

आज ६ बजे के करीब जब मैं बनस्थली जाने की तय्यारी कर रहा था—अचानक खबर आयी कि गांधीजी को किसी ने गोली से मार दिया। सुनते ही न जाने क्या हो गया। कुछ सोच नहीं सका। कुछ बोल नहीं सका। रह-रह कर उमाड़ आता

रहा। सिसकता रहा। आंसू बहते रहे। पालीवालजी, सिद्धराज, पूर्णचन्द्रजी, जोशीजी आदि बीसों लोग आकर मेरे पास इकट्ठे होते रहे। रेडियो से सब समाचार सुनते रहे। तुरन्त हड़ताल का ऐलान करवाया। कल का प्रोग्राम तय किया। वनस्थली नहीं गया।

जयपुर से वनस्थली, ३१-१-४८

१।। बजे चांदपोल दरवाजे पहूंचे...वहां से २ बजे जुलूस शुरू हुआ। अमरसिंहजी व जोबनेर ठा० सा० भी, हरिश्चन्द्रजी आदि भी। "रघुपति राघव राजाराम" और गांधीजी की जय के साथ जुलूस चलता रहा। पूरे दो घण्टे में म्यूजियम के सामने पहुंचे। वहां पर—"वैष्णव जन" गाया गया। फिर मैंने छोटा सा भाषण दिया। दो तीन बार कमजोरी आयी। फिर गीता के दूसरे अध्याय का पाठ, संस्कृत और हिन्दी दोनों में—फिर रामधुन—फिर विसर्जित। वहां पर गीजगढ़, रावलजी आदि भी देखे गये। तीन दिन की छुट्टी राज से और दो हफ्ते का मातम भी।

दिल्ली से जयपुर, १२-३-४८

गोकुल भाई ने उदयपुर का हाल बताया। शायद वहां पर जयपुर के आधार पर अन्तःकालीन सरकार बने। उस हालत में सोचना है कि क्यों नहीं वर्माजी प्रधान मंत्री बनें। गोकुलभाई सहमत हैं। मत्स्य के हाल-चाल मालूम हुए। प्रधानमंत्री शोभारामजी को बनाना है।

वनस्थली से जयपुर, २-६-४८

७। बजे सुधाकर के साथ जयपुर को। बरात के दूसरे लोग भी। गांव वाले भी इकट्ठे हुए थे। स्त्रियों ने खुशी के गीत गाये। मेरे हृदय पर एक विचित्र सा असर मालूम पड़ा। गांव वालों को भी विवाह दिखाने का विचार हुआ।

ठीक ९ बजे जयपुर पहुंच गये। जनवासे में। सबका जमाव देखकर घर पर।

महकमा खास जाने का ख्याल आने पर मैं वहां गया। थोड़ी देर ठहरा। देवीशंकरजी से हालचाल सुने। अमरसिंहजी ने अपनी सफ़ाई पेश की बतायी। कहने के और वादे के माफ़िक काम करने को तय्यार। महाराजा ने वी० टी० से कहा बताया कि अमरसिंहजी को हटाया जा सकता है। परन्तु ऐसा लगता है कि एक बार वे मुझसे फिर कहेंगे कि काम चलाकर देखो। मेरा चलाने का विचार नहीं है।

प्रो० प्रेमनारायनजी, गोकुलभाई, गोकुलजी भी आ गये। सुखदेव, रामबाग जाकर आया। कुर्सियों की व्यवस्था के लिए कह दिया। इसलिए जल्दी में यह सब कुछ करना पड़ा। मैं खुद भी खड़ा रहा। परन्तु काम हो गया।

ठीक ६ बजे बरात जनवासे से रवाना हुई। सवा छः बजे कन्यापक्ष के यहां पहुंची। लोग बहुत इकट्ठे हो गये। बैठाना मुश्किल हो गया। दर्शक भी हजारों आ गये थे।

मैं रामबाग गया। महाराजा से बात करके आ गया। जयपुर महाराजा के अलावा जोधपुर व देवास के महाराजा भी आये। महाराज अजीतसिंहजी आदि आये। महाराजाओं ने वर वधू को बधाई दी। फेरों की व्यवस्था घर के बाहर की थी, जो जयपुर में एक नयी बात थी।

जयपुर, १७-१२-४८

अब तो एक कल का दिन सही सलामत निकल जाय तो ठीक हो जाय। आशा तो यही है कि बिना किसी विघ्न बाधा के सब कुछ ठीक हो जाएगा। देखा जायेगा। अधिवेशन के आमद खर्च में बहुत बड़ा घाटा रह जाता मालूम होता है। यदि रहेगा तो कहीं न कहीं से पूर्ति कर देनी होगी।

जयपुर, १८-१२-४८

बहुत जल्दी उठा। रतनजी से बातें। फिर पंडितजी और सरदार को लेने के लिए गया। उन्हें वर्किंग कमेटी में पहुंचाया। फिर पंडाल आदि को देखने के लिए गया। प्रदर्शनी में भी। जाजूजी आदि से बात की। फिर पंडितजी व सरदार को विषय निर्वाचन समिति में। फिर प्रदर्शनी में। १॥–१॥। घण्टे तक पंडितजी व सरदार बोलते रहे। फिर वहां से निकले तो भीड़ का सामना करना पड़ा। पंडितजी चिढ़ गये। मैं चुप रहा। विषय निर्वाचन समिति में। पंडितजी और सरदार को रामबाग पहुंचाया। आजकल सरदार बहुत दिल खोलकर बात करते हैं।

वापिस आकर मैदान की व्यवस्था को देखा। सभापति का जुलूस किधर से निकालना। सब कुछ नक्की किया। जल्दी से भोजन करके पंडितजी, सरदार को लेने के लिए जा रहा था। रास्ते में देखा कि जिस गेट से उन्हें लाने की बात थी वहां पर बड़ी भीड़ हो रही थी। गोकुलभाई मिले नहीं। मैंने जुलूस का कार्यक्रम रद्द किया। पंडितजी सरदार को मैं ले आया। काम शुरू कर दिया तब गोकुलभाई आये। आदमी खूब आये। टिकट—पास की व्यवस्था टूट गयी। लोगों का चलना फिरना भी खूब रहा। बाद में काम अच्छा जम गया। कुल मिलाकर सकुशल दिन बीत गया।

पंडितजी और सरदार को ले गया, अलग-अलग। पंडितजी बड़े प्यार से मुझे भीतर ले गये। हाथ मुंह धोने के लिए कहा। दूध पिलाया अपने हाथसे तय्यार करके। मेरा चित्त प्रसन्न हुआ। उनके कहने से मौलाना से मिलने को गया। वे खुशी प्रकट कर रहे थे।

जयपुर, १९-१२-४८

काफी जल्दी उठा। रामबाग पहुंचा। सरदार और पंडितजी को विषय निर्वाचन समिति में लाया। वहां पहुँचने के काफी देर बाद सुना कि खुला अधिवेशन

६॥ बजे न होकर २ बजे होगा। इससे बड़ी गड़बड़ हुई। पंडितजी इससे बहुत चिढ़ गये और कहने लगे कि अधिवेशन ६॥ बजे ही होना चाहिए। जिसकी गलती हो उसको फांसी लगाना चाहिए। पंडितजी बहुत झल्लाये और गैरजिम्मेदारी का इल्जाम लगाने लगे। तब मैंने कहा आपका इस प्रकार कहना किस जिम्मेदारी में दाखिल है? किसान मजदूरों की सभा में बोलने के लिये सरदार को छोड़कर पंडितजी को विनोबाजी के पास ले गया। वहां से सभा का हाल देखने को आया। दुबारा जाकर पंडितजी को जीप में बैठाया और पूछने पर बताया कि जिस सभा से भागकर आये हो उसी में ले चलूंगा। वे तथा मैं गये। पंडितजी एक घण्टे तक बोले। उन्हें रामबाग छोड़ा। कैम्प में आया। पंडाल के हाल-चाल का पता लगवाया। फिर सरदार और पंडितजी को लाया। फिर जाम साहब और ध्रांगध्रा को लाया। अधिवेशन चलता रहा। अधिवेशन के अन्त में मैंने धन्यवाद दिया। पंडितजी ने प्रतिनिधियों की ओर से धन्यवाद दिया।

सरोजनीदेवी से रामबाग में मिला। श्यामसुन्दरजी शर्मा वाली बात भी कह दी।

महाराजा ने भी मोती डूंगरी से अधिवेशन को देखा बताया।

जयपुर, २०–१२–४८

उठने में देर हुई। रामबाग पहुंचा। वहां से पंडितजी और सरदार को साथ लेकर अपने खेजड़े के रास्ते के मकान पर गया। मैंने कहा इसी जगह बैठकर मैं प्रजा-मंडल का काम करता रहा हूं। पंडितजी बोले—हां आप यहां सब षड़यंत्र रचते होंगे। फिर गांधीनगर गये। अपना कार्यालय दिखाया। फिर स्वयं सेवक कैम्प में सलामी दी गयी। फिर एरोड्रोम को। पंडितजी ने प्लेन पर चढ़ने से पहले कहा कि कही सुनी को माफ करना। यह कहकर वे मुझसे चिपक गये। सरदार ने मेरा हाथ पकड़ कर अपने हाथ में मिला लिया। प्यार के वातावरण में दोनों विदा। दूसरे लोग भी रवाना हुए। कृपलानीजी, सुचेता बहिन, जाम साहब, पन्तजी आदि भी।

घर पर डॉ० पट्टाभि भी आये। उनका स्वागत। दूसरे लोग भी—भागीरथजी सीतारामजी, शंकररावजी, प्रफुल्ल बाबू, एस० के० पाटिल, गोकुलभाई, सिद्धराज, प्रो० सा० अनेक थे। सिर्फ व्यासजी नहीं पहुंच पाये। उन्हें बुलाने की कोशिश बहुत की।

जयपुर, २६–३–४९

एरोड्रोम। पहिले बी० टी०। फिर महाराजा आये। मेनन आ गये। बातें होती रहीं। सरदार के प्लेन को देर होती गयी। आखिर प्लेन आया ही नहीं। बहुत पता लगाया। दिल्ली से रवाना होने की खबर लगी। बाद का पता नहीं–घोर–चिन्ता। सरदार रात के १२ बजे के करीब रामबाग पहुंच गये। मुझे फोन करके बुलाया। गले से मिले। पूछा–किशनगढ़ में क्या हुआ? मैंने कह दिया–मेरा शपथ लेना तय हो गया। बोले–न होता तो क्या करते? आप कहते सो करता? सुनकर खुश हुए।

जयपुर, ३०–३–४६

रतनजी के साथ सिटी पैलेस पहुंचा। मालूम हुआ कि वर्माजी आदि कई लोग अपने को अपमानित समझ कर चले गये हैं। उन्हें लिवाने के लिए पालीवालजी, दौलतमलजी गये। फिर गोकुलभाई और सिद्धराज जी गये। लेकिन वे आये नहीं। कार्यक्रम शुरू होने में देर हुई।

उद्घाटन समारोह। पहिले सरदार ने राजप्रमुख को शपथ दिलायी। फिर राजप्रमुख ने उप-राजप्रमुख कोटा को और मुझे शपथ दिलायी। राजप्रमुख का भाषण। फिर सन्देश सुनाये। "जन गण मन" भी हुआ। फिर सरदार का भाषण।

दिल्ली, २८–१२–५०

आज पंडितजी से मेरी मुलाकात हुई! प्रदेश कांग्रेस कमेटी में मेरा बहुमत है या नहीं, यह बात चली। मैंने अपनी स्थिति बतायी कि प्रदेश कांग्रेस कमेटी में बहुमत होने न होने का कोई ताल्लुक मैं नहीं मानता हूं। पर मौजूदा हालात में मुख्यमन्त्री बने रहना मैं अपने लिए ठीक नहीं मानता। मेरे जिम्मे राजस्थान के एकीकरण का जो काम किया गया था, वह मोटे तौर पर प्रायः पूरा हो गया है, मैं इसी क्षण त्यागपत्र दे सकता हूं। पण्डितजी ने गोपालस्वामीजी से बात कर लेने के लिये कहा।

दिल्ली से वनस्थली, २६–१२–५०

गोपालस्वामीजी से मुझे क्या बात करनी थी। वे मुझे कुछ दुःखित से लगे। मैं उनसे कह आया कि जयपुर जाकर मैं अपने साथियों से बात करके जल्दी ही अपने मन्त्रि-मंडल का त्याग-पत्र राज-प्रमुख को दे दूंगा। गोपालस्वामीजी ने यह संकेत भी कियां कि उससे पहले व्यासजी आदि पर चल रहे मुकदमे आदि उठा दिये जायें तो अच्छा रहे। मैंने कुछ कहा नहीं, क्योंकि मैं मुकदमों का सम्बन्ध स्टेट्स मिनिस्ट्री से मानता रहा हूं।

पण्डितजी से दुबारा मुलाकात हुई तब वे मुझसे बोले कि मैं इंगलैण्ड हो आता हूं। मेरे आने पर आप मुझसे मिलना। तब हम लोग सोचेंगे कि राजस्थान में कैसे क्या किया जाय। मैंने साफ कह दिया कि इस काम के लिए आप मुझे याद न करें। पंडित जी बोले आपका संन्यास लेने का विचार है क्या ? मैंने कह दिया कि मेरा कुछ भी विचार हो, पर इस काम में हिस्सा लेने का मेरा इरादा नहीं है। मैं अपने दूसरे कामों के लिए भारत के प्रधान मन्त्री के पास जरूर आता रहूंगा।

जयपुर से वनस्थली, ५–१–५१

आज मैंने अपने मंत्रि-मंडल का त्याग पत्र राज-प्रमुख को भेज दिया। मेरा बीच के समय में काम करने का विचार नहीं था। इसलिए मैं तुरन्त ही वनस्थली चला गया। प्रोफेसर साहब कुछ समय बाद तक आफिस में ही रहे।

धार से वनस्थली व जयपुर, ३-९-५२

नवलगढ़ ठा० सा० और विजयसिंहजी आ पहुंचे। उनसे दो घण्टे बातचीत हुई। जरा सी भूमिका के बाद वे बोले कि हम एक तकलीफ लाये हैं। वह यह कि आप मैदान में आयें और हमारा नेतृत्व करें। तभी काम ठीक होगा। हम लोग खास-ख़ास आदमी बात कर चुके हैं। जसवन्तसिंहजी ने तजवीज की है—यह बात उन्होंने कई बार दोहराई। मैंने कल तक उत्तर देने को कहा।

कांग्रेस के कुछ लोग मेरे पास आते ही रहे हैं। सबलोग कहते हैं तो मुझे थोड़ा बहुत विचार करना पड़ेगा।

वनस्थली, २१-१०-५२

दिलीपसिंहजी ने थोड़ी-थोड़ी बात मेरे सामने शुरू की। मतलब यह था कि १७ को उन लोगों ने तय किया था कि कांग्रेस के साथ कुछ समझौता हो सके तो कर लेना चाहिए। परन्तु उन लोगों ने मुझे वाकिफ़ नहीं किया।

वनस्थली, १६-४-५३

चारों ओर से देख लिया। ठीक हो गया। सभा की ठीक तैयारी हो गयी। लोग धीरे-धीरे आये। जो आये उन्हें कुटिया देखने के लिए भेज दिया। वहां उन्हें मिश्री चटक का प्रसाद सुशीला ने दिया। मेरी घडी के ६·५२ पर मैंने बोलना शुरू किया। जीवनकुटीर, शिक्षाकुटीर, प्रजामंडल, कांग्रेस की बात कह दी। कांग्रेस के बारे में विचार।

अब कांग्रेस चलेगी नहीं। कोई अवतार हो तो काम चले।

धनबाद-झरिया, २४-१२-५४

मैं काफी जल्दी उठ बैठा। डा० सुशीला नय्यर और मदालसा के साथ ही मैं धनबाद पहुंचा। मदालसा सीधी पड़ाव पर गयी। बाकी लोग वेटिंग रूम में। वहां पर झरिया से सूरजप्रसादसिंह आ गये। एक अमरीकन महिला भी आयी।

धनबाद पड़ाव पर पहुंचे। मोटर अर्जुनदासजी अग्रवाल की थी। सो पूरे दौरे पर अपने तैनात रह सकती है। लोगों की भीड़ लगी हुई थी। विनोबाजी के कमरे में। महादेवी बहिन से यह बात की कि हम २॥ बजे आ जाएंगे। झरिया पहुंचे। ठहरने का अच्छा स्थान। अर्जुनबाबू का अच्छा व्यवहार। वहीं पर जानकीदेवी ठहरी हुई हैं।

अर्जुनबाबू आगये। उनके घर पर भोजन करने को। जानकीदेवी मिल गयीं। ये लोग लोयल चनाणा के रहने वाले हैं। धनबाद गये। विनोबाजी के कमरे में बातें सुनता रहा। फिर उनका सार्वजनिक कार्यक्रम। विनोबाजी की वाणी लोगों पर असर तो करती है। वह स्थायी कितना होता होगा सो तो क्या कहा जाए। लोग खूब

आये थे। शान्ति से सुनते रहे थे। बाद में उनके कमरे में आ गया। पहले दूसरे लोगों से बात–फिर मुझसे। राजस्थान के हालचाल, हिन्दुस्तान की राजनीति पर भी राय। कल दस बजे का समय तय करके झरिया।

वनस्थली, ३०–१०–५५

तमाम कार्यक्रम बहुत अच्छे निभ गये। पौने आठ बजे शाम को सम्पूर्ण। रतनजी ने राजेन्द्र बाबू को भोजन कराया। राजवंशीदेवी ने चौके में भोजन किया। सीतारामजी व सेक्रेट्रियों आदि के साथ मैंने भोजन किया। सीतारामजी नन्दू जैसों को पुलिस की बात अच्छी नहीं लगी। ज्यादा भीड़ के कारण लोगों को कष्ट हुआ। राजेन्द्र बाबू को पहुंचाने स्टेशन तक पहुंचे, फिर वापस, सीतारामजी आदि के साथ भोजन देर से। पाठ किया, फिर झटपट सो गया। सब कुछ अच्छा हो गया। राजेन्द्र बाबू का भाषण बहुत अच्छा रहा।

जयपुर, २७–५–५६

ब० ना० सोढाणी आये। उनके साथ हरमाड़ा। रास्ते में बातें। भारत सेवक समाज शिविर में एक घण्टे का भाषण। विनोद पूर्ण भाषण। और कुछ परिचित लोग मिले। समय पर वापसी। कई लोग मिलने वाले। जोबनेर ठाकुर साहब, रामप्रसाद, आनन्दमोहन मिश्र व उनकी पत्नी, रामवल्लभ। काफी समय बातें होती रहीं।

दिल्ली से जयपुर, २१–१–५७

लालबहादुरजी शास्त्री मेरे डेरे पर आये। मुझे देर तक समझाते रहे कि मुझको लोकसभा में आना चाहिए। बोले—आप मंजूर नहीं करेंगे तो जवाहरलालजी बुरा मानेंगे। मैंने कह दिया—मेरी इच्छा बिल्कुल नहीं है। मैं लोकसभा में आ भी जाऊंगा तो भी मैं काम तो करूंगा नहीं। मेरा कार्यक्षेत्र राजस्थान है।

देवकीनन्दनजी से देर तक बातें। ढेबर भाई कल तक मुझे फोन करेंगे। सीधा स्टेशन को।

दिल्ली से वनस्थली, २–२–५८

पण्डितजी के यहां। पी० ए० आदि से सामान्यसी बात की। इन्दिरा भी आयी। फिर पण्डितजी खुद आये। दोनों को ही ध्यान नहीं था कि मैं हवाई जहाज में साथ चलने वाला हूं।

कार में पण्डितजी ने एक-आध बात पूछी। पालम पर मदालसा साथ हो गयी। प्लेन में कोई खास बात नहीं हुई। पण्डितजी अपने कुछ काम में लगे रहे। प्लेन एक घण्टे से कम में वनस्थली पहुंचा। अच्छी तरह से उतर गया। हवाई मैदान में स्वागत।

शिक्षाकुटीर के द्वार पर स्वागत। शिक्षाकुटीर, कलामन्दिर, प्रदर्शनी, लड़कियों के हाथ का भोजन, तैरना, सभा। सब ठीक ठाक ढंग से हो गया। पच्चीस तीस हजार आदमी आये होंगे।

बम्बई, ४-४-५६

चन्दूलाल शाह भी अच्छा सहयोग देंगे। और किसी को बुलाने की जरूरत नहीं लगती। कैलाश हाजिर था। पर उसे भी क्या बुलायेंगे। थकान सी तो रही, पर निभाव हो गया। अब सवाल आगे प्रोग्राम का है और वास्तव में कितना काम हो सकता है, उसका है। बड़ा सवाल मेरी मदद करने का है। सुधाकर को एक बार जयपुर जाना ही पड़ेगा। बहुत सी बातें सोचनी हैं।

पांडीचेरी से रामेश्वरम्, १०-१-६०

पांडिचेरी पहुंचा। हरिप्रसाद पोद्दार से मिलना हुआ। उसने चारों ओर से दिखाया। आश्रम नाम का भी मकान है, उसमें श्री अरविन्द रहे थे। वहीं पर उनकी समाधि है। वहीं पर मदर भी रहती हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल वे दूर से दर्शन देती हैं। और साल भर में एक बार विशेष दर्शन होते हैं। उस मकान के अलावा बहुत से मकान आश्रम के हैं और किराये के भी हैं। सब लोग मदर को न जानें क्या मानते हैं। और हर बात में उन्हीं का नाम लिया जाता है। सब जगह उनके चित्र मिलेंगे। ब्रह्मचर्य, राजनीति में भाग न लेने आदि का नियम बताया। बाकी आजादी मालूम होती है। इकट्ठे होकर थोड़ा ध्यान-सा करते हैं। उसके अलावा कोई मार्गदर्शन नहीं है। कुछ खास लोग हैं, ज्यादातर साधारण।

शिक्षा का काम है। स्वतंत्र है। ग्राण्ट भी नहीं ली जाती है। आश्रम का कोई हिसाब प्रकाशित नहीं होता। किस विभाग में क्या आय और क्या खर्च होता है सो मालूम नहीं होता। आध्यात्मिकता और साधना की बात ज्यादा है।

वनस्थली, २८-७-६१

सुबह भारत सरकार की कमेटी के तीनों मेम्बर आ पहुंचे। ६ बजे पहले वे निवृत्त हो गये। ६ बजे से उनका कार्यक्रम शुरू हो गया। पांव में तकलीफ होते हुए भी मैं उनके साथ चला। पहले वे प्रार्थना में गये। वहां से लौटकर नाश्ता किया। थोड़ी बहुत बातचीत हुई। वे लोग कुछ सवाल पूछते रहे। उन्हें मैं जवाब देता रहा। फिर शिक्षाकुटीर में रतनजी के साथ गये।

प्रोफेसर साहब भी आये थे। साथ नहीं चले। फिर बाल मन्दिर सरस्वती मन्दिर, शारदा मन्दिर, कला मन्दिर, गृहस्थ शिक्षा मन्दिर, उद्योग मन्दिर, शान्ता भवन शान्तायतन आदि देखे। आखिर में बनते हुए होस्टलों को देखा। फिर आकर उन

लोगों ने कागज के जरिये से कुछ बातें पूंछीं। शुरू में मुझसे, फिर मानसिंह व प्रकाश चन्द्र से देर तक सवाल करते रहे। बीच में भोजन हो गया।

मेहमानों का चाय का समय आगया। उन्होंने चाय ली। मानसिंह ने मुझे बताया कि मेहमानों से उनकी व प्रकाशचन्द्र की क्या बात हुई। फिर बाहर निकले, भण्डार, खादी मन्दिर, तेलघाणी, चक्की, फिर कार्यालय, स्टोर, तैरना, घुड़सवारी कच्चे क्वार्टर्स, डिस्पेन्सरी, औषधालय, संगीत, गोशाला, खेल, बन्धे पर बोटिंग। डॉ० शुक्ल तीनों की ओर से बोले। कहा कि हमलोग अच्छी रिपोर्ट देंगे। फैसला गवर्नमेण्ट के हाथ है। रवानगी के समय फिर बोले—हमारा आना बेकार नहीं जावेगा। हम अच्छी रिपोर्ट देंगे।

लखनऊ, २१--१--६२

चन्द्रभानुजी गुप्ता के यहां समय पर पहुंचना हुआ। उनसे रतनजी की और मेरी मुलाकात हुई। होस्टल की ग्राण्ट कुछ न कुछ जरूर मिल जाएगी और बहुत करके रैकरिंग ग्राण्ट भी कुछ न कुछ हो जाएगी। गुप्ताजी ने गिरिजाप्रसाद पाण्डेय, शिक्षा सचिव को फोन कर दिया। दो बार में फोन हुआ। फिर मैंने भी पाण्डेयजी को फोन कर दिया। गुप्ताजी बोले, वे मौके आये आप लोग। उन जैसा ही व्यवहार मैंने उनसे किया। हाथ पकड़कर उनकी आरामकुर्सी की एक भुजा पर जा बैठा और हाथ पकड़कर उन्हें हिला दिया कि वे रेकरिंग ग्राण्ट का फोन भी तत्काल कर दें। विद्या के स्थान पर पहुंचा। मालूम हुआ वह आयी ही नहीं। राजबहादुरसिंह फ्लाइंग क्लब वाले आये। जल्दी में क्लब देखी। वापिस स्टेशन।

सम्पूर्णानन्दजी के घर गया। मामूली बातचीत की। शाम को भोजन के लिए बुलाया।

जयपुर से जोधपुर व वापस, २१--३--६३

मोटर अच्छी चाल से चली। तीन बार दो-दो चार-चार मिनिट को रास्ते में ठहरे। पाली होकर गये। छः घण्टे से कम में ही पहुंच गये। साढ़े दस बजे पहले-पहले सीधे व्यासजी के घर पहुंचे। रतनजी भीतर चली गयीं। देवनारायण आदि बाहर बैठक में बैठे हुए थे। सुधाकर और मैं भी जा बैठे। मैं कुछ बोल नहीं सका। मेरा दिल भर-भर कर आ रहा था। मैं थोड़ी देर के लिए गौरजादेवी के पास भी गया। कुछ स्त्रियां और भी बैठी थीं। वहां भी मैं कुछ बोल नहीं सका।

वनस्थली, ५--११--६३

पण्डितजी नौ बजे आने वाले थे। फिर खबर आयी नौ बीस पर आयेंगे। पर आ पहुंचे वे नौ बजे ही। इसलिए जल्दी-जल्दी में इन्तजाम करना पड़ा। पण्डितजी का

स्वागत एरोड्रोम पर किया। साथ में पद्मजा व इन्दिरा के अलावा मथुरादास माथुर भी थे। कांग्रेस अध्यक्ष डी० संजीवैया अलग से आ गये थे। उनसे पहले निजलिंगप्पाजी. हरिभाऊजी उपाध्याय, मिश्रीलालजी गंगवाल आदि आ चुके थे। दिल्ली से के० के० शाह व महाराजा बड़ौदा नहीं आये। पण्डितजी ने परेड का निरीक्षण किया। मैं बराबर साथ रहा। जीप के पीछे भी खड़ा रहा। जीप में सीधे पण्डितजी को अन्तर्राष्ट्रीय भवन के शिलान्यास के लिए ले गये। उसी समय पद्मजा, संजीवैया व इन्दिरा को भी ले गये। ठीक समय पर कार्यवाही शुरू हो गयी। पण्डितजी का ठीक-ठाक भाषण हुआ। निजलिंगप्पाजी आदि को दिखलाना शुरू किया। तैरना, प्रदर्शनी, घुड़सवारी, गृहकार्य आदि। कन्नमवारजी जल्दी चले गए, ट्रेन पकड़नी थी। भोजन का प्रबन्ध बड़ा सुन्दर रहा। निजलिंगप्पा का भाषण बहुत बढ़िया हुआ।

वनस्थली, १२--१--६३

डॉक्टर जाकिर हुसैन समय पर पौने नौ बजे आ पहुंचे। उनका स्वागत हो गया। परेड का निरीक्षण। सब कुछ ठीक हो गया। लोग काफी थे, अतिथि निवास में थोड़ा समय लगाया। चाय आदि। शिक्षाकुटीर में, शान्ता भवन में, गृहस्थ शिक्षा मन्दिर में, प्रदर्शनी, बाल मन्दिर, कला मन्दिर खेल कूद--सब कुछ अच्छा रहा। मैं बराबर साथ रहा। डॉक्टर साहब मौके पर "बहुत अच्छा" कहते जाते थे। अतिथि निवास में भोजन। आज जीमने में कुछ कम लोग ही थे। डॉक्टर साहब ने आराम किया। मैंने रतनजी के साथ रिपोर्ट का काम किया। डॉ० सा० को पहले घुड़सवारी दिखायी। व्यवस्था बहुत अच्छी रही। चाय के समय डॉक्टर साहब से थोड़ी बहुत बात होती रही। उन्होंने प्रमाण-पत्रों पर हस्ताक्षर कर दिए। सभा स्थल पर पहुंचे। पहले संगीत व पार्लियामेण्ट दोनों काम अच्छे हो गये। बाद में प्रोफेसर साहब का भाषण। सक्सेना साहब ने प्रमाण पत्र दिलवाये। मेरा भाषण मामूली सा हुआ। डॉक्टर साहब का भाषण बहुत अच्छा रहा, उन्होंने वनस्थली के काम की बड़ी तारीफ की। विदा का गीत हुआ।

दिल्ली, २७--५--६४

सवेरे तीन-चार बजे के बीच में मुझे एक स्वप्न आया। मैं लेटा हुआ हूं। पण्डितजी अचानक आये, बोले हीरालालजी उठो, चलो शादी में, मैंने चौंक कर कहा पण्डितजी आप? इतने में पण्डितजी बड़े जोर से मेरे लिपट गये। मैंने विवाह में जाने की अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा--पण्डितजी शादी में आप ही जाइए।

आज पण्डितजी चल बसे। मुझे बड़ा धक्का लगा हालांकि मैं जानता था कि ज्यादा समय तक बचे रहने वाले नहीं थे। मैं तो अपने कमरे से निकल ही नहीं सका। मैं तीनमूर्ति भवन के एकदम पड़ौस में ५६, साउथ ऐवेन्यू में ही ठहरा हुआ था।

काठमाण्डू (नेपाल), ११--७--६४

आज श्री ५ महाराजाधिराज से बात हुई। मैंने रोली का तिलक किया।

पुष्पमाला, नारियल, जनेऊ-जोड़ा दिया। महारानी के लिए कुंकुम आदि दिये। अन्तर्राष्ट्रीय भवन का उद्घाटन वे कर सकते हैं। भारत सरकार से कहलवाना चाहिए। ग्राण्ट की, लड़कियों की बात भी हो गयी। मेहरजी ने अपनी बात भी कह दी। मैंने मेहरजी की बहुत प्रशंसा कर दी।

नासिक रोड, २२--१०--६५

नासिक रोड के सप्त-शृंगा देवी के दर्शन के लिए सात बजे निकले। रास्ते में प्रसाद, पुष्पमाला आदि जयसिंहजी ठाकुर ने लिए। इसी काम में देर हो गयी। मैंने पाठ किया। आठ बजे नासिक से निकले। दस बजे से कुछ पहिले पहाड़ की तलहटी में पहुंचे। पहाड़ के ऊपर दाल-बाटी बनवाने का विचार हो गया। सबको पीछे छोड़कर मैंने दस बजे पहाड़ पर चढ़ना शुरू कर दिया। काफी लम्बा निकला। चढ़ाई कठिन है। खुर्रा सा बना हुआ है। सांस चढ़ा तो थोड़ा ठहर सा गया, बैठा नहीं। जहां माताजी की सीढियां शुरू होती हैं, वहां तक पहुंचने में मुझे पौने दो घंटे लगे। जूते वहीं खोले, पांव धोये, पानी पीया। पन्द्रह मिनिट में सीढियां चढ गया। पांव जल गये। जोर बहुत आया। ४७५ सीढ़ियां निकली। ऊपर जाकर सुस्ताया। कुल्ला किया। थोड़ा पानी पीया। पाठ किया, जप किया, प्रार्थना भी करली माताजी के सामने बैठकर। बहुत ऊंचा पहाड़ सीधा-सपाट है जिसे काटकर छोटा सा मन्दिर बना हुआ है। वहां पर विशेष गुंजाइश का स्थान भी नहीं है। पानी आदि भी नहीं है। पहाड़ पर दाल-बाटी बन गयी। दाल-बाटी का भोजन किया। मेरी पांव की उंगली में जूते ने काटा था। उसका जोर बहुत बढ़ गया। दो-चार कदम भी चलना मुश्किल हो गया। डेढ़ घंटे में उतर आये। कुछ समय तक पांव में बहुत ज्यादा पीड़ा होती रही। मैं फिर भी चलता रहा, क्षणभर को भी कहीं रुका नहीं। कार तक पहुंचते-पहुंचते तो गिर पड़ने की सी हालत हो गयी।

जम्मू (कश्मीर), ६--११--६६

सादिकजी से एक घण्टा बात हुई। कर्णसिंहजी के खानदान की बात। विद्यार्थियों के उपद्रव की। मैंने वनस्थली के हालात बताये। फिर नोट आदि पढ़ने को दिया। सो उन्होंने देख लिया। कर्णसिंहजी से जो बात हुई थी सो मैंने बता दी। सादिकजी ने पूरी कोशिश करने की हां की। सालाना ग्राण्ट तो मिल ही जाएगी। डवलपमेण्ट ग्राण्ट भी कुछ दी जा सकती है। कर्णसिंहजी ने २५ दिसम्बर को वनस्थली आना मंजूर किया है सो सादिकजी को बता दिया।

हिण्डौन, २--३--६७

करौली यात्रा अच्छी रही। तिवाड़ी कन्हैयालालजी का व्यवहार बहुत सुन्दर रहा। २५०१) दिये। बहुत बढ़िया गोठ की। अच्छी-अच्छी बातें कीं। मेरा चित्त प्रसन्न

हुआ। मैंने कुछ विशेष कहा नहीं। हंसी-मजाक की बातें भी होती रहीं। थोड़ा बहुत परिचय वनस्थली का कराया। रतनजी को संतोष हुआ।

करौली महाराजा से मिलना हुआ। अच्छा रहा। पर उनसे रुपये की बात मैंने नहीं कही। करौली से और कोई आशा करने की गुंजाइश नहीं है।

ट्रिवेण्ड्रम, ६--८--६८

रतनजी और मैं महाराजा ट्रावनकोर से उनके कोड़ियार पैलेस में मिले। उनकी माता भी उपस्थित रही। १। घंटे के करीब लगा होगा। मैंने दिल खोलकर बातें कीं। कश्मीर की स्थिति की बात निकल पड़ी। प्रिवी-पर्स की बात छिड़ी। वनस्थली के लिए महाराजा कुछ दूसरे लोगों से भी कहेंगे और मन्दिर के लिए खुद देंगे। एक पत्र मैं उनके लिए लिख दूंगा। थोड़ा रुपया मिलेगा, यह तो साफ दिखता है। कितना थोड़ा, इसका अन्दाजा लगाना मुश्किल है। महाराजा अच्छे आदमी जरूर हैं। पर देने में कितने उदार हैं, इसका पता नहीं है। ज्यादा देने की स्थिति नहीं है सो भी ठीक है। देखा जायगा।

मैसूर, ८--१२--६८

आखिर आज महाराजा मैसूर का समय हो गया। शाम को पांच बजे का। में लोग ४-५० पर ही पहुंच गये। ५-४० तक बात हुई। सीधे महाराज के पास पहुंचा दिए गए। नारायण स्वामी भी देव संयोग से मिल गया।

मैंने जयपुर का सम्बन्ध बताया। वनस्थली विद्यापीठ की थोड़ी सी बात हुई। ब्रह्ममन्दिरम् की ज्यादा हुई। मुझे उनकी तबियत बहुत खराब लगी। जलोदर हो रहा है।

विराटनगर, (नेपाल) २८--६--६९

श्याम का दूसरा तार मिला, जिससे मालूम हुआ कि नेपाल सरकार की ग्राण्ट के ३६००) आये हैं। इससे सन्तोष हुआ। मैं आज विमला मास्के को बहुत नाराज होकर कह रहा था कि तुम्हारे राजा का नाम काटूंगा, रुपया नहीं आया तो। ऐसी स्थिति में अचानक नेपाल का रुपया आने का समाचार मिलने से खुशी होना स्वाभाविक है।

हैदराबाद, १२--२--७०

तिम्मा रेड्डी के साथ विधान सभा भवन में स्पीकर के कमरे में पहुंचा। वहीं पर पहले विजय भास्कर रेड्डी (वित्त मंत्री) से बात हुई। फिर शिक्षा मंत्री पी० वी० नरसिंहराव से हुई। फिर दोनों से हुई। दोनों का रुख बहुत अनुकूल है। दोनों ने ही कहा कि आपका यह काम तो जरा सा है, पूरा होना चाहिए। विजय भास्कर ने कहा कि मैं मुख्य मंत्री से बात कर लूंगा।

खंडू भाई देसाई (गवर्नर) से राज भवन में मिला। वनस्थली के प्रति बहुत अच्छा खयाल है उनका। वहां जाकर देखने की बहुत इच्छा है। वनस्थली की कई बातें

पूछीं। खुद ही वोले ब्रह्मानन्द रेड्डी से मैं वात कर लूंगा और यह कहा कि विजय भास्कर काम करा देगा। पी० वी० नरसिंहराव बहुत अच्छा आदमी है।

विरधीचन्दजी चौधरी से पक्की सलाह। मेरे हैदरावाद में रहते २५ हजार तक जरूर ही और जल्दी ही हो जाएंगे। दिन में दो वार निकलना है। छोटी-छोटी मीटिंग करनी। वहीं जीमना भी। फिर वनस्थली के किसी प्रतिनिधि के घूमने से महीने वीस दिन में २५ हजार या इससे ज्यादा भी और हो सकते हैं। पन्नालालजी पित्ती को यह बता दिया। आसार बहुत अच्छे हैं।

वनस्थली से जयपुर, २१–७–७०

आजकल मेरा सर्वोपरि ध्यान तो यह है कि देश के काम के लिए मुझे अपने आपको नये सिरे से खपाने के लिए तय्यार हो जाना है। देश में ऊपर से नीचे तक स्वार्थवाद फैला हुआ है और देशभक्ति दुर्लभ वस्तु हो रही है। साथ ही मिथ्याचार और दम्भ का वोलवाला है। जो वास्तव में अच्छे लोग हैं वे दवे हुए हैं और कुछ कहने, करने की स्थिति में नहीं हैं। ऐसे हालात में मैंने जूझते हुए, जरूरत हो तो जानपर खेल जाने का फैसला किया है। इस बड़े भारी कार्य-क्रम में मुझे कम से कम साधनों से काम चलाना है और वे साधन आम जनता से आने चाहिएं, या थोड़े से उन लोगों से जिनको मेरा कार्यक्रम सचमुच प्यारा लगता हो। समान विचार वाले भाइयों को मुझे पूरा सहयोग देना है, उनसे पूरा सहयोग चाहना है। मुझे खुद को किसी पार्टी में शामिल नहीं होना है, न किसी चुनाव में खड़ा होना है, पर मेरा चुनाव से और किसी पार्टी या व्यक्ति से भी परहेज नहीं करना है। चुनाव में सज्जनों की यथाशक्य मदद मैं करूंगा। जिसमें किसी का विरोध होगा तो हो जाएगा।

इसके साथ ही मैं यह जानता हूं कि वनस्थली से मेरा पूरा छुटकारा हो जाना आसान नहीं होगा। गांव-गांव घर-घर चन्दे के लिए भटक करके न सही, किन्हीं दूसरे उपायों से मुझे वनस्थली की वित्तीय स्थिति को मजबूत बनाना ही होगा। वनस्थली में दूसरे साथी भी हैं जो संस्था के स्तम्भ हैं। वे भी मेरे इस कठिन काम में हाथ बंटाएंगे। अखबार के काम को भी मैं छोड़ नहीं सकता। अपने अखवार को कई मुसीवतों का सामना करना पड़ा है, पर मुझे आज या कल और कैसे भी करके अखबार को भी जरूर चमकाना है। जोवनेर के मातृ मन्दिर विद्यालय का छोटा सा काम है, उसे भी अच्छी तरह से जारी रखना ही होगा। दूसरे सार्वजनिक काम भी मेरे सिर पर आ सकते हैं, पर उनके लिए आर्थिक जिम्मा लेने का मेरा विचार नहीं है।

मेरी पारिवारिक जिम्मेदारी भी थोड़ी बहुत तो वनी रह सकती है। मुझे उसमें उलझे हुए नहीं रहना है। परिवार और संस्थाओं के प्रति अपना कर्तव्य मुझे पूरा करना होगा, पर जहां तक हो सके मुझे मोहमुक्त हो जाना होगा।

---

(२)

विविधपद्यावलि

भूमिका

विद्यार्थिकाल की, जीवनकुटीर के जमाने की, वनस्थली विद्यापीठ के सिलसिले की, सामयिक राजनीति तथा कुछ अन्य विषयों की, इस प्रकार थोड़ी सी चुनी हुई रचनाएं इस खण्ड में दी जा रही है। रचनाएं हिन्दी में, राजस्थानी में, संस्कृत में और अंग्रेजी में हैं। सहृदय पाठकों से मेरी प्रार्थना है कि वे किसी भी रचना में काव्यत्व की खोज न करें।

स्वतन्त्र रचना करने के साथ साथ मैं अपनी एक कुटेव के अनुसार कुछ अनधिकार चेष्टा भी कभी कभी करता रहा हूं, यथा किसी की भी हिन्दी या संस्कृत की रचना में कुछ न कुछ परिवर्तन कर देना। किसी फुटकर रचना की तो शायद कोई खास बात नहीं। पर तुलसीकृत रामायण से और उससे भी बढ़कर श्रीमद्भगवद्गीता तक से ऐसी छेड़छाड़ करना तो बड़ी बुरी अनधिकार चेष्टा मानी जानी चाहिए। पर आदमी अपनी आदत से लाचार होता है। मैंने विविध पद्यावलि के अन्त में ऐसे तीन नमूने "मेरी अनधिकार चेष्टा" के नाम से दिये हैं जिनमें पाठक चाहें तो मजा लें या मेरा मजाक उड़ाएं या मेरी भर्त्सना करें।

हीरालाल शास्त्री

(१)

नकटे न कटे

(१९१६–१७ में किसी बड़े मेहमान की दी हुई— "नकटे न कटे" समस्या की पूर्ति)

भट भीड़ घटा घनघोर घटा तंह विज्जुछटा सम खड्गछटा।
रणमारु बजा कड़का घन ज्यों भट भूझ पड़े भट संग फटा।।
रणशूर डटे फटके भपटे रणभीरु हटे सटके सिमटे।
अस देस के हेतु समाज के काज असंख्य कटे, नकटे न कटे।।

स्फुट रचनाएं

(१९१७ से १९२० तक की अनेक संस्कृत
रचनाओं में से छांटी हुई रचनाएं)

(१)

स्वस्थानादागतेनैव सिच्यमानोऽश्रुवारिणा ।
अहो ! नेत्रवितीर्णेन वर्धते प्रेमपादपः ।।

(२)

रम्यापि सूक्तिर्हृदि दुर्जनस्य,
शल्यायते सज्जनपण्डितस्य ।
पिकस्य वाणी न हि रोचते सा,
मनोहरा यद्यपि वायसाय ।।

(३)

आनन्दयन्ती सुजनस्य मानसं,
प्रवेशमाप्नोतिन दूषिते हृदि ।।
सूक्तिर्यथा साधु तमोवृते घटे,
विकासयन्ती कुमुदं सुकौमुदी ।।

(४)

केचित् सन्ति शरीर पोषणपरा व्यायामनष्ठा निराः
केचिच्च श्रमपाठदत्तमनसो वृद्धि गता मानसे ।।
एके वा परदुःखदुःखितहृदः सन्त्यप्युदारा जना
आचारव्यवहारनीतिनिपुणाश्चान्ये तथा सज्जनाः ।।

(५)

अन्ये सन्ति विशुद्धकीर्तिप्रथिता देशानुरागे रता
वक्तारः पटवो भवन्ति विहिताभ्यासाश्चिरं चेतरे ।।
प्राणायामनिरुद्धचित्तगतयः केचित् परे योगिनो
लोके चैव निरन्तरं कृतधियश्चान्येप्यनल्पश्रुताः ।।

एक पञ्चक

(१९२० में रचे गये अधूरे 'करुणाशतक'
के पद्यों में से दिया हुआ एक पञ्चक)

(१)

कान्तावियोगविकला हि समागमाशा,
बन्धेन ये खलु पुरा दधति स्म प्राणान् ।।
तस्यामदृष्टकृपया त्रिदिवं गतायां
चित्रं श्वसन्ति कथमद्य नु ते निराशाः ।।

(२)

याता प्रिया विगत एव तदा सुखांशः
प्राणप्रिया विचलिता चलितः सुधांशः
स्पर्शो गतः सुखकरो गतमीक्षणं च
स्वादो गतः सकलमेव गतं प्रियं मे ।।

(३)

चित्तं सुविह्वलमथो नयनेऽश्रुपूर्णे
मालिन्ययोगि वदनं श्रवणे च शून्ये ।।
पादौ प्रयाणविमुखौ शिथिलौ च बाहू
प्राणप्रियाविरहितस्य कथं गतिः स्यात् ।।

(४)

मानः प्रियः प्रियतमे च तथा प्रसादः
गम्भीरता प्रियतरा च तथा प्रहासः ।
श्लाघा प्रिया सुनयने च तथापवादः
योगः प्रियः परमहो च तथा वियोगः ।।

(५)

प्रवृद्धो विश्वासः कथमपि विशुद्धः परिचयः
ततो जाता प्रीतिर्विपयरसरीतिर्बहुमता ।।
तदानन्दे मग्नैर्हृदयमपि तस्यां सुनिहितम्
महद्वैचित्र्यं यन्निहितहृदयं सा हृतवती ।।

(विद्यार्थिकाल में रची गयी अंग्रेजी की
लम्बी रचना में से लिये गये कुछ पद)

(1)

Bewailing past things 'tis no use,
So hard to deal with tender themes;
Still invoke my feeble muse
For hence I have to change my schemes.

(2)

This is the face I loved so dear,
There is the heart that felt for me;
That lovely face my only cheer,
The charm that gave me ever glee.

(3)

The smiling face, the meaning eye,
Were more to me than I can say;
There was a link, a knot, a tie,
That bound us faster day by day.

(4)

I talked with him for time long
On topics diverse, numberless!
Hours passed and more along.
But knew I not, forgetfulness !

(5)

So plain my heart and so sincere,
That nothing was I did not tell!
Be good or bad, did not forbear
I telling him, and did I tell.

(जीवनकुटीर वनस्थली के जमाने की दो
मुख्य प्रार्थनाएं तथा कुछ अन्य गीत)

(१)

गीता का उपदेश

(श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के ५४–७२ श्लोकों का अनुवाद)

जीवनकुटीर की प्रातःकालीन प्रार्थना

सुणल्यो गीता को उपदेस कानजी भलो सुणायो छै

अर्जुन बोल्या—

थिर बुद्धी का समाधिवान की, काना ! कसी पिछाण ?
बोलै चालै बैठै किण विध, करद्यो आज बखाण ।। ५४ ।।

श्री भगवान बोल्या—

अपणा मन सूं सभी वासना, अर्जुन ! दूर हटाय ।
खुद ही खुद सूं तिरपत रैवै, जब थिर बुद्धि कहाय ।। ५५ ।।

दुख में होवै नहीं उणमणों, सुख की त्यागै चाय ।
प्रीत रोस डर बीत चुकै जद, मुनि थिर बुद्धि कहाय ।। ५६ ।।

राजी दोरो होय नहीं जो, भला बुरा न पाय ।
सब सूं नेह हटायो राखै, जद बुद्धी ठहराय ।। ५७ ।।

जियां काछवो भीतर खींचै, अंगां ने सुकड़ाय ।
सबी विसय सूं इंद्र्यां सिमटै, जद बुद्धी ठहराय ।। ५८ ।।

भूख प्यास में विसय हटै पण, मिटै नहीं या चाय ।
परमेसर का दरसण हो जद, भाग जाय छै चाय ।। ५९ ।।

कोसिस करता पिंडत की भी, जोरी सूं दे तांण ।
इन्द्र्यां मथकर चित्त खींचले, कुन्तीसुत ! तू जाण ।। ६० ।।

इन्द्रयां वस कर जोग साधकर, करले म्हारो ध्यान ।
इन्द्रयां जीं की बस में होवै, थिर बुद्धी तू मान ॥ ६१ ॥

बिसयां को नर ध्यान धरै जद, वांमें लागरण होय ।
लागरण में सूं वरणै कामना, रोस काम सूं होय ॥ ६२ ॥

रोस कर्यां सूं मोह बरणै छै, मो सूं सुरता जाय ।
सुरता विगड़्यां वुद्धि बिसट हो, पाछै नर विनसाय ॥ ६३ ॥

राग रोस ने छोड़ चुक्योड़ी, इन्द्रयां वसमें ल्याय ।
अंतस वस कर भोग करयां भी, चित परसन रै जाय ॥ ६४ ॥

चित परसन हो जाय जद्यां तो,दुख सारा मिट जाय ।
क्यों कर परसन चित की बुद्धी, जल्दी सी ठहराय ॥ ६५ ॥

जोग नहीं तो बुद्धि नहीं हो, नहीं भावना आय ।
भाव नहीं तो नहीं सान्ति हो, सुख असान्त के नांय ॥ ६६ ॥

विसयां मांही चलती इन्द्रयां, कै पाछै मन धाय ।
जल में भाल नाव नै जिरण विध, वो बुध नै ले जाय ॥ ६७ ॥

जी कीं इन्द्रयां बस हो सारा, विसयां सूं हट जाय ।
महाबाह अर्जन ! जद ऊंकी, वुद्धी थिर हो जाय ॥ ६८ ॥

सब प्राण्यां कै रात पड़ै जद, ग्यानी रात जगाय ।
सारा प्राणी जाग रह्या हो, रात जद्यां पड़ जाय ॥ ६९ ॥

पाणी आता समदर नांई, ज्यो कोइ निसचल होय ।
भोग करयां भी सान्तो पावै, कामी सान्ती खोय ॥ ७० ॥

छोड़ कामना और चायन्यां, ममता नै विसराय ।
छोड़ हैंकड़ी करै आचरण, वोही सान्ती पाय ॥ ७१ ॥

असी ब्रह्म की हालत पायां, नांहीं मोह सताय ।
अन्त समै भी पारथ ! पावै, मोकस ही होजाय ॥ ७२ ॥

(२)

जीवनकुटीर की सायंकालीन प्रार्थना

रागरहित हो जनसेवा की,
शुभ अभिलाषा नमो नमो।
निर्भयतायुत सत्यशान्तिमय,
कर्मचिकीर्षा नमो नमो ॥ १ ॥

व्यक्तीगत अरु पारिवारिकी,
स्थिति से ऊपर उठी हुई।
वीरहृदय को जो सुख देती,
राष्ट्रनिनीषा नमो नमो ॥ २ ॥

अंधकार के बादल नभ में,
मंडराते जब घुटे हुए।
मृत्युनृत्य के बीच भटों की,
जीवनआशा नमो नमो ॥ ३ ॥

बाड़ बेल को जब खाती हो,
आशा का आधार कहां।
ऐसी स्थिति में धर्मस्थापन,
की आशंसा नमो नमो ॥ ४ ॥

सत्ता का मद, धन की रचना,
सांप्रदायिकी खींचातान।
निर्बलजन--अवहेलन करना,
अनयजुगुप्सा नमो नमो ॥ ५ ॥

निजदुर्बलता, घर की दुविधा,
जनता का अज्ञान महा।
कार्यकठिनता, साधनलघुता,
कठिनपरीक्षा नमो नमो ॥ ६ ॥

भूख प्यास अरु सर्दी गर्मी,
वर्षा आंधी सभी सहें।
और सहें नित भ्रमण जागरण,
कष्टपिपासा नमो नमो ॥ ७ ॥

वैभव सुख की चाह नहीं हो,
मान बड़ाई चहें नहीं।
जीवन की परवाह नहीं हो,
प्रबलमनीषा नमो नमो ॥ ८ ॥

मौसम के जिन चिह्नों को भी,
होना था अनुकूल जहां।
नैया की गति रोक रहे वे,
जलधितितीर्षा नमो नमो ॥ ९ ॥

तथाकथित सब प्रवल शक्तियां,
हों विपक्ष में जुटी हुई।
जगदीश्वर की दया मया से,
जगतजिगीषा नमो नमो ॥ १० ॥

निर्धनता अज्ञान भीति ने,
जीवन का रस छीन लिया।
मरणानन्तरजीवनदायक,
प्रलयप्रतीक्षा नमो नमो ॥ ११ ॥

(३)

"केश्या" की चेतावणी

एका रै एका प्यारा सांचा दिल सूं आव,
प्यारा सांचा दिल सूं आव रै।
सांच्यां ही आया सूं म्हां की जीत छे।। १ ।।

धन्धा रै धन्धा भाया प्यारो म्हांनै लाग,
भाया प्यारा म्हांनै लाग रै।
ठालां की दुनियां में भाया पै नहीं ।। २ ।।

घाटा रै घाटा बैरी पल्लो म्हांको छोड़,
बैरी पल्लो म्हांको छोड़ रै ।
ठैर्‌यो तो बिगड़ैलो थारी आबरू ।। ३ ।।

पीसा रै पीसा प्यारा पल्लै म्हांकै ठैर,
प्यारा पल्लै म्हांके ठैर रै।
चाय की बेल्यां क्यों भार्‌यो ह्वै रह्यो ।। ४ ।।

ताता रै ताता बैरी सीलो होकर बोल,
बैरी सीलो होकर बोल रै।
थारी रै टणकाई कै दिन चालसी ।। ५ ।।

सूता रे सूता प्यारा अब तो जल्दी जाग,
प्यारा अब तो जल्दी जाग रै।
सोयां सूं भाईड़ा म्हारा न सरै ।। ६ ।।

सैरी रै सैरी प्यारा पांव जिमीं पर टेक,
प्यारा पांव जिमी पर टेक रै।
ऊंचो रै झांक्यां सूं ठोकर खायलो ।। ७ ।।

बामरण रै बामरण भाया धरम करम नै पाल,
भाया धरम करम नै पाल रै ।
जदां तो दुनियां भी लैरां लागसी ।। ८ ।।

ठाकर रै ठाकर प्यारा नुंवो जमानो देख,
प्यारा नुवो जमानो देख रै।
दुनियां कै सागै तू प्यारा चाल रै ।। ९ ।।

बाण्यां रै बाण्यां भाया पूरै कांटै तोल,
भाया पूरै कांटै तोल रै ।
नांतर तो होवैली भाया सांतरी ।। १० ।।

करसा रै करसा प्यारा अब तो तू भी चेत,
प्यारा अब तो तू भी चेत रै ।
थारै रै चेत्यां सूं बेड़ो पार छै ।। ११ ।।

(४)

बोल बाला छै

ऊरमा अर हौसला का बोल बाला छै।
भादरी मरदानगी का बोल बाला छै।। १ ।।

अणबोल्या को खाखलो भी, बिना बिक्यो रै जाय छै।
बोलै जीं का बूंमलां का, बोल बाला छै।। २ ।।

बिन लखणां का मूसलचंन्दा त्या त्या त्या करता फिरै।
अकलबन्द हुश्यार का तो, बोल बाला छै।। ३ ।।

न रोवै जीं टाबर नै तो, मां भी बोबो दे नहीं।
रूसबाला टाबरां का, बोल बाला छै।। ४ ।।

गद्धा उपर बोझो लादै, पाछां सूं दे कामड़ी।
टांडवाला सांड का तो, बोल बाला छै।। ५ ।।

निमला की तो पूछ कोनै, निमलो बण रैणो नहीं।
जबर्दस्त बलवान का ही, बोल बाला छै।। ६ ।।

जीव बचाकर भागै जीं का, जीबा में धरकार छै।
झूझवाला सूरमा का, बोल बाला छै।। ७ ।।

नर नारी दोन्यूं को जोड़ो, कोई भी कमजोर क्यों।
सिंघ का अर सिंघणी का, बोल बाला छै।। ८ ।।

नीत जसी ही बरकत हो छै, नीत चोखी राखणी।
भलापणा ईमान का ही, बोल बाला छै।। ६ ।।

खाता जाय बिगोता जावै, यो नुगरां को काम छै।
छेवट में नुगराई का ही, बोल बाला छै।। १० ।।

सांच नै तो आंच कोनै, सांच को परताप छै।
सांच का ईखान का ही, बोल बाला छै।। ११ ।।

(५)

कांई म्हां का दिल में

कैवा सूं कांई हो छै कांई म्हांका दिल में ?

काना सुण लीनी बोली सारी बातां,
बताई नहिं जावै कांई म्हांका दिल में ।। १ ।।

आंख्यां सूं भी देखी म्हे घणी रचना ।
दिखाई नहिं जावै कांई म्हांका दिल में ।। २ ।।

निबला रैवा सूं कांई कांई बीती ।
सुणाई नहिं जावै कांई म्हांका दिल में ।। ३ ।।

धणा तो सतावै कोई म्हांनै चावै ।
पण म्हे ही म्हां की जाणां कांई म्हांका दिल में ।।४।।

झेलता ही आया, झेल ही रह्या छां ।
कैवानै कुण नै जावां कांई म्हांका दिल में ।। ५ ।।

स्वारथ साधै बतावै परमारथ ।
झूठा परपंच की चोट म्हांका दिल में ।। ६ ।।

च्यारयूं कांनी देखो बाड़ बेल खावै ।
अनरथ अन्याय को सदमो म्हांका दिल में ।। ७ ।।

बुरा मौजां माणै भला दुःख पावै ।
असी घोर अंधेर को घाव म्हांका दिल में ।। ८ ।।

करवा की होसो सो करर बतास्यां ।
क्यों कैर खाली खोवां कांई म्हांका दिल में ।। ९ ।।

दिल का दुखड़ा सूं दिलड़ो भरचो छै ।
मूंडा सूं कांई कैवां कांई म्हांका दिल में ।।१०।।

जद समै आसी घणी ही बतास्यां ।
म्हे आज कांई कैवां कांई म्हांका दिल में ।। ११ ।।

(६)

फक्कड़ भाव

जागै जागै फक्कड़ भाव, अजी अब जाग्यां सरसी जी ।।

बिन स्वारथ सेवा कै तांई, धारै फक्कड़ भेक ।
ममता मो सारा ही छोड़ै, लगन लगै बस एक ।। १ ।।

सुख छोड़ै भल घर भी छोड़ै, छोड़ै घर का कार ।
मान बड़ाई बिन छोड्यां सूं फक्कड़पन बेकार ।। २ ।।

सेवा कै तांई तो फक्कड़, भाग्यो दौड्यो जाय ।
बाकी जीं नै काम होय सो, फक्कड़ सूं बतलाय ।३।

दुनियां की मामूली बातां, फ़क्कड़ जावै लोप ।
सत सूं धूणी तपै सनातन, जमै चीमटो रोप ।। ४ ।।

धक धक करती झल फूटै जद, चित्त होय बेचैन ।
नसो अणूतो छायो रैवै, मस्त होय दिन रैन ।। ५ ।।

काम करै सो करै लगन सूं, भिड़ जावै खम ठोक ।
धुन को पक्को फक्कड़ होवै, देवै तन मन झोंक ।। ६ ।।

फक्कड़ हो सो डरपै कोनै, सदा होय निर्भीक ।
दूजा नै डरपावै कोनै, फक्कड़ पूरो ठीक ।। ७ ।।

मुसकल आयां करै सामनो, होय घणो मजबूत ।
दबै नहीं घबरावै नाहीं, फक्कड़ हो अवधूत ।। ८ ।।

कोई नै राजी करवानै, करै न बेजा काम ।
खुद क तांई कुछ नहिं चावै, दाम होय वा नाम ।।९।।

टुच्चीपुच्ची बातां छोड़ै, सैर करै आकास ।
दिल समदर सो हो जावै जद, फक्कड़ नै सावास ।।१०।।

लाग लपेट जरा नहीं राखै, चालै सूदो सट्ट ।
सांचो फक्कड़ बणवा सूं ही, बेसक होवै ठट्ट ।।११।।

(७)

जिनगानी को झरणो

जिनगानी को झरणो हरदम, झर झर बहतो जावै छै।
समझै ज्यांने बात ग्यान की, गुपचुप कहतो जावै छै ।।१।।

बालपणै नानो सो झरणो, कल्-कल् करतो जावै छै।
फेर जुवानी छावै जद वो, जोबन मद में मांचे छै ।।२।।

चलता चलता झरणा में तो, झरणा मिलता जावै छै।
दीखत की जिनगान्यां न्यारी, स्यामल होती जावै छै ।।३।।

पार करै छै झरणो ऊबड़, खाबड़ समतल धरती नै।
डूंगर जंगल् खेतो झरणो, मस्त चाल सूं जावै छै ।।४।।

साधारण बहतो यो झरणो, धीरो धीमों दीखै छै।
आवै बाढ़ जणां तो झरणो, कोतक घणा रचावै छै ।।५।।

मंजल पूरी होतां होतां, झरणा फट भी जावै छै।
न्यारा न्यारा हो जाबा सूं, ताकत भी घट जावै छै ।।६।।

ढलै जुवानी जद झरणा में, नरमी को गुण आवै छै।
बिन था का समदर में आखर, झरणो जार समावै छै ।।७।।

समदर में सूं पाणी पाछो, खिंच खिंच ऊपर जावै छै।
डूंगर पर मे बरसै फेर्‌यूं, झरणा बणता जावै छै ।।८।।

एक ठौड़ सूं निकसै झरणो, दूजी ठौड़ बिलावै छै।
आद अन्त को ठेवो अपणों, जद भी नहीं जणावै छै ।।९।।

जिनगानी का ई खेला में, कुण की कांई गिणती छै।
झरता वहता झरणा माफक, सारा चक्कर खावै छै ।।१०।।

गंगाजल् सो निरमल झरणो, ज्यो कोई बण जावै छै।
सुरसरिता सी जिनगानी को, सारो जग जस गावै छै ।।११।।

जयपुर राज्य प्रजामण्डल के प्रारंभिक काल की दो रचनाओं के अंश

(१)

प्रजा मण्डल हमारा है।

प्रजामण्डल प्रजा का यह, प्रजामण्डल हमारा है।
प्रजामण्डल के हैं हम तो, प्रजामण्डल हमारा है ।।१।।

हमें विश्वास मण्डल का,करें हम प्यार मण्डल को ।
प्रजामण्डल की जय बोलें, प्रजामण्डल हमारा है ।।

(२)

लुगायां की सभा

लुगायां की सभा होसी, सभा में सब जणी आज्यो ।
घरां में बलता चूला भी, भलां ही छोड़ थे आज्यो ।।

(३)

स्वागत गीत

(अगस्त १९३९ में जयपुर राज्य प्रजा मण्डल की वर्किंग कमेटी के कुछ सदस्यों के जेल से छूटकर आने के अवसर पर गाया गया स्वागत गीत)

स्वागत करें हम आपका, स्वागत पधारिये ।
श्रीकृष्णमन्दिर के पथिक, स्वागत पधारिये ॥१॥

बाट मेह की सी सभी हम, जोवते अब तक रहे ।
सो आज आखिर आ गये, स्वागत पधारिये ॥२॥

सेठजी हैं जेल में अरु, स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं ।
दूखे हुये दिल से कहें, स्वागत पधारिये ॥३॥

आपके पीछे से सुनिये, काम जोरों से हुआ ।
वृत्तान्त सारा जानिए, स्वागत पधारिये ॥४॥

जोर की वह बाढ़ थी पर, रोक कैसे लग गयी ।
बापू से जाकर पूछिए, स्वागत पधारिये ॥५॥

ऐसी स्थिती में "दूरदर्शी" राजने क्या क्या किया ।
जान सब कुछ लीजिए, स्वागत पधारिये ॥६॥

आप आये जेल से, पर जेल में हम भी तो थे ।
छोटे बड़े का फर्क था, स्वागत पधारिये ॥७॥

तोड़ना फाटक हमें है, इस पुराने जेल का ।
इसीलिए बेताब हैं, स्वागत पधारिये ॥८॥

संधि चर्चा से अगर हो, काम बनता दीखता ।
पहले वही कर देखिए, स्वागत पधारिये ॥९॥

न बना तो कहना होगा, आप नाहक आ गये ।
चलिए सब के सब चलें, वापस पधारिये ॥१०॥

आपके कहने के माफिक, हमतो सब तय्यार है ।
क्या करें बतलाइए, स्वागत पधारिये ॥११॥

(४)

भावना प्रणति

(वनस्थली विद्यापीठ की पञ्चमुखी शिक्षा के प्रमुख
अङ्ग "नैतिक शिक्षा" से संबन्धित "भावना प्रणति")

भारतीय संस्कृति में सच्ची, जीवित श्रद्धा नमो नमो ।
असंकुचित निज राष्ट्र प्रेम की, प्रबल भावना नमो नमो ॥१॥

सब धर्मों का करें समादर, खण्डन मण्डन नहीं करें ।
नहीं बनें धर्मान्ध कभी हम, धर्मसमन्वय नमो नमो ॥२॥

अन्धमार्ग से बचे रहें हम, कपटभाव से अलग रहें ।
तर्क करें पर गुरु वचनों में, निर्मल आस्था नमो नमो ॥३॥

न्याययुक्त हो दृष्टि हमारी, वैर किसी से नहीं करें ।
प्राणिमात्र को प्यार करें हम, मार्ग प्रेमका नमो नमो ॥४॥

सावधान निज मर्यादा के, पालन में हम रहा करें ।
शुद्ध भावना, दृष्टि, वचन हो, शुद्ध आचरण नमो नमो ॥५॥

कभी किसी को नहीं डरावें, क्रोध कभी भी नहीं करें ।
स्वयं कभी भी नहीं डरें हम, निर्भय जीवन नमो नमो ॥६॥

मनसा वाचा और कर्मणा, सत्य आचरण किया करें ।
बाहर भीतर रूप एक सा, सरल सचाई नमो नमो ॥७॥

अपनी लघुता हम पहिचानें, और गर्व से दूर रहें ।
औरों के गुण ग्रहण करें हम, सहज नम्रता नमो नमो ॥८॥

सम्पद् हो या विपद् पड़ी हो, हर हालत में मस्त रहें ।
सदा आत्मसम्मानपुरःसर, जीवनयात्रा नमो नमो ॥९॥

आत्मभाव हम सबसे रक्खें, उन्नति सबकी चहा करें।
डाह किसी से नहीं करें हम, विमल हृदयता नमो नमो ॥१०॥

सादा जीवन हम अपनावें,चटक-मटक से नफरत हो।
भोजनादि विषयों में संयम, अरु नियमितता नमो नमो ॥११॥

निज की आवश्यकताओं पर, खूब हमारा कावू हो।
लोलुपता में नहीं फंसें हम, लोभरहितता नमो नमो ॥१२॥

परधन पर मन नहीं चलावें, अनुचित लाभ कभी न चहें।
चोरवृत्ति से मुक्त रहें हम, अस्तेयव्रत नमो नमो ॥१३॥

थोथी शान जरा नहिं रक्खें, उपयोगी सब काम करें।
स्वाश्रय का अभ्यास करे हम, श्रम की महिमा नमो नमो ॥१४॥

जाति और धन्धे को लेकर, ऊंच नीच हम नहीं गिनें।
त्याग करें अस्पृश्यभाव का, मानवसमता नमो नमो ॥ १५॥

हम खुद चाहें कष्ट उठावें, औरों को आराम मिले।
स्वार्थरहित सौजन्य स्नेहयुत, सेवावृत्ती नमो नमो ॥१६॥

किसी संघ में शामिल होकर, मनमानी हम नहीं करें।
अनुशासनपालन करने की, कठिन साधना नमो नमो ॥१७॥

अंगीकृत जो काम हमारा, उसमें पोल कभी न रहे।
जिम्मेदारी खूब निभाने, का दृढ़ आग्रह नमो नमो ॥१८॥

अगर कभी मतभेद खड़ा हो, अथवा अनवन हो जावे।
आपस का व्यवहार भला हो, सहनशीलता नमो नमो ॥१९॥

मुश्किल से मुश्किल भी उलझन,आवे तो हल सोच सकें।
घवराने का काम नहीं कुछ, तत्परबुद्धी नमो नमो ॥२०॥

ग्रहण करें सिद्धान्त मार्ग, पर याद रहे व्यवहार हमें।
सिद्ध करें सत्कार्य लगन से, कार्यकुशलता नमो नमो ॥२१॥

वनस्थली स्तवाष्टकम्

वनस्थली हन्त हृतैकशान्ता
वनस्थली काममनेकशान्ता ।
वनस्थली वीतशुचा प्रसन्ना
वनस्थली मे हृदये सदास्तु ॥१॥
वनस्थली काष्ठचिताप्रसूता
वनस्थली संकटसंप्रवृद्धा ।
वनस्थली भूरि विवर्धमाना
वनस्थली मे हृदये सदास्तु ॥२॥
वनस्थली धार्मिकतत्वयुक्ता
वनस्थली संस्कृतिनीतियुक्ता ।
वनस्थली शुभ्रचरित्रयुक्ता
वनस्थली मे हृदये सदास्तु ॥३॥
वनस्थली क्रीडनखेलयुक्ता
वनस्थली स्वास्थ्यकरी प्रहृष्टा ।
वनस्थली स्फूर्तिबलप्रदात्री
वनस्थली मे हृदये सदास्तु ॥४॥
वनस्थली गीतसुवाद्ययुक्ता
वनस्थली नृत्यकलाप्रवृत्ता ।
वनस्थली चित्रकलाप्रवीणा
वनस्थली मे हृदये सदास्तु ॥५॥
वनस्थली सद्गृहकार्ययुक्ता
वनस्थली हस्तकलाप्रशस्ता ।
वनस्थली स्वाश्रयतानुरक्ता
वनस्थली मे हृदये सदास्तु ॥६॥
वनस्थली ज्ञानविचारदात्री
वनस्थली बुद्धिविशुद्धिकर्त्री ।
वनस्थली भाषणलेखदक्षा
वनस्थली मे हृदये सदास्तु ॥७॥
वनस्थली साधु सदा स्वतंत्रा
वनस्थली साधु विमुक्तिमंत्रा ।
वनस्थली साधु विशिष्टतंत्रा
वनस्थली मे हृदये सदास्तु ॥८॥

(१)

मर्दानी नारी की प्रशंसा

(अनुमानतः १९५५-६५ के समय की कुछ स्फुट रचनाएं)

जिमावै माता सी
रति सम रमावै सुरमणी ।
सखा सी दे सल्ला
खिदमत करै सेवक बणी ॥
सुशीला मर्दाणी
सुपथ पर राखै मरद नै ।
महामायारूपा
समस्त चलावै जगत नै ॥

(२)

मेरी परीक्षा

अति कठिन मेरी परीक्षा,
अग्नि की मेरी परीक्षा ॥१॥

भक्ति की मेरी परीक्षा,
भाव की मेरी परीक्षा ॥२॥

ज्ञान की मेरी परीक्षा,
बुद्धि की मेरी परीक्षा ॥३॥

कर्म की मेरी परीक्षा,
शक्ति की मेरी परीक्षा ॥४॥

वचन की मेरी परीक्षा,
सत्य की मेरी परीक्षा ॥५॥

सुकृत की मेरी परीक्षा,
चरित की मेरी परीक्षा ॥६॥

लगन की मेरी परीक्षा,
सतत की मेरी परीक्षा ॥७॥

सहन की मेरी परीक्षा,
धैर्य की मेरी परीक्षा ॥८॥

ममत की मेरी परीक्षा,
मोह की मेरी परीक्षा ॥९॥

शर्म की मेरी परीक्षा,
लाज की मेरी परीक्षा ॥१०॥

बहुविधा मेरी परीक्षा,
सफल हो मेरी परीक्षा ॥११॥

(३)

मुश्किलों की क्या कहें हर रोज वे आती रहें।
सामना उनका करें, हर रोज वे जाती रहें॥

टक्कर हमारी हो रही है, जोरकी चट्टान से।
चट्टान चकनाचूर होगी, कह दिया भगवान से॥

हां, कह दिया भगवान से
फिर कह रहे भगवान से
हां, कह रहे भगवान से॥

कामण

(विवाह के अवसर पर वर के स्वागत के समय गाये जाने वाले प्रसिद्ध "कामण" गीत का स्वरचित रूपान्तर, वर-वधू के संवाद के रूप में:)

बना हो जाज्यो हुश्यार, कामण आज करूंली ।।
थां पर जादू करूंली र
थां पर टोणो करूंली र
बना हो जाज्यो हुश्यार, कामण आज करूंली ।।१।।

बनी हो गया छां हुश्यार, कामण बार करोजी ।।
म्हां पर जादू करोजी र
म्हां पर टोणो करोजी र
बनी हो गया छां हुश्यार, कामण बार करोजी ।।२।।

बना हो जाज्यो हुश्यार, कामण आज करूंली ।।
थांनैं बस में करूंली र
थांनैं तावै करूंली र
बना रीज्यो खब्बरदार, कामण आज करूंली ।।३।।

बनी हो गया छां हुश्यार, कामण बार करोजी ।।
जाणै बस में करोला क
जाणै बस में होओला क
बनी समझो सोच विचार, कामण बार करोजी ।।४।।

वना हो जाज्यो हुश्यार, कामण आज करूंली ।।
चाहे सारां नैं रुसार
चाहे दुनिया नै विसार
रैस्यो म्हारी ही थे लार, कामण आज करूंली ।।५।।

वनी हो गया छां हुश्यार, कामण वार करोजी ।।
बनी सारा नैं हरखार
बनी दुनिया नैं अपणार
करस्यां दोन्यूं मिल व्योवार, कामण वार करोजी ।।६।।

वना हो जाज्यो हुश्यार, कामण आज करूंली ।।
वणस्यो चाकर थे सिरदार
पास्यो चाकरी में प्यार
म्हारा जोड़ी रा भरतार, कामण आज करूंली ।।७।।

वनी हो गया छां हुश्यार, कामण वार करोजी ।।
चाकर दासी रा तय्यार
दासी चाकर री तय्यार
यो तो आपसरी रो कार, कामण वार करोजी ।।८।।

बना हो जाज्यो हुश्यार, कामण आज करूंली ।।
भल हो न्यारा न्यारा रूप
या में आतम एक अनूप
वना सोवणो सरूप, कामण आज करूंली ।।९।।

वनी हाजर छां दरवार, कामण और करोजी ।।
एंक जीव अर एक शरीर
न्यारो कुछ नहिं सब कुछ सीर
अरधानारीसरतसवीर, कामण और करोजी ।।१०।।

बन्नी

(विवाह के अवसर पर 'बनी' (नव-वधू) की विदा का गीत)

म्हारी प्यारी बनी नै आज
बनो ले चाल्यो ।
म्हारा कालजारो टूक,
बनो ले चाल्यो ॥१॥

पाली र पोसी र भणाई गुणाई,
म्हारी गुणी बनी नै आज,
बनो ले चाल्यो ॥२॥

बनी सीलवती र सनेहवती छै,
म्हारी भली बनी नै आज,
बनो ले चाल्यो ॥३॥

सदा प्राणसमान बनी नै राखूं,
ऐसो देर भरोसो आज,
बनो ले चाल्यो ॥४॥

बनी गोरी समान अटल अहिवाती,
पाई सारा जणां की असीस,
बनो ले चाल्यो ॥५॥

रावल नरेन्द्रसिंहजी जोबनेर के विषय में

नरेन्द्रसी ने अपने पिताकी,
कीर्ती बढाई बढिया निभाई ।
कॉलेज ऊंचा कृषि का बनाया,
सदैव होगी उनकी वड़ाई ॥

मेरी अनधिकार चेष्टा

(देखिए विविधपद्यावलि की भूमिका)

(१)

श्री दामोदर मिश्र कृत वाणी भूषण के "दुर्मिला" छन्द के उदाहरण का मूल रूप:—

कति सन्ति न गोपकुले ललिताः स्मरतापहृतश्च विहायच ता
रतिकेलिकलारसलालसमानसमागतमुज्झितमानरसम् ।
वनमालिनमालि नमस्य नमस्य नमस्य मुदस्य चिरस्य वृथा
भविना परितापवती भवती युवतीजनसंसदि हासकथा ।।

इस श्लोक में पदलालित्य के अलावा कोई खास खूबी नहीं लगती । उस पद लालित्य को भी दूसरी पंक्ति के अन्त में झटका सा लगता है । इसलिए मैंने उक्त पंक्ति को इस प्रकार बदल डाला:—

रतिकेलिकलारसलालसमानसमागतमाशुसमीपगता ।

(२)

श्री तुलसीकृत रामचरितमानस (बालकाण्ड) के एक छन्द का मूल रूप:—

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक सिअ रामहि समरपी विस्व कल कीरति नई।।
क्यों करै बिनय बिदेहु कियो विदेहु मूरति सांवरीं।
करि होमु विधिवत गांठि जोरी होन लागी भांवरीं।।

दूसरी पंक्ति में "बिस्वकल कीरति नई", तीसरी पंक्ति में "क्यों" तथा "कियो" और चौथी पंक्ति में "होन" मेरे कम जंचे। इसलिए मैंने बिस्वकल कीरति नई की जगह "उभय कल कीरति भई" और क्यों की जगह 'किमि', कियो की जगह 'कियउ' और होन की जगह "परन" कर दिया।

(३)

श्रीमद्भगवद्गीता के १८ वें अध्याय के ६७ वें श्लोक का मूलरूप:-

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।।

पहले तीन चरणों में चतुर्थी विभक्ति आयी है जिसे देखते हुए चौथे चरण की रचना मेरे खटकी इसलिए मैं (वही चतुर्थी विभक्ति में बोल गया—"नाभ्यसूयाकृते च मे"।

स्वयं भगवान के प्रति अभ्यसूया की कल्पना मुझे अच्छी नहीं लगी तो मैंने चौथा चरण इस प्रकार कह दिया "न चाजिज्ञासवे तथा"। यह दूसरा परिवर्तन मेरे बहुत जंचता

३

पत्रव्यवहार

भूमिका

कुल मिलाकर मैंने सार्वजनिक पत्र व्यवहार कम ही किया है। फिर भी इतने लम्बे समय में काफी पत्र व्यवहार हुआ है, पर फिलहाल उस पत्र व्यवहार का बहुत कम हिस्सा मैंने छपने के लिए छांटा है। गांधीजी से सम्बन्धित असल कागज़ात मेरे पास से खो गये, ऐसी हालत में उनसे हुई बातचीत के सार को ही मैंने लेख रूप में इस भाग में दिया है। वैसे ही विनोबाजी से हुई मेरी बातचीत के आधार पर लिखे गये लेखों में से एक विशेष लेख को मैंने पत्र व्यवहार के भाग में प्रकाशित करने के लिए चुना है। बाकी जो पत्र जिस रूप में आये या गये, ठीक उसी रूप में प्रकाशित हो रहे हैं, हिन्दी के हिन्दी में, तथा अंग्रेजी के अंग्रेजी में और उर्दू का उर्दू में।

हीरालाल शास्त्री

गांधीजी के साथ के बीस साल के सम्पर्क का संक्षिप्त विवरण तथा विनोबाजी से हुई लम्बी बातचीत के आधार पर लेख–ये दोनों यहां प्रस्तुत किये गये हैं।

गांधीजी के साथ हुए पत्र व्यवहार और वार्तालाप दोनों के स्थान में केवल यह लेख ही प्रस्तुत कियाजाता है :—

गांधीजी के साथ सम्पर्क के २० साल

गांधीजी का नाम मैंने अपने बचपन में ही सुन लिया था और बाद में 'महात्मा' का दूर-दूर से मुझ पर बहुत प्रभाव होता गया। गांधीजी का काठियावाड़ी पहनावा मुझे अच्छा लगा था और उनकी 'हिन्द स्वराज' नाम की पुस्तिका भी मुझे बहुत पसन्द आयी थी। लगभग १८ साल की उम्र में मेरा एक दिन यह अचानक विचार बन गया कि मैं किसी गांव में जाकर बसूंगा और ग्रामवासियों की सेवा करूंगा। आश्चर्य है कि मेरे इस विचार के साथ गांधीजी का या किसी अन्य का कोई सम्बन्ध

नहीं था । अर्थात् उक्त विचार मेरा अपना था, और बाद में मुझे कुछ भी याद नहीं रहा कि मेरा ऐसा विचार क्यों और कैसे बन गया होगा ? बुराई के साथ असहयोग करने की गांधीजी की कल्पना मुझे बहुत जंची थी और मैंने बी० ए० के बाद पढ़ाई जारी नहीं रखी उसका एक बड़ा कारण गांधीजी का उन दिनों का असहयोग आन्दोलन भी था। गांधीजी के कुछ नामी और प्रभावशाली साथियों ने स्वराज पार्टी बनायी, सो मुझे कभी अच्छा नहीं लगा और निरर्थक खण्डन-मण्डन करने की आदत न होते हुए भी मुझे याद है मैं स्वराज पार्टी की हमेशा काट करता था ।

मेरे विचार कई प्रकार से सख्त थे । फिर भी विधि के विधान ने मुझे कुछ समय तक जयपुर राज्य की नौकरी में फंसाये रखा । समय आने पर जब मैंने राज्य की नौकरी छोड़ दी तो मैं अपने लड़कपन में किये गये विचार के अनुसार काम करने की तैयारी में लगा । जमनालालजी (बजाज) और हरिभाऊजी (उपाध्याय) की प्रेरणा से मैं घनश्यामदासजी (बिड़ला) के पास पिलानी पहुंच गया । १९२८ के शुरू में मैं पिलानी से ही हरिभाऊजी के साथ साबरमती आश्रम (अहमदाबाद) गया, गांधीजी को देखने के लिए । आश्रम में मैंने बहुत कुछ देखा, गांधीजी को भी देखा । पर गांधीजी गुजरात विद्यापीठ के किसी समारोह में बेहोश हो गये और मैं उन दिनों उनसे मिलकर बातचीत करने से वंचित रहा । बाद में गांधीजी से मेरा मिलना उनके वर्धा पहुंच जाने पर हुआ । फिर तो मैं गांधीजी के पास बार-बार जाता रहा । पर मैंने उनसे कोई विशेष पत्र-व्यवहार नहीं किया । फिर भी मेरे पास गांधीजी के हाथ से लिखी हुई बहुत सी सामग्री इकट्ठी हो गयी थी । पर वह सामग्री, जब मैं एक दिन जवाहरलालजी को जयपुर लाने के लिए दिल्ली गया, तांगे में रह गयी और मुझे कभी नहीं मिली । मेरी जिन्दगी का सबसे बड़ा नुकसान मैंने उस अमूल्य सामग्री के खोये जाने को माना और आज भी उस नुकसान की याद से मैं तड़प उठता हूं ।

१२ मई, १९२९ से वनस्थली में जीवनकुटीर नाम की जरासी संस्था के द्वारा मुख्यत: वस्त्र-स्वावलम्बन का काम शुरू हुआ । जीवनकुटीर के कार्यक्रम के लिए मुझे गांधीजी का आशीर्वाद मिल गया था । वर्धा में जमनालालजी ने मुझसे कहा— "इस प्रकार अकेले गांव में जाकर बसोगे तो तुम "दुख पाओगे ।" मैंने जमनालालजी से कह दिया—"जब मैं दुख पाऊंगा तो आपके पास आ जाऊंगा, बाकी भविष्य में मेरे दुःख पाने की कल्पना से आप अभी से क्यों दुःख पा रहे हो ।" उसी दिन उसी समय वहीं पर घनश्यामदासजी ने कहा—मैं तुम्हें इस काम के लिए रुपया नहीं दूंगा । मैंने उनसे भी कह दिया कि मैं आपके पास रुपया मांगने आऊं तभी तो आपके रुपया देने न देने की बात आ सकती है, मैं इस काम के लिए रुपया लेने के लिए आपके पास आऊंगा ही नहीं । इससे पहले घनश्यामदासजी से मुझे काफी सहारा मिल चुका था । जो हो, मैंने इस प्रकार दो बड़े सहायकों से छुट्टी पा ली । मेरे पास अपने खुद के

आग्रह और आत्म-विश्वास के अलावा गांधीजी के आशीर्वाद का बल था और जमना-लालजी–घनश्यामदासजी से इतनी बात हो जाने के बाद मेरी सलाह उसी दिन सीता-रामजी (सेकसरिया) से हुई जिनसे मुझे काम-चलाऊ सहायता का आश्वासन मिल गया और तब से सीतारामजी वनस्थली के मित्र बन गये। बाद में जमनालालजी–घनश्याम-दासजी भी वनस्थली के काम में बहुत दिलचस्पी लेने लगे।

जीवनकुटीर (वनस्थली) के जमाने में मेरा गांधीजी से काफी सम्पर्क रहा। साल में एक बार, दो बार मैं वर्धा पहुंच जाता था, और अपने काम की रिपोर्ट उन्हें दे देता था और अपनी शंकाओं का समाधान भी कर लेता था। गांधीजी की समय की पाबन्दी कमाल की थी। एक बार उन्होंने मुझे मिलने को बुलाया, प्रार्थना के बाद घूमना शुरू करने के समय बोले इतने बजकर इतने मिनट पर मुझे अमुक जगह खड़े मिलना। मैं गांधीजी की परीक्षा में पास हो गया। गांधीजी को दूसरों के आराम तकलीफ का बहुत ध्यान रहता था। एक दिन उन्होंने मुझे अपने साथ भोजन करने को बुला लिया और अपने पास ही बिठाया। बार-बार पूछते रहे, मुझे क्या चाहिए आदि और मैं दूसरों की तरह अपनी थाली उठाने लगा तो गांधीजी ने मुझे नहीं उठाने दी, बोले तुम इस समय मेहमान हो। गांधीजी की निगाह बहुत पैनी थी और वे बहुत पक्के थे। एक बार मैं अपने गांव में बना हुआ एक बड़ा सा चाकू गांधीजी को देने के लिए बड़े घमण्ड के साथ ले गया। उन्होंने मेरे सामने ही चाकू को चलाकर देखा तो वह कच्चा निकला। गांधीजी ने मेरी ओर देखकर मुस्करा दिया। उस दिन मुझे जो शर्म आयी उसका मैं क्या बयान करूं? गांधीजी का ध्यान एकदम वैज्ञानिक था। पांच आने में बने हुए मामूली चर्खे से जीवनकुटीर के एक साथी प्रताप ने एक घण्टे में १००० गज सूत कात दिया। गांधीजी को यह बात अच्छी लगी। पर चर्खा उन्हें पसन्द नहीं आया, इसलिए कि उसकी नाप आदि कुछ ऊट-पटांग सी थी। आगे का एक मौका मुझे और याद आता है जब मैं गांधीजी के सामने बेवकूफ बन गया था। सोहनलालजी (दूगड़) के यहां लड़की का 'आदर्श' विवाह होने वाला था। लादूरामजी (जोशी) के कहने से मैंने गांधीजी को लिखकर उनका आशीर्वाद मंगवा लिया। बाद में गांधीजी को मालूम पड़ा कि लड़का-लड़की दोनों की उम्र कम है। मैं वर-वधू की उम्र पूछना भूल ही गया था। मुझे तुरन्त अपनी गलती का माफीनामा लिखकर भेजना पड़ा। गांधीजी ने अपनी कलम से मुझे लिखा—"इतना परिताप अनावश्यक है। हम सावधान रहें। भूल तो सबसे होती है। सोहनलालजी अच्छे तो हैं ही।"

गांधीजी से इतना अधिक सीधा सम्पर्क और जमनालालजी की बेहद पीछा करने की आदत। पर मुझे गांधी-सेवा-संघ का सदस्य बनना स्वीकार नहीं हुआ। मुझे आश्रम नाम ठीक नहीं लगता था, आश्रम के अमुक-अमुक नियम मुझे अटपटे और न निभने लायक लगते थे। मैं अपने निर्वाह के लिए किसी व्यक्ति या संस्था से भी बंध जाना नहीं चाहता था। अहिंसा का सूक्ष्म सिद्धान्त व्यक्तियों के लिए अच्छा हो सकता था,

पर जन-समूह के लिए मुझे अहिंसा के बजाय शान्ति शब्द ही अच्छा लगता था। यों ही ऊपर-ऊपर से किसी प्रतिज्ञा-पत्र पर मैं हस्ताक्षर नहीं कर सकता था। जीवन कुटीर का काम अच्छा और सफल माना गया और संस्था को चर्खा संघ की ओर से आर्थिक सहायता देने की बात चली। मैंने चर्खा संघ की कौंसिल में सरदार वल्लभभाई पटेल से कह दिया कि आप अहमदाबाद में बैठकर जीवनकुटीर का काम नहीं देख सकते। तब फिर बिना किसी शर्त के जीवनकुटीर के लिए चर्खा संघ की सहायता मंजूर हुई। मैं यह कह रहा हूं कि गांधीजी को बहुत मानना, हर बात के लिए उनके पास पहुंचना, पर उनके या उनकी किसी संस्था के बन्धन में नहीं आना, यह मेरा कौल था और गांधीजी को सभी कार्यकर्त्ता उनकी सब कमी बेशी के साथ मंजूर थे। अपने आश्रमवासियों के मामलों में गांधीजी भले ही उपवास किया करें, पर स्वतंत्र कार्यकर्त्ताओं को वे अपने खास बंधन में लिए बिना आशीर्वाद दे सकते थे।

वनस्थली में लड़कियों की शिक्षा का काम शुरू करने की बात आयी तो गांधीजी ने कहा—जितनी लड़कियों को रतन (मेरी पत्नी) सम्भाल सकती है उतनी ही लड़कियां यानी दसेक रखो। यही बात विनोबाजी ने कही। पर इस आधार पर संस्था नहीं खड़ी हो सकती थी। प्रजामण्डल का ज़माना आया। गांधीजी, वल्लभभाई और जमनालालजी के प्रत्यक्ष–परोक्ष असर से मैंने जयपुर प्रजामण्डल के काम में पड़ना मंजूर कर लिया। जयपुर सत्याग्रह से कुछ पहले हम लोग गांधीजी से मिलने बारडोली पहुंचे, मुझे दूर से ही देखकर गांधीजी बोले—यह आ गया लड़वैया! प्रजामण्डल की ओर से जमनालालजी ने जयपुर राज्य को जो "अल्टीमेटम" जैसा दिया उसका एक-एक अक्षर स्वयं गांधीजी का लिखा हुआ था। हम लोग न जाने कितनी-कितनी बातें सोचकर गये थे। पर गांधीजी ने सब कुछ "नागरिक स्वतन्त्रता" तक सीमित कर दिया। बाद में मैं समझा कि गांधीजी का सोचना कितना सही था। जब जयपुर सत्याग्रह प्रायः शिखर पर था, ठीक उसी समय गांधीजी ने आन्दोलन को स्थगित करने का हुक्म दे दिया। रतनजी से किसी बड़े आदमी ने कहा—गांधीजी कहां सत्याग्रह बन्द करवाना चाहते हैं? तुम लोगों से चल नहीं रहा है। उस दिन गांधीजी का मौन था, पर राधाकृष्णजी (बजाज) व रतनजी अड़ गये और गांधीजी की कलम से सत्याग्रह स्थगित करने का हुक्म लिखवा कर उक्त बड़े आदमी को दिखा दिया! गांधीजी का सत्याग्रह का तौर तरीका विलक्षण था।

१९४२ का जमाना आया। या तो अंग्रेजों से लड़ो या राज्य हमें सम्भला दो—इस आशय का एक अल्टीमेटम सा राज्यों के लिए मसविदे के रूप में किसी ने तैयार किया। पर उस मसविदे पर कोई विचार होता उससे पहले ही गांधीजी आदि पकड़े गए और देशी राज्यों के कार्यकर्त्ता एक प्रकार से अधर झूल में धरे रह गए। फिर जिसे जो सूझा सो ही उसने किया। मेरी समझ में नहीं आया कि मैं किस तरह

से राजा को ऐसा अल्टीमेटम दे सकता हूं और मैंने अल्टीमेटम नहीं दिया। यह एक भिन्न लाइन थी जिसके अपनाने के लिए खास तरह की हिम्मत व बहादुरी की जरूरत थी। खैर वह सब कुछ तो हो गया, पर गांधीजी के बाहर आने पर मैंने २०-१-४५ को अपने समाधान के लिए उनसे बात की। अगस्त, १६४२ से लेकर बाद तक जो कुछ हुआ सो सब गांधीजी को सुना कर मैंने पूछा—"जयपुर प्रजामण्डल ने जो कुछ किया उसमें क्या कुछ अनुचित था ?" गांधीजी ने लिखकर दिया—"मेरा अब कुछ कहना व्यर्थ है। फिर भी कह सकता हूं कि जो कुछ आपने किया उसमें मैं कुछ अनुचित नहीं पाता।" इतने पर से मेरा पूरा समाधान नहीं हुआ। इसलिए २२-१-४५ को दूसरी मुलाकात में मैंने उसी प्रश्न को फिर छेड़ा। नीचे लिखे सवाल जवाब हुए—

प्रश्न—आपने परसों यह तो बतला दिया था कि अगस्त आन्दोलन के सिलसिले में जयपुर प्रजामण्डल ने जो कुछ किया उसमें कुछ अनुचित नहीं था। पर आपने बम्बई में यह भी तो कहा था कि कहीं का प्रजामण्डल रियासत से न लड़ने का निश्चय करे तो उस हालत में वहां के कोई लोग आन्दोलन में भाग लेना चाहें तो उन्हें रियासत से बाहर जाकर भाग लेना चाहिए और प्रजामण्डल को परेशानी में नहीं डालना चाहिए ?

उत्तर—जरूर कहा था।

प्रश्न—तब तो मेरे जिन साथियों ने प्रजामण्डल से बगावत करके झगड़ा फैलाया उन्होंने ठीक नहीं किया ?

उत्तर—इसमें क्या शक है ? उन्होंने ठीक नहीं किया और बातचीत के द्वारा राज्य से जितना तुमने पा लिया वह तो काफी था। इससे ज्यादा तुम करने वाले भी क्या थे ?

एक दिन गांधीजी बोले—"मैंने बहुत सुना है तुम्हारी संस्था के बारे में। मैं जानता हूं कि तुम्हारी शक्ति का अपव्यय होता है।" मैंने कहा—"यह तो बड़ी सख्त राय आपने जाहिर की है। आपने वनस्थली आने का वादा कर रखा है, मुझे कह रखा है जहां कैलाश (यानी वनस्थली) होगा वहीं शंकर (यानी गांधीजी) पहुंच जाएंगे। आप एक बार वनस्थली चलो और अपने हाथ से उसका जैसा चाहो कायापलट कर दो।" आखिर गांधीजी के उक्त शब्द मेरे चुभ गये थे, इसलिए दुबारा बात छेड़ी तब गांधीजी बोले—

"मैंने वनस्थली के बारे में अच्छा ही सुना है और मेरा अभिप्राय भी अच्छा ही है। फिर भी मैं तुम्हारी तरफ से जो अपेक्षा रखता हूं वह यह नहीं है कि इस प्रकार की संस्था का संचालन तुम करो। घनश्यामदास (बिड़ला) ऐसी कोई संस्था चलाएं तो मैं आपत्ति न करूंगा क्योंकि तुम जैसे कार्यकर्त्ताओं में उनका शुमार नहीं। उनके पास

धन है, उसमें से कुछ वे ऐसे कामों के पीछे लगाते हैं। परन्तु तुम्हारे बारे में तो तुमको कई बार देखने से और जमनालाल ने शुरू में तुम्हारे लिए मुझसे जो कुछ कहा था (सब मुझको बराबर याद है) उस पर से मुझ पर और ही प्रभाव पड़ा है। जमनालाल दिव्य पुरुष था। उसने मुझसे कहा था—हीरालाल शास्त्री जैसा सच्चा बहादुर और कुशल कार्यकर्त्ता मैंने दूसरा नहीं देखा।"

मैं बोला—मैंने कभी नहीं सोचा था कि आप इतनी बड़ी अपेक्षा मुझसे रखते हैं। मैं सचमुच इस बोझ से अपने आपको दबा हुआ पाता हूं।

गांधीजी ने उत्तर दिया—"मैं तुमसे अपेक्षा तो रखता हूं।" गांधीजी ने एक बार हमें लिखा था—"वनस्थली मेरे दिल में बसी है?" जो हो शंकर का कैलाश जाना हो जाता तो पता नहीं वनस्थली का क्या होता। और गांधीजी जल्दी न चले जाते तो मुझे विश्वास है कि वे मुझे मुख्यमंत्री बनने की भूल से भी बचा लेते।

एक मौके पर मैंने गांधीजी से पूछा—हमारे यहां राजस्थानी भाषा के लिए कुछ आन्दोलन उठा हुआ है। इसमें आपका क्या खयाल है। गांधीजी बोले—यह निकम्मी बात है। कल को कच्छ वाले कहने लगेंगे कि उनके यहां कच्छी भाषा अलग होनी चाहिए।

सबसे अधिक मार्मिक बात गांधीजी से मेरी १५ जनवरी, १९४८ के आसपास हुई थी। अहिंसा आदि की बात करते-करते गांधीजी ने कहा—हीरालाल, वल्लभ भाई और जवाहरलाल मेरी बात नहीं सुनते हैं। अब मैं दूसरा वल्लभभाई और दूसरा जवाहरलाल कहां से लाऊं? इन शब्दों के साथ गांधीजी की आंखों में आंसू छलक आये। वही मेरा गांधीजी का अन्तिम दर्शन था।

विनोवाजी से मेरा कोई खास पत्र-व्यवहार नहीं हुआ। अतः बिहार-बंगाल की पद यात्रा में कई दिनों तक उनसे मेरी जो बातचीत हुई उसके आधार पर लिखा गया यह लेख प्रस्तुत किया जाता है।

विनोबाजी से बातचीत

बिहार और बंगाल में विनोवाजी के साथ कई दिनों तक रहकर और उनसे कई घंटों तक कई विषयों पर बातचीत करके मैं हाल ही में लौटा हूं। मुझे पहले से मालूम था कि विनोवाजी की बुद्धि सूक्ष्म है और वे एक पारदृश्वा तत्वज्ञानी हैं। विनोवाजी आध्यात्मिक साधना के रूप में बड़ी कमाई कर चुके हैं। वे भक्तिभाव से ओतप्रोत रहते हैं और उस भाव से वह समय-समय पर विह्वल से होते रहते हैं। उनके पड़ौस में प्रार्थना का और आस्तिकता का वातावरण बना हुआ रहता है। विनोवाजी स्वयं पद-पद पर भगवत्स्मरण करते रहते हैं और भारत के शास्त्र और तत्वज्ञान का हवाला देते रहते हैं। विनोवाजी की वाणी में पांडित्य होता है और उनके बोलने के तरीके में आचार्यत्व का अधिकार देखने को मिलता है। जो कुछ देखने सुनने से मेरी समझ में आया उस पर से मुझे कहना चाहिए कि विनोवाजी की रीति कम भावात्मक (इमोशनल) और अधिक विज्ञानात्मक (साइन्टीफिक) मालूम होती है। विनोवाजी अपने दिमाग को ग्राहक (रिसेप्टिव) अर्थात् दूसरों के सद्गुणों को देखने वाला वताते हैं। विनोवाजी की श्रद्धा अद्वितीय है जिसके आधार पर वे मानते हैं कि कालपुरुष उनके कार्यक्रम के अनुकूल है और इसलिए वह अवश्य सफल होने वाला है। विनोवाजी

का धैर्य और उनका सातत्य (निरन्तर काम में जुटा रहना) अद्भुत है। विनोवाजी का कहना है कि जव भगवान सूर्यनारायण कभी छुट्टी नहीं लेते तो हम कैसे एक दिन की भी छुट्टी मना सकते हैं ! विनोवाजी 'एटम वम' के मुकावले में अपने पास "आतम वम" वताते हैं और इसमें शक नहीं कि हमारा यह आत्मरूप भारतीय अस्त्र अमोघ तथा अजेय है। विनोवाजी की विचारधारा में परिपूर्णता और स्पष्टता है, उससे सहमत होना और उसकी सफलता के वारे में विश्वास रखना या न रखना वात दूसरी है।

विनोवाजी सर्वोदय सिद्धान्त को मानने वाले हैं। सर्वोदय दृष्टि की प्रथम विशेषता यह है कि उसके अनुसार मन या वुद्धि के स्तर से ऊंचा उठकर विज्ञानकोष या शुद्ध ब्रह्मविचार के स्तर पर सोचा जाता है, जिसका अर्थ यह हैं कि मन की क्रिया-प्रतिक्रिया अर्थात् मन के विकारों से अलग रहते हुए सोचकर समाज की रचना करने की कल्पना की जाती है। सर्वोदय की दूसरी दृष्टि यह है कि आम जनता का शिक्षण होना चाहिए और उसे योग्य वनाना चाहिए और इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में कारवार संभालने की क्षमता आनी चाहिए और किन्हीं की एवज में किन्हीं दूसरों को कारवार संभालने का ठेका नहीं लेना चाहिए। विनोवाजी के मतानुसार सर्वोदय के लिए तीन तत्व—सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह—वुनियादी हैं। आध्यात्मिक विकास का आधार सत्य, सामाजिक व्यवस्था का आधार अहिंसा और अर्थरचना का आधार अपरिग्रह होना चाहिए। एकमात्र पाप असत्य है। वाकी हिंसा, व्यभिचार, चोरी आदि सामाजिक दोष हैं। परन्तु आजकल असत्य के मुकावले में इन दोषों का महत्व वढ़ा हुआ है। जरूरत है सत्य का सही मूल्यांकन कर के उसकी प्रतिष्ठा कायम करने की। अहिंसा एक सामाजिक सद्गुण है और उसके द्वारा निर्भयता का वातावरण वनता है, जिससे सत्य की रक्षा होती है। जो वस्तु सवके हिस्से में न आए उसे लेने से इनकार करना अपरिग्रह होता है। परिग्रह से संग्रह होता है और संग्रह से अभाव होता है। अपरिग्रह-वृत्ति संन्यासी और गृहस्थ सवमें होनी चाहिए। विनोवाजी के भारतीय सर्वोदय जीवनचित्र में सवका सम्वन्ध खेती से होना चाहिए, अर्थात् सवको अपने धन्धे या पेशे के अलावा कुछ समय खेती में लगाना चाहिए। किसान का धंधा खेती है, इसलिए किसान का ज्यादा समय खेती में लगेगा। खेती और अपने धंधे के अलावा प्रत्येक मनुष्य को स्त्री और पुरुष दोनों को—कुछ समय गृहकार्य में लगाना होगा। जो काम घर में हो सकें उन्हें गांव में नहीं ले जाना चाहिए। और जो गांव में हो सकें उन्हें राष्ट्र में न ले जाया जाय। अन्न-वस्त्र जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति घर में ही हो जानी चाहिए। व्यक्तिगत उत्पादन के साधनों के अलावा वाकी साधनों का स्वामित्व गांव का होना चाहिए या राष्ट्र का। गांव की आमदनी का छठा हिस्सा गांव की व्यवस्था के लिए कर के रूप में लिया जाए और उस छठे हिस्से का वीसवां हिस्सा राष्ट्र को दिया जाय। प्रत्येक घर में से दो वालिग सदस्य लेकर वड़ी ग्रामपंचायत वना दी जाए और वह पंचायत सर्वसम्मति से पांच, सात या अधिक सदस्यों की एक प्रवन्धसमिति का चुनाव

करलें। आगे के चुनाव बहुमत से किए जा सकते हैं, पर वे होंगे परोक्ष। गांव की न्याय पंचायत अलग से चुनी जाएगी जिसे बड़े से बड़े मामलों का अन्तिम फैसला करने का अधिकार होगा। शिक्षा प्रत्येक की होगी। १५ साल के नीचे के लड़कों और लड़कियों की वर्ग के रूप में प्रातःकाल और उससे वड़ी उम्र वालों की श्रवण मनन के द्वारा सायंकाल।

इस प्रकार ऐसे समाज की स्थापना करना सर्वोदय का उद्देश्य है जो शासन मुक्त या कम में कम शासननिरपेक्ष हो जो अहिंसक अर्थात् दण्डनिरपेक्ष और फलतः भयवर्जित हो, जिसकी रचना के मूल में स्वशासन और स्वावलम्बन हो। ऐसे समाज में व्यक्ति के लिए विकास का पूरा और निर्बाध अवसर होगा। आजकल सारी सत्ता समाज या राष्ट्र के पास मानी जाती है और उसकी ओर से क्रमशः जो सत्ता बचती जाती है वह नीचे की तरफ दी जाती है। इसके वजाए यह होना चाहिए कि व्यक्ति या परिवार के पास से वची हुई सत्ता गांव में और गांव के पास से वची हुई राष्ट्र या समाज में जाए। उस समाज में स्त्रियों का स्थान बराबरी का होगा, परन्तु यह बराबरी स्त्रियों को पुरुषों के नीचे स्तर पर लाकर नहीं बल्कि पुरुषों को स्त्रियों के ऊंचे स्तर पर उठाकर लाने से प्राप्त होगी। देश की वर्तमान स्थिति यह है कि जनतंत्र नाम की एक पाश्चात्य वस्तु स्वीकार की हुई है जिसमें एक सत्तापक्ष है और दूसरा जनतंत्र को जीवित रखने के लिए विरोधी पक्ष। इन दोनों पक्षों से अलग एक निष्पक्ष समाज होना चाहिए जो पक्ष भावना से परे और ऊपर उठा हुआ हो। निष्पक्ष समाज सत्तापक्ष और विरोधी पक्ष दोनों के अच्छे कामों को अच्छा और बुरे कामों को बुरा बताएगा। निष्पक्ष समाज खुद वर्तमान जनतंत्र के अन्तर्गत सत्ता प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करेगा, क्योंकि उसका लक्ष्य शासनमुक्त समाज की रचना करना है और उसकी दृष्टि से चालू शासन का क्रमशः ह्रास होते जाना आवश्यक है। शासन का ह्रास होना सत्तापक्ष और विरोधी पक्ष के लिए भी हितकर होगा। गांधीजी के डायनेमिक व्यक्तित्व के बारे में पक्के तौर पर नहीं कहा जा सकता कि वह किस समय क्या करते, पर जहां तक मालूम है उनकी कल्पना कांग्रेस को इसी तरह के निष्पक्ष समाज का रूप देने की थी। उस हालत में कांग्रेस के लोग चुनाव में हिस्सा नहीं लेते और जिन कांग्रेस वालों को चुनाव के मैदान में जाना होता उन्हें कांग्रेस को छोड़कर ही जाना पड़ता।

विनोबाजी ने साम्यवाद के बदले साम्ययोग शब्द को प्रचलित किया है। उनका कहना है कि साम्यवाद एक वाद है, एक पक्ष है, उसमें दो वर्गों में से एक वर्ग को मिटाकर दूसरे वर्ग को प्रतिष्ठापित करने की भावना है। साम्ययोग में वादत्व या पक्षत्व नहीं है, उसमें पूर्णत्व है, उसमें दो में से एक को मिटाने की अपेक्षा दोनों का समन्वय करने की कल्पना है। साम्यवाद का भी अपना दर्शन अवश्य है। पर वह दर्शन वस्तुवादी है। उसके अनुसार एक प्रकृति (मैटर) का ही अस्तित्व है और उसी में से चेतन की सृष्टि हो जाती है। इस प्रकार मार्क्स दर्शन जड़ाद्वैत दर्शन है। पर लेनिन

ने आगे बढ़कर इतना कहा है कि चेतन है या नहीं इसका ठीक पता नहीं है और यह वैज्ञानिकों के सामने अन्वेषण करने का विषय है। मार्क्स दर्शन के विपरीत अपने दर्शन में स्थूल शरीर वाह्येन्द्रियां, अन्तःकरण (मन, बुद्धि), आत्मा (पिण्ड का चैतन्य) और परमात्मा (ब्रह्माण्ड का चैतन्य) यह सब कुछ है। इस मूलभूत दार्शनिक अन्तर के अलावा साम्यवाद में व्यक्ति की प्रतिष्ठा नहीं है, उसे समाज के हितार्थ कुर्बान होना होता है। साम्ययोग के अनुसार विकसित व्यक्तियों के पुंजीभाव से विकसित समाज की रचना होती है और साम्यवाद के अनुसार व्यक्ति सर्वशक्तिसम्पन्न समाज का एक पुर्जामात्र है। तीसरा अन्तर साधनों से सम्बन्ध रखता है। साम्यवाद में साधनों के हिंसात्मक अहिंसात्मक होने की कोई चिन्ता नहीं है, पर साम्ययोग में अहिंसक साधनों का पूरा आग्रह रखा गया है। चौथा अन्तर यह है कि साम्यवाद में केन्द्रित उत्पादन और समान वितरण चाहा जाता है और साम्ययोग में मुख्यतया विकेन्द्रित उत्पादन और फिर जितनी जरूरत रह जाय उसके अनुसार समान वितरण माना गया है। पांचवें, साम्यवाद के अनुसार राज्य (स्टेट) अन्ततोगत्वा "विदर" कर जाएगा यानी क्रमशः क्षीण हो जाएगा परन्तु आज तो राज्य या शासन को बहुत मजबूत रखने की जरूरत है। इसके खिलाफ साम्ययोगियों के लिए इस घड़ी से ही शासन का कोई महत्व नहीं है, उन्हें तो अभी से शासननिरपेक्ष रहते हुए राज्यहीन समाज की रचना के लिए अग्रसर होना है।

इस पृष्टभूमि में विनोवाजी के भूदान यज्ञ के कार्यक्रम को देखने की आवश्यकता है। भूदान एकमात्र भूमि समस्या के हल के लिए नहीं है वल्कि वह सर्वोदय समाज रचना के लिए अवश्यम्भावी क्रान्ति का साधन और प्रतीक है। भारत कृषि प्रधान देश है, उसमें सबको खेती के काम में हिस्सा लेना चाहिए और इसीलिए सबके पास खेती के काम के लिए जमीन होनी चाहिए। पर इस समय किन्हीं लोगों के पास आवश्यकता से अधिक भूमि है, कई लोग हल को नहीं छूते, पर वे भूमि को पकड़े बैठे हैं, और बहुतों के पास न भूमि है और न खेती करने के साधन। इसलिए सबसे पहले भूमि का समान वितरण होना अनिवार्य है। यह वितरण हृदयपरिवर्तन से, यानी अहिंसा से, यानी प्रेम से, यानी समझा बुझाकर, जनता में अपने पड़ोसी के प्रति समभावना पैदा करके होना चाहिए। भारत में खेती से सम्बन्धित ३५ करोड़ आवादी और ३० करोड़ एकड़ खेती होने वाली जमीन है। एकबार वह ३० करोड़ एकड़ जमीन ३५ करोड़ जनता में बराबरी के हिसाब से बंट जानी चाहिए। गांव-गांव मे जनता चैतन्ययुक्त होकर खुद ही उस जमीन का पुनर्विभाजन कर डाले। विनोवाजी प्रत्येक गांव में वहां की जमीन का छठा हिस्सा और गांव के प्रत्येक भूमिवाले से दानपत्र चाहते हैं और फिर वह चाहते हैं किसी भी गांव में कोई एक भी परिवार बिना जमीन के न रहे। इसलिए ग्रामवासियों के लिए विनोवाजी का नारा है—"हमारे गांव में बिना जमीन कोई न रहेगा, कोई न रहेगा।" जब इस नारे को उच्च स्वर में गाया

और दोहराया जाता है तब आकाशमंडल से जनता के संकल्प की उद्घोषणा की प्रतिध्वनि होती है। विनोबाजी की प्रेरणा से बंगाल वाले घोषित करते हैं—"आमादेर ग्रामे भूमिहीन केऊ थाकबे ना, थाकबे ना।" कानून के द्वारा जमीन का बंटवारा चाहने वाले लोगों से विनोबाजी कहते हैं—मैं कब कानून बनाने वालों को रोकता हूं? आपके वोट से बनी सरकार से आप कहिए कि वह कानून बना दे और मेरे इस घूमने के परिश्रम को बचादे। पर याद रखिए मैं प्रेम से जमीन का छठा हिस्सा चाहता हूं और सरकार की जैसा कानून बनाने की आज ताकत है उस कानून से कहीं पच्चीसवां पचासवां, या सौवां ही हिस्सा मिल सकेगा। विनोबाजी को कहीं-कहीं पूरे गांव के गांव ही मिल गये हैं। वहां पर गांव की तमाम जमीन का ग्रामीकरण यानी बराबरी के हिसाब से बंटवारा आसानी से हो जाएगा और सर्वोदय के सिद्धान्त के आधार पर उन गांवों की पुनर्रचना का अवसर भी मिल जाएगा। विनोबाजी का आग्रह है कि अपने देश में यदि अभाव या दारिद्र्य है तो एकबार उसी का बंटवारा हो जाए और गरीब लोग अपनी व्यक्तिगत मिल्कियत के मोहजाल से मुक्त हो जाएं, फिर पूंजी का बंटवारा अपने आप हो जाएगा और उत्पादन के बड़े-बड़े साधन भी राष्ट्र के हो जाएंगे। जमीन की कमी को दूर करने के लिए नई जमीन तोड़नी होगी, खेती की पैदावार की कमी की पूर्ति के लिए ग्रामोद्योगों का विस्तार करना होगा। अहिंसक क्रांति के लिए भूमिदान के इस काम को विनोबाजी सर्वोपरि और सर्वप्रथम करने योग्य मानते हैं। उनकी राय में समाजसेवी कार्यकर्त्ताओं को अपने दूसरे सब काम छोड़कर इस एक ही काम में एकसाथ एक दो तीन के हल्ले के साथ जुट जाना चाहिए। भूदान कार्यकर्ताओं के लिए गांधीनिधि का उपयोग करने में विनोबाजी को आपत्ति नहीं है, पर पक्के पाए पर समाजसेवा करने वालों के जीवननिर्वाह के विषय में उनकी स्वतंत्र कल्पना है। भूमिदानयज्ञ के साथ-साथ देशभर में व्यापक और गहरे लोकशिक्षण के द्वारा जन मानस को अहिंसक क्रान्ति और सर्वोदय समाजरचना के लिए तैयार करना ही चाहिए। भूमिदान मूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रान्ति के लिए जीवनदान करने का जो मन्त्र चलाया गया है उसका अभिप्राय अपना सर्वस्व झोंकर काम करने से है। जीवनदानियों में क्रान्ति की भावना मुख्य होनी चाहिए और उन्हें अपनी शक्तियों को राहत आदि के मामूली कामों में बिखर जाने से बचाना चाहिए।

इस छोटे से लेख में विनोबाजी की विचारधारा और उसके कार्यक्रम का संकेतमात्र ही हो सकता था और वही करने का प्रयत्न मैंने कम से कम शब्दों के द्वारा किया है। अलग-अलग विषयों की विशद व्याख्या अलग अलग लेखों में की जा सकती है। अन्त में मेरी कुछ मामलों में विनोबाजी की दिलचस्प रायों को थोड़े में बता देने की इच्छा है। उनकी राय में भारत का आजकल का तमाम संविधान रद्द करने लायक है। समाज की वर्तमान स्थिति में जनता से पाश्चात्य पद्धति के अनुसार प्रतिनिधियों का चुनाव करने के लिए कहना वैसा ही है जैसा भेड़ों को अपना गड़रिया चुनने के लिए

कहना। आज का कांग्रेसवाद डांवाडोलवाद है—कांग्रेस के किन्हीं लोगों का दिल कदाचित सर्वोदय की तरफ हो सकता है पर ज्यादातर कांग्रेसजनों के सिर पर पाश्चात्य विचारधारा का वरदहस्त है। विनोवाजी ने पंचवर्षीय योजना की कड़ी से कड़ी आलोचना की है। विनोवाजी पुलिस स्टेट के अलावा वेलफेयर स्टेट की भी काट करते हैं। मुद्रा (करेंसी) सोने चांदी की न होकर केवल कागज जैसी चीज की होनी चाहिए जिसकी अपनी निज की कीमत कुछ न हो और राष्ट्रीय मुद्रा को गांवों में करीव-करीव नहीं जाने देना चाहिए। सर्वोदय समाज में यंत्रों का उपयोग वर्जित नहीं होगा, विनोवाजी वैज्ञानिक साधनों की वृद्धि पर हर्ष प्रकट करते हैं। व्वापारिक खादी को और खासकर खादी हुंडी वेचने जैसी प्रवृत्तियों को विनोवाजी खादी की मूलभावना से हटा हुआ मानते हैं। सत्याग्रह केवल निषेधक अस्त्र नहीं है, वह विधेयक वस्तु भी है; भूदान यज्ञ भी एक प्रकार का सत्याग्रह है। अहिंसक समाज में वहुत थोड़ी सी सेना से काम चल जाएगा, उसे वाहर के हिंसक आक्रमण से डरने की जरूरत नहीं होगी। पुलिस वालों की योग्यता के लिए विनोवाजी सत पुरूष होने की कड़ी कसौटी रखना चाहते हैं, आज तो पुलिस वाला और अपराधी दोनों एक ही कोटि के होते हैं। भारत को अपने सव मसले शान्ति से हल करने होंगे। भारत ने हिंसक उपायों को अपनाया तो वह अपनी स्वाधीनता को खो वैठेगा। हमें साम्यवाद का भय नहीं मानना है, क्योंकि वह आए तो वह भी एक चीज तो है। हमें डरना है उस स्थिति से जो न आज की सी हो, न सर्वोदय की हो, न साम्यवाद की हो और किसी चौथे ही प्रकार की अराजकता की हो जाए।

आखिर में एक मजेदार वात वताकर मैं इस लेख को समाप्त करूंगा। विनोवाजी अलग-अलग हितों के लिए अनेक अलग अलग संघ वनाने की टीका करते हुए वोले "अव तो अखिल भारत वाप संघ" तथा "अखिल भारत वेटा संघ" का वनना और वाकी है जिससे तमाम वापों और तमाम वेटों के हितों की रक्षा हो जाए।

---

(२)

पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभ भाई पटेल से हुए पत्र व्यवहार का एक हिस्सा आगे के पृष्ठों में दिया जाता है।

सरदार से मेरा निकट का संपर्क चारेक साल से ज्यादा नहीं रहा। उनसे पत्र व्यवहार भी बहुत कम हुआ। जितना सा हुआ उसका एक अंश यहां प्रस्तुत किया गया है।

पंडित जी से मेरा निकट सम्पर्क प्रायः बीसों साल का माना जा सकता है पत्र व्यवहार भी काफी हुआ। उसमें से आवश्यक अंश छांटकर यहां दिया गया है।

**From Pandit Hiralal Shastri to
Pandit Jawaharlal Nehru**

(1)

11-11-28

I do not know if you will find time or think worth your while to reply to this letter from an unknown person like myself. All the same, I have not been able to resist the temptation of writing to you.

2. I have heard and read a little about Socialism, 'but I have not yet been able to clearly visualise what actual conditions would prevail under a successful socialistic regime. Could you kindly give me a brief pen-picture of Socialism or suggest the names of one or two books dealing with the essential features of Socialism ?

3. I am utterly dissatisfied with our present social structure and what I would immediately put an end to, if I had the necessary power, is today's unequal distribution of wealth. The greater part of our public work in India is being carried on with money obtained from the rich and I suspect, within myself, that in spite of all the ideas of equa-

lity which the workers may hold, this sort of public work is nothing more than self-deception and can do no good to the downtrodden poor. But I donot see a way out. Could you kindly advise me definitely as to how I should proceed, if I wish to join a movement to stop this unequal distribution of wealth. Have you sketched out a definite programme of work (apart from propaganda) for your Independence for India League ?

4. I wish to go to Russia personally to see what has actually been achieved in that country. But the realisation of this ambition will take time. In the meantime, I wish to make myself clear as to the exact form of any possible and effective solution of the world-problem of social and economic reconstruction. If you see no objection, I would gladly try to meet you at a time and place suitable to you and me.

(2)

जुलाई, १९४७

आपके १४–७–४७ के खत के मिलने के बाद मैं समय समय पर स्थायी समिति के कई एक सदस्यों से सलाह मशविरा करता रहा। डा० पट्टाभि सीतारामैय्या से भी बातें की। हम लोग जानते हैं कि आपके पास काम बहुत है और समय की कमी रहती है। तथापि हम यह नहीं सोच सकते कि आप स्थायी समिति के सदस्य न रहें। इस सम्बन्ध में मैं आपसे दो तीन बार बात कर चुका हूँ। अब मैं आपको ज्यादा लिखना गैर जरूरी समझता हूँ। सिर्फ यही अर्ज करना है कि आप स्थायी समिति के सदस्य बने रहकर सदा की भांति रास्ता दिखाते रहें। डा० पट्टाभि की तथा स्थायी समिति के दूसरे सदस्यों की यही भावना और इच्छा है। आशा है आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार करेंगे।

(3)

15-7-49

I think it is was a proud privilege of mine to have received your two letters No. F. N. 37 of June 16 ond No.P.N. 38 of July 1. I feel it should have been possible for me to respond to these letters much earlier than today.

2. I find that your letters are illuminating and they give us not only a lot of necessary information but also much food for thought. The Premiers, in their turn, must be writing back to you similar letters giving pictures of the situations obtaining in their provinces. I wonder

if it can be possible for your office to let me have copies of a few typical letters received by you from the Provincial Premiers.

3. As you are aware eighteen States of Rajputana have been joined together into a single unit which, with an area of nearly 1,30,000 square miles, has become by far the largest political unit in the whole of India. Lack of communications is a special feature in many parts of this new State. Local patriotism which gives the people a peculiar narrow-mindedness is another feature. There were separate States, with Princes and Capitals, and with Ministries, Secretariats, Departments and Courts all of their own. The benefits of integration will take their time to come, but the immediate effect of this roping together for many people including congressmen has been, or is at least taken to be, the loss of something with which they could not have parted without a pang.

4. My own feeling is that we have been entrusted with a most difficult job full of complications at a most difficult time. We have had to begin from the very beginning. Ministries of the various units had to go as from a particular date. But we thought we should not disturb the other arrangements of the units for the time being. Therefore the Secretariats, Departments and Courts were allowed to function under newly appointed Administrators who were given powers enjoyed by individual Ministries of the former units.

5. Since then I think we have made rapid progress in the process of integration. We have divided the territories of Rajasthan, into 5 divisions with headquarters at Jaipur, Jodhpur, Udaipur, Bfkaner and Kotah. With the utmost difficulty we have been able to demarcate 24 districts and very shortly we shall fix up the sub-divisions and tehsils in each district. The Rajasthan Secretariat is located at Jaipur which I believe will be made the Capital. We are thinking of locating the High Court at Jodhpur. The location of the various major departments has been decided with a view to avoiding overcrowding at the Capital and giving some of the importanı cities their due share.

6. Secretaries to Government and Heads of Departments have been appointed. The establishment of the High Court, the Public Service Commission and the Revenue Board will be completed soon. Commissioners for the Divisions and Deputy Commissioners and Superintendents of Police for the districts are being selected. I hope this work

will be finished within a month; but the detailed integration of the departments will take a few months more.

7. The integration of finances and laws is also being attended to. I donot know at the moment what exactly the final picture of our finances will be; but I have every reason to fear that our resources will be utterly inadequate as compared with our requirements for the development of the vast backward areas of Rajasthan. Our first necessity is water; then we want power; and then means of communications. Not only industry and mining but also agriculture - everything has to be given a fresh start. The unificatian of laws, especially revenue laws, will present a number of difficulties which will have to be overcome.

8. The most difficult problem awaiting solution in Rajasthan is the jagirdari system. Obviously we cannot think in terms of immediate liquidation of the system, but we have to make a definite move in that direction. I have held talks with representatives of the jagirdars. I have placed before them the following five points :—

(1) Agree to survey and settlement operations and co-operate with Government in the task of fixing reasonable rates of cash rent all over the State.

(2) Pending completion of land settlement agree to the fixation of rent in kind or cash on ad hoc basis and give up all other cesses.

(3) Agree to uniform tenancy laws so that tenants in jagir areas may be able to enjoy the same rights as in non jagiri areas.

(4) Agree to the withdrawal of all powers which you have hitherto enjoyed.

(5) Agree to graded taxation on your income so that you will get an opportunity of contributing your share for the well-being of the people.

There are indications to show that the jagirdars are inclined to agree to the above points. But it will not be an easy affair at all. Dificulties are bound to arise as we get into grip with details. The greatest difficulty may be presented by one point viz. whether collection of

rent by the jagirdars is a power or a right and whether this power or right must be withdrawn. To that withdrawal the jagirdars may not agree, I am afraid.

9. Rajasthan has an extensive border with Pakistan and border incidents are a constant thorn on our side. Internal security also is a big problem. The present position in regard to law and order cannot be regarded as bad, but it is full of possible dangers. The police organisation is extremely weak and in the matter of capable officers we are hopelessly poor. We are doing our level best to place the entire police organisation on a sound footing. Obviously it will take time. Meanwhile we shall have to make the best of a bad situation. I have a little satisfaction that the police has recently been able to get hold of some of the dacoits and take other measures to prevent crime.

10. On the political side I donot think that the opposition to Government by non-congress elements can assume any serious proportions. There are a few communists and also a number of people who call themselves socialists. The R.S.S. organisation seems to exist on a much lgrger scale. Jagirdars and pro - jagirdar elements are also trying to organise themselves. There are other disgruntled people who will not have a word to say for a Congress Ministry.

11. The most important feature, however, is the way some of our congress friends are going. I have searched and searched-but without success, in finding a solution for these friends. There is no ideological difference and no difference in regard to policy or programme. There would have been no quarrel if I had refused to accept the offer of Premiership made to me by them and Sardar Patel together. Perhaps there would have been no trouble, at least so soon after the formation of the Ministry if I had agreed to take a few persons in the Cabinet in spite of my knowldege that the individuals concerned were the most undesirable. Now things are what they are. I shall not bother you with details and I will say only this much that some of my best friends have been behaving as my worst enemies. Personally I am a mere nobody-but the opposition directed against me is opposition to the Congress itself and that in Rajasthan where the Congress has no friends in abundance.

12. Although there has been some difficulty in some parts of Rajasthan, the food situation on the whole, is not bad. We have

succeeded in procuring over 20 lakh maunds of food grains and a few lakhs more we shall be able to procure. If the god of rain continues to be friendly, we have every hope of getting on well. We are planning to give our best attention to increased production of food. As suggested by you, we are immediately appointing an effective officer as our Food Commissioner who will be given all the necessery powers.

13. The position of refugee rehabilitation is also engaging our serious attention. We have created a separate Ministry for the purpose and have also appointed a Refugee Commissioner. Besides the refugees, we have also the Meos in Alwar and Bharatpur. During the past few weeks I feel we have done our very best to rehabilitate the Meos and give them the necessary financial help. Our experience with refugees has been that according to us we may have done our best, but to them it appears that we have done nothing. The same may be the position everywhere. In any case, the refugees are a tough job-financially, economically, politically and morally. By the way, we have passed an ordinance (which awaits H.H. the Rajpramukh's assent) on the lines of the central ordinance regarding evacuee property, as indicated in para graph 13 of your letter of July 1.

14. I fully share the sentiments expressed by you in the penultimate paragraph of your letter of July 1. Here on this side a section of the Hindi Press (especially in Jodhpur and Udaipur) has degraded itself to an unimaginable extent. Neither truth nor decency is of any use to them. Besides the Press, there is an increasing tendency to degrade the Platform also. People who describe themselves under various names place a mike on the roadside and attract a few passers by and this they call a public meeting where they use the filthiest language and indulge in all sorts of abuse and vilification without any regard for truth or decency. I am after devising some means to deal with such people, wheth they are 'journalists' or 'leaders'.

15. Corruption is also a big problem. In this connection I have always felt that this is the result of the moral degradation of our society as a whole. Men of the services accept bribes from men of the general public who in most cases pay them willingly and deliberately in consideration of some illegitimate gain. Ecnomic conditions which have prevailed for the last nine or ten years that is during the war and after have helped this evil to increase and spread beyond imagination.

16. The thought uppermost in my mind, however, is that all would have been well, if those who claim to be the followers of Gandhiji and members of the great Indian National Congress had been immune from this epidemic of corruption. My heart begins to sink when I see to what low level we have ourselves descended. Parties, factions, groups, cliques-what does all this mean ? The greed for power, the shameful desire to feast over a coworker's grave, the tendency to carve ourselves into a new congress caste to the exclusion of all other useful talent in the nation,-and all this in the name of and for the sake of the congress organisation ! But I think I must stop here. There is no justification for despair. We have always to live in hope which spiritualises the Earth.

26-7-49 **(4)**

With reference to the copy of your letter of July 16 to Shri Jainarain Vyas you will perhaps find the enclosed cutting interesting. As you very well know I am not in the habit of making complaints and so I have no desire to offer any comments on the contents of the said cutting. But I cannot help saying that I have often felt very much hurt by this sort of mischievous propaganda, particularly when it is directed towards you or Sardar Patel who are the makers of India's destiny.

It seems to me that it would serve a useful purpose if your attitude in regard to the recent activities of Vyasji could be made more widely known to the public. You will be surprised and even annoyed to hear that after the Working Committee's resolution it was declared by some of my friends of Vyasji's camp that the resolution was a one-sided decree, inasmuch as you were not present in the Working Committee's meeting on July 18. This implies that if you had not been away to Lucknow you would not have allowed such a resolution to be passed by the Working Committee.

I am very sorry for saying all that I have said above but there is a limit to everything, even to false propaganda of the Hitlerian type.

P. S.

After writing this I have come across a cutting from another paper which is published from Udaipur. A glance at the marked portions of the cutting will give you an idea of the propaganda that is

being carried on. What I have stated above is fully corroborated by the contents of this newspaper item. It is needless to say that my only purpose is to give you the necessary information which may interest you with reference to your letter to Vyasji. If you see no objection, a public clarification will be quite proper and useful and will no doubt serve the interest of Rajasthan and the Congress here.

Encls : 1. One cutting "Nehruites to meet in a Conference ?" from Rajputana Herald of Jodhpur dated 10-7-49.

2. One cutting "यह खुदकशी क्यों ?" from "१५ अगस्त" (उदयपुर) dated 24.7.49.

31-8-49

(5)

I should have written to you much earlier than to-day with reference to your letters F.N. Nos. 40 and 41, dated the 1st and 15th August, but that was not possible owing to my wanderings in several parts of Rajasthan.

2. The integrated State of Rajasthan is now taking shape. The Commissioners of Divisions took charge on August 15. The High Court of Rajasthan was inaugurated in Jodhpur by H.H. the Rajpramukh on August 29. The Public Service Commission is already functioning and the Revenue Board will soon begin to function. The integration of laws is proceeding and the picture of integrated finance will be fairly complete by the end of the next month. The selection of Collectors and Superintendents of Police and other subordinate officers is being made. The integration of the various departments will now proceed with greater speed. The records of the Secretariat of old units are being brought to the Rajasthan Secretariat at Jaipur. All this work is difficult and complicated, but we are doing it as best as we can. The greatest difficulty is about the availability of suitable personnel, and this difficulty makes me feel nervous in my weak moments. But this should not be taken to mean that I lack the necessary amount of self-confidence.

3. Our Food Department has started its work well; but at the moment we are very much worried about rain which disappeared suddenly and has not yet made its appearance again. Failure of rain at this juncture will mean disaster in Rajasthan, but I do hope that

rain will return before it is too late. The Paniwala Maharaj has already spent a few days with us. He will be going to Jodhpur very soon, but I do not think it will be possible for him to go to Bikaner or Jaisalmer before his return to Delhi on the 20th September. He will have, therefore, to come again to Rajasthan. I hope we will be able to start an experimental farm at Luni in time for the next rabi corp.

4. The rehabilitation of displaced persons continues to be a big item in our programme. Besides the sum of Rs. 80 lacs which has been advanced to refugees settling on land, another sum of Rs. 25 lacs has been sanctioned for loans for trade and industrial occupations. We have taken a number of housing schemes in hand some of which have made good progress. Pratapnagar and Bhilwara Colonies in Udaipur, Fateh Tiba and Sanganer colonies in Jaipur, and urban colonies in Bikaner and Kotah may be mentioned. In the old Matsya Union 75,840 Meos have been allotted land against 72,000 originally censused in Gurgaon and elsewhere.

5. My talks with jagirdars were making satisfactory progress and I was quite hopeful about the results. But the Government of India have now appointed a Committee to go into the jagirdari question in Rajasthan and Madhya Bharat. I feel sure that this Committee will be in a position to secure better results. Meanwhile, I propose to continue my talks with the jagirdars as far as possible. A section of the jagirdars has begun to show some signs of desperateness and in this respect we shall have to be very cautious and careful.

6. I have nothing to say about the activities of the so-called socialists of Rajasthan. Nor am I worricd about the communists. But I am watching the R.S.S. people with some anxiety, for the R.S.S. mentality has certainly affected the minds of a large number of our young people. Shri Golwalkar visited Jaipur about a week ago. I think his whole show here was extremely poor. The attendance at the public meeting addressed by him was far below my expectations, and his speech did not make any impression at all. It may be very well, if the R.S.S. organisation as a body really keeps itself aloof from politics. But I have my own doubts about the bonafides of these people.

7. I am afraid corruption is much more wide-spread than you seem to think. That most people make allegations of a general and vague nature does not mean that there is a great deal of exaggeration

in the talk about corruption. To me it seems that the people are as fond of offering bribes as the officials are fond of accepting them. Really I do not know how to tackle this problem—it is like an epidemic from which most of the people concerned seem to suffer. I feel also that congressmen have not been able to prove themselves much better than ordinary men.

8. Most congressmen seem to think that their task is finished with the advent of independence and that it is now time for them to reap the fruits of freedom. Others seem to think that they have the sole monopoly of the Congress organisation, and that they would like to see the doors of the Congress closed against all new entrants. There are others who are interested in certain private matters affecting individuals which they would like to assume public importance. The people in general do not understand the difficulties and, quite naturally, they expect too much from the Congress governments. Now there are congressmen who, instead of making the people understand the difficuties or serving them in some other way, encourage them to think that the congressmen who are in charge of the administration are no good at all. These tendencies weaken the Congress organisation and also our hold on the masses. But in my own mind I have no doubt that solid service, truly and patiently done, will bring us the fruits. But in any case I feel the Congress organisation stands in need of reformation and purging.

(6)

30-11-49

I have your two letters of November 25 and 27 respectively regarding Paniwala Maharaj and Kailash Kaul. I must say at once that I have given my fullest co-operation to the two gentlemen and have insisted on similar co-operation being given by all others concerned. There have been difficulties, but I cannot appreciate either Kaul or the Maharaj suggesting that the fullest attempt was not made to do all that was possible in the matter. I deprecate this habit of complaining without reason whether the complaint comes from Kaul or the Maharaj. Inspite of all this I am determined to help them as much as I can and carry out your wishes without, for a moment, pausing to think as to whether I should or should not take a particular step.

As regards the food arrangements and the charges therefor I refrred the matter to you because I felt that there was a principle involved in the matter. If necessary I will explain the position to you

when I meet you next time. Meanwhile I shall make all the arrangements and sanction the necessary expenditure as may be agreed to by us all in the meeting which is going to be held in Jaipur on December 6. I trust Jairamdasji will be coming here for the said meeting.

Need I assure you that you please have no worry at all about my part in the Paniwala Maharaj affair, although I cannot help saying that my own faith in what the Maharaj professes has been on a gradual decline. The more I have seen of his ways the less enthusiastic I have become. That however does not mean that I shall in any way be lacking in playing my part as well as it behoves me. I still consider that the experiment may be worthwhile. After all it may be a question of spending a few lakhs. If we get the results as we hope, we shall be amply repaid. Otherwise the few lakhs, that we will have spent, will be regarded as wasted.

I must also draw your attention to the fact that neither Samdari on the Luni nor Bilara on the Banganga is an area in the desert. The water resources by the side of these two rivers have been exploited by the local cultivators to the best of their ability. With our bigger means we can exploit the water possibilities to an infinitely larger extent. However, as regards the quality of the water available at lower strata I have my own doubts which are supported by the opinion of engineers who must be regarded as knowing a bit about their business. But I have to say again that none of these considerations will deter me from doing what you ask me to do in this endeavour to find water in Rajasthan, I hope you will not mind this out-spoken expression of what I feel and think regarding various aspects of this particular matter.

10-10-51 **(7)**

With reference to the A.I.C.C. letter dated the 24th September, 1951 inviting me to meet the General Secretaries and the Congress President to discuss Rajasthan Congress affairs I have to say that the said invitation came to me at a time when I had not only left the Congress organisation but had also fully associated myself with another political party. In Rajasthan hundreds of other active congressmen including some of the oldest comrades have made similar commitments and I think all of them have done so after having finally assured themselves that the Congress has no longer a place for persons like them. In all fairness I must submit that I did not like the way in which the

change in the Presidentship of the Congress came about some time ago; in any case, the change has not raised any fresh hopes in the minds of many on this side in regard to the future of the Congress organisation in Rajasthan.

Some of your recent utterances and your instructions to the Pradesh Congress bodies have given the impression that with the possible exception of the Socialist Party you regard all other political parties which are in existence in the country or in particular States as communal and reactionary and that the only party with a secular and progressive social outlook is the Congress. If that is what you mean, it is neither true nor fair. As a matter of fact, whatever might have been the direct and the immediate cause or causes of the secession of certain people from the Congress, the formation of some of the political parties at least signifies a revolt against the unprogressiveness or ineffective progressiveness of the Congress in the matter of socialisation on the one hand and decentralisation on the other. As regards me, although I had had my points of difference with Congress policy and a feeling of disappointment had been growing within me regarding Congress practice of its adopted and declared principles, I had all the time been trying, in view of the difficulties inherent in the Indian situation, to reconcile myself to the existing conditions. But, gradually, I had been losing faith in Congress capacity to bring about the economic revolution which was expected to have followed the attainment of political independence. Indeed, there has been a growing realisation in my mind that the great mission of the Congress having been over and congressmen having made themselves busy in some sort of personal enjoyment of the fruits of Swaraj, it would have inevitably to be left to some other powerful movement to change the economic structure of the country to the advantage of the common man.

The working of the Prajamandals in the various former States of Rajputana was all right and so also was that of the Rajputana Regional Council of the All-India States' People's Conference. But the starting of the rot unhappily coincided with the conversion of the Regional Council into the Provincial Congress Committee. I should not like to say much as to how the prospects of the formation of a United State of Rajasthan began to show several important congressmen in their true colours and how, soon after the final decision to integrate the Rajputana States, a fatal disease entered into the body of the newly

patched up Congress organisation. Perhaps it may be news to many that the last Congress elections were the first Congress party elections to be held in Rajasthan. How grossly the group in charge of the party office abused its position of advantage, is a story of shame for the good name of the Congress. Attempts were made from time to time to set matters right, but all was in vain. Ultimately in January, 1951, a voluminous memorandum of complaints was submitted to the then Congress President and a copy of the same was presented to you also. Absolutely nothing came out of that last effort of hundreds of known and thousands of unknown congressmen to get justice. The complainants do not know even today what happened to their memorandum, for not a word was ever received by them in reply. Personally I made one more attempt by approaching you in March, 1951 with the request that you might please do something for Congress unity in Rajasthan. You did give me some time, but again, there was no result. In August, 1951 when it was already too late, the President of the Rajasthan Pradesh Congress Committee met me and said that he would do all that was possible to give me satisfaction about conditions prevailing in the Rajasthan Congress. A second meeting was arranged through the mediation of a friend; but that meeting did not take place for the President of the Pradesh Congress Committee failed to make his appearence or send any message for almost the whole of the appointed day which ended with the exchange of a few words on the telephone in the evening! That was another sad story which, however, I have no desire to narrate in detail. I may simply say that incidentally that fateful day saw the end of my connection with the Congress.

Besides differences regarding principles and practice of economic policy and other matters on the ideological plane, which by themselves may or may not have assumed any serious proportions in the case of many, ex-congressmen of Rajasthan hold that the foulest of means were adopted in the elections of the present Rajasthan Pradesh Congress Committee and that the existing Congress Ministry which which was presumably formed on the strength of the Pradesh Congress Committee has its roots in unclean soil. In one of your circular letters to Pradesh Congress Election Committees you have rightly said :—

"Candidates chosen by us should not only possess integrity but be known to do so. We must not put forward any person who has not got such a reputation in the public mind. Thus any person who has

been connected with any antisocial practice, such as black-marketing, etc., should not be selected . . . ."

Now for Rajasthan I can say, without any fear of contradiction, that several persons who not only donot possess integrity but also are known not to have that qualification are occupying important positions in the organisation as well as in the administration and I feel sure most of them will be chosen as Congress candidates in spite of what you say and may be able to do. And there are others who, although they have never been congressmen in the true sense or even nominally, seem to have sure chances of being recommeneed for Congress candidateship not because they have any experience or ability, necessary for positions of responsibility, but because they have the qualification of having successfully earned money by unworthy means and are clever enough to part with a small portion of that money, in exchange, to help certain individual congressmen or a particular clique in the Congress organisation or, at best, the Congress Party itself. For myself I may make it clear that I am not at all interested in the distribution of Congress tickets which, nevertheless, appears to be a very big business at the moment, being, on the one hand, used to prevent congressmen from going out or attract ex-congressmen back into the fold and, on the other, made a condition precedent to remain in the Congress or return to it. All the same I have dealt with this matter, for, in spite of my having left the Congress, I wish that only good persons and no others, whoever they may be, should be adopted by the Congress as its candidates. How any and possibly what safeguard in this behalf can be applied in the case of those who hold power or wield influence in the Congress on the extremely bad basis of either distributing patronage in various forms or getting lucrative business to the top men through their own agency, is certainly more than I can say. Then there is the question of misusing the ministerial and other power enjoyed by the Congress for election purposes. That power is being and will be misused here in many ways (e.g. realisation of money from interested parties for various considerations, large scale transfers of government servants with an eye on the elections, use of the State's means and resources in one form or the other etc.,) admits of no doubt at all and this is proving highly detrimental to the prestige of the Congress which has already fallen very low in Rajasthan. This may be harsh language from the pen of one who, not long ago, was himself a congressman; but I have had to use these words because I was made a victim of the

wrath of my Congress friends of Rajasthan essentially for the reason that some of them found that it would not be possible for them to get my cooperation in such matters. Any way, this is a delicate subject to be handled by any ex-congressman and more so by any ex-Chief Minister for whom there is always the risk of being misunderstood in more ways than one.

Some of my friends argued with me that I should have remained in the Congress and patiently tried to root out the evils from which the organisation has admittedly been suffering. Since I realise that virtue or vice cannot be the sole monopoly of any one organisation or individual and that in view of the factual position of the human material available in the country one can hardly afford to be too idealistic, I told my friends that I would have certainly accepted their advice, if I had believed in the possibility of my being able to make an effective contribution to the necessary task of reforming the Congress. I have increasingly felt that the Congress is now an organisation which has no more use for me and that, therefore, I must refuse to keep myself thrusted into a body wherein I am most likely to be treated as foreign matter. Apart from these personal considerations, my sense of public duty might have been sufficient to compel me to get on in the Congress, if I had not had the conviction that it would be entirely wrong for me to remain in the organisation merely as a silent and helpless spectator of so many things which I detest from the bottom of my heart. Then my fear that the Congress will, in all likelihood, not desist from going the way it has started strengthened me in my belief that a counter-movement was needed in India. Therefore, partly in despair so far as the Congress was concerned and partly in a fit of optimism so far as the ultimate success of the counter-movement was concerned I decided to launch my little boat on the unknown sea of future destiny. Whichever shape the future might take, I am sure of one thing and this is that my life will stand as ever dedicated to faithful service of the country.

With many memories of the past.

(8)

26-7-58

I am grateful to you for your letter of July 25 which has left me wondering how you find the time to deal so promptly with all that comes before you in the midst of problems far more taxing and of far greater consequence.

I can assure you that the question of the continuance of the Jaipur Bench of the High Court is not one of the people of Jaipur's insisting on everything going to them or on having other imporant headquarters of the State in Jaipur. Nor is it a question of depriving any other part of the State of anything which that part has already got. To my knowledge no objection was ever raised by the people of Jaipur in the matter of distributing offices of the State among other cities of Rajasthan. Jaipur was made the Capital and the High Court was located in Jodhpur on the recommendation of a Committee appointed by the Government of India. The location of the Capital in Jaipur and of the High Court in Jodhpur as confirmed by another Committee is not being questioned by anybody. As regards having unified High Courts all over the country and no Benches anywhere, I can only say that no policy in this regard seems to have yet been decided by the Government of India; and I feel that even after the acceptance of a policy in favour of unified High Courts, exceptions may have to be made in certain cases. Pantji made it clear to us that the abolition of the Jaipur Bench came about only as a result of the Rajasthan Capital Enquiry Committee's recommendations and not in pursuance of any policy of having unified High Courts in the country.

Now, the only question in which we are interested is the question of public convenience. We are not suggesting that the seat of the High Court should be shifted from Jodhpur. We are only pleading that Rajasthan alone of all other similarly placed States should not be singled out for the abolition of the High Court Bench, for that abolition would result in the withdrawal of convenience so far enjoyed by the most populous areas of the State and that, too, without adding a bit to the convenience of any other area. The people of the western parts of Rajasthan, without getting anything for themselves, could not have reasonably insisted on the withdrawal of the eastern parts, convenience, although after the decision to abolish the Jaipur Bench the people of Jodhpur are now being encouraged to insist on having the whole High Court to themselves without sharing it with the eastern parts. In any case, the question of safeguarding the rights of any minority of Rajasthan's population as indicated by you does not seem to arise in this particular matter of the abolition of the Jaipnr Bench of the Rajasthan High Court.

The Rajasthan Capital Enquiry Committee has advanced certain arguments in favour of a unified High Court. But the argument of

convenience to the people of the most populous areas of the State has not been given proper consideration by the Committee. Unfortunately, the Government of India also have not been able to look at the question from the point of view of public convenience. Therefore, the people of the areas most affected by the decision to abolish the Jaipur Bench are trying to draw the Government's attention to a patent fact. In so doing the people may have erred in some way in the opinion of those who report on matters of public importance to high quarters either privately or publicly. But I wish to emphasise that the movement in connection with the abolition of the Jaipur Bench is not merely a lawyer's affair. The lawyers, of course, are there; but the others are certainly not a few. I do not know what exactly would have happened to the course of the movement, if the police had not indulged in unnecessarily provocative excesses. But the present position is that the movement has taken the shape of a fullfledged people's movement. That movement is certainly not directed against Jodhour or the western areas of the State. Everybody on this side of Rajasthan is anxious, with the greatest goodwill, that Jodhpur must get its due, which, however, that city will not get by the abolition of the Jaipur Bench. So many other things, including the location of important Central or State Offices, can and should be done for Jodhpur, I must make the submission that since the people of Jaipur side of Rajasthan, instead of thinking of Jaipur City's importance, and appearing for the convenience of the public of large areas cannot, in fairness, be accused of taking a narrow view. As regards the creating of ill will all round or in Jodhpur, I am afraid the blame would be found to belong to certain other quarters which should, in my opinion, have behaved better in the interests of the mutual goodwill of the people of various regions of Rajasthan.

I am afraid I am perhaps using too many words to make out a case for the reconsideration of this question. I, therefore, stop here. I feel sure that it would be possible, even now, to do something for the satisfaction of the people of eastern Rajasthan. For that, your helping hand will be necessary. My sole desire is that the people's wishes should be considered and met, at least halfway; and, further, attempts on the administration's part, to suppress the people should cease. I hope to come to see you next week when I will discuss the possibility of some practical proposal which might lift us out of what I regard a difficult situation.

With profound feelings of gratitude.

31-7-58

(9)

I am going to Jaipur for the present, but will come again soon after Pantji's return to Delhi. By that time, I hope, you will have spoken to Pantji about some possible way of meeting the situation which has developed in Rajasthan as a result of the Government's decision to abolish the Jaipur Bench of the Rajasthan High Court. I have written to Pantji to say that with his vast experience and influence it should not be difficult for him to find and implement a common formula which may not necessarily involve a complete reversal of Government orders.

If convenient, Shri Shriniwasan may kindly be asked to drop a line to me about your having spoken to Pantji. Any way, I will be coming back to Delhi someday next week.

9-8-58

(10)

Since I last met you here on July 31 in connection with the Rajasthan High Court affair I kept myself engaged at Jaipur for a whole week in trying to find some possible way which might lead us out of a patently bad situation. I am sorry to report that it became clear yesterday that no understanding was possible at the local level without Pantji's intervention. I may add, by the way, that deliberate attempts were made by a few well-placed people to misrepresent me and attribute to me what I never said or did.

Now if you have spoken to Pantji and if there is any possibility of his doing something for the satisfaction of the people concerned, I once again offer myself for such service as I may be capable of. I will be here till monday and can extend my stay by a day or two. I am not specifically asking for an interview, because unless some useful purpose was served I would not like to encroach on your valuable time. Whether I continue or cease to take interest in the matter would, however, depend on the guidance which I expect to receive from you.

16-8-58

(11)

In the absence of a reply to my letter of August 9 I had neither the mind nor the heart to remind you or in some other way to break my silence about the Rajasthan High Court tangle. But since yesterday evening my distress has gone deeper and I am driven to the painful necessity of approaching you again with this letter.

For the last six weeks I have been helplessly watching, on the one side, our own people who seem determined to make themselves heard and, on the other side, our own Government who are not only refusing to listen to anybody but are also using their whole might to suppress the popular voice. The merits of the case and also of the movement sink into insignificance in view of spontaneous developments which, if not even now properly dealt with, are sure to sweep away the Congress Government and, what is for more important, the Congress Organisation from the heart of Rajasthan.

I have not the slightest doubt in my mind that an administrative mistake was committed in a matter in which no principle was immediately involved. Now it should fall to somebody's lot to help the Government (and also the Congress) out of an unenviable position. My point is that we are face to face with a dangerous situation which cannot be allowed to drag on like this indefinitely. It does not behove anyone of us to live in the mere hope of the movement dying out in an uncared for manner. A question has been raised by our people and a suitable answer has got to be given to them by us. In this spirit I appeal to you to intervene and help find a solution which could possibly give satisfaction to all concerned.

For whatever I can do I am entirely at your disposal. So also I know all other Congress workers are at your command.

19-8-58 **(12)**

On receipt of your letter of August 16 I made up my mind to see you and let you know personally how I now feel and think about some possible solution of the Rajasthan High Court problem. But I was told you would be too much preoccupied for a day or two. And I also thought that before seeing you I had better gone to Jaipur and made a fresh on-the-spot study of the situation after an absence of nearly twelve days.

While appreciating your desire to help where you could I fully understand your difficulty in this particular matter. Pantji is one of our seniormost leaders and I cannot think of his being bypassed or of anything being done over his head. Whatever may be found necessary to do is to be done by Pantji himself. I want it to be realised that, irrespective of the merits of the agitation and even of the case itself it is bad policy on our part either to allow the situution to take its own

course or to try to meet it in a way calculated to make it more and more complicated.

I think that in spite of all that has happened the question is still not very difficult. What is wanted is a little preparedness to reconsider the matter, and reconsideration is necessary because, wherever the origin of the trouble might be and wherever it might ultimately end, the Congress would be the greatest loser if a via media to put a stop to the agitation is not found and applied by us.

I am leaving for Jaipur tonight and will come back to see you on the 25th August or a day earlier or a day later. I donot know whether or not my seeing you will be helpful, but I think I should see you in any event. That will at least give me the satisfaction of having done my very best.

I hope I will be informed by letter, telegram or telephone of the date and time when I should see you here. I will return to Delhi accordingly.

(13)

12-6-61

I have felt for the last few weeks that I should let you know what I think about the filling up of the office of Deputy Leader which has fallen vacant for the third time.

On each of the two previous occasions the member of the Cabinet whose name was second in the list of the members of the Cabinet was made the Deputy Leader of the Party. I have been unable to understand why the same should or could not have been done on this third occasion also.

Whatever might be the importance of the Deputy Leader's position, I agree the mere fact of one's being a Deputy Leader cannot automatically entitle him to be elected the Leader's successor. And what seems relevant to me is that this particular question of succession does not really arise at the time of choosing a new Deputy Leader.

I was not present during the discussions in the party meetings and also I did not see what was done in the lobbies and outside, but some of the members who were present and the newspapers gave me the impression that after all it was not a fine show on our part.

Our Leader has always enjoyed the Party's fullest confidenne. On occassions when it may become necessary the Leader need not hesitate to give an indication as to what in his opinion would be the best thing for the Party.

I think the present one is an occasion on which the Leader should ask the Party to do the obvious thing which, it seems to me, is to choose the second member of the Cabinet for Deputy Leadership.

I have stated what I have felt. It may be I do not have a full and correct knowledge of all the facts on the basis of which you would form your judgment. Anyway, I will have the satisfaction of having brought to your notice what has all this time been agitating my mind.

14-11-62 **(14)**

I hope to be in Delhi after a few days when I will personally present to you my sentiment for this auspicious day which will be expressed in a couple of couplets. At the moment I wish only to say that my whole heart is with you,

While giving you my report about Nepal, I feel I should have been still more brief and should have thereby saved a few minutes for the expression of my opinion as to what we should do for improving our relations with that country. Bhagwan Sahaiji who came to see me again in the evening on November 10 told me that he intended to go to Nepal very soon. Possibly he may return to Delhi by the time I go there next time for the A.I.C.C.

My last visit has given me confidence that I can play a useful part in our talks with Nepal which I think should and will have to be held early at more levels than one. For that and for any other task at the present time I need hardly repeat that I am entirely at your disposal.

From Pandit Jawaharlal Nehru to
Pandit Hiralal Shastri

1

13-11-28

I have your letter of the 11th November. It is a little difficult to suggest books on Socialism as there are so many. Bertrand Russell is an author well worth reading and I would strongly recommend to you to read such books of his as you come across. His "Principles of Social Re-construction" is very good though it is a little out of date. Also his "Roads to Freedom". You will find some good elementary books on Socialism issued by the Independent Labour Party in England. One of these is Brailsford's "Socialism today". This represents what might be called a moderate socialist outlook.

So far as Russia is concerned there is also a variety of books. Many of these unfortunately are not easily available. I have discussed some of these books in the course of articles which appeared in the Indian press some months ago and which are coming out in book form in a few weeks' time. The book will be called "Soviet Russia" and is being published by Allahabad Law Journal Press.

I agree with you that it is not possible to carry on effective work with the help of funds derived from a few rich persons. The only way to build up a movement is for the people in the movement itself to give out of their property. Only in this way can real live organisations be built up. So far as you are concerned the first thing should obviously be a study of socialism and other proposals for reconstructing society so that your mind might be quite clear as to what you are aiming at and how you are to achieve it.

The Independence for India League will probably draw up a programme soon. This programme to begin with must necessarily consist of organizing the peasantry and the workers.

I shall be glad to meet you but I do not know what place to suggest. If you happen to go to Allahabad you can let me know.

2

14-7-47

I feel that It is inadvisable and inexpedient for me to continue my membership of the Standing Committee of the All-India States' Peoples' Conference. I find that there is considerable difference in approach to the problems that face us between the Acting President, Dr. Pattabhi Sitaramayya and myself. Dr. Pattabhi evidently does not approve of much that I say or do and in the circumstances it is right that he should have a free hand to shape the policy of the States' Peoples' Conference. I regret dissociating myself from the Standing Committee which has honoured me so much in the past. Ofcourse, this does not mean any slackening in my interest in the problem of the Indian States. I think this is the most vital problem today for us in India and I shall endeavour to be of service to the people of the States in such ways as I can. But owing to differences of approach and temperament I find it difficult to function as a member of the executive of the Organisation.

I should like to convey to you and to all the members of the Standing Committee my grateful thanks for all the courtesy and co-operation which they have extended to me in the past.

You will, therefore, kindly treat this letter as my resignation from the membership of the Standing Committee of the All-India States Peoples Conference.

3

5-8-47

I received some days ago your letter asking me to withdraw my resignation from the Standing Committee. If you and my other colleagues feel that I should withdraw it I shall gladly do so, as I do not want to do anything which might injure the cause of the States' people.

But I am not sure whether it will be proper for me in the future to continue as a member of a Committee like this. However, we shall see to this later.

4

25-11-49

Kailash Kaul and Paniwala Maharaj have come here. I have only met the former for a brief period and have not yet had time to discuss fully the work done since I left. Even this brief talk has disturbed me.

I understand that a sufficient quantity of water is coming out now at Samdari and that water has also been found at Jaipur. But the water that is bored out at Samdari is not being adequately used, because no one seems to be responsible for that. Your Director of Agriculture apparently complains that he has no funds even to employ a labour force to level the land that is there. I am writing immediately to you rather briefly on this subject, because I am perturbed at the way things are done and chances are missed. I am going more deeply into this subject very soon and shall communicate to you. The matter will also have to be placed before our Cabinet here so that further instructions might be given.

5

5-12-49

This letter will be given to you by Kailash Kaul.

You will remember my suggesting to you long ago that land should be acquired for purposes of irrigation, wherever there was a possibility of water being found. I understand that much of the water that is being pumped up at Samdari is not being properly utilised for lack of land. I hope you will kindly take immediate steps to acquire that land to put it at the disposal of our unit.

I would suggest your acquiring land also in two or three other places, where it is next proposed to put in pumps. I have asked Kaul and the Paniwala Maharaj to concentrate at one place at a time and not to wander about just spotting water. Wherever water is found in large quantity, they should stay, putting in proper pumps etc., and utilise the water. That is they must make it a running concern for irrigation purposes. Then they move on to another place. Otherwise half finished projects will remain everywhere. That will be bad business. For the present they must concentrate on Samdari and finish the job there. It is a big enough job and land must be acquired for it.

I am making arrangements to pay the Paniwala Maharaj a monthly sum of Rs. 1,800/- for his Ashram in Jamnagar. Probably it will be convenient for us to pay him this sum through you, while he is in Rajasthan. Will you kindly pay him Rs. 1,800/- now. I shall make myself personally responsible for it. About the future I shall write to you again. Please do not forget to make this payment, as I have made this promise.

You will do no doubt discuss everything with Jairamdasji and finalise matters, so that nothing comes in the way of work. You know what importance I attach to this work in Rajajasthan and I look to you to give every assistance possible. I have no doubt that this will bring good results to Rajasthan and to India.

6

23-7-58

I have received your letter of the 21st July and the note on the Jaipur Bench of the High Court. I have read the note.

This matter has of course come up before me in various ways previously and, to some extent, I have also followed recent news in the newspapers. Quite apart from the merits of the case, I think that the behaviour of the lawyers in Jaipur as well as some others has completely put them out of court on this question. They have behaved like small minded parochial people functioning like excited students. In a matter of this kind it is easy to advance good arguments for either side. Some of the arguments you have mentioned are entitled to consideration. Equally arguments opposed to these are worthy of consideration. In such cases the custom all over the civilised world is for the matter to be referred to an impartial body for a decision, keeping in view all

the relevant factors. This course was adopted and a report was produced in regard to this and various other matters. These questions have to be seen in their entirety and not seperately. Broadly speaking, on the merits, I am inclined to agree with that report and its recommendations. In particular, I think that it does not lie a bit with the people of Jaipur, who have been specially favoured in regard to the Capital etc., to insist on having other important headquarters of the State in Jaipur. You know that many arguments can be advanced for the Capital itself to be situated somewhere else in Rajasthan and, in fact, they were advanced. What would have been the reaction of the people of Jaipur if the Capital had been established elsewhere ? When such questions had been raised in other countries, such as the Union of South Africa, it was deliberately decided to have the seat of Government in one city and the High Court in another far away city because of a large number of considerations.

The people of Jaipur, having been specially favoured in many ways, should have had the wisdom not to insist on everything going to them. They should have tried to gain the goodwill of the other parts of Rajasthan so that the Capital and the many things associated with the Capital should grow in importance with the goodwill of Rajasthan. Instead, they are taking the narrowest view possible and create ill-will all round. It is manifest that what some lawyers and others desire in regard to this High Court Bench is entirely opposed to what others desire. To say that a few more people want this and a few less want the other, has little force when considered in the larger set-up. That is neither the true conception of democracy nor of commonsense in working this complicated apparatus of Government. We talk about the rights of minorities. Minorities would have no rights at all if it was said that the majority's will must prevail. This applies to many aspects of our problems. Among them is the language problem. In Ceylon there have been fierce rioting over the language issue because the majority tried to impose its will on a relatively small minority.

In such circumstances it is the csutom, and a right custom, for an independent body to consider all aspects and decide. It would be very unwise for Government to ignore such a decision and impose its own views, whatever they might be, in the matter.

Personally I think also that it Is more important to have a strong unified High Court than to split it up. But, as I have said above, quite

apart from the merits of this question, although even the merits point one way, the procedure adopted by the Jaipur lawyers has done them no credit and has imperilled the integration of various parts of Rajasthan.

16-8-58

I have your letter of the 16th August about the Jaipur agitation. I need not tell you that I am greatly distressed at it. But I cannot understand what I can do in the matter. I think it is a bad and a mad agitation and wholly unjustified. Even so, because people feel about it, I would like to help where I could, but I just do not know how I can help. I would, of course, see you if you so wish it, but that too will not be helpful.

In any event, this matter is both constitutionally and otherwise in the charge of the Home Minister, Pantji. I cannot bypass him.

From Pandit Jawaharlal Nehru
to Shri Jainarain Vyas

1

16-7-49

I am told that my name is being dragged in the controversy between you and Shri Hiralal Shastri. Further that some of your supporters have stated that they have my moral backing.

I have been surprised to learn this and can hardly believe that anyone can exploit my name in this way. I have no desire to be involved in these controversies and in any event you know that I did not approve at all of the action you took. I told you so when you saw me. I think that you are doing a great deal of harm to the cause of Rajasthan and the Congress by the kind of propaganda that is being carried on.

2

28-7-49

My attention has been drawn to certain articles appearing in Rajputana papers. There is one in the Rajputana Herald, Jodhpur, of 10th July and another in the Hindi "15th August" of Udaipur dated 24th July. I am amazed to read all this stuff which is, in fact and inference, a tissue of falsehoods. I do not know whether you have anything to do with these articles. But in any event you should publicly dissociate yourself with this discreditable campaign

Copy to : The Hon'ble Shri Hiralal Shastri,
Prime Minister, Rajasthan Union,
Jaipur.

(Jawaharlal Nehru)

From Pandit Hiralal Shastri
to Sardar Vallabhbhai Patel

1

Telegram, 9-4-48

Glad to hear Udaipur joining Rajasthan union. This makes Sirohi joining Rajasthan still more inevitable. Besides to us Sirohi means Gokulbhai more than anything else. Without Gokulbhai we can hardly expect to run Rajasthan: Therefore I very strongly urge that Sirohi should be allowed to join Rajasthan at least for present if no permanent settlement possible just now. But for my preoccupations here I should have personally come to make this representation to you. I do hope you will fulfil our hopes in this matter. Praying incessantly for your health.

2

Telegram, 14-4-48

Reference previous telegram regarding necessity of Sirohi joining Rajasthan. We are greately disappointed at Sirohi's question not being decided and we see no reason why for one moment it is imagined Sirohi can ever join any group other than Rajasthan. As you know we in Rajputana have full faith in your wise leadership and we have always tried to act according to your guidance but I must submit on this question there is universal strong feeling which I hope you will not ignore. Please, therefore, permit Sirohi join Raiasthan immediately. In any case nothing should be done without satisfying Rajputana workers whose minds are agitated on this point beyond imagination. I consider my duty to inform you of depth of our feeling which together with our respect for your judgment places us in most difficult position. Trust you will help us by granting our unanimous request.

3

13-7-48

I have your letter of July 10, regarding the question of inviting the Congress session to Jaipur.

H. H. the Maharaja Sahib of Jaipur left for England on the 25th June. A meeting of the Rajputana Provincial Congress Committee was held at Bharatpur on the 26th and 27th June; it was at that meeting that the question was raised for the first time and we decidəd to invite the Congress session to be held somewhere in Rajputana. Accordingly the invitation was extended, and fortunately for Rajputana the invitation was accepted by the Congress Working Committee in the first week of July. Although the Rajputana Provincial Congress Committee has yet to select the venue for the Congress session, it was generally thought that the choice would fall on Jaipur. Therefore, even before the Provincial Congress Committee's formal and final decision, everybody began to talk of the session being held in Jaipur.

We heard it on the Radio that the invitation was accepted by the Working Committee. In my first letter after this which I addressed to his Highness I informed him of the decision of the Congress to hold its next session in Rajputana and added that Rajputana meant Jaipur. Since then I have not heard anything from His Highness.

I have submitted the facts as they are. If His Highness had been here, I would have most certainly consulted him. Perhaps you know that I have very close contact with him and there is nothing which we do not discuss frankly and freely. Even now His Highness is away in England. In the circumstances all that I can do is to write to him. I will enclose for your information a copy of the letter which I will be sending him immediately.

I hope I have made the position quite clear. I am really very sorry that somehow or other you should have been put to the necessity of feeling that probably there was a deliberate ommission on my part. I wish to assure you that if the Rajputana Provincial Congress Committee decides in favour of Jaipur and if the Congress session is to be held here, H H. the Maharaja Sahib and the people of Jaipur will combine and cooperate to make the session a success. I am happy to think that I can say that here in Jaipur His Highness and all the rest of us deliberate jointly and act jointly and that there is hardly anything which separates us. This is the position today and for tomorrow and thereafter I have the highest hopes.

4

२१-६-५०

मैं कल दिल्ली में मेनन से मिलकर लौट आया। मेनन की ओर से निश्चित समाचार मिलने पर मैं आपसे मिलने के लिए भी देहरादून या दिल्ली पहुंच जाऊंगा। मेरी आन्तरिक इच्छा यही रहती है कि जहां तक हो सके मैं आपका समय न लूं और अपनी कठिनाइयों के सम्बन्ध में आपको कष्ट न दूं। आपका समय देश के बड़े-बड़े कामों के लिए सुरक्षित रहना चाहिए। क्योंकि इस देश के भविष्य के निर्माण का बड़ा भार आपके ऊपर है। हम लोग, जो आपके अनुयायी हैं, आपकी कठिनाइयों का हल जहां तक हो सके खुद ही निकाल लें तो अच्छा रहे। इसी भावना से मैं आपके पास कम पहुंचता हूं और आपको पत्र भी कम ही मौकों पर लिखता हूं।

पिछले सवा साल में राजस्थान का काम तमाम कठिनाइयों के बावजूद जैसे तैसे निभ गया। मंत्रिमण्डल ने पूरी एकता के साथ काम किया और आफिसरों से भी अच्छी सहायता मिली। मुझे समाधान है कि कोई बड़ा संकट उपस्थित नहीं हुआ। राज्य की आर्थिक स्थिति काबू में कर ली गयी। खाद्य की स्थिति भी बेकाबू नहीं हुई। शान्ति और व्यवस्था भी कायम रखी जा सकी। जागीरदारों की हलचल ने भी कोई खास जोर नहीं पकड़ा। एकीकरण का काम भी हो ही चुका। थोड़ा बहुत जो बाकी है उसे पूरा किया जा रहा है। कई एक कांग्रेसजनों ने हमारी कठिनाइयों को बढ़ाने के लिए बहुत कोशिश की लेकिन हमारा काम चल निकला। यह सब आपके आशीर्वाद का सुफल है।

कुछ महीनों से शासन तंत्र को चलाने में थोड़ी कठिनाइयां मेरे सामने आने लगीं। उन कठिनाइयों का दिग्दर्शन मैंने मेनन को करा दिया। विधान के अनुसार भारत सरकार का नियंत्रण रहना चाहिए और रहेगा। लेकिन बदली हुई परिस्थिति में केन्द्र के साथ हमारा सम्बन्ध निर्धारित करने वाले 'मेमोरेण्डम' में आवश्यक परिवर्तन करने की बात चल रही है। प्रस्तावित परिवर्तनों को हम लोग भी देख लेंगे और सब कुछ ठीक हो जायेगा। भारत सरकार के नियंत्रण को असली रूप देने के लिए कैसी मशीनरी होनी चाहिए इस पर भी दुबारा विचार करने की जरूरत मालूम होती है। फिर तीसरा सवाल केन्द्र की ओर से नियुक्ति होने वाले आफिसरों का है। वे अवश्य ही ऐसे अफसर होंगे जिनके साथ हमारा मेल बैठने में कोई बाधा खड़ी न हो सके।

मैंने सभी लोगों के साथ निभने की पूरी कोशिश की है। लेकिन मैं देखता हूं कि मेरी महत्वाकांक्षा के अनुरूप सफलता मुझे नहीं मिल सकी। मैंने तो राजस्थान का काम सम्भालते समय यह संकल्प किया था कि मेरी तरफ की कोई फरियाद आपके

पास नहीं पहूंचेगी। और मेरी फरियाद कोई करेगा तो उसके लिए आपका और फरियादी का भी समाधान मैं कर दूंगा। मुझे मालूम नहीं है कि मैं आपको कहां तक सन्तोष दे सका। आपका सन्तोष न हो तो मेरी किसी भी सफलता की कोई कीमत नहीं हो सकती। मैं आपके आदेश का पालन वफादारी के साथ न कर सकूं तो आपको अपना नेता मानने का मेरे लिए क्या अर्थ ? मेरी सारी शक्ति राजकाज के काम में लग जाती है लेकिन फरियाद करने वालों के पास फुरसत ज्यादा होती है। कितना मुश्किल काम है आज के जमाने में इस बड़े काम को चलाना।

मैं आपके सामने कई बार मंजूर कर चुका हूं कि अपने कांग्रेसी मित्रों से मुझे बड़ा धोखा हुआ। मैंने तो कल्पना ही नहीं की थी कि कोई कांग्रेसजन इतने नीचे उतर सकते हैं। जब तक यह स्थिति मेरे सामने भली भांति प्रकट हुई तब तक तो मैं राजस्थान के काम के पहाड़ के नीचे दब गया। मैं कांग्रेस संगठन की तरफ ध्यान नहीं दे सकता था। आज भी नहीं दे पा रहा हूं। लेकिन सर्वसाधारण जनता की नाड़ी पर मेरा हाथ है। आने वाले आम चुनावों में विरोधी शक्तियों को परास्त करने की आशा मैं रखता हूं। कांग्रेस के चुनाव में बेहद गोलमाल हुई है। गोलमाल न होती अथवा उसका पूरा प्रतिकार हो जाता या अब हो जाय तब तो काफी अच्छा परिणाम निकल सकता था और निकल सकता है। लेकिन गोलमाल की अवस्था बनी रहने पर देखना होगा कि अन्तिम चित्र क्या आता है ? मैं कल्पना करता हूं कि वह चित्र भी बुरा तो नहीं होना चाहिए। लेकिन मेरे सोचने में खास महत्व तो आम चुनावों का है। आपका वरदहस्त हमारे सिर पर रहते आम चुनावों की सफलता के विषय में चिन्तित होने का कोई कारण नहीं है। मैं सोचता हूं कि वह सफलता दूसरे राज्यों की भांति इस राज्य में भी हमें मिलेगी।

From Sardar Vallabhbhai Patel to
Pandit Hiralal Shastri

1

Telegram
15-4-48

Your telegrams regarding Sirohi. Decision regarding Sirohi has been taken after full consideration and discussion with Prajamandal workers. It is quite clear to me that what Rajasthan wants is not so much Sirohi as Gokulbhai Bhatt. You can have Gokulbhai without Sirohi. Sirohi was in {the past linked with Gujarat and it was only by comparatively recent political arrangements that British transferred it to Rajasthan. This shortlived political relationship cannot obviously be set against much longer previous connections with Gujarat. If you come here I can explain to you all the circumstances that have led me to come to this decision. I fully appreciate your confidence in me. That should have convinced you that I would take a decision only for good reasons and not merely out of any personal predilaction. I am rather constrained to observe that if you feel Gokulbhai is so indispensable for Rajasthan and feel that you cannot mannage without him the future of Rajasthan fills me with some despair. Dependance on one man hardly augurs well for democracy. I also suggest that before troubling yourself about Sirohi you deal with other States on whom Rajasthan has got more claims.

2

10-7-48

I am sorry to learn that on the question of inviting the Congress session to Jaipur you did not consult the Maharaja Sahib of Jaipur. This is, in my opinion, a grave ommission and should be rectified as soon as possible.

You might have thought that, since it was a political organisation unconnected with Jaipur, the Maharaja had no *locus standi*, but that is a mistaken view. The holding of the session at Jaipur does confer certain responsibilities, obligations and duties on His Highness. The hospitality is the least part of it and it was only fair and proper that before extending an invitation you should have taken His Highness into confidence and consulted his wishes.

I hope you will now agree that a mistake has been committed and that you will rectify it by going to His Highness and telling him how sorry you are for this mistake and expressing the hope that he will now give his approval in this matter. Please let me know the result of your approach to His Highness

---

From Shri Jainarain Vyas to Sardar Vallabhbhai Patel

Telegram
11-6-49

Special meeting of Rajputana Provincial Congress Committee held today accepted resignation of Gokulbhai Bhatt and elected me President of Provincial Congress Committee. Provincial Congress Committee passed resolution calling upon Pandit Hiralal Shastri Premier and Congress Ministers to resign. Eightyeight voted in favour of resolution one against and a few remained neutral. Gokulbhai and his friends walked out when this motion was under discussion.

From Sardar Vallabhbhai Patel to Shri Jainarain Vyas

Telegram
12-6-49

Your telegram of eleventh June refers to two points. First is resignation of Gokulbhai Bhatt and your election as President Provincial Congress Committee in his place. This is purely your local Congress organisational matter with which I am not concerned. Second is regarding resolution calling upon Prime MInister Pandit Hiralal Shastri and his Ministers to resign. I do not know if technically proceedings are valid but you should understand that Hiralal Shastri as Premier is not responsible to Provincial Congress which can not appropriate to itself functions of legislature. He owes his Premiership not to election as Leader or to mandate of Provincial Congress Committee but to my choice of leadership at the unanimous request of all of you. As Premier and Ministers they are responsible to States Ministry and will continue till election of legislature unless in the meanwhile they lose our confidence. You are fully aware of this position and your persistence in the undesirable and harmful course which you have adopted will merely recoil on you. I am quite sure tactics you have adopted are a disservice to organisation we all belong and are injurious too though your narrow outlook may make it appear as serving, your own interests.

आगे के पृष्ठों में श्री एफ. एस. यंग, सर मिर्जा इस्माइल और सर वी० टी० कृष्णमाचारी से हुआ पत्र व्यवहार दिया गया है।

श्री यंग से मेरा पत्र व्यवहार सबसे ज्यादा हुआ था। उसमें से बहुत थोड़े से पत्र छांटे गये हैं।

सर मिर्जा से भी मेरा काफी पत्र व्यवहार हुआ। उनके बहुत पत्र मेरे पास आये। उस सारी सामग्री का थोड़ा ही अंश यहां दिया गया है।

सर वी० टी० कृष्णमाचारी से हुए पत्र व्यवहार का भी थोड़ा ही हिस्सा यहां दिया गया है।

From Pandit Hiralal Shastri to
Mr. F. S. Young

1

A note

24-7-37

1. While there is movement and progress in the rest of India you cannot make the people of the States stand still. If anybody makes this unwise attempt it is bound to prove futile.

2. It is quite possible to move slowly and with caution but you cannot ignore the people altogether.

3. Repression may succeed for a while, but if there is spirit within, it must come out sooner or later and too much suffocation is very likely to be followed by an explosion.

4. There are some people who want to do something for the welfare of their fellow brehthern; they ask for your sympathy, co-operation and help. No Government worth the name can turn them out with an unreasonable refusal.

5. Government need not take a monopoly for doing good and why should Government treat the people as a separate party ? Why should Government be afraid of their own people ? Let the people come forward and have their say.

6. In the present circumstances Government may succeed in silencing some people by some means or the other, but others will remain who are bound to feel bitter and thus there will be a beginning of that something which Government seem so anxious to avoid.

7. Broad-mindedness and farsighted liberality even as a poli·y shall be paying in the long run. But if you show smallness and appear panicky you are bound to lose your own prestige on the one hand and goodwill of the people on the other.

8. The word "Political" has been used and abused in several ways, Government has immense powers to do good and to do wrong as well. Asking the Government to do good may be "Political" but it is neither unlawful nor bad.

9. Please do not commit the mistake of comparing forces. Government is apparently powerful, but the power of the people though not so apparent is irresistible.

10. Please do not create dreadful spectres where there are none. Trust the people so that you may be trusted by them.

2

Resolution passed unanimously at the meeting of the General Committee of the Jaipur Rajya Praja Mandal

30-7-37

The General Committee of the Jaipur Rajya Praja Mandal has given careful consideration to Pandit Hiralal Shastri's full verbal report about the lenghthy talks which he has had with Mr. Young regarding the work of the Mandal. From the very beginning every possible effort has been made on behalf of this Committee to make it perfecıly clear that the Mandal's policy is to work in a spirit of good-will and in close co-operation with the authorities. This Committee is therefore glad to note that the friendly talks referred to above mark the beginning of a proper understanding by the authorities of the Mandal's position.

Pandit Shastri has submitted (1) that the name Praja Mandal is regarded misleading in official circles, because institutions bearing this name are said to have come in direct conflict with the State authorities else where, and (2) that the authorities in Jaipur are apprehensive of the Mandal's enlistment of members in the villages. Since there seem to be no other substantial difference of any practical importance, this Committee is of the opinion that there should be no difficulty in arriving at an understanding with regard to these two points. Although, in the opinion of this Committee, enlistment of members either in the towns or in the villages is the primary concern of any Association, this Committee is quite prepared for rhe satisfaction of the authorities to temporarily restrict the enlistment of members to the City and to certain specified places as suggested by Mr. Young, provided that the Mandal is left free to work in the villages for the social and economic uplift of the people and also to study their needs and, whenever necessary, to bring the same to the notice of the authorities concerned. As regards the name "Praja Mandal" this committee thinks that there is nothing wrong with the name as such and that it is not fair to suggest a change in the name simply because certain other institutions bearing the same name are considered to have done something undesirable elsewhere. Moreover, this name was adopted long before anything was known in Jaipur about the other Praja Mandals and for the last so many years this Association has become known by this name and therefore any change in the name at this stage is sure to make the position of this Committee difficult and awkward. This Committee therefore, hopes that while all else is all right no undue importance will be attached to this point which touches the sentiment of all those who are associated with the Mandal.

This Committee wants to emphasise the fact that the only justification for the existence of the Praja Mandal is that this Association means to do some solid work for the good of the people and that the policy of the Mandal with reference to the Government to assist them whenever possible and to ask for their help whenever necessary. This Committee is therefore willing to do anything and everything which, while vouchsafing an honourable existence to the Mandal, would remove suspicion and distrust from the minds of the authorities and once again assures them of the Mandal's genuine desire to endeavour with Government's co-operation for the good of the people which is identical with the good of Government. This Committee further hopes

that hence-forth sympathy, help and co-operation from Government side will be available to the Mandal in ample measure and that the Mandal's legitimate activities will not be interfered with by Government employees directly or indirectly.

Pandit Shastri is hereby authorised to continue his talks with Mr. Young in the spirit of this resolution and in consultation with the President of the Mandal.

3

12-4-38

My very instinct directs me to offer you my heartfelt congratulations for the success with which, as it appears to me, your efforts in the direction of peace and sobriety have met. As you know, we had been getting on together and I should say getting on very well. We had been hoping for the best and it seemed to me, as it must have seemed to you--that the best was coming. Almost at such a juncture a great political mistake (and this is my definite and considered opinion) –was committed by the Government in the publication of the new "Public Societies Regulation" in an extraordinary issue of the Gazette. I refer particularly to the "extraordinary" issue because it is so plain to my mind that the extraordinariness of the extraordinary regulation was made to appear in this way all the more extraordinary. This action of the Government was bound to have its reactions, some got frightened and seemed to be deciding to step back, some got excited and appeared in a mood of provocation and almost everybody thought that the Government had definitely aimed a blow at the Praja mandal. A newspaper or two began to publish provocative leading articles inciting Government on the one hand and cleverly goading the public on the other, And the section of the public and public workers that means business and that really counts began to make an inner search and took the only possible decision to face the eventualities as they may come. In the midst of such an atmosphere, your assurance that the Government has not framed the new regulation with a view to crushing the Praja Mandal and that the Government have no intention whatsoever to interfere with the legitimate activities of the Mandal including the coming annual session, cannot but be interpreted by all concerned as a piece of supreme

wisdom. As regards the Government's apprehensions that a campaign of non-payment of taxes may get a start; Government may be criticised ruthlessly and violently, some big outsider may make fiery speech, I think we had provided not the least ground for fears and suspicions of this sort. We have ever endeavoured to work in cooperation and I can claim bit of overgenerosity in expressing my sentiments about Government policy and actions. But you will agree that cooperation cannot be one sided, it can be nothing if it is not responsive. The people of Jaipur want certain things and they have certain real grievences. If Government go on putting off these things and go on emptily talking in a manner which does not impress reasonable people, if the Government think within themselves that the best thing is to roll on, and if there is an impediment in their way of quiet rolling, the next best thing is to issue a "Regulation". If that is the way of Government, I can only say that this is the wrong way which is, most certainly to defeat the very purpose of the Government. Mr. Young, don't you see that we (I mean the usual section of the public that really counts) live in an atmosphere of reality, we are face to face with realities and for us there is no getting out? We have certain principles, certain responsibilities and duties, and for the proper carrying out of them we are not going to count any price too much. All the same, need I tell you in so many words that we are honest and sincere people who are out for something tangible, something really good. If the Government provides us with that, you need not have any apprehension of any trouble whatsoever. If you give the people what they really need and, therefore, do wish to demand, you get their affection and even loyalty without claiming these things, otherwise affection and loyalty are not commodities which you can extort from hearts that ache and that know no soothing, no healing ? Now, this is my position and I believe the position of all those who are associated with me or the Praja Mandal to any extent of reality. In a fit of sincerity I can be angry, for I know that I am only an ordinary human being, but I can never be led into saying anything in an irresponsible manner. The bitter truth has to be told, it can be held back for some time, but you see you cannot supress the truth for all time. I am not sure if I can be always loving but I have no doubt that truth is the very ground on which I stand, truth is the very air which I breathe, truth is life itself and truth is God Himself. Let us, therefore, face the truth. Don't you suppose for a moment that I am an airy idealist—for I am talking of an idealism which is the only real practical thing, which is the only diplomacy, the only strategy and the only tactic.

Do you think I owe you an apology for this long letter and for these sentiments; if I do, I make a thousand apologies. But I feel that I have endeavoured to open my heart and mind to you, and I have written without any previous arrangement and I have expressed myself in a naturally gradual manner.

I wonder if we can meet today, I know how busy you are and I, too ! But I feel sure that an exchange of sentiments and ideas between us would give some relief to me, and, I, doubt not, to you also.

From Shri Karpoor Chandra Patni to Mr. F. S. Young

22-9-38

I hope, you are going to Delhi tonight as programmed and the discussions there will be quite frank and cordial and would help you to return with some workable understanding.

Last evening, I had an occasion of having a cursory glance at your letter of yesterday addressed to Pt. Hiralalji. Conscious though I am of your being so very busy, I still feel that in view of our personal relations, I would be failing in my duty if I donot give you an idea of my feelings in the matter.

It shocked me to note that you take '**serious objection** against the wordings of the object of the Praja Mandal, which is nothing more than the attainment of Responsible Government within the State under the aegis of H. H. the Maharaja Sahib Bahadur by peaceful and legitimate means. If I donot forget, we have talked on the object of the Mandal times without number and on this point, you have always agreed with us. On no occasion did you ever express your slightest disagreement with the wordings of the object and it is for the first time that I find you differing. I can not understand for a moment, what is wrong there in wishing to have Responsible Government within the State under the aegis of H. H. the Maharaja Sahib Bahadur. Our Maharaja is an enlightened Prince and his present advisers— Sir Beauchamp and your goodself, are people who come from a country having a democratic form of government. What is nectar for you cannot be poison to us. Though the policy that is being adopted in some of the Indian States these days may give rise to a feeling in the minds

of the Jaipur authorities to try the same in Jaipur also, I think that you at least know the ultimate results of that course also. In the words of Mahatma Gandhi, as reported in the Hindustan Times of the 18th Sept., 1938., "The people of the States have begun to see a new vision of liberty. What seemed to them to be a distant goal now appears to be an event to be realized almost in no time. I believe that if the awakening among the people is genuine and widespread, **no repression can possibly stay their inevitable march to their cherished goal.**"

Personally, I donot think that it will be possible for us to change our ultimate goal. That would be denying our very existence There should therefore be no question about the goal. We have all along been trying to meet your wishes as far as possible and to avoid conflict, but if as a reward for the attitude so far adopted, we are confronted with unacceptable terms or failing that, with repression, I at least would choose and welcome the latter and it is no bluff to say that there are hundreds of Jaipurians who are ready to sacrifice their comforts for any repression that may come. Jaipur authorities have committed blunder after blunder in dealing with the Sikar situation; let them add one more glorious feather to their cap.

As we told you yesterday, we have to move forward. There could be degrees about the pace of this forward movement. If you think that we are moving too fast, which I may tell you, I donot believe and if you wish that the movement should be slow, I would certainly like to meet your wishes as far as possible.

I wished to make my mind clear to you, and so have penned these lines to you. You will be soon meeting and discussing with more responsible people and I sincerely wish that as a result of those discussions, some workable basis may be arrived at and you may be saved a further strain so soon after the one you had on account of the Sikar situation.

With my best wishes for the success of your noble mission.

(*Note* : Shri Karpoor Chandra Patni was gifted with the quality of bringing two differing people together.

—Hiralal Shastri)

Announcement by

Sir H. Beachamp St. John.

22-4-38

Whereas the Rao Raja of Sikar has in his petition and telegrams appealed to His Highnees the Maharaja Sahib Bahadur's generosity and requested for a gesture of good-will, I hereby on behalf of His Highness, confirm in writing that I have already told the deputation which waited on me on behalf of the Rao Raja that if the Rao Raja forthwith leaves for Jaipur and the people collected in Sikar disperse immediately and peacefully to their homes, the following assurance will be observed, viz :—

(1) The freedom and 'Izzat' of the Rao Raja of Sikar will not in any way be affected as consequence of the present situation and he will be free to live anywhere he likes to live, but he will be reguired not to return to Sikar till condiditions become normal, in his own interest as well as that of the public.

(2) A general "Am Muafi" is proclaimed for the people who have had any concern with the present state of affairs.

(3) With his parents' consent, Kumar Hardayal Singh will accompany His Hfghness the Maharaja Sahib Bahadur of Jaipur on his European tour and His Highness will be requested to give his kind consent, before leaving India, to fixing of a definite date for Kumar Hardayal Singh's marriage.

(4) Any representation, properly presented, regarding the order of the 12th of April, 1937, will receive full consideration.

(5) The Jaipur Government has no intention of taking away any established right of the Sikar Thikhana.

(6) Any representation, properly presented in regard to the present administration of the Sikar Thikana will receive full consideration.

From Rao Raja of Sikar to
Lt. Col. Sir H. Beachamp St. John

27–4–1938

I have to draw your kind attention to the state of affairs which has unfortunately developed in Sikar and which has by this time reached an extremely critical stage. I feel that I may not refer again to any details that have so strangely conspired to bring about a situation which, as you will kindly agree, none of us could have possibly anticipated. There is one thing which I must make absolutely clear beyond any shadow of doubt and this is that I have, as I have always had, the most sincere feelings of loyalty and devotion for my suzerain H. H. the Maharaja Sahib Bahadur of Jaipur. I am extremely sorry that things should have taken such a turn that the Jaipur Government thought fit to make military arrangements in Sikar. It seems to me that Sikar subjects began anyhow to suspect that my 'izzat' and personal freedom were in danger and that, therefore, they assembled in Sikar ostensibly with a view to protect me. But I can assure you and through you H. H. The Maharaja Sahib Bahadur that I have all along felt that my 'izzat' and my personal freedom and all else which I possess and which I may value are entirely safe in the hands of His Highness and that the best security for me is to lay myself at the mercy of H. H.; for I firmly believe that H. H. will be gracious enough not to place restraints of any kind upon me. I would therefore be coming to Jaipur to present myself to H. H. as soon as the illness of my wife would permit me to leave Sikar and that may be in a week or two.

In the meantime, I am adopting all possible means that lie in my power to make the people who have come to Sikar from other

towns and villages to return to their homes quietly and peacefully. And, I feel sure that attempts which are being made to get the Hartal discontinued will meet with success. Similarly, I have no doubt that H. H. would in his mercy consider the presence at Sikar of Military and Police forces as not only unnecessary but even harmful as the same tends to spread fear and excitement.

I welcome with my whole heart the proclamation of 'Am muafi' (general amnesty) (contained in the statement received with your letter of the 22nd April, 1938) for the people who have had concern with the present state of affairs, for I believe that this is a very important means to restore normal conditions in Sikar. I have no adequate terms in which to express my feelings of gratitude for this generosity of H. H.

I am further grateful to H. H. for the generosity extended to me by means of the assurance that my wife's and my own consent will be taken before sending my son Kumar Hardayal Singh to Europe, and that nothing would give my wife and myself greater pleasure than the cancellation of Kumar Hardayal Singh's European tour. I appreciate this very much because my wife and I have had certain feelings in the matter. In this connection I may add that the date of the marriage of my son with the Maharaj Kumari of Dhrangadra may kindly be fixed up early.

The assurance that the Jaipur Government has no intention of taking away any rights of Sikar will, I believe, go a long way in allaying the suspicions that seem to have grown in the public mind. And I hope that any representation which I may make in regard to the rights which have been already curtailed will receive kind consideration.

Lastly, I may be permitted to state with due deference that as I have regarded the order of 12-4-37 as one based on one-sided version, I sincerely welcome the assurance that my representation in this respect will be given full consideration and I would like to add further that I would be left free to follow any legal procedure open to me in this behalf. As regards officials connected with the present administration of Sikar, I have only to submit that there is a strong public feeling against Capt. Webb and Shri K. L. Bapna and that any representation which may be made to H. H. in this regard will receive due consideration at his hands, and that an independent enquiry into the administration of Sikar Thikana will be instituted.

In conclusion, I beg permission to submit that it has been my constant hope and prayer that the Almighty may show us way out of the present impasse and that all of us who are concerned with this matter would do their level best to restore normal condition and thus earn the gratitude of all those who have had to pass anxious days and nights for the last two weeks or so.

(*Note* : The above is a copy of the draft written by me for the Rao Raja of Sikar. The situation in Sikar had become so critical and Shri Karpurchandra Patni and I had to go there with a view to finding a solution, if possible. As a result of our prolonged talks with the Rao Raja and his advisors the former agreed to address the above letter to the Prime Minister of Jaipur. The final settlement of the Sikar problem, however, took some more time. In any case, I think the letter in question was a beginning of the efforts leading to the final settlement.)

From Mr. F. S. Young to
Pandit Hiralal Shastri

(1)

24-7-37

(1) The name is misleading as similar organisations in Jodhpur, Bikaner, Gwalior and Indore have come into direct conflict with the State authorities, and the Secretary of a similar organisation in Amritsar, having been externed, defied the externment order and was sentenced to 6 months' imprisonment.

(2) At a recent meeting of the Indore Praja Mandal, it was agreed that all the Praja Mandals in the States should come under the control of fhe All India States Peoples' Conference through which agency representation could be made to the president of the Indian National Congress. This gives all Praja Mandals a definite political standing.

(3) Clause "B" of para 3 of the constitution states that the Mandal "shall endeavour to get the grievances of the people redressed by all proper means." While the State would no doubt be ready to recognise the Mandal, if it confined itself to village uplift and work of a social nature, it cannot accept the right of the Mandal or any other body to represent the people in the presentation of their grievances.

(4) It should be recognised that, if the Mandal considers social work as of primary importance, and there is full scope for all their energies and activities therein, it would naturally follow that they would become acquainted with both the pressing needs and alleged grievances in the course of their work. It would then be quite an easy matter for them to draw the attention of any official cooperating with them to these needs and grievances, then the department concerned would take the necessary action.

(5) The inability of the Mandal to control their propagandists particularly to prevent them from suggesting to the cultivators that they should not pay such heavy Lagan, several instances of which have been reported.

Experience has shown that it is impossible for any association, which endeavours to represent villagers or peasantry adequately to control them after raising expectations and excitement amongst them, particularly the ignorant villagers of Rajputana who will be led to expect such from the Mandal's activities and may easily become uncontrollable, if the often, irresponsible promises made by their agents are not fulfilled.

(6) The same reforms, which are being urged by the Mandal, are under consideration of the State and, if initiated or granted by the State, the Mandal is bound to appropriate to itself, the credit of having forced the State to introduce them. No administration can tolerate this. The actual authority, which the Mandal would undoubtedly criticise, they are themselves anxious to appropriate. The time is not come for this yet in Indian States.

(7) Until it is definitely established that the authorities are not ready to cooperate in village uplift or other social work amongst the villagers, the Mandal is not justified in creating any organisation in the villages and in collecting subscriptions to maintain an organisation which cannot be of any direct benefit to the villagers themselves.

(2)

6-5-38

In enclosing a formal letter of sanction for your annual session and the procession connected therewith along the route indicated therein, I am also writing to inform you that you have given me to understand that during the session of the Jaipur Rajya Praja Mandal, no resolutions or speeches will be made or passed in connection with the three following subjects :—

1. Any suggestions regarding non-payment of land revenue and other legal taxes and cesses,

2. Sikar affairs.

3. Matters involving any personal attack on His Highness the Ruler and members of the Administration.

I would be much obliged if you would kindly acknowledge the receipt of both the formal letter for the session and this accompanying D.O. letter.

(3)

7-5-38

I can fully understand how you feel just now and you must have found yesterday a most trying and strenuous day. I congratulate you on the carrying out of your procession in such a peaceful and calm atmosphere. In fact we have both to congratulate ourselves on this happy result of our conversations. I am looking forward to meeting you at 12.30 P.M. today for a few minutes. With my kind regards.

(4)

21-9-39

With reference to our conversation this morning, I have gone through your constitution as revised on the 9th November, 1936. I really think that the only Clause to which serious objection could be taken is clause A of para 3, entitled 'Object' viz. "the object of the Mandal is the attainment by lawful and constitutional means, *of a form of administration in Jaipur State responsible to the public under the aegis of His Highness the Maharaja Sahib Bahadur"*. I would suggest substituting something on the following lines : "The object of the Mandal is to suggest by lawful and constitutional means to the government of the State from time to time such reforms in the administration as would render it more progressive and responsive."

With regard to the question of meetings in Jaipur City, I would be glad to reply to this at a later date viz. about the end of the current month after our visit to Delhi and return of His Highness the Maharaja Sahib Bahadur to Jaipur. I will be much obliged if you could kindly inform Mr. Karpur Chandra Patni of the contents of this letter. With my kind regards.

(Note ; Ultimately the Government was good enough to accept the Praja Mandals' (ultimate) objective, namely, responsible Government under the aegis of H.H. the Maharaja.

—Hiralal Shastri)

From Pandit Hiralal Shastri to
Sir Mirza Ismail

1

16-7-42

I donot know if you have so far found time to look into the question of political prisoners to which a brief reference was made during our talks on June 30. I understand that one of the said prisoners is going to be released in a week or so, and another within a month. Perhaps the third one's release will be due after four or five months. Two more prisoners will then remain who have yet to serve a little less or a little more than a year's imprisonment. I would very much like to acquaint you some day with the details of the case of at least one of the prisoners in question which would enable you to understand the real nature of the offence for which the person concerned was convicted. For the last so many years we have had to live in an atmosphere of suspicion. distrust and antagonism. If, theretore, some concrete proof of large-heartedness were forthcoming from Government side the psychological affect of the same on the public mind would indeed be great. And I can assure you that there is nothing for Government to lose by the release of two or three political prlsoners before their time.

There is one thing more about the political prisoners to which I think I should also invite your attention. They are treated like ordinary criminals. Formerly, we could have our interviews with them in a manner not inconsistent with their and our own self-respect. But now if we care to go to see our friends in jail they must meet us from behind the bars.

May I hope that you will be able to give your personal attention to this important matter at an early date. If there is anything to be talked about regarding tke question I would be at your disposal whenever it suits you.

2

16-9-42

I feel I must write this with my blood for I have had to decide to communicate to you something which you could not have expected from me so suddenly.

I know that H.H. the Maharaja of Jaipur cannot sever the British Connections and he cannot declare full responsible Government for the people except at the risk of his own existence as Ruler. This consideration compelled me to be realistic : and it was as a realist that I agreed to avoid a direct conflict with His Highness and his Government. I am not at all optimistic about the future of the Princely Order in free and independent India, but I have felt that I should not ask His Highness the Maharaja of Jaipur to do something which he cannot really do at the present moment. In the circumstances I satisfied myself with the idea that the people of Jaipur would be able to follow my advice and would have a direct fight with British Imperialism, thus leaving His Highness and his Government headed by you free to do all that can be done at a time like this for the welfare and happiness of the people of this State.

For the last one month or so I have been talking to you and pleading with my people about these affairs. I returned from Banasthali last evening and upto noon today I had no doubt whatsoever that I would succeed in my plans. But the coming of the afternoon seemed to bring a change and even then I little knew that I would be driven to the most painful necessity of writing this letter to you. My endeavours to gauge current public thoughts and sentiments dragged me to the extremely unhappy conclusion that my dearly cherisned plans cannot work. Then I thought that either I should give up political life and tne Prajamandal or I should live myself up with what I understand to be the sincere and current desire of hundreds of my fellow workers and possibly of thousands of other people. The first alternative, I could not have choosen without jeopardising the peacsful existence of the Praja-

mandal which along with other co-workers, I have watered with my very blood for the last seven years. Then I had to take up the only other alternative left to me.

While I write this I cannot help referring to the recent statement made by the British Prime Minister in the House of Commons. Inter alia Mr. Churchill is reported to have said :—

"Outside that (meaning the Congress) party and fundamentally opposed to it are 90 million Muslims in British India who have their rights of self-expression, 53 million depressed classes or untouchables as they are called and 95 million subjects of the Princes of India with whom we are bound by Treaty."

I must say at once that this is the greatest falsehood which may have ever been uttered by any statesman. Leaving aside the rest I have to declare that the people of the Indian States are not outside the Congress and most certainly they are not fundamentally opposed to it. This statement of Mr. Churchill must have made lakhs of the Indian people angry, in any case it has made me angry. And what answer can I make to the British Prime Minister ? I must show him not by my words which he cannot hear, but by my concrete acts that the people of the Jaipur State are part of the Indian National Congress and indissolubly connected with it. And what are my concrete acts ? The first of them is to declare that from this moment I am here to refuse to accept the authority of His Highness the Maharaja of Jaipur on the ground that the said authority is derived from the British Government and cannot last for a moment without their support and that His Highness cannot unfortunately free himself and his State from the British yoke and is thus allowing himself to be regarded as a pillar of British Imperialism in this country.

I must make it clear that I have no immediate cause to pick up a quarrel with His Highness *for whom personally I have had a liking* in spite of numerous complaints whicb I do have to make against him. Nor, I have any cause to be dissatisfied with the way in which you have begun your work in Jaipur. As I have had no personal contact with His Highness I cannot say much about him : but I know from personal experience that you want to serve the people of this State with all possible sincerity. I can guess, however, that His Highness cannot but have the well being of the people at heart.

But the tragedy is that these considerations are of small consequence, when I see that the thinking section of the Jaipur people is impatient to take part in the grim and great struggle which has been going on in India against the British and that the people donot seem to have any faith in the plans which I have endeavoured to place before them. Anyhow, many people want a struggle here and now and I feel comelled to bow my humble head to their wishes.

Since I began writing this letter I have also been thinking if there could be anything which might still avert the catastrophe. I know that with the best will His Highness or you cannot do anything; and I know that in spite of all my most sincere desire to avoid a direct conflict with His Highness and his Government I cannot do anything. The people of India and this term includes the people of Jaipur are out to throw the British yoke off; while it can be understood that His Highness the Maharaja of Jaipur, even though he may perhaps be tired of the said yoke, cannot have the courage to put it off and to join his people in their struggle against the British.

Hence, the unavoidable necessity of starting a direct struggle against His Highness who is a subordinate ally of the British King.

With a view to make the Prajamandal members free from the obligation of the constitution of the Mandal I am declaring the said constitution as suspended until further notice, and then I am asking the people of Jaipur State to follow Mahatma Gandhi's lead and take as full a part as they can in the Indian Struggle for Independence.

Need I tell you that I have written the letter with a heavy heart. I had to make a quick decision and to write to you immediately. I propose to make a public declaration in accordance with the terms of this letter tommorrow evening.

P. S.

In the absense of H. H. I decided to address this letter to you. I hope it will be seen by H. H. as soon as possible.

3

17-10-42

This is to remind you about the hunger strike of Shri Ramkaran and Shri Chandrashekhar. Kindly arrange that the friends of Shri Ram-

karan interview him in a manner agreeable to them and also the two gentlemen may be given a suitable treatment till you make a final decision about them. They are undertrials at present and I am sure there can be no difficulty in adopting any suggestion made by me. The bearer is a co-worker of mine who will wait at Nataniyon ka Bag for your reply which he will take to me at Banasthali. As it is a question of hunger strike I am most anxious about it. Do kindly take necessary steps and let me know accordingly.

P. S.

You can also talk to the person so that he may inform the riends of Shri Ramkaran of the orders issued by you.

4

8-11-42

As we are gradually succeeding in the solution of our own problems my mind turns to the situation at Jodhpur. It seems to me that there has been enough of 'war', and that the time has come when we might well assist in finding an honourable way to peace. I would therefore, suggest that if you see no objection you may take the initiative by ascertaining the wishes of Sir Donald Field. Then I shall be happy to offer my services and I would gladly undertake to find out the veiws of the Lok Parishad people, provided that Sir Donald kindly extends to me the necessary facilities. Somehow or the other I feel so much encouraged at the moment that I am taking the earliest possible opportunity of placing the proposal before you. I am sure, you will feel interested in this matter and it may be a big step towards the service of all Rajputana which I know is the one ambition that has brought you to Jaipur. As you are going to Delhi you might get an opportunity to consult other people there, if you so desire. And you may also get into touch with Sir Donald at an early date. So I have ventured to write this letter to you at the spur of the moment. In any case I shall discuss the matter with you when we meet next. If you take kindly to my suggestion you may please drop a line for my satisfaction. I am sending this by a special messenger who will return to me with your reply, if any.

5

13-5-43

I have good reason to believe that, if properly approached, Sir Donald Field may be moved now to arrive on an understanding with the local Lokparishad (Prajamandal). Our previous attempt did not prove fruitful and then I decided to wait for better times. I wonder if you can interest yourself in the matter again. My plan is to approach Sir Donald with the request that I may be allowed an interview with one or two Parishad leaders. After the interview I can see Sir Donald himself and other officers, if necessary. Somehow or the other I feel that we may succeed this time. If you like the idea, you may once again make the suggestion to Sir Donald. In case you think that it would not be right for you to take the initiative, I would like to have your advice as to whether it would be proper for me to approach Sir Donald direct. I have some hesitation, because I am not known to Sir Donald personally. But as a man of peace, I would like to see happy relations established between the Jodhpur Government and the Lokparishad. I am sure you will kindly let me have the benefit of your valuable advice. It is my intention to go by your advice in this matter.

May I expect a reply today. ?

6

9-11-43

You will perhaps remember that I had written my last letter to you about the release of the remaining political prisoners. Since then I have had no intention of bothering you about this matter. But esteemed friends in Calcutta have been persistent in pressing me to approach you again with the request that you will kindly release Shri Brijlal Goenka who, it is understood, has not been keeping good health. The friend who has sent the latest leter to me on the subject pleads that Shri Brijlal Goenka may be released on grounds of health. You gave me to understand that there was some difficulty in coming to a decision to release the few politicals who are still in jail but I had expected that the difficulty would be soon overcome and the prisoners would be released after sometime and also the externment orders

against a few others would be withdrawn. As I am a little out of touch nowadays, I donot know why the difficulty still continues and why the needful is not being done. Hoping that my words may carry some weight with you, I venture to appeal once again to you to use your influence for the immediate release of Shri Goenka and for considering the other cases favourably at government's early convenience. I need not tell you that nothing is going to happen, if the few political prisoners are also set free like the rest who have been out of jail for a considerable time.

From Sir Mirza Ismail to
Pandit Hiralal Shastri

1

17-9-42

Your letters gave me a rude shock. They distressed me. I fear, pardon my saying so you have not acted with sufficient foresight or in the best interest of the State and the Country in general. I may be wrong, of course, but that is my conviction. My conscience is perfectly clear; and so is my duty. But I wish such a situation had not arisen at all. It will only hamper me in my work for the betterment of the people of Jaipur and interfere with the realisation of many a dream I have been dreaming for them ! Let me appeal to you and your party even at this late hour to think and think again before taking the plunge. I wish most fervently that you could even now be persuaded to abandon the idea of starting an agitation in this State, especially when things are quieting down in other states and even in British India. Let us be realistic. A vast gulf divides realities from mere emotionalism.

P. S. :

I should like to see you and any of your friends that you might like to bring along and have a heart to heart talk with you. Believe me I am as ardent a nationalist as any of you.

Note : The above letter from Sir Mirza Ismail is a reply to my letter of the 16th September, 1942. There was a Gentleman's Agreemeut between the Praja Mandal and the Jaipur Government. The Principal terms of the agreement were:

(1) that the people of Jaipur would be free to agitate within the state against British Imperialism and even against the war effort,

(2) that no person (whether he was a Jaipurian or even an outsider) taking part in the struggle in British India would be arrested by the Jaipur authorities if he or she comes to Jaipur and that the Government of Jaipur would take immediate steps in the direction of establishing responsible government in the State. For the Praja Mandal's part it was agreed that there would be no agitation against the Maharaja of Jaipur who had agreed to come half-way to meet the wishes of the people of the State.

2

8-11-42

Your letter regarding Jodhpur.

I like your suggestion and can only hope that Sir Donald Field will agree to it. I shall communicate it to him and tell you what he says. I shall send him a copy of your letter, omitting the reference because it is so kind to me.

From Pandit Hiralal Shastri to
Sir V. T. Krishnmachari

1

20-2-48

Pandit Devishankerji has conveyed to me the gist of the talk which he had with you this morning at Natani-ka-Bagh. I very much regret that you consider the Jaipur Prajamandal's attitude as unreasonable and uncompromising. May I point out that the Prajamandal has all along been reasonable and has invariably acted with moderation and patience.

You have often referred to what has come to be known as the "Mysore model". But the question is as to what exactly the Mysore model is, although it may also be said that what was agreed to in Mysore is capable of improvement. Apart from the composition of the proposed interim Government, the selection of Non-Prajamandal Ministers and the distribution of portfolios are question of far reaching practical and constitutional importance. Your own designation and also the designation of the 'leader' of the six popular Ministers (who will surely be a Prajamandalist) have also to be decided to our satisfaction. Thus finally, the question of relative powers (I mean your powers and those of the new Chief) does also arise.

If I have rightly understood the proposals (which you have conveyed to me through Pandit Devishankerji) I am sorry I must say that they cannot be accepted by the Prajamandal. In the circumstances, I felt constrained to ask Panditji to tell you that no useful purpose would

be served by our meeting again. Let me add that I had not thought that our talks lasting for over ten weeks would come to such an unhappy conclusion on the eve of their expected successful fruition. But that, perhaps, was God's will. Thank you.

2

28-2-48

I had returned from Rambagh most unhappy man and from Natani-ka-Bagh, again, I came more unhappy than the most. While I feel that I am perhaps punished for my goodness and straightforwad-ness I am being accused for being responsible for the unhappiness of His Highness and for your own. This latter position I simply cannot accept. My dream was that Jaipur would be the first in the field and that every-thing would be settled in a most cordial and happy atmos-phere. But I find that my dream was nothing more than a dream. My Natani-ka-Bagh visit has given me a feeling that the announcement may not be issued tomorrow. For me this would be tragic. For you it may be anything. But what can I do ? My only request is that I may now be left alone. There is a limit to every-thing and we have already crossed the limit in this case. You kindly do what suits His Highness and you. But I have no third alternative which I can make the Praja-mandal accept. In any case for God's sake please do not send for me again for this cruel discussion. I shall loose all interest if a satisfactory announcement is not made tomorrow.

3

14-3-48

I returned from Calcutta on the 11th, but had to go away to Banasthali almost immediately. Since my return from Banasfhali I have been told about the talks which Pandits Paliwalji and Devishankarji had with you yesterday and the day before. I must confess that the manner and the contents of our discussion in the last stages of the negotiations and the final outcome in the shape of the Gazette Extra-ordinary did not make us happy at all. In the evening of the 29th February at Natani-ka-Bagh the question of designations overshadow-ed all other discussion including some very necessary exchange of views about the actual draft announcement. The issue of the draft had then to be rushed through and no time was left for us to make any suggestions which I feel the President of the Prajamandal and some of us must have made.

This, therefore, gave me a most difficult time on the 1st March— but I argued with my friends—"please don't bother about the outer form and look only at the substance which really matters." There is no doubt that 'form' has its place, although much would always depend on the spirit in which we work. At this stage, therefore, my only anxiety is that we make a happy beginning in the manner and in the spirit which would make us all hope for the best possible relations in the days and months to come. Above all, His Highness should be made happy and then you your goodself, and then of course all the rest, the common man and the Sardars.

The best thing would be to stick to the 17th March as settled between us and also to the time 11 A.M. as suggested by me. There would of course be no help if His Highness did not return in time. Then I would suggest 8 A.M. on 20th March provided that such an early hour suits His Highness. Failing both a third alternative would have to be found. In any case, I would insist on your being present on the occasion; after all how can we imagine that we would take over without you ?

Another point is about the resignations of all the members of the present cabinet. I think the understanding has all along been that the whole cabinet would resign on a particular day and the newly constituted cabinet will take over the next day. From what you have told Pandit Paliwalji it appears that there is some mistake somewhere about this point. After the 29th Feb., I met you only once in Delhi, and that too, only for a few minutes. On that occassion this particular point was not touched at all. Any way the feeling on our side is that, according to the understanding between us, the whole present cabinet should resign and the new cabinet be installed. This can be done without leaving any gap at all. I hope you will kindly agree, for this will be the best form and there can be no possible objection to this procedure. It should not be difficult for us to overcome any difficulty which might appear to come in our way.

Lastly, the exact procedure should also be settled e.g. what will be done at the Palace and how, and what will be done at the Secretariat and how ? These are matters of detail, but they have their importtance. Undoubtedly, we are going to lay the foundation of responsible government and that surely should be regarded as a big event. It is,

therefore, neoessary that we create an atmosphere of cheerfulness and goodwill so that well-begun may be halfdone.

These are my sentiments and I wish all concerned to share them. I need not mention that I have been feeling a little nervous as to what we may be able to do, but I know I must rely on His Highness and also on the mutual understanding of all the members of the new cabinet. The distribution of portfolios and some other points have also to be discussed. All this will be done at your convenience.

4

28-3-48

Since I left the Secretariat yesterday I have been struggling hard to find the necessary time and mental equilibrium to write an outspoken letter to you. I wish to avoid being rude or rough, but I have all possible desire to be honest and plain in what I say.

I was really never satisfied with the pace and the manner of our prolonged negotiations but I always persuaded myself to think that it was better not to lose patience. After your return from Delhi in the third week of February the thread of negotiations was taken up by Pandit Paliwalji, the President of the Prajamandal, whom you definitely gave certain matters to understand. One of these understandings was that if General Amarsinghji were taken into the new Cabinet, he would be given neither Revenue nor police. Even after a settlement had been reached with you regarding all the important points some thing did happen which made me confront His Highness on the 25th and 28th February in a manner for which I was not at all prepared. Then the way in which the announcement was drafted and rushed through made the Prajamandal people very unhappy and the whole affair gave me a most difficult time. In the first Week of March I met you in Delhi for a short while when you told me that both General Amarsinghji and Thakur Kushal Singhji would be taken in the new Cabinet. On my asking you about the portfolios you told me in plain words that Police would go to Thakur Kushal Singhji. Some day about the middle of March you suggested that the Prajamandal should take Police, leaving Revenue for the Sardars so that the same may be given to Thakur KushalSinghji whom Police,perhaps,would not suit. This suggestion was not accepted by us. Our non-acceptance was conveyed to you and-you,

in your turn, first gave us your own consent that Police would be given to Thakur Kushal Singhji and then you sent word to us that His Highness had also agreed to the distribution of portfolios, as settled betwen us. So on this point I had no manner of doubt or suspicion. Regarding other Departments I was certainly looking forward to the opportunity when you would discuss the matter with me. I was also given to understand that you would show me the draft of the announcement of the resignations of the existing cabinet and the appointment of the new cabinet. But nothing of this sort was done. Quite suddenly at 2.50 p. m. yesterday the Chief Secretary gave me some typed papers which contained the detailed distribution of the portfolios.

I must confess that this last thing gave me a rude shock. I could not help tninking that this was surely a bad beginning and a sad beginning. I asked myself again and again what Sir V. T, means by all this ? Is this the spirit in which we would all work as a United team ? In what particular way am I to function as the Mukhya Sachiv ? (It is another thing that the word "Mukhya" was thrust upon me on the telephone). Well, Sir V. T. I don't find any answers to these questions. Then I ask are you to continue with the changed designation of Dewan in the same old manner ? We have certainly agreed to avail of your guidance, but are you going to guide us in the strange manner which I for one never contemplated. Therefore, I feel constrained to say that I find myself humbled and completely broken, being let down beyond all imagination. This, therefore. seems to me to be the beginning of the end : please excuse me for saying that this, perhaps, is a case of keeping the keys while giving away the lock. To be quite frank, such a position will never be accepted by me. If you so please, I may not visit the Secretariat again but I must refuse to be treated like this. These are my own feelings which are shared by my other colleagues. Apart from this, what am I to say to the Prajamandal organisation to whom I am totally answerable.

Then you ask me to see you at your place at 4 p. m. today. With what face shall I come to you ? Please, therefore, accept this outpouring of my heart before you receive me any day, any where. Need I tell you again that I have respected you and spoken well of you. But I now find myself in a quandary : How, I imagine that you had, for the sake of good-will and grace alone, please treated us like men, men of course,

the equals of whom in honesty, moderation and sobriety, you will search elsewhere, in vain inspite of your long and varied experience.

With apologies,

P. S.

As usual this letter goes to you as I havs finished it in my original (not very legible) hand-writing. May I also explain that it is very seldom that you reply to my letters, and even if you reply, you say almoet nothing and even when you think you do, you convey the subject only in part and you seem to change from one position to another.

(Note:—"Sachiv was considered by us as a better word than Mantri.)

5

29-3-48

I received your letter yesterday on my return home late in the evening. I must say at once that I am extremely grateful to you for the very nice sentiments so finely expressed in your sweet letter. All the same I cannot resist the fact that the Police affair, at least to our minds was never a case of misunderstanding. Now, this is only one of the points, although it is a major point. Then, there was much to be said in regard to the allocation of some of the other departments. Thirdly, I feel I must have been consulted obout the order of seniority of the members and the new Cabinet. Fourthly, it came to my notice casually that the Secretariat people were making some usual changes in the Business Rules. I feel it could be none of their business : But let me stop here and say that with me it is not only a question of pain or humiliation; (I have seen enough of these things, being a public worker of long standing) With me the question, very clearly, is 'to be' or 'not to be'. You have often referred to the Mysore arrangements. Shall I tell you that I am in close touch with the people and the position in Mysore ? Then you have repeated times without number that you are not fond of power. Therefore, I wish to make it plain—let power not stick to you. I hope I will be able to deal with the sardar members of the cabinet, if any one of them does not behave, then of course, I will see that either he is out of it, or reversely I am out of it. As regards your wisdom and experience and also as regards your sound advice and help resulting from both I never had any doubt. But while you watch

me, I must have free and full scope to go ahead. The question is—how is that to be defined ? Unfortunately, my feeling is that I am not being treated as a major and, in all humility, I wish to say that, after all, I am not such a minor : You told one of my friends one day that you would not do any thing important without consulting me. Will you kindly allow me to say it the other way ? Please make me the 'doer'. (I put it plainly and even bluntly). Will you ? That is the whole question; and I am not at all clear about your answer to the question. I know His Highness trusts you; I only wish you trust me. After all I am not such a reckless fellow who will make the heavens fall; I do not know how you will receive all this, but I will not be my-self if I do not speak out in this totally unconventional manner. I can continue in this strain, but for what ? I think I have said my say, now it will be your turn to respond. Then we will certainly meet, whenever and wherever you like. Let me say also that you are already officially big, and officially I am zero; unofficially I may be anything. What do you propose to make of me ? But this way I am again wandering—so I stop here.

6

29-3-48

I thank you for your two letters of today. Shall I say that I expected much more than a formal reply to my letter of this morning. But let the matter rest at that. I am considering the whole position and will let you know my views in due course. Meanwhile, I go on as best as I can. I don't think that any personal discussion at this stage would carry us any further. I trust you will not take it otherwise.

From Sir V. T. Krishnamachari to
Pandit Hiralal Shastri.

1

21-2-48

I received your letter last evening rather late.

There has been a misapprehension, a natural one in regard to the talk I had with Mr. Tiwari. At present, my talks are purely exploratory and tentative, with the object of bringing closer together, if possible, the Prajamandal's and sardars' points of view. As you say, there are important issues still to be discussed and it is only after these discussions have taken place that a final position can emerge on all sides. I shall certainly be delighted to have talks with you on these points whenever you can come.

I hope your health is improving.

2

28-3-48

I have just received your letter and am extremely grieved to see that I have caused you pain and there has been all this misunderstanding. Let me assure you of two things. I shall be the last person to go back on any word of mine or to cause you the slightest "humiliation". We have always dealt with each other very frankly and, I am certain, honourably. Secondly, I shall never do anything which will interfere with the success of the new arrangements which I whole-heartedly strove to bring about and in which I have every hope that Jaipur will

find prosperity and contentment. When there was the possibility of Samode coming in, the intention was to give him Revenue or Police It was at this time that you had not decided what your party would take.

When Samode did not come in, I understood from our talks in Delhi that if on my assurance Amar Singh would give his full support, you did not mind him taking Police. By this time you had decided that Revenue should be with your party.

I fully explained to Tiwari why Geejgarh could not take police. It would be so difficult in these trying times and he himself was quite unwilling.

Let me assure you that till Pandit Tiwari spoke yesterday I had no idea whatever that there was this misunderstanding. The point was not mentioned when I gave you the six portfolios and this somewhat confirmed me in the view I was in.

Let me repeat that I want the new Government to be successful and no effort will be wanting on my part to see that full support comes from the member (Sachiv) in charge of the police.

I have talked to him repeatedly about it and am convinced that he will support you and me. After all I am as much a part of the new Government as all of you and I shall not have on it a disturbing element.

I hope you will believe me when I say that our relations have always been such that I can never think of misleading you or dealing with you in any spirit of unfriendliness. I have, I need not say, the highest respect for you.

I was, till yesterday, not aware that on this point there was any misunderstanding. When we had our talk in Delhi and I said that I was satisfied that Amar Singh would cooperate fully, I thought you were satisfied and content to try.

I am afraid, I must have expressed myself badly. I never thought that Geejgarh would have the police and I must have expressed myself badly to give you and Pandit Tikaram Paliwal that idea. I did think of him for "revenue" and mention it. As regards police

I thought of Samode when there was a chance of his coming in. I am sorry to have committed the mistake.

I guarantee to you the full support of the Sardar member in charge of the "Police". I hope you will accept this guarantee as well as the assurance of my great respect for you. I certainly cannot treat you in any other way.

3

29-3-48

I wrote the enclosed letter before yours of this date came and send it as I wrote.

Let me reply categorically to your question. If I did not trust you, I would not have agreed to stay on in the Cabinet for one minute.

As regards the details to which you refer (i) I did speak to Tiwari about the relative position of the Ministers and assumed he would mention it to you. (ii) There can be no question of business rules being revised and accepted without cabinet sanction.

His Highness' notification about responsible Government makes the position of the cabinet clear and I am confident that all parties concerned will act up to it. This includes myself.

I shall always be glad to see you.

4

29-3-48

In your letter of yesterday you say that I gave an undertaking that Geejgarh would be in charge of "Police" and not Amar Singh. I never contemplated that Geejgarh would be in charge of "Police" and so could not have given such an undertaking.

I find that all this is the result of a fundamantal difference between us in regard to the membership of the cabinet. In my view, every cabinet minister (Sachiv) had equal responsibility, sharing with the others full responsibility for the acts of the Government. There can be no question of different degrees of trustworthiness. I cannot

imagine Amarsingh between trustworthy for P. W. D, and not trustworthy for Police. When, therefore, it was agreed that he should be a Sachiv, the question of his portfolio was one of detail to be settled on his previous experience by the sardar sachivs among themselves or by His Highness. This was the view I took in regard to the portfolios allotted to your section of the cabinet.

On the basis of different degrees of trustworthiness for different subjects or men, the whole arrangment is bound to collapse.

During the talks we naturally touched on essential and non-essential matters. This particular question was not presented to me as an essential condition like (i) the number of sachivs from either group and (ii) the allocation of subjects among the groups. If I had understood it in that light, I would have dealt wifh it differently.

पंडित हीरालाल शास्त्री की तरफ सूं महाराजा साहिब जयपुर की सेवा में

१

महकमा खास,
२७–३–४८

अठै आकर बैठतां ही मैं पहलो काम यो करूं छूं कि आपकी सेवा में बधाई पेश करू । मैं जाणूं छूं कि मैं अब पहली जतरो आजाद कोनै । पण मैं आ भी समझूं छूं कि मनै दुनियां की कोई चीज बांध कोनै सकै ।

रामबाग में एक दस्तूर पूरो हुयो । पण दस्तूर सूं ज्यादा और बीसूं अलग मैं या अरज करबो चाहूं छूं कि म्हारा दिल की बात या छै कि मैं आपनै सदा सुखी देखूं ।

म्हारी खुद की तो कांई अरज करूं? सांची खरी बात तो या छै कि आज के दिन मै सुखी कोनै । क्यों ? ईंको जवाब कदे मौको मिलबा पर अरज करस्यूं ।

2

26-7-48

You must have received all my previous letters—four in number. In this letter I have to submit only one point and that is about our next year's Budget. In the current Budget our income was estimated at 3 crores (Jharshahi) and the expenditure was 3 crores and 21 lakhs but it was cut down to 3 crores to balance the Budget. Next year our

expenditure—(I mean, normal expenditure) is likely to exceed 3 crores and 40 lakhs. I am glad to report that we shall succeed in finding the necessary money to meet this increased expenditure without making any change in regard to the sources of our income. But I feel, I must find some more money to meet some other expenditure which I think will be regarded as quite essential. I am trying to go upto 4 crores (kaldar). I do not know how far I may succeed. To succeed means to get the money without imposing any new taxes which I am not going to do.

We have had some rains—the prospects are not bad.

Trusting you are all happy.

3

5-8-48

So many thanks for your letter of July 26 which I received in Jaipur yesterday. I arrived here today for a two days' visit, I will be back to Jaipur (via Delhi) in time for the session of our Representative Assembly when I will have to present my first (and, likely, also my last) budget. From 3 crores of income I have gone upto 3½ crores; this increase of 50 lakhs in our income does not involve any additional taxation. My intention is to have another 40-50 lakhs so that we may be in a position to spend some more on our Nation-building programme. At the moment, I am not quite sure whether or not I will succeed in this attempt of mine.

We have had two meetings with the representatives of the sardars. We now know fully where we stand. The discussions will be continued and at the most one or two meetings will bring out the common ground as well as possible points of differences. It is yet too early to predict anything about the final outcome of all these labours to which your own contribution, I am sure, will be a most valuable one.

It was reported that the thakur of Garh Taknet (Torawati) was engaged in the distillation of illicit liquor in large quantities. The Cabinet therefore ordered a raid with the help of police and military. The raid was completely successful. Much more will, of course, have

to be done to bring such unlawful and rebellious elements under proper control.

The Cabinet has sanctioned a donation of $3\frac{1}{4}$ lakhs to the Gandhi National Memorial Fund. As the Congress session is going to be held in Jaipur, the government will have, quite naturally, to make its own contribution to its success. It may not yet be fully realised how much more important Jaipur will become on account of the Congress session.

I am glad to say that the rains which we have so far had are encouraging and just now there is every reason to expect a bright prospect of crops. Not less than the rains and the crops I look forward to your return. Perhaps your original intention was to return by the midlle of August, but your letter does not show that there is any chance of your return as early as that. Then how long are you going to take ? Not that I wish to disturb you in the enjoyment of your holiday, But from my own point of view, I have to say that earlier the return takes place, the better it is for me.

With blessings to you all,

4

5-11-48

I have just returned from Delhi and have recived your kind letter of November 3. Sir V. T. has also come back but he has gone to Sawai Madhopur from where he will return in the evening.

Really, I did not expect any reply to my letter which I sent you immediately before my departure for Delhi day-before-yesterday. Any way, I think I should explain why I sent you the said letter. Two suggestions, which were quite new, came up before me. Thereupon, I conveyed my first reaction to you. You wanted me to think over them again. Accordingly, I kept them in mind and thought about them in a number of ways. This thinking resulted in something and that something I thought I should let you know before I left. Alternatively, I could have kept the result of my thinking to myself for a day or two and could have communicated the same to you at the time of our next meeting. I preferred the first alternative and submitted the letter. This is my usual way of doing things.

By all means, you discuss both the points with Sir V. T., but what am I to do if only a 'decision' is communicated to me ? If the decision is acceptable to me naturally I will not have to say anything. If unfortunately, it happens otherwise then I will certainly want to put in a word or two. My own feeling is that instead of arriving at a decision after discussing matters with Sir V. T. alone it may be much better if all three of us discuss and arrive at a decision. I wish, however, to add that after all I am not anxious to attach too much importance to any of these matters, although I feel that the way we deal with them makes a difference.

Kindly excuse me for this letter which I have written rather unwillingly. I hope we will meet some time this evening. Besides these ordinary matters there are far more important things, which I feel, we should discuss as early as possible.

5

5-4-70

Herewith is a petition from Thakur Jaisinghji who finds himself in great difficulty owing to the sudden death of his only son

Sumersingh at the age of 40. Jaisinghji, one of my own dear friends, was a trusted confident of the late Rawal Narendrasinghji of Jobner. To say the least, I have not known any other officer In our State who might be as honest and loyal as Jaisinghji.

As a matter of duty I have been trying to help Jaisinghji in all possible ways and it just occurred to me that I might recommend his case for your kind and sympathetic consideration. I do hope Her Highness also would like to help this deserving Rajput. For this act of kindness, I will be personally grateful to you both.

The other day, I happened to be walking outside the Jaipur Airport when somebody told me that you were due to fly to Bombay the same morning. When I came in, I just had a glimpse from a distance: you were already walking towards the airport. People, who saw you from near, told me that you looked very weak. From your gait I too thought that you were not your usual self. I would, therefore, come to you some day: also the 'Churma-dal-bati' business has all along been waiting for you. I wonder if you realise, I am so deeply attached to your person.

With all my affection,

From H. H. the Maharaja of Jaipur
to Pandit Hiralal Shastri

1

26-7-48

Thank you so much for your letter and all the news. I am sorry I have taken so long in writing but am making the best of my holiday and am only just getting over the effects of our long and rather drawing meetings. I only hope they will have good fruits. I am glad you are hopeful and lending your full-hearted support. I hope you have had some rains by now and things are looking brighter in Jaipur and good prospects of crops. I am having a really good holiday and thoroughly enjoying myself. All the family are well and the children are with us for the holidays.

You must have seen Sir V. T. by now who must have given you all the news of here. We were together for a few days before we left. Under his able guidance I hope you will solve all our problems.

All the best and please remember me to your family.

2

3-11-48

I am rather surprised at your letter after our prolonged talks today for, instead of keeping an open mind as you promised, you are already anticipating things: However, you can rest assured that my endeavour and advice will be always in the best interest of the State and not that of any party or individual, which I feel sure you will appreciate.

I am waiting for Sir V. T.'s return, when I hope to discuss the talks we had today with him and let you know the decision which, I hope, will be acceptable to you.

3

25-4-70

Thank you very much for your kind and affectionate letter. I am sorry, I have taken so long in replying, but by now, you might have heard the sad news about the sudden death of my brother-in-law. His Highness the Maharaja of Cooch Behar, on the 11th of April. It is unbelievable that such a gay and charming person, full of life, is no longer with us. He died of sudden heart attack in Calcutta.

I will see what can be done about Jai Singh as suggested by you, but as you will appreciate, it is not easy to accommodate people now a days with the contemplated changes ? But I will put up his application to Her Highness for consideration.

I have also not been keeping too well and this heat is getting me down and look forward to getting away to pleasanter climate and surroundings in London soon. So, I am afraid, your Churma-Dal-Bati entertainment will have to wait till I come back. By then, I hope, we will have pleasanter climate in Rajasthan.

I hope, all the family are flourishing.

Affectionate regards to you both.

(Selected correspondencer egarding certain grants and loans to the Banasthali Vidyapith from the Governments of India and Rajasthan.)

From Shrimati Ratan Shastri to the Minister for Education, Government of India

21-10-47

I beg to make the following submission regarding the growth and future development of the Banasthali Vidyapith :—

I. General

1. Tne Banasthali Vidyapith is a residential institution for women's education. The institution was established twelve years ago in Banasthali village in Jaipur State. It is located in healthy rural surroundings and is five and forty five miles away from the Nawai-Banasthali Railway Station and Jaipur City respectively.

2. The Vidyapith was founded in 1935 by a band of selfless nationalist workers who relied more on their own spirit of sacrifice than on any material resources. Thc entire institution has therefore been housed in 'kutcha' buildings. Provision was gradually made for the education of 250 residential and 50 non-residential students.

3. The institution has attracted students from all parts of the country and from all classes of society without any distinction. Rajputana (including Jaipur State) has supplied one-third of the total number of the students and the remaining two-thirds have ccme from the United Provinces, Bihar, Central India, Punjab, Bengal, Central Provinces, Orissa, Delhi, Hyderabad (Deccan), Gujarat, Sindh, and Madras.

4. The Vidyapith has been served by devoted servants of the Nation who, like the students, have come to Banasthali from various parts of the country (e.g. Rajputana, United Provinces, Central India,

Madras, Central Provinces, Delhi etc). The present staff consists of over seventy persons who are well-qualified for the work entrusted to them. The workers of the Vidyapith have voluntarily suffered pecuniary and other hardships in the past and if that were necessary they are prepared to make still greater sacrifice in the future. The Vidyapith has been managed by a committee of workers under the supervision of a Board of Directors.

5. Funds (nearly six lacs of rupees) required for the institution upto date have been obtained through public donations. No tuition fee hasbeen charged and the students have had to pay only moderate charges for the hostel. For obvious reasons the Vidyapith was so far not willing to accept financial help from any Government. The expenditure budget estimates for 1947-48 amount to Rs. 2,00,000/- (vide appendix 1); of this Rs. 75,000/- is received from the students and the remaining Rs. 1,25,000/- has to be found from other sources.

6. The Government of the Jaipur State have been good enough to make a rent-free grant of more than 550 acres of land and a mettalled road has been made at State cost to connect the Vidyapith with the main road and the Nawai-Banasthali Railway Station (a distance of five miles). This year the State Government have decided to place the Vidyapith on the list of aided institutions whereby the Vidyapith will be entitled to a recurring grant-in-aid, the amount for 1947-48 being Rs. 41,000/-.

7. The Vidyapith has grown into a little world of its own, the nearest railway station Nawai now bears the name of Banasthali also. The institution has a post office; it has also got the Kamla Nehru Dispensary, the Jamnalal Bajaj Goshala, the Mahadeva Desai Khadi Mandir, and the Kasturba Gandhi Arogyashala. The students here get a first-hand knowledge of the real India and while the institution is far from the noise and bustle of city life it has its contacts with what is best in the Indian educational yworld.

8. During the last twelve years the Vidyapith has risen from extremely humble beginnings to the status of a unique institution of India-wide fame. Many or our eminent countrymen e. g. Pandit Jawaharlal Nehru, Dr. Rajendra Prasad. Acharya J. B. Kripalani. Dr. Pattabhi Sitaramayya, Shri Shankar Rao Deo, Dr. S. Radha Rrishnan, Sir Mirza Ismail, Dr. P. C. Ghosh. Shri Amritlal Thakkar, Shri K. M. Munshi, Shrimati Hansa Mehta, Professor Amarnath Jha, Dr. Ziauddin

Ahmad, (the late) Seth Jamnalal Bajaj, (the late) Shri Mahadeva Desai etc. have visited the institution and some of them have presided over its annual functions.

II. Banasthali's System of Education

The Vidyapith has been a nationalist and independent institution and has provided for the alround education of girls. Banasthali education is based on Indian culture and nationalism and the Vidyapith's aim has been to educate girls on moral and patriotic lines and prepare them not only for a happy and fuller domestic life but also for true and selfless service of the motherland. Banashtali's plan has been to impart education under the following five heads :--

(1) Moral Education (including the quintessence of all religions) which is designed to build the character of the students.

(2) Physical Education (including various exercises, drills, games, swimming, cycling and riding) which would enable the students to become healthy, strong, smart and sturdy.

(3) Domestic Education (including all kinds of practical household jobs e. g. cooking, sewing, spinning etc.) which would make the students to learn and have liking for domestic and manual work.

(4) Fine Arts Education (including Music and Painting) which would enable the students to make their homes sweet and beautiful.

(5) Literary Education (from infant classes upto M.A.) which enables the students to develop intellectually and equip themselves with necessary knowledge concerning the problems of modern life.

There have been two stages in Banasthali's system of education: in the first stage the Vidyapith has had its own independent and co-ordinated courses on the completion of which in eight years the girls have to appear for Banasthali's 'Sanskrita' examination; and in the second stage the girls are prepared for outside examinations, e. g. Matriculation and Intermediate (Rajputana Board), B.A., and M.A. (Agra University) and also examinations in Music (Bhatkhande University of Indian Music, Lucknow), Painting (J. J. School of Arts, Bombay) and Ayurveda (All India Ayurveda Sammelan).

III. Future Plans

It has been the Vidyapith's endeavour to arrange full and complete education for its students and to keep away the one-sidedness of the system of education prevailing in the country. The Vidyapith

has always aimed high, but for the time being it was felt that the existing University and other examinations could not be successfully avoided. But now the time has come when the Banasthali Vidyapith should formulate its own system or education from the beginning to the end which would entirely suit Indian Womanhood. With this end in view, the Vidyapith has started a detailed investigation into the problem of women's education. It is hoped that with the help and co-operation of eminent educationists the Vidyapith would be able to produce a scheme of women's education which may be generally acceptable in the country. Thus, in time to come, the Vidyapith may develop into a Women's University. In any case this institution must immediately make a beginning which would lead it surely and steadily to its cherished goal. For instance, it is proposed to run besides the existing School and College a School of Music, a School of Medicine, a School of Painting, a School of Household Education, a School of Teachers Training, and a Vocational School under the auspices of the Vidyapith. Of these, the Vidyapith expects to start as many as may be possible from the next session. It is felt that before long the Vidyapith will have to spend not less than twenty-five lacs of rupees on buildings, electrification, water supply, books, furniture and other equipment (vide Appendix II.) Besides, the Vidyapith must have a permanent fund which at the lowest, may not be less than twenty-five lacs.

IV. Request to Government

I have thus given a brief account of the growth and some idea of the future development of this institution. I hope it will be appreciated that the Vidyapith has reached its present stage under most trying conditions. The Vidyapith is one of the biggest residential institutions and perhaps can claim to be the only all-India institution for the education of girls which is run on a putely nationalist and non-sectarian basis. Further, the Vidyapith is one of the biggest residential institutions and perhaps can claim to be the only all-India instiiution for the education of girls which is run on a purely nationalist and non-sectarian basis. Further, the Vidyapith has not been a School or College in the ordinary sense, but it has aimed to give thorougly practical training to its students who are expected to make not only good mothers but also patriotic citizens. The Vidyapith has set up a suitable standard of minimum education for all girls and has arranged higher education for the selected few and all this has been done in a most healthy

atmosphere of freedom and national service. For the future, the Vidyapith looks forward to attaining the status of an independent university which would meet the special educational requirements of women in this country.

I now expect the Goverment of India to recognise the useful work so far done by the Banasthali Vidyapith and to help the institution financially thus enabling it to render still more valuable service to the cause of women's education. The Government can help this institution in two ways viz. (i) by sanctioning a suitable recurring grant which may be fixed in proportion to the Vidyapith's annual expenditure budget which amounts to Rs. 2,00,000/- for 1947-48, and by (ii) granting a substantial non-recurring sum for buildings and equipment. The Government can rest assured that the Vidyapith workers will also continue in the future their own endeavours to devise other necessary ways and means for the financial stability of the institution which they have so far watered with their own blood. I do fervently hope that this submission of mine will receive Government's sympathetic and favourable consideration.

APPENDIX I

Banasthali Vidyapith

Abstract of Income and Expenditure Budget Estimates, 1947-48.

EXPENDITURE

Major Heads		In Round Figures
1. Management Department	..	Rs. 23,000/-
2. Education Department	..	Rs. 82,000/-
3. Medical Department	..	Rs. 5,700/-
4. Non-recurring items	..	Rs. 14,300/-
5. Hostel Expenditure	..	Rs. 75,000/-
	Total	Rs. 2,00,000/-

INCOME

Major Heads		
1. Hostel Fee from students	..	Rs. 75,000/-
2. Income from donations and other sources including Goverment grant	..	Rs. 1,25,000/-
	Total	Rs. 2,00,000/-

APPENDIX II

Banasthali Vidyapith

Funds required for Buildings and other purposes.

Buildings :

1. School Building	Rs. 1,00,000/-	
2. College Building	Rs. 1,00,000/-	
3. School of Music	Rs. 50,000/-	
4. School of Painting	Rs. 50,000/-	
5. School of Household Education	Rs. 50.000/-	
6. School of Medicine including Hospital	Rs. 1,00,000/-	
7. Vocational School	Rs. 50,000/-	
8. School of Teachers Training	Rs. 50,000/-	
9. Library	Rs. 40,000/-	
10. Assembly Hall	Rs. 1,00,000/-	
11. Hostels for 500 girls	Rs. 5,00,000/-	
12. Staff Quarters 75 @ Rs. 10,000/-	Rs. 7,50,000/-	
13. Guest House	Rs. 30,000/-	
14. Miscellaneous Buildings	Rs. 1,30,000/-	
		Rs. 21,00,000/-

Other Requirements:

1. Roads, Gardens etc.	Rs. 75,000/-	
2. Books and other equipment for various departments	Rs. 1,00,000/-	
3. Furniture and Fixtures	Rs. 1,00,000/-	
4. Power House, Electric Lights, Irrigation and Water Supply.	Rs. 75,000/-	
5. Sinking Tube Wells	Rs. 25,000/-	
6. Water Works etc.	Rs. 25,000/-	
		Rs. 4,00,000/-
	Grand Total	Rs. 25,00,000/-

From the Secretary of the Government of India,
Ministry of Education to the Secretary,
Banasthali Vidyapith.

22-4-48

With reference to your application, dated the 21st October 1947, I am directed to say that the Government of India have agreed to give to the Banasthali Vidyapith a non-recurring grant of Rs. 1,00,000/ (rupees one lakh only) during 1948-49 towards their building programme. It is requested that the plans and detailed estimates of their buildings may be furnished to the Government of India for scrutiny and approval at an early date. The sanction to the payment of the grant will then be communicated.

The Government of India are also pleased to agree to a recurring grant of Rs. 25,000/- (rupees twenty-five thousand only) being given to the Banasthali Vidyapith towards the maintenance and development of its general administration. I am to request that the annual report and the audited statement of accounts of the Institution may be submitted to this Ministry while applying for this grant for the current financial year and subsequent years.

From the Assistant Educational Adviser to the Government of India to the General Secretary, Banasthali Vidyapith.

27-5-58

I am directed to refer to your letter No. G. I. S./ 232, dated the 20th April, 1958 on the above subject and to convey the sanction of the President for the payment to you of an ad-hoc grant of Rs. 3,00,000/- (Rupees three lakhs only). This grant will be utilised towards the development and improvement for the following projects:—

1. College Building
2. Staff Quarters
3. Extension of existing buildings
4. Water Supply
5. Gymnasium
6. Furniture and
7. Other requirements.

2. The institution should maintain separate accounts in respect of the grant. A quarterly progress report in respect of the work and expenditure incurred should be regularly submitted to this Ministry on the presctibed pro-formas attached till the final audited account together with a utilisation certificate is submitted.

From the Deputy Educational Adviser to the Government of India to the Secretary to the Government of Rajasthan (Education Department)

24-8-61

I am directed to refer to the correspondendence on the above subject resting with your D. O. No. Nil, from camp New Delhi, dated 8th August, 1961, and to convey the sanction of the President to the payment to the Government of Rajasthan of a sum of rupees one lakh only as loan for being re-loaned to the Banasthali Vidyapith, Banasthali.

2. The loan, together with interest @4½% per annum shall be recovered from the State Government in 30 annual equated instalments, consisting of principal and interest, commencing from the first anniversary of the date of payment of the loan to the State Goverement.

From the Assistant Educational Adviser to the Government of India to the Secretary to the Government of Rajasthan, Education Department.

12-10-62

I am directed to refer to your letter No. F. 17 (95) Edn/C/60, dated the 29th August, 1962, on the subject mentioned above and to convey the sanction of the President to the payment to the Government of Rajasthan of a further sum of Rs. 3,25,500/- (Rupees three lakhs twenty-five rhousand and five hundred only) for being loaned to the Banasthali Vidyapith, Jaipur, This brings the total loan advanced to the Vidyapith for the construction of hostel and college buildings to Rs. 4,25,500/- (Rupees four lakhs twenty-five thousand and five hundred only only).

2, *The loan, together with interest @ 4½% per annum, shall be* recovered from the State Government in 30 annual equal instalments, consisting of principal and interest, commencing from the first annjversay of the date of payment of the loan to the State Government.

From the Deputy Secretary to the Government of India,
Ministry of Education, to the General Secretary,
Banasthali Vidyapith.

28-3-66

I am directed to refer to your letter, dated 31-8-1965 on the above subject and to convey the sanction of the President fo the payment to you of a sum of Rs. 65,000/- (Rupees sixty-five thousand only) as an ad-hoc grant for the year 1965-66 for the maintenance and running of the above Vidyapith. A sum of Rs. 35,000/- has already been sanctioned.

Henceforth Government of India continued to give an annual maintenance grant of Rs. One lakh to the Vidyapith. the original maintenance grant was Rs. 25,000/- which was later raised to Rs. 35,000/-, which, again, has now been raised to Rs. 1,00,000/-.

From Dr. Triguna Sen, Union Education Minister
to Shri Mohanlal Sukhadia,
Chief Minister, Rajasthan

30-11-68

Shri Hiralal Shastri, who needs no introduction to you, saw me this morning and gave me a letter which is enclosed. It speaks for itself.

Shri Hiralal Shastri is now 70 and is feeling the strain of old age. He would like to retire from active responsibility for the Vidyapith. But before he can do so, he is very anxious to see that it is placed on a sound footing.

The main difficulty in the progress of the Vidyapith at present is its accumulated deficit of about Rs, 6/- lakhs. This was as high as Rs. 16/- lakhs at one time. But Shastriji has collected large donations and reduced it to about Rs. 5/- lakhs. The extent of the annual deficit is also much smaller now than what it was in the past; and there is reason to believe that if this old accumulated deficit is wiped off, the Vidyapith would be financially sound and would be able to progress on its own steam. I, therefore, commend his request to your sympathetic consideration. I realise that there are many difficulties in the matter but whatever can be done will be of great help.

Encl : Pandit Hiralal Shastri's letter of 24.11.68 to Shri Mohanlal Sukhadia.

From Pandit Hiralal Shastri to
Shri Mohanlal Sukhadia

24-11-68

I attach herewith a note on the financial position of the Banasthali Vidyapith for Government's kind consideration.

2. As you are aware, the Government of Rajasthan by their Order, dated the 21st January, 1967, appointed a Committee to make recommendations regarding financial assistance to the Banasthali Vidyapith. The Committee's terms of reference were as follows:—

(1) To remove the difficulties faced by the Management on account of the operation of the Grant-in-aid Rules.

(2) To suggest measures for solving the difficulties of the Management in regard to their finances in general.

(3) To examine the essential financial needs for consolidation and development of this institution during the Fourth Five Year Plan period.

3. The said Committee was supposed to submit its report very soon. I am sorry to say that, in my opinion, the report which took an inordinately long time to be submitted will hardly serve the purpose for which the Committee was brought into existence by Government.

But I am sure that Government will kindly give due consideration to the minute of dissent submitted by one of the members of the Committee and, as a result, at least the present faulty operation of the Grant-in-aid Rules will be corrected and the Vidyapith will get its due share of Government's financial asssistence under the Rules.

4. As a perusal of the attached note will show, an urgent problem before the Vidyapith is that of wiping out the deficit of Rs. 5,97,574.73. Regarding the Vidyapith's deficit it was suggested in Shri Anil Bordia's original draft of the Committee's report that "an ad hoc grant of rupees one lakh may be made to the Management and that the State Government may move the Government of India to give a special ad-hoc grant to this Institution for the clearance of its old debts."

5. The above said ad-hoc grant of rupees one lakh recommended to be sanctioned by the State Government is, I think, not adequate and the same should be duly increased. And for sanctioning the rest I request that a recommendation may kindly be made to the Government of India. I am sure, the Government of India will be pleased to give favourable consideration to the State Government's recommendation.

6. What has been stated in my note referred to above need not be repeated here, viz. the Vidyapith has already made all possible efforts to contribute much more than its due share for the clearance of the old deficits. I may however, add that the diversion of the Vidyapith's resources towards this particular purpose of wiping out the deficit has resulted in the Institution's necessary development programme being blocked and its financial position greatly worsened. As such, it will be agreed, the Vidyapith can hardly be in a position to make further contribution to the clearance of the remaining deficit.

7. Under the circumstances, I request and hope that the Government of Rajasthan may kindly contribute its own share and also recommend the Vidyapith's case to the Government of India for favourable consideration as suggested above.

With kind regards.

BANASTHALI VIDHYAPITH
A Note on the Financial Position.

The Banasthali Vidyapith was started without a pie being in the hands of the workers. Until Swaraj there was no question of accepting financial help from any Government source and the Institution had to depend entirely on public donations. The present position is that the Vidyapith receives financial help not only from the Governments of India and Rajasthan and the University Grants Commission but also from the Governments and Administrations of all the States and Territories of India.

2. The total recurring budget expenditure and the total expenditure incurred on buildings upto 31st March, 1968 was Rs. 95,65,631.40 and Rs. 40,36,393.29 respectively, the receipts having been shared as follows:—

Source	Recurring	Non-recurring	Total
	Rs. P.	Rs. P.	Rs. P.
1. Government of India	8,73,254.25	10,24,643.00	18,97,897.25
2. University Grants Commission	75,491.16	1,74,900.00	2,50,391.16
3. Government of Rajasthan	44,89,629.53	6,38,055.14	51,27,684.67
4. Vidyapith's share (public donations, Institution's own earning and grants from States other than Rajasthan and the Territories)	41,27,258.46	21,98,795.15	63,26,051.61
Total	95,65,631.40	40,36,393.29	1,36,02,024.69

3. The Vidyapith's share, namely Rs. 63,26,051.61 includes the total excess of expenditure over income upto 1967-68 amounting to Rs. 15,14,212.54 of which Rs. 5,97,574.73 still remains to be cleared (i.e. duly repaid) the rest—Rs. 9,16,637.81—having been cleared by the Vidyapith as follows :—

1. Upto 31st March 1966		Rs. 4,25,678.73
2. In 1966-67		Rs. 3,01,462.26
3. In 1967-68		Rs. 1,89,496.82
	Total	Rs. 9,16,637.81

4. It has to be explained that the Vidyapith has had a natural growth during the thirty-three years of its existence for which whatever resources were needed were received from somewhere somehow and whatever came into the institution's hands was spent away as and when necessary. In this process temporary loans to meet the excess of expendjture over income, were procured and cleared from time to time.

5. The deficits (i.e. excess of expenditure over income) were due to :—

(1) The inadequacy of the Rajasthan Government's grant-in-aid Rules as applied to an institution of a special type which the Banasthali Vidyapith is and also the not very just operation of the said Rules.

(2) The Government of India's annual grant not keeping pace with the Vidyapith's normally growing expenditure, and (3) the Vidyapith's own inability to fill up, in time, the gap between expenditure and income which persisted in spite of the increasing help received from the Governments of India and Rajasthan and the workers' herculean efforts to raise funds from various sources other than the Centre and the State of Rajasthan.

6. It is not to be supposed for a moment that there was any sort of extravagance on the Vidyapith's part. What has been happening is that this unique institution has grown in its own peculiar way and its natural growth could not have been checked on any account : indeed, any such attempt, if at all made, would have been most improper and not in the interest of women's education. It has also to be understood that the Vidyapith's location in an exclusively rural area, its being wholly a girls' residential institution, its pioneering and experimenting efforts at an all-round complete education etc.

have been compelling factors for incurring expenditure of an extraodinary nature which may not be so in the case of other institutions.

7. The figures given above will have shown that out of the total expenditure of Rs. 1,36,02,024.69 incurred from the beginning upto 31st March, 1963 the Vidyapith's share was Rs. 63,26,051.61 which must be regarded as quite significant in comparison to the total contribution of Rs. 72,75,973.08 by both the Governments of India and Rajasthan and the University Grants Commission, all the three taken together. The Vidyapith's thinking in this regard is that this whole work is the Govenment's own and it has been helped by the worker's voluntary efforts and not that the work belongs to the workers and is being helped by Government. And ultimately the entire burden has to go to Government, the workers, of course, not ceasing to make their own efforts to find the necessary funds by all such means, as may be open to them in the present difficult situation prevailing in the country.

8. Now, the question is how to wipe out the deficit of Rs. 5,97,574.73 which still remains. It will, in fairness, be conceded that the Vidyapith has played its part well by wiping out the major part, namely Rs. 9,16,637.81. It has been admitted that the Vidyapith was unable to fill up in full the gap between expenditure and income in time. The institution continued, on the one hand, to make persistent efforts to persuade the Governments of India and Rajasthan to increase their grants and, on the other, to divert its resources meant for other purposes for the wiping out the deficit from time to time. It is no use attempting to apportion the total deficit of Rs. 15,14,212.54 as between the Central and State Governments and the Vidyapith, though the Vidyapith workers' feeling is that they have met more than double their share and the balance left for the two Governments is not very much less than half of what might be their legitimate share.

9. As regards the future, the Government of India have already increased their annual grant of Rs. 35,000/- to Rs. 1,00,000/- and it may be hoped that with the expected change in the Vidyapith's status the University Grants Commission's help to the Institution would be increased considerably. And there is no doubt that even if the Government of Rajasthan may not agree to change their Grant-in-aid

Rules specially for the sake of an institution like the Banasthali Vidyapith they will certainly make the operation of the Rules more just and equitable; and if only that is done, the Vidyapith will not have to face any more deficits. And even if after all that may be possible is done by Government something remains, that will certainly not be beyond the capacity of the Vidyapith workers to make up. This means that if once the residue deficit of Rs. 5,97,574.73 is cleared, there is likely to be no more occasion for any future deficit to occur.

From Shri Mohanlal Sukhadia · Chief Minister, Rajasthan to Prof. V. K. R. V. Rao, Union Education Minister

15-3-69

Kindly refer to D.O. No. F-14/68/EM, dated 30th November, 1968 received from Shri T. Sen, your predecessor.

The President, Banasthali Vidyapith, Banasthali, has been experiencing great difficulty in wiping out the deficit to the tune of Rs. 6 lakhs. The diversion of Vidyapith's resources towards wiping out the deficit will adversely affect the development programme of the Institution being blocked up. A Committee constituted to solve out the financial difficulties of the Vidyapith has also recommended to bridge the gap of the deficit. The management of the institution is not in a position to cut down their existing expenditure to repay off the old outstanding debts. Although the demand made by the President is quite genuine, yet in view of the impending financial stringency in Rajasthan there appears to be no prospect of meeting out the demand in toto. At best the Rajasthan Government can contribute a sum of Rs. 1 lakh only after reducing the expenditure elsewhere.

It is, therefore, requested that a sum of Rs. 5 lakhs may kindly be arranged to be paid to the Management of the Vidyapith to meet out the old accumulated deficit. The President, Banasthali Vidyapith, has assured that once the deficit is cleared off, there is likely to be no more occassion for any future deficit to occur.

From the Assistant Educational Adviser to Govt. of India to the Accountant General, Central Revenues.

1

28-3-69

With reference to the President, Banasthali Vidyapith, Jaipur, Rajasthan, letter, dated 24-11-1968 on the subject mentioned above, I am directed to convey the sanction of the President to the payment of a sum of Rs. 3,00,000/- (Rupees three lakhs only) as an ad-hoc grant for the year 1968-69 for meeting the accumulated deficit of the Banasthali Vidyapith, Rajasthan.

2

26-3-69

With reference to the President, Banasthali Vidyapith, Jaipur, Rajasthan letter, dated 24-11-1968 on the subject mentioned above, I am directed to convey the sanction of the President to the payment of a sum of Rs. 6,00,000/- (Rupees Six lakhs only) for the execution of development projects in the Banasthali Vidyapith, Rajasthan.

From Pandit Hiralal Shastri, President, Bansthali Vidyapith to Dr. Triguna Sen, Union Education Minister.

24-11-68

As you are aware, a Committee was appointed under the orders of the Education Minister to visit the Banasthali Vidyapith and make its recommendations on a request from the Vidyapith for financial assistance. The Vidyapith, among other things, submitted to the said Committee, a building programme of an estimated cost of Rs. 35,00,000/- in regard to which the Committee recommended an order of priority for a number of selected items costing Rs. 22,00,000/-. The Committee added that "the institution may be advised to apply to the Central Government or the University Grants Commission for financial assistance spread over a few years for the above building programme (namely the one costing Rs. 22,00,000/-) for consideration to the extent they fit in the various Schemes of the National Plan, either as loan or as grant, as admissible subject to the availability of funds."

2. Experience gained during 1967-68 and the current year 1968-69 has shown that the building programme as taken up in accordance with the the Committee's recommendations cannot make such headway. We have therefore selected, out of the items recommended by the Committee, the following for execution in the immediate and near future :—

1.	Staff Quarters	..	Rs.	2,50,000.00
2.	Hostels	..	Rs.	3,50,000.00
3.	Central Library Building (Part)	..	Rs.	2,00,000.00
4.	College of Education building (Part)	..	Rs.	1,00,000.00
5.	Gymnasium and Playgrounds	..	Rs.	1,00,000.00
6.	Books and Laboratory and other equipment	..	Rs.	1,500,00.00
7.	Other essential requirements	..	Rs.	50,000.00
		Total	Rs.	12,00,000.00

For these projects estimated to cost Rs. 12,00,000/- I request that the Government of India may kindly sanction a special free ad hoc development grant of Rs. 6,00,0000/-.

3. I would like to recall in this connection that in response to our application, dated the 19th February, 1958 to the then Education Minister (the late Maulana Abdul Kalam Azad) for the sanction of a similar free development grant of Rs. 5,00,000/- the Government of India asked us to send a detailed Scheme indicating the items of expenditure (vide Ministry of Education and Scientific Research's letter No. F. 5-14/58-D. 6 (R H E), dated the 14th March, 1958). The details asked for, being embodied in our letter, dated the 20th April, 1958, were accordingly submitted to Government who were good enough to sanction an ad hoc grant of Rs. 3,00,000/- (copy of sanction, dated the 27th May, 1958 enclosed for ready reference).

4. Since 1958 Banasthali has had its natural normal growth and now the Vidyapith has reached the stage at which some sort of special effort should be made not only to consolidate and strengthen its present position but also to undertake certain essential projects for its further development. During the thirty-three years of its existence the Vidyapith workers have done their very best to raise the necessary funds for the institution's maintenance and development. Against the total recurring and non-recurring expenditure of Rs. 1,36,02,024.69 incurred from the beginning upto 31st March, 1968 the Vidyapith's share amounted to Rs. 63,26,051.61. Our efforts will be continued with the same zeal, but in the most difficult times lying ahead it may not be possible for us to achieve the same success.

5. Hence this request for a special free ad hoc development grant of Rs. 6.00,000/- which I trust will kindly be acceded to by the Government of India. We know that Government are keen on the extension and development of women's education in which field we are happy that they are fully aware of the Banasthali Vidyapith's special position deserving the same special consideration which it has always received from them.

With kind regards,

पंडित हीरालाल शास्त्री की ओर से
सेठ जमनालाल बजाज के नाम

१

२७-२-३८

आपके तार के उत्तर में मेरा तार मिला ही होगा। यहां की स्थिति अभी तक साफ नहीं हुई है। एकदम साफ तो होने वाली भी नहीं मालूम पड़ती है। मि० यंग तो छेड़छाड़ न करने के पक्ष में हैं। परन्तु सर बीचम आदि की मनोदशा अभी तक वैसी ही जान पड़ रही है। मेरे लिए भीतर के उफान को रोकना मुश्किल होता जा रहा है। फिर भी उतावलापन नहीं करना है। राजवाले सहयोग चाहे न करें, परन्तु उन्हें सीधी रुकावट भी तो नहीं करनी चाहिए। सामने वार्षिक अधिवेशन का सवाल है, उसमें भी अड़ंगा खड़ा कर सकते हैं। तो फिर क्या अधिवेशन किया ही न जावे ? मेरा झुकाव तो यही होता है कि अधिवेशन तो हर सूरत में करना चाहिए। राजवाले गोलमाल करने लगें तो फिर इसी सवाल पर सही। आपकी राय क्या है ? आप सभापति बनने को राजी हैं यह बड़ी खुशी की बात है। हमलोग भी आपको बनाना ही ज्यादा से ज्यादा पसन्द करेंगे। परन्तु इसी बात पर राज वालों की ओर से आपत्ति की जाय तो मैं तो ऐसी आपत्ति का मुकाबला करने के पक्ष में हूं।

राज वाले सहयोग करें तब तो एक शान्तिमय कार्यक्रम चल सकता है। वे किसी काम की सुनवाई न करें, उस हालत में उन को कहां तक कहा जाएगा ? राज-वालों से जनता की जरूरतों के बारे में कहा जाएगा तो फिर प्रकाशन की नीति का अवलम्बन करना होगा। अथवा और कौनसी नीति होगी ?

अधिवेशन अप्रेल के प्रथम सप्ताह में हो सकता है। समय बहुत कम है। आपसे सलाह करने के लिए मिलना जरूरी है। यह पत्र मिलते ही लिखिए कि जल्दी से जल्दी आपसे कहां पर मिला जावे ?

२

१६–१२–३८

आपका १४–१२–३८ का पत्र मिला। यहां पर अधिकारियों का जो रवैया है उसको देखते हुए मुझको कुछ भी आशा नहीं है। वे हर तरह से प्रजामण्डल को कुचल देना चाहते हैं। इसमें रत्ती भर भी शक नहीं है। वे आगे बढ़कर जाहिरा तौर पर कुछ नहीं कर रहे हैं। इसका कारण सिर्फ इतना ही है कि उनको मामला बढ़ जाने का बहुत डर है। पुलिस की तरफ से कई प्रकार की अड़ंगेवाजियां हो रही हैं। प्रजामण्डल के मामूली परचे बांटना भी मुश्किल हो रहा है। जगह-जगह नयी तरह के मायावेश-धारियों को मण्डल के खिलाफ प्रचार करने के लिए छोड़ा हुआ है। हम लोग सब कुछ बर्दाश्त कर रहे हैं। लेकिन कब तक करते रहें। मेरा तो अब धीरज टूटा जा रहा है। आप धीरज की बात कर रहे हैं लेकिन मैं तो यह महसूस करता हूं कि हम लोग घाटे में डाले जा रहे हैं। आप दूर बैठे यह सोचा करते हैं कि इनसे हमारा क्या बिगड़ जाएगा—लेकिन मेरी राय से तो हमारा बहुत कुछ बिगड़ता है, जब राज वाले हमारा सब तरह से विरोध करते हैं और हम उसके बारे में कुछ भी हाथ पैर न हिलावें, फिर भी मैंने बेहद संयम से काम लिया है।

मि० यंग को यह शिकायत हो गयी कि मैंने किसानों को लगान न देने के लिए भड़काया है। अगर मैंने ऐसा किया है तो मि० यंग को चाहिए कि वे तुरन्त कानूनी कार्यवाही करें। आप भी उन्हें लिख दीजिए।

अगर राज वाले अपना रवैया नहीं बदलेंगे तो हमारे लिए कुछ महीने तो अलग, कुछ दिन भी हमें तो ठहरना मुश्किल होगा। आप कुछ भी समझें मैं तो इन लोगों की बदमाशियों से तंग आ गया हूं। मैंने इनके साथ इतनी सच्चाई का व्यवहार किया है और इतना धीरज रखा है कि शायद ही दूसरा आदमी इतना कर सकता था। मि० यंग का विश्वास भी मैंने खूब किया, परन्तु अब मैं उनका विश्वास नहीं कर सकता, मुझको पुख्ता से पुख्ता खबरें हैं कि वे भीतर से हमारे खिलाफ क्या-क्या कर रहे हैं।

मैं यह बताना चाहता हूं कि एक हाथ से ताली नहीं बज सकती। मि० यंग आपको यह कहते रहें कि सब कुछ ठीक हो रहा है और यहां पर हमारे लिए खड्डे खोदते रहें, यह कब तक चल सकता है? हमारा तो दम निकला जा रहा है। हम आगे होकर लड़ाई नहीं छेड़ना चाहते। परन्तु फर्ज कीजिए कि लगान के बारे में ही किसानों पर अत्याचार होंगे तो क्या हम बैठे-बैठे देखते ही रहेंगे? उनसे कहेंगे कि नहीं ऐसा अन्याय तो मत करो। मैं तो बराबर यह चाहता रहा हूं कि हम कानून के भीतर तो काम कर सकें। हमारा दम तो न घुटे, चारों तरफ से हमारी चाल तो बन्द न हो। लेकिन यह सब कुछ हुआ जा रहा है और हम असमर्थ की भांति देख रहे हैं।

आप हमारे यहां की मीटिंग के पहले अपनी राय लिख भेजेंगे तो ठीक रहेगा ताकि उस राय पर भी विचार किया जा सके। मैंने ऊपर जो कुछ लिखा है उसके होते हुए भी आप तो निश्चित जानें कि अपने यहां जल्दबाजी में ऊटपटांग निश्चय कुछ भी नहीं होगा। बात इतनी ही है कि जब तक राज वाले अपना रवैया नहीं बदलेंगे तब तक उनका विश्वास करना मुश्किल है।



६–२–४०

कल शाम को नयी दिल्ली पहुंचा। हरिभाऊजी से समाचार मालूम हो गये, यही कि पू० बापूजी सवेरे पंजाब मेल से वर्धा लौट रहे हैं, क्योंकि वायसराय की बातचीत में ज्यादा सार नहीं है। फिर भी बातचीत होने की सम्भावना मानी जा सकती है, परन्तु उसकी शुरूआत वायसराय की ओर से ही हो तब। अबकी बहस यह मालूम होती है कि हिन्दुस्तानियों के भाग्य का फैसला करे कौन—अंग्रेज करें या वे दया करके हिन्दुस्तानियों की राय लेवें। अथवा हिन्दुस्तानी खुद करें। ज्यादा डिटेल का पता लगाने का समय और मौका मुझको नहीं मिला। पू० बापूजी ने एक इन्टरव्यू दी है बहुत करके उससे स्थिति काफी साफ हो जाएगी।

पू० बापूजी से आज सुबह ६ बजे मिला। १५–२० मिनट तक बड़ी शान्ति के साथ बातचीत हुई। पू० बापूजी बहुत अच्छे मूड में थे। राजा ज्ञाननाथ के लिए मैंने जो पत्र तैयार किया है उसको उन्होंने पसन्द कर लिया है। बोले भेज दो—यह तो निर्दोष पत्र है। मेरी इन्टरव्यू का कटिंग उनको दिखा दिया, उसे भी उन्होंने पसन्द किया है। फिर बोले मैंने जयपुर की बात नहीं छेड़ी—ऐसी स्थिति में छेड़ना तो प्रतिष्ठा की हानि थी। तुम अपना काम शान्ति से करो—उनको चिढ़ाने की बात कोई न करो। वे चिढ़ावें तो भले चिढ़ावें, पर तुम चिढ़ो मत। इसी में तुम्हारी जीत है। काम आने वाले आदमी खड़े करो। नामधारी आदमियों से क्या मतलब निकलने वाला है। कुछ भी करो, खादी, अकाल सेवा, साक्षरता-प्रचार करो। खुद को छोड़ दें या मेरा कहना मानें—तुम भी लोगों से कह दो कि हमारा साथ चाहते हो तो तुम्हें इतना करना ही पड़ेगा। शान्ति से काम करते राज वाले किसी को पकड़ें तो पकड़ें। पू० बापूजी ने जो कुछ कहा उसमें मुझको सन्तोष हो गया।

सेठ जमनालाल बजाज की ओर से पंडित हीरालाल शास्त्री के नाम

१

३-११-३६

आपके दो पत्र मिले। मैं आज सुवह ही वम्बई से यहां आया। जयपुर महाराजा की तवियत अब ठीक है। उन्हें गवर्नमेण्ट हाउस ले जाया गया है! उनकी हालत अब खतरे से वाहर है।

मैं वम्बई में करीव ४-५ रोज रहा। मालूम पड़ा कि राजा ज्ञाननाथजी भी यहां आ रहे हैं। मैंने विचार किया कि परिचय तो कर लिया जाय। अतः मैंने उन्हें कोटा तार दिया। उसमें महाराजा साहव के तवियत का हाल देते हुए उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की थी। उनका जवाव आया कि वे भी मिलकर खुश होंगे परन्तु वम्बई आने पर समय व जगह तय कर सकेंगे। ता० २ को महाराजा साहव की ओर गवर्नमेण्ट हाउस में गया। वहां राजा ज्ञाननाथ से सावारण परिचय जवरदस्ती कर लिया गया। ताजमहल होटल में दोपहर २॥। वजे मिलने का तय हुआ।

वे चाहते थे कि उनकी मुलाकात का जिक्र अखवारों में न आवे। काफी समय तक उनसे बातें हुईं व वीच वीच में मुझे एकाध वात साफ-साफ कहनी पड़ी। प्रजामंडल के वारे में बातें हुईं। इस वातचीत पर से यह मालूम पड़ता है कि वे यह चाहते हैं कि ऐसा थोड़ा सा कुछ काम करना चाहिए कि जिससे लोगों को कुछ सन्तोप हो परन्तु इस काम में यह कुछ मजवूती दिखा सकेंगे—इसमें सन्देह है। जव तक प्रजामण्डल के वारे में पूरा फैसला न हो, तव तक सभा इत्यादि नहीं करनी चाहिए ऐसी इनकी राय है। मैंने साफ कहा कि हमारे लिए तो फैसला हो गया है और अव सभा इत्यादि कराने में कुछ

हरकत नहीं है। इनकी बात से मालूम पड़ता है कि यह पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट का साथ देंगे। पहले मुझे सन्देह ही था सोसायटीज अमेण्डमेण्ट में (प्रजामण्डल के) मामले में पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट का हाथ है या नहीं, परन्तु अब तो विश्वास हो गया है कि इसमें उनका तथा रेजिडेण्ट का पूरा हाथ है। इनकी तरफ से कुछ न कुछ गड़बड़ी हुई है इसमें सन्देह नहीं।

हम लोगों को अपने ही पैरों पर मजबूत खड़ा रहना होगा। तब आने वाली कोई भी कठिनाई आसानी से हल हो सकती है। हमें हमारा संगठन खूब मजबूत व उम्दा बनाना चाहिए। इतना मजबूत कि उन्हें हमसे मुलाकात करने की इच्छा महसूस हो। हमें अधिकारियों से मिलने-जुलने का खयाल आज की हालत में कम करके अपने संगठन को ठीक करने में सारी ताकत लगानी होगी। अपनी ओर से कोई उग्र कार्रवाई नहीं करनी है जिससे उन्हें कहने को कोई खास मौका मिले। भाषण वगैरह में खूब संयम से काम लेना होगा। मुझे यहां कु० अमरसिंहजी से भी एक रोज दो घंटे से ज्यादा बातें करने का व वहां की स्थिति समझने का मौका आया है। रेजिडेण्ट व पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट का असर कम करने में पूरी ताकत व बुद्धि का उपयोग करना होगा। वर्तमान हालत में तथा अन्य कारणों से महाराजा से जो आशा की गयी थी उस भरोसे रहने से कोई विशेष परिणाम तुरन्त में आता नहीं दिखता। भविष्य में शायद उनका फायदा मिले।

२

६-२-४०

आपका ६-२ का तार व ४-२ का बम्बई से लिखा हुआ व ६-२ का ट्रेन से लिखा हुआ पत्र मिला। समाचार जाने। पूज्य बापूजी से मुलाकात हो गयी। स्टेटमेन्ट व राजा ज्ञाननाथ के नाम का पत्र उन्होंने पसन्द कर लिया जानकर सन्तोष हुआ।

वैश्य कुल में जन्म होने के कारण अथवा बचपन से काम करने का तरीका व शिक्षण अन्य प्रकार का मिलने के कारण हम लोगों की कार्य पद्धति में फरक तो अवश्य है। मेरे में अब ज्यादा फरक होता दिखायी नहीं देता। अगर ठीक ढंग से फरक हो सका तो मैं तो उसका स्वागत ही करूंगा। आपकी लहर व त्यागी वृत्ति की मेरे मन में पूर्ण इज्जत व कदर होते हुए भी मैं इस मार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकता। खैर, परमात्मा आपकी चिन्ता जल्दी ही कम करे। अभी तो यहीं खतम करता हूं।

पंडित हीरालाल शास्त्री के पत्र श्री सीताराम सेकसरिया के नाम

१

३१-८-५३

आपका २४-८ का पत्र परसों शाम को मिला। मैं परले रोज सवेरे व्यायाम करके शान्ति से पसीने सुखाने वैठा था—धीमी-धीमी वर्षा हो रही थी। मेरे सामने कुछ दूरी पर एक ऊंचे से बिजली के खम्भे पर मोर वैठा था। मुझे खयाल हुआ अभी यह इतनी ऊंचाई से गिर पड़े तो? इसके बिजली का झटका लग जाय तो? इसे किसी ओर से पत्थर या गोली आ लगे तो? अभी पानी के साथ जोर की हवा चलने लगेगी तब यह क्या करेगा? इतने में मोर की मदभरी, रसभरी केका मेरे कानों में आ टकराई? मैंने सोचा कि मोर मुझसे कह रहा है—तुम अपनी भीरुता में यह सब कुछ खयाल करते रहो, मैं तो अपना मस्त हूँ। सुना है मोर जिधर से वर्षा और हवा आती है, उधर रुख करके पेड़ आदि पर बैठता है, मानो उसका मुकाबला सामने से करने के लिए। पिछले दिनों हवाई जहाज के गिर पड़ने के, गिरते-गिरते बच जाने के समुद्र में जहाज डूबने के और डूबते-डूबते बच जाने के और सम्बन्धित लोगों के साहस और बहादुरी के कई एक वर्णन मेरे पढ़ने में आ गये। उन्हें देखते हुए मुझ जैसों का नाम कायरों में लिखा जाना चाहिए। यद्यपि घमंड यही रहा है कि बहुत शूरवीर न सही, पर कायर तो क्या होंगे अपन? ' उसी समय मेरा विचार आपको एक पत्र लिखने का हो गया—कागज कलम तक हाथ जाने को था कि कुछ लोग आ गये, पत्र लिखना रह गया। परसों सवेरे फिर सोचा कि पत्र लिखूं—पर एक अपरिचित अतिथि आ गये। और वनस्थली की सहायता कराने की कल्पनाएं पेश करने लग गये—वे अपनी पोती को दाखिल कराने को आये थे आग्रह करके उसी समय मुझसे मिलने को टूट पड़े मुझे कुछ बुरा भी लगा—पर उनकी बातों ने मुझे खुश कर दिया। मैंने सोचा इस प्रकार अपने आप सहायता करने का इरादा रखने वाले लोग भी हैं तो। परसों शाम को मैंने उनसे

बहुत बातें की—उनकी चर्चा अभी नहीं करनी है। परसों शाम को ही आपका पत्र भी मिल गया। कल सवेरे मैं दौड़ता हुआ सा आपको पत्र लिखने लग गया। कागज छोटा लिया था, वह पूरा भर गया और सदा होती है उससे भी ज्यादा किचपिच हो गयी। मैंने कमला से कहा—तू इसकी नकल करदे—नकल भेज देंगे। बाद में मैंने पत्र वापस मंगवा लिया। इस ख्याल से कि ऐसा लिखा हुआ पत्र नकल होकर क्या जाय—उस पत्र में उड़ान भी बहुत थी। कलकत्ते वालों को मय आपके—ऐसी उड़ान नहीं दिखानी चाहिए, कम से कम मुझे तो, और आजकल तो। इस प्रकार वह पत्र भी रह गया। कल शाम को दूसरा पत्र लिखने को बैठने ही वाला था कि जोर की वर्षा आ गयी साथ में तेज हवा भी। मैं बरामदे में आकर बैठ गया, देखता रहा और सोचता रहा कि कम से कम हवा को तो बन्द करा दूं। अबकी बार दक्षिण दिशा की बौछार बहुत आयी, उधर से आया नहीं करती है—उसने अपने कच्चे घरों की दक्षिणी दीवारों को जर्जरित कर दिया है। लगातार हवा पानी आवे तो न जाने कितनी दीवारें गिर पड़ें। दो चार दिन पहले ज्यादा पानी टपकने से छात्रावास में कुछ हलचल सुनी। मैं भी हंसता खेलता वहां चला गया। लड़कियां वैसे खुश थीं मुझे घेर लिया—'बांध पर ले चलो' का शोर होने लगा। आखिर बांध पर १००-१२५ लड़कियों के साथ मैं गया। वहां पर लड़कियों ने बालू के घर बनाये, गाने गाये, जल्दी से नाव मंगवाओ के नारे लगाये। मैं देखता रहा सुनता रहा, ये लड़कियां इन कच्चे घरों को खुदा की एक न्यामत क्यों नहीं समझें? हिन्दुस्तान की हालत तो इससे बहुत ज्यादा खराब है न? इनमें से किसी देवी को यह प्रेरणा हो जाय कि इस कच्चे छात्रावास को पक्का करके ही मैं चैन लेने वाली हूं। कल शाम को हवा जल्दी बन्द हो गयी—कौन जाने मेरे बल से या अपने आप—फिर वर्षा भी बन्द हुई, यानी कम हुई। मैं पत्र लिखना भूल गया। पोथीपाना बिखरा हुआ छोड़-कर बाहर निकला—चित्रकला की तीन लड़कियां नले की सैर कर रही थीं—कक्षा से लौट रही थी, तो बीच में ही देखने लगीं। मैंने कहा, चलो नले के उस पार चलें। वे घबड़ायीं—अकेला मैं भी नले में नहीं उतरा। इतने में एक साथी को बुलाया मैंने। हम पांचों चले। दर्शक बीसों इकट्ठे हो गये। नले को कई स्थानों पर पार किया—बड़ा तेज था—नदी तक पहुंचे—पर नदी बेचारी बहुत गरीब हो गयी है—उसे बांध दिया गया हैं—लौटते समय नदी नाले के संगम पर नले के प्रवाह के मुकाबले में आये। एक लड़की खड़ी नहीं रह सकी, बहाव में गिर पड़ी, दूसरी का हाथ उससे छूट गया—एकदम पकड़ न लें तो लड़की बह जाय। १२–१३ साल पहले छोटी-छोटी लड़कियों को हम लोग नदी में डाल देते थे—आज इतनी कमजोरी आ गयी है, मैं सोचता रहा। पानी में लथपथ होकर लौटे—देखा आपका पत्र इंतजार कर रहा है। मैंने तय किया कि पत्र सवेरे लिखा जायगा। आज उठते ही बंधे पर गया—वनस्थली में तो वह समुद्र सा भरा पड़ा दिखता है—नाव भी आ पहुंची जो पाल के पास पड़ी है—मल्लाह नहीं पहुंचा है—बंधे को देखकर आप भी खुश होंगे, 'वनस्थली सागर' उसका नाम आज मैंने सोचा है।

इस हवा में मैं हूं और सोचता हूं कहां बैठकर भागीरथजी ने मेरे १२-८ के लम्बे पत्र का उत्तर लिखा था और कहां से आपने अपना २५-८ का पत्र लिखा है। भंडार की पूंजी का सवाल है, और भागीरथजी कहते हैं कि रुपया कम हो तो काम कम कर दिया जाय। इस हिसाब से वनस्थली कभी वनती? इतनी बड़ी होती? इस नीति से अब चलकर देखलो टूट न जाय तो वात ही क्या? आकाश में पांव नहीं करने हैं, पर जमीन पर भी क्या लेट जाना है? आप भी लिखते हो तो अर्थ की ही वात लिखते हो—अर्थ का महत्व है तो सही, पर वह कहां से आना चाहिए—क्रांतिकारी प्रचार के लिए कौनसा अर्थ हो सकता है? कम से कम मुझे और मेरे काम को सुलभ "अर्थ ने वहुत नुकसान पहुंचाया" यह गलती वरावर खटकती थी पर कमजोरी थी एक। वह समय रहते नहीं छूटी—इस सम्बन्ध में पहले जी० कु० के पुराने जमाने में भी और वाद में १९४४-४५-४६ में भी कई वार आगाह किया था आपने मुझे—याद है? वाकी तो दूसरी गलती इतनी ही हुई कि जिनका भरोसा कम करना था, नहीं करना था उनका (और वे एक हजार हो सकते हैं) भरोसा कुछ ज्यादा कर लिया। इन दोनों गलतियों पर से एक कठिन स्थिति पैदा हो गयी—जिसमें से निकलना आसान नहीं था। साथ में श्याम, रतनजी, हरीश, दया और मेरे खुद के स्वास्थ्य का सवाल खड़ा होता रहा—घर की हालत पर भी मेरी हालत का और बीमारी का असर पड़ता रहा। मैं ज्यादातर चुप रहा—जव आत्म विश्वास हुआ कुछ स्नेह का भरोसा जैसा लगा, कुछ सामने वाले की इच्छा और शक्ति का भान भी हुआ तो उससे कहा—जहां इतनी वातें पूरी नहीं हुई वहां कहा नहीं, कहना छोड़ दिया। इस मनोदशा और परिस्थिति के रहते भी पिछले दो ढाई साल में वहुत काम हुआ—शायद दो ढाई लाख हो गये होंगे सव मिलाकर। वम्वई (वहां भी मैं समुद्र को चुपके से देखता था मेरे डेरे के पास ही किनारा था) के छोटे से डेरे के छोटे से कमरे में रात को २।। वजे मुझे अकेले को वेग हुआ। उसमें से मुझे एक चीज मिली—उसे लेकर मैं वनस्थली पहुँचा। रतनजी भी कलकत्ते से आयीं ही थीं—मैंने संकल्प किया कि इतनी रोकड़ मेरे हाथ में आनी चाहिए। अमुक समय तक कुछ लोगों से मैंने कहा—वे ज्यादातर साधन सम्पन्न नहीं थे। मेरा कौल पूरा हो गया—तव मैंने देखा यह हो तो सकता है—पिछला अड़ंगा जितना वचा है उसे ठीक करना है— जीवनकुटीर की रिपोर्ट प्रकाशित करनी है—उसके आगे अनर्थकारी अर्थ के विना चलने का खयाल है। वनस्थली अपने आपको संभाले रहेगी, ऐसी प्रतीति मुझे है। मुझे सेवा से ममता नहीं है—अपनी वात यह है कि भीतर से जो प्रेरणा हो उसके अनुसार काम करना—उसमें गलती होती हो तो हो—वह अपने आप ठीक हो जाएगी—वास्तव में मुझे कुछ चाहिए है नहीं—तव झिझक है इस वात की—जो होना होगा अपने सामने आ जाएगा—१९२८ जैसी स्थिति आज २५ साल के वाद है। १९२९ में जैसा कुछ हुआ था वैसा ही १९५४ में होने वाला है—मुझे अपने ब्राह्मणत्व पर कायम रहना है। उसमें जिसे आप कहते हैं वह होने वाली होगी तो हो जायगी—नहीं होगी कम होगी तो मुझे कोई अफसोस नहीं होने वाला—इससे ज्यादा वातें मिलने पर करेंगे। वच्चे आदि सव ठीक

हैं। रतनजी को खांसी जुकाम हो रहा है। उन्हें लगातार बाहर रहना पड़ेगा। उनसे और सुधाकर, मोहन से थोड़े समय तक काम लेना ही पड़ेगा। कोई दूसरा उपाय नहीं। बाद में वे अपना-अपना काम करेंगे, मैं अपना जिसके लिए मैं उन्हें नहीं सताऊंगा।

विजया ठीक हो रही है। समय तो लगता ही है। अक्टूबर में कब तक आप आने वाले हैं और भागीरथजी कब तक ?

विजयसिंहजी का किराया भी पहुँचा होगा। इन्द्रनाथजी को लिखा तो कोई बात नहीं उनसे सुधाकर का व्यवहार है।

दया तो निभ रही है।

पुनश्च:

एक बात और रह गयी—दुनिया का (यानी तथा कथित मित्रों का, ज्ञान वालों का) तरीका दूसरा है। आप जीते हुए दिखायी दो तो आपके दोष लुप्त हो जाएं—शायद वे गुण दिखने लग जाएं। कहीं आप हारे हुए नजर आओ तो आपके गुण बेकार हो जाएं और शायद वे दुनियां को दोष दिखने लग जाएं। यह गांधीजी तक के साथ हुआ है। अपनी ज्यादा मुश्किल इसलिए है कि अपन कहीं बीच में हैं। ऐसी दुनिया के भरोसे पर चलना है क्या ? कुछ लेना हो तब तो इस पड़त से चलना पड़े। यदि किसी को सचमुच लेना नहीं है तो फिर जो ठीक रास्ता हो उसपर चलना चाहिए। चलते चलते जो सामने आता जाय उसे देखते जाना—सेवा भी होती होगी तो वैसे ही हो जाएगी—अपने आपको खोकर या बेचकर सेवा करनी है क्या ? कम से कम मुझे नहीं करनी है। गलत रास्ते से सही सेवा नहीं हो सकती। सेवा करते हुए दिखना तो अपने को कभी सुहाया ही नहीं, आजतक। आज और कल जन्माष्टमी है। मुझे कांग्रेस छोड़े दो साल हो गये।

२

२४-६-५४

१५-६-५४ का पत्र मिला। मेरा १३-६ का पत्र आपको १५-६ को तो मिलना ही चाहिए था। मोहन जयपुर आया है। हम लोग संचालक मंडल के लिए इधर आ गए थे। रतनजी मोहन से मिलने जयपुर चली गयीं हैं। मैं दो एक दिन और यहां पर ठहरूंगा।

अपना काम सीधे पहाड़ पर चढ़ने जैसा है, या जरा सी किश्ती से समुद्र पार करने जैसा है, या घोर अन्धकार में दीपक जलाने जैसा है, या बीहड़ जंगल में रास्ता खोजने जैसा है, आकाश में तारे तोड़ना जैसा भी हो सकता है पर सच्चाई से इसे करना होगा तो करना ही पड़ेगा। अपनी बात के पक्ष में वातावरण बहुत अच्छा है।

'नवजीवनकुटीर' लोगों को बहुत पसन्द आया है। आधे दर्जन नए साथी मिल गये हैं। एक तो पुरानी मोटर कवाड़ी है। नल, बिजली, टेलीफोन की व्यवस्था की है। दिन भर आदमी आते ही रहते हैं। अपने त्रिविध कार्यक्रम के लिए जयपुर शहर में नवजीवन-केन्द्र खुल रहे हैं। प्रस्तुत कार्यक्रम की राजस्थान भर में ठीक चल निकलने की आशा है। आगे की दिशा रुपये में बारह आने स्पष्ट है। बाकी चार आने भी काम के चल निकलने पर स्पष्ट हो जाएगी।

नन्दकिशोरजी तो चले ही गए थे, सुधीन्द्र चला गया सो कैसा अनर्थ हुआ? जिन्दगी का यह हाल होते हुए मनुष्य किन-किन बातों के पीछे पागल बना रहता है? भागीरथजी इस पत्र को देख ही लेंगे। उनके पत्र का मैं इन्तजार कर रहा हूं। जोवनेर के एक बाल गोठिया के लड़के को १५) या २०) की छात्रवृति देनी है। वनस्थली के सबसे पुराने शिक्षक गणेशलालजी के लड़के को भी। आजकल मेरे पास यह सेवा नहीं है। मैं बहुतों को इनकार करता रहता हूं, लेकिन दो एक तो ऐसे हो ही सकते हैं, जिनको इनकार करें तो कैसे करें? और इनकार न करें तो वर्तमान स्थिति में क्या करें?



१५-११-६२

नेपाल से लौटने पर मुझे आपका ३-११-६२ का पत्र मिला। रतन जी श्याम और मैं तीनों गये थे। अपनी इस नेपाल यात्रा से हमें बड़ा संतोष हुआ। नेपाल की ओर से वनस्थली को आर्थिक सहायता फिलहाल ५००० रु० नेपाली रुपयों में मिलना शुरू हो गया, यह तो इस समय अपेक्षाकृत छोटी बात समझी जा सकती है, हालांकि वैसे यह बात भी असल में मामूली नहीं है। मेरा जो दूसरा मिशन नेपाल जाने का था वह भी बहुत सफल रहा। मैं नेपाल वालों को (खुद महाराजाधिराज तथा परराष्ट्र मंत्री आदि) को तो यह समझा सका कि नेपाल का सच्चा पड़ौसी, मित्र व भाई भारत ही हो सकता है और उन्हें किसी भी हालत में चीन का भरोसा करके नहीं चलना चाहिए। वे लोग चाहते हैं कि मैं दुबारा उनके बीच में पहुंचूं। मैं दिल्ली में पंडित जी आदि से मिलकर गया ही था और लौटकर उन्हें रिपोर्ट दे ही दी। जहां तक मेरा खयाल है मुझे दिसम्बर में फिर नेपाल जाना पड़ेगा।

देश की इस बदली हुई स्थिति में मित्रों की वनस्थली यात्रा कैसी क्या पार पड़ेगी सो मैं चारेक दिन बाद दिल्ली पहुँचूंगा तब देख लूंगा। जैसा होगा कर लेंगे। बाकी इस नयी सूरत में अपने को वनस्थली में विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है।

आपने मेरी प्रतिक्रिया जानना चाहा है सो थोड़े में इस प्रकार है। (१) सब आलोचनाओं को छोड़कर हम लोगों को जवाहरलालजी के हाथ मजबूत करने चाहिएं

(२) ऐसा मौका देश के सामने आया है सो कई दृष्टियों से अच्छी बात है—छोटी बातों में बिखरे बिखरे और बड़ी बातों में अचेत से पड़े थे सो कुछ चेतना आ रही है और कुछ एकता का दर्शन भी होने लगा है। यह उत्साह की लहर मैं समझता हूं, जरूरत के माफिक बनी रहेगी और (३) फिर यह झगड़ा बहुत लम्बा चले, ऐसा मुझे नहीं लगता है। चीन की अपनी मुश्किलें बहुत ज्यादा हैं और वे मुश्किलें बढ़ेंगी। दूसरी ओर हम लोग जल्दी ही तैयार हो जाएंगे चीन को अच्छी टक्कर देने के लिए।

अपनी जो बातें हुई हैं उनको व्यवहार में आना चाहिए सो दृढता और आग्रह के साथ अभ्यास करने से आ सकता है। मुझे खुद को तो सफलता मिलती हुई दिखायी दे रही है, आपको भी सफलता मिलेगी।

भगवान देवी खुश होंगी ? मैं दुबारा कलकत्ता आने की सोच रहा था। अब तो कुछ ठिकाना नहीं कब तक आना हो या थोड़े समय तक न भी हो। रतन जी के चेहरे पर आपको स्वास्थ्य लगा सो खुशी की बात है। असल में रतन जी में आत्मबल बहुत है जो अभी नेपाल की कठिन यात्रा में सिद्ध हुआ। जहां तक हो सका एक नया बिदा का गीत इस पत्र साथ भिजवाऊंगा। पणिहारी के नये पुराने दोनों गीतों को बाद में भिजवाऊंगा।

पत्र ५६, साउथ ऐवेन्यू, नयी दिल्ली के पते से भेजें।

४

३-१२-६२

आपका २३-११-६२ का पत्र कल मेरे हाथ लगा। इसे दिल्ली पो० आ० ने ५६, साउथ एवेन्यू के बजाए परभारा जयपुर भेज दिया और यह जयपुर से कल यहां आया। मैंने एक पत्र प्रहलाद के नाम आपके पते पर भेजा था सो आपने उसे पहुंचा दिया होगा। सत्यनारायण के विवाह की सूचना मुझे नहीं मिली, अब उसका विवाह हो चुका होगा। उसके लिए दो शब्द लिखकर इसी लिफाफे में रखने का विचार है। विवाह सादगी से होना अच्छा है, पर जो विवाह सादगी के नाम पर होते हैं उसमें से अधिकतर में दूसरे प्रकार की बेसादगी आ जाती है। मनुष्य जीवन में विवाह का एक बड़ा मौका है। मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि मैं पन्ना के लड़के के विवाह के समय उपस्थित नहीं हो सकूं। पुराने रीति रिवाजों में बहुत खराबियां आ गयीं सो सही है—पर नयी खराबियां भी तो नहीं आनी चाहिएं।

नेपाल से वनस्थली के लिए आर्थिक सहायता का श्रीगणेश होना बड़ी बात है। भारत सरकार और दिल्ली प्रशासन के अलावा राजस्थान सहित ७ राज्यों की बात पहले थी। मैसूर, गुजरात और बंगाल का वादा हो गया था जिनमें पहले दो की सहायता मंजूर हो गयी है और बंगाल की मंजूर हो जाने वाली है। मद्रास और महाराष्ट्र के मुख्यमंत्रियों ने सहायता देने की हां करली है। आन्ध्र और केरल के लिए

मैसूर के मुख्यमंत्री ने पक्का वादा किया है । इतना हो जाने के बाद एक आसाम की बात बचेगी जिसे बाद के लिए छोड़ देना होगा । सरकारी सहायता में आजकल पहले से ज्यादा चढ़ाव उतार आ रहे हैं । पता नहीं कौनसी सहायता मिलती मिलती न मिले और कौनसी न मिलती हुई दिखायी दे और वास्तव में मिल जाए । पब्लिक से रुपया पाना वर्तमान समय में बहुत मुश्किल दिखायी दे रहा है । फिर भी अपने को कोशिश तो करनी होगी । जैसा भी कुछ होगा देखा जाएगा, बाकी अपने लिए अत्यन्त असाधारण स्थिति बन सकती है ।

देश की स्थिति के हिसाब से वनस्थली में थोड़ा बहुत करने का यत्न हो रहा है । रुपया भेजना, रक्तदान करना, ऊन का काम करना, राइफल ट्रेनिंग देना, एन.सी.सी. को बढ़ाना, आसपास में सामयिक प्रचार करना इत्यादि । लोकवाणी में सरकार को मुफ्त स्पेस दे रहे हैं सो सुधाकर का कहना हैं २॥–३ हजार मासिक तक की हो जाएगी । मेरी नेपाल यात्रा से जो भूमिका बनी थी उसका कुछ कुछ असर आपको दिखायी दे रहा होगा न ? मेरा दुबारा जाना जरूरत पर निर्भर होगा और जरूरत का निर्णय पंडितजी करेंगे । मैं हर घड़ी तैयार हूँ और पूरे विश्वास के साथ । मैंने पंडितजी को दोहे लिखकर दिये हैं....'गांधीजी को मानते, हम नहिं करते वैर । पर हम पर हमला किया, नहीं चीन की खैर ॥१॥ सदा शान्ति के दूत तुम, वीर जवाहरलाल । जंग सामने आ गया, इसमें करो कमाल ॥२॥" उस दिन उनके साथ नाश्ता किया था तब आधे घण्टे के समय में मैंने उन्हें कुछ काम की और कुछ मजाक की बातें अच्छी तरह सुनादीं ।

जवाहरलालजी की गलतियों का पार नहीं । काश्मीर के मामले में, तिब्बत के मामले में, नेपाल के मामले में, चीन के सारे मामले में । पर इस समय हमें उनकी किसी भी गलती को याद नहीं करना है । उनका पूरे दिल से समर्थन करना है।....का जो आना हुआ है उसे मैं शुभ नहीं मानता हूँ, दूसरी ओर...का जाना बहुत जरूरी था । मेरी मान्यता के कई कारण हैं जिन्हें मैं आज लिखकर भेजने को तैयार नहीं हूं । अपन मिलेंगे तब आपको बताऊंगा । चीन की इस गड़बड़ में देश के साम्यवादियों को बहुत बुरा धक्का लगेगा जिससे वे आसानी से संभल नहीं पाएंगे । जनता में जोश की लहर है, पर उसका सदुपयोग करने की क्षमता उनमें नहीं है जिनके हाथ में जहां तहां देश का काम सौंपा हुआ है---आसाम में तेजपुर में जो कुछ हुआ वह कितना शर्मनाक था और वह जहां तक मुझे मालूम है दिल्ली के हुक्म से हुआ । लड़ाई में अपना बड़ा भारी नुकसान हुआ है । इतना नुकसान झेलने की अपनी ताकत कहां है ? पर वह ताकत अब पैदा होगी । अमेरिका और ब्रिटेन से अपने को भरपूर सहायता मिलेगी । पाकिस्तान को ठंडा होना पड़ेगा, नेपाल को सीधा अपनी तरफ आना पड़ेगा, रूस चीन की असल में मदद नहीं करेगा बल्कि शायद वह उसे नीचा दिखाने की इच्छा रखे, लड़ाई बड़े पैमाने पर नहीं होगी, क्योंकि उससे विश्वयुद्ध हो सकता है और विश्वयुद्ध की तैयारी किसी की

नहीं। कम से कम रूस की वह तैयारी बिल्कुल नहीं। अस्त्र शस्त्र में अमेरिका रूस से बहुत आगे बढ़ा हुआ है, अन्तरिक्ष यात्रा की बात अलग है। लड़ाई बढ़े तो अपने को कम से कम २० लाख फौज चाहिए, और २० करोड़ रुपया रोजाना खर्च करने पड़ें। जो कुछ हो इस सारे झगड़े का परिणाम देश के लिए अच्छा होगा। झगड़ा बढ़ेगा तो नया नेतृत्व भी पैदा हो जाएगा। पर आज तो हमें जवाहरलालजी के लिए शुभ कामना करनी चाहिए। जवाहरलालजी अब कमजोरी दिखाने की स्थिति में नहीं रह गये हैं, वे कमजोरी दिखाएं तो उनकी जिन्दगी भर की कमाई खत्म हो जाए। पर स्वभाव तो उनका जो है सो ही है। ऐसे समय पर हमें चर्चिल का स्वभाव चाहिए। मैं चर्चिल का बड़ा भारी प्रशंसक हूँ। कैनेडी ने भी अपनी भीतरी ताकत का अच्छा सबूत क्यूबा के मामले में दिया है। बस, इस झगड़े को अभी तो यहीं समाप्त करता हूँ।

विदा का गीत वनस्थली के उस मौके और उस वातावरण के लिए ही है। आपने उसे पढ़ा है, मौका मिलने पर उसे आप दया से सुनोगे तो मुग्ध हो जाओगे। आजकल वनस्थली में दया को सबसे ज्यादा जोश है, नित्य नये गाने बनाती है और कहती है चीनियों को तिब्बत के उस पार लेजाकर छोड़ो। दया पंडित जी से बहुत नाराज है। दया का लड़का हर समय बन्दूक चलाने की बात करता है। लीजिए, विदा के गाने के साथ फिर लड़ाई आ घुसी है, क्योंकि मेरा दिमाग भी तो वैसा ही हो रहा है। पनिहारी के दोनों गाने अभी नहीं भेज सकूंगा उन्हें ठीक करने में समय लगेगा सो अभी निकालना संभव नहीं है।

मैं कलकत्ता जाऊंगा तो सुधाकर भी आएगा। सुधाकर अकेला भी आ सकता है। वह ३-११-६२ से पांव के फ्रेक्चर में पड़ा था। अब उठने लगा है। ५ दिसम्बर को उसकी साल गिरह है।

५

१३–५–६७

आपका पत्र कल मिला उस पर तारीख साफ लिखी हुई नहीं है शायद १०-५-६७ होगी? इचलकरंजी पूना से दक्षिण में जो कुछ जाना हुआ मिरज नाम का कस्बा है उससे बीसेक मील है—कोल्हापुर से भी उतनी ही दूर है। रेल का स्टेशन नहीं है। वहां पर हैंडलूम व पावरलूम से कपड़ा अच्छी मात्रा में तैयार होता है। पिछले दौरे में जितने स्थानों पर गया वे सब नये थे। एक स्थान पर जालना में मैं केवल एक आदमी को जानता था। न वहां के लोग मुझे या वनस्थली को ही जानते थे। दौरे में गर्मी की तो क्या बात कही जाय—एक भी जगह जैसा चाहिए वैसा बाथरूम नहीं मिला। एक जगह तो बाथरूम नाम को भी नहीं था—टट्टी भी ऐसी थी कि उसमें घुसना, बैठना, निकलना सभी कुछ परीक्षा लेने वाले काम थे। लोगों ने मेरी खातिर

बहुत की और मुझे मजा बहुत आया—सैकड़ों मील बस में चलने में, बस स्टैण्ड पर घंटों इन्तजार करने में और रेल के प्लेटफार्म पर रात भर पड़े रहने में। इन सारी स्थितियों में काव्य रचना होती रहती थी। अपना मिलना होगा तब आपको काव्य का रसास्वादन कराऊंगा।

मैंने जो कुछ लिखा था उसका मतलब यह था कि कलकत्ते में कुछ (शायद दो चारेक) ऐसे लोगों को चुना जाय जिनके पास आप और मैं (और जा सकें तो भागीरथ जी भी) मिलकर जायं और वनस्थली की ओर से उनसे ठीक ठाक सी मदद चाहें। व्यक्तियों का चुनाव आप लोग ही कर सकते हैं और आप लोगों को ही करना चाहिए। उन लोगों को किसी दूसरे चन्दे के लिए एक बार बाद दिया जा सकता है। बात यह है कि मैं वनस्थली का ऐसा बजट बना रहा हूँ जिसमें घाटा नहीं रहेगा और उस बजट में चन्दे की आमदनी जमा नहीं की जाएगी यानी चन्दे की मदद के बिना घाटा नहीं होगा। चन्दे का उपयोग या तो पिछले घाटे की पूर्ति के लिए होगा या होगा अनिवार्य निर्माण के लिए। पिछले घाटे की पूर्ति के लिए ज़्यादातर भारत सरकार और राजस्थान सरकार से लेने की कोशिश होरही है—फिर भी अपनी पांती में चारेक लाख तो आ सकते हैं। नये अनिवार्य निर्माण के लिए भी ५-७-१० लाख अपने हिस्से में आएगा, भारत सरकार, राजस्थान सरकार व अन्य सरकारों से जितना मिल जाएगा उसके अलावा। जितना रुपया १०, १२, १५ लाख अपनी पांती में आयेगा उसे मुझे प्रतिज्ञा के तौर पर अमुक अवधि में कर लेना पड़ेगा। ऐसी अभूतपूर्व परिस्थिति में मुझे विशेष मदद की जरूरत पड़ती दिखायी दे रही है। विशेष मदद किससे मिले ? आप जैसों से और आप जैसे कोई और नहीं हैं तो आपसे। इतना काम कर लेने के बाद मैं घर घर जाकर चन्दा मांगने के काम को बन्द कर दूंगा। पुराना घाटा पूरा हो चुकेगा नया घाटा (बिना चन्दे के भी) होगा नहीं और निर्माण काम के लिए अपनी पांती का रुपया घर बैठे ही आ जाएगा और कुछ स्थायी निजी आमदनी कर लेंगे, जितनी आजकल करते हैं उससे ज्यादा। और आखिर तो निर्माण उतना ही पार पड़ेगा जितने के लिए साधन होगा—राज से आने वाला साधन और अपनी ओर से जुटाया जाने वाला साधन। इस समय अपनी स्थिति अत्यन्त कठिन है, देश की, जनता की और सरकारों की स्थिति भी बहुत कठिन है। इस सारी स्थिति में मेरा आत्मविश्वास ज्यों का त्यों कायम है। इतना ही है मुझे तकलीफ ज्यादा होगी, नये नये प्रयत्न करने होंगे। जो मित्र मेरी तकलीफ के पांतीदार होना चाहेंगे उन्हें पांतीदार बनाने की कोशिश मैं करूंगा। पिछले सालों में मैंने किसी को कोई खास तकलीफ नहीं दी। जो समय विपत्ति का था उसमें आपने कमाल की मदद दी और भागीरथ जी ने भी दी—उसके लिए मैं आज क्या कहूँ ?



श्री सीताराम सेकसरिया के पत्र पण्डित हीरालाल शास्त्री के नाम

१

१२-१०-४३

कई दिनों से आपके पत्र को उड़ीक रहा हूँ। इस बार जेल में आपका मेरा जैसा नियमित पत्र व्यवहार चला वैसा न तो किसी दूसरे मित्र के या अन्य किसी के भी साथ नहीं चल सका। पन्ना प्रहलाद आदि को उत्तरों की गड़बड़ी के कारण प्रायः चार पांच महीने से पत्र लिखना बन्द कर दिया पर वे लोग तो महीने में एक दो बार मिल लेते हैं इसलिए काम चल जाता है। दूरके लोगों का मिलना तो पत्रों का ही मिलना है। शायद मेरे दो पत्रों का उत्तर आप नहीं दे पाये हैं। वनस्थली के उत्सव का समय भी था। उसमें या अन्य किसी अड़ंगे में फंसे हुये होंगे इससे देर हुई या मेरे पत्र ही आप तक पहुँचे न हों, पता नहीं, पर पत्र की इन्तजारी काफी रही। परसों रात में स्वप्न में रतनजी को और बाई को देखा। आज की रतन जी जो इतनी मोटी हो गई हैं तथा देश समाज की जानकारी में आ गई हैं और एक खद्दर की मोटी साड़ी और ब्लाउज में सन्तोष मानती हैं उस रतनजी को नहीं, आपको याद हो तो उस रतन जी को जब अपने ग्रहण के दिन सियालदह स्टेशन से लाने गये थे एक नाटी कद की निहायत गोरी और दुबली पतली तथा कानों में दो मोती के कुछ पहिने और हल्का सा छोटा सा घूंघट किये जो परदा छोड़ने की प्रथमावस्था में लज्जा के कारण बरबस कर लिया जाता है उस रतनजी को देखा, बाई को भी उसी रूप में देखा जैसी वह थी। आपकी प्यारी चीज अंगूर उन लोगों को खाने के लिए दिये। बाई बहुत खुश हुई और कहा कि बस हमें सच्चा प्यार आपही करते हैं। उसके बाद आंखें खुल गयी तो भाई साहब न मालूम आज की और कल की आपकी मेरी कितनी बातें रहीं। भाई भागीरथ जी तो राहत के कार्य में बेजा तौर से लगे हुये हैं। पन्ना भी थोड़ा काम करती है, परसों मुलाकात में कहती थी कि राहत का काम कुछ काम थोड़ा ही है। यह केवल मन सन्तोष की बात है। वास्तव में इससे कोई असली सहायता नहीं होती, न मरते हुए आदमियों को ही बचाया जा सकता

है। शायद कुछ लोग बचते हैं तो कुछ ज्यादा भी मर जाते हैं खासकर उस राहत से जिसमें रांधा हुआ अन्न भूखे लोगों को खिलाया जाता है। भागीरथजी काम खूब करते हैं। पैसा तो इस समय जितना चाहो उतना मजे से मिल ही जाता है तो भी उनके पत्रों से भी संतोष नहीं मालूम होता। दरअसल बीमारी की दवा नहीं होती पर ऐसा मानकर संतोष कर लेते हैं कि क्या करें बीमारी की दवा तो अपने पास है नहीं। हो सके तो रोगी की सेवा ही कर कर उसको आराम पहुँचावें। सेवा की भावना तो सच्ची है पर रोगी का उससे कितना भला होता है यह तो जरा सोचने की ही बात है। मैं अपनी तो क्या कहूँ यहां बैठे सिवा विचार करने के और कोई चारा नहीं पर बंगाल की हालत इतनी नाजुक है कि उसके बारे में सोचें तो अन्धकार के सिवा कुछ नहीं दिखाई देता। तो भी यह आशा करनी चाहिए कि इस अन्धकार के भीतर ही प्रकाश–किरणें छिपी हुई हैं और समय आने पर वह प्रकाश प्रखर होकर हमें आलोकित करेगा। वनस्थली के उत्सव के साथ दूसरे सब समाचार तो आपने लिखे होंगे। मैंने लिखा था कि वनस्थली में दसेक बीघा जमीन मेरे लिए ठीक करके दो एक हजार में कोई ठीक ढंग से मकान की तदबीज हो तो करलें, इस बारे में कुछ शंका हो तो लिखें। और सब काम ठीक चल रहे होंगे। रतनजी को प्रणाम कहें, सुधाकर, श्याम को प्यार। वे अच्छी तरह पढ़ रहे होंगे। आपकी दया तो अपने क्लास में अव्वल होगी ही। सुशीला भी आगे पढ़ ही रही है। सबको प्यार। वनस्थली में जो नई नई बहिनें आई हैं उनसे मेरा परिचय नहीं हो सका है तब भी वनस्थली के साथ सम्बन्धित हो गई तो परिचय अपने आप ही होगया, उन सबको भी प्रणाम। आप तो तनमन दोनों से अच्छे होंगे। नथ्थूजी को क्या लिखें, उनके अक्षरों को देखने का तो खूब अवसर है ही।

२

३–१२–४३

आपका ता० २७-११ का पत्र मुझे आज मिला। पत्र जाने और उत्तर आने में काफी समय लग जाता है, लेकिन आशा है अब कुछ जल्दी पत्र जाने आने लगेगा। कारण अब एस. पी. आफिस में पत्र न जाकर सीधा जेल में आने की बात है इसलिए अब से आप यहीं के पते पर पत्र भेजें। ज्यों-ज्यों समय जाता है मिलने की इच्छा स्वभावत: बढ़ती जाती है, पर संतोष माने बिना काम नहीं चलता। मिलना तो जब उसका समय आएगा तब ही होगा। हंसाबहिन का व्याख्यान सुधरा हुआ छपे तो ही अच्छा है। आगामी वर्ष के लिए राधाकृष्णन की कोशिश तो करें ही, दूसरा नाम जयकर का भी अच्छा है। यदि राधाकृष्णन की पार न पड़े तो जयकर के लिए कोशिश करनी चाहिए।

दबने का मेरा मतलब अनुचित दबाना नहीं था। वही बात जो आप कहते हैं, जहां तक संभव हो समझौते की नीति से काम लेना ही था। संस्था की स्वतन्त्रता खोकर

संस्था रह ही क्या जाएगी ? इसलिए यह तो सवाल ही नहीं, जो हो आज यह सब बातें क्यों करें।

शास्त्री जी, वनस्थली के स्थापनाकाल से या यों कहिये कि उसकी गर्भावस्था से ही मेरा उसके साथ हार्दिक सम्बन्ध और आकर्षण रहा है और मैंने अपनी स्थिति के अनुसार उसे अपना माना और समझा है पर मैं अपने मन की इच्छा और आपकी आशा के अनुसार काम नहीं कर सका और पता नहीं कि आगे कितना क्या कर सकूंगा। क्योंकि मैं ज्यादा शहरी बन गया, यह तो आप ज्यादा से ज्यादा जानते हैं पर मेरा मन हर वक्त वनस्थली के लिए चिंतन करता है और मैं चाहता हूँ कि मैं अमली तौर पर इसमें शरीक होऊं। यह तो मैं नहीं जानता कि मैं वनस्थली की कितनी सेवा कर सकता हूँ और मेरी सेवा से उसे कितना लाभ होगा पर मुझे संतोष होजावे तो मेरा काम होगया।

यह भी मैं बराबर महसूस करता हूँ कि रतनजी पर जरूरत से ज्यादा बोझा पड़ता जारहा है और कभी कभी तो यह भी सोचता हूँ कि वह बिचारी भली स्त्री आपकी भावनाओं के बोझ से दबती दबती कहीं पिस न जावे। यदि रतन जी को मैं जरा भी सहारा दे सकूं तो यह मेरे लिए ज्यादा से ज्यादा खुशी की बात होगी। पर भाई साहब, आप मेरे रहने का वहां बन्दोबस्त तो करिए, कोरी बातों से काम कैसे चले।

संस्था बड़ी होती जारही है, खर्च खूब बढ़ रहा है, मंहगी की वजह से कठिनाइयां ज्यादा बढ़ गई यह सब तो ठीक, पर यह भले लोगों के प्रचार वाली बात क्या हुई, यह संस्था के अन्दर के लोग हैं या बाहर के, इस बात से तो मुझे बहुत चिन्ता हुई। अपनी संस्था बिल्कुल लोकमत पर खड़ी है, लोकमत बहुत कच्चा धागा है। अपने सच्चे हैं तो अपने को डर तो क्या है—सांच को आंच नहीं, पर इस बारे में काफी सावधानी तो रखनी ही पड़ेगी। अखबारों में कोई चीज न आवे यही अच्छा है। क्या करें मिलना नहीं हो सकता, बड़ी दिक्कत लगती है ऐसी बातों के समय। दिवाला निकलने की बात खूब रही। दिवाला तो उसका निकलता है जिनकी साहूकारी चलती हो, आप जैसों का क्या जो फक्कड़ पंथ के पुजारी हैं। रतन जी जैसों को भी कुछ चिंता या जिम्मेदारी है पर आपका क्या, दिवाला निकले तो क्या, और लाखों पर लेखन चले तो क्या पर अपना दिवाला निकल कैसे सकता है। भाई साहब, मैं यहां बैठे बैठे सुना करता हूँ कि अमुक ने बीस लाख कमाये, अमुक ने पचास लाख और अमुक करोड़पति होगया, अमुक का कोई पता नहीं कि कितना होगया और ऐसे ऐसे लोगों का नाम सुनता हूं जिनकी हैसियत दस बीस हजार की नहीं थी वे बीस तीस लाख वाले होगये तो इस मौके पर अपने दिवाले से डरते रहे तो मुश्किल बात है। ऐसे मौके पर अच्छा खर्च स्थाई रूप से चले इसका इन्तजाम होना चाहिए। बस पत्र तो समाप्त होगया पर बातें नहीं, खर फिर।



७–९–५३

आपका ३१-८ का पत्र यथा समय मिला था। उसको भाई भागीरथजी के साथ पूरा पूरा आज पढ़ा। आपने पहले पत्र के बारे में लिखा है कि वह बहुत किच पिच पत्र होगया था। आपके अक्षरों को पढ़ना सहज नहीं फिर किच पिच हो जाय तब तो शायद पढ़ा ही न जा सके।

इस पत्र में आपने मोर की बात खूब लिखी। राजस्थान का मोर भी एक कविता ही है। वनस्थली में मोरों के सौन्दर्य को निरखने का अच्छा सुयोग मिलता है। वनस्थली का जीवन कूप अब वनस्थली सागर बने तो क्या बड़ी बात है सागर भी बनना ही चाहिये। वनस्थली में सागर में नाव चल सकती है या चल सकेगी इसकी कल्पना तो की ही नहीं जा सकती थी। आप कहा करते हैं न कि इस जगह में अपने आप एक सिद्धि है। शायद उस सिद्धि का ही प्रताप हो कि इतने बड़े रेगिस्तान के इस छोटे से हिस्से में इन्द्रपुरी जैसा यह वनस्थली विद्यापीठ आहिस्ते-आहिस्ते बनता जा रहा है। अक्टूबर तक आपके इस सागर में नाव चलने जैसा पानी रहेगा तो नाव चलाने का, कम से कम नाव चलती देखने का आनन्द लिया जा सकता है।

आप व्यायाम कबसे करने लगे ? पूजा पाठ तो करते थे और कर सकते हैं पर आप व्यायाम करें यह तो मैं नहीं समझ सका। यदि स्वास्थ्य ठीक रहता हो और व्यायाम करना उसमें सहायक हो तो जरूर करना चाहिये।

आपने लिखा है कि तुम भी अर्थ की ही बात लिखते हो। पता नहीं मैंने कैसे क्या लिखा या आपने उसे किस तरह लिया। आप तो जानते हैं कि मैं अर्थ की उपासना नहीं करता न अर्थ का दास ही बन सकता हूं। मुझ पर अर्थ का प्रभाव भी कितना पड़ता है यह कहना कठिन है। मेरे मन में तो अर्थ के प्रति रोष ही बढ़ा है। आर्थिक व्यवस्था बदलने के लिये जो भी किया जाय वह मुझे अच्छा लगता है। मैंने शायद यही लिखा होगा कि आज की अर्थ प्रधान व्यवस्था में सब कामों पर अर्थ का प्रभाव बढ़ता जारहा है। इससे मुक्ति पाने का काम करना आज शायद सबसे जरूरी काम है।

मैंने उस पत्र में शायद कई बातें लिखीं थीं वे सांकेतिक ढंग से ही लिखी थीं और यह भी लिखा होगा कि अपन मिलेंगे तब पूरी बातें होंगी। यह तो यों ही मन में जो कल्पनाएं आती हैं वे जरा साधारण ढंग से लिखी हैं।

आप सदा ही अपनी आत्मा की प्रेरणा से काम करते रहे हैं। अब भी वैसा ही करना ठीक है। जान बूझकर तो कभी भी ऐसा काम नहीं करना है जो गलत या दोष भरा मालूम हो। जब कुछ चाहिये ही नहीं तब तो कोई गलती होती ही नहीं पर कई बार ऐसा होता होगा या होता है कि हम अपने अन्तर-मानस को पूरा समझ नहीं पाते। जो हम करते हैं वह अपने आप ही हमारी कोई भीतर की बात जिसको हम प्रत्यक्ष नहीं

देख सक रहे हों हमसे वह काम करा लेती है जो शायद हम अच्छी तरह देख सकते तो न करते। जो हो, अपने आपको समझना और उसके अनुसार चलना यही काम होना चाहिए, हो सकता है आप जैसों के द्वारा।

दया सुशीला को पत्र देने में देर तो बहुत ही हुई पर दिया था। वह उन लोगों को मिल गया होगा। मैंने उनके पत्र का उत्तर देने में इतनी ज्यादा देर की तो उनको यह उलाहना नहीं दिया जा सकता कि पत्र का उत्तर नहीं मिला। वे लोग अच्छी होंगी।

श्यामजी को भी पत्र लिखा था, उनका कोई उत्तर नहीं मिला। आप उनको पत्र लिखें तब लिख दीजिएगा।

विजयसिंह जी का न तो कोई पत्र मिला न भाड़ा। सुधाकर से कहकर उसको ठीक करादें तो ठीक हो। भाड़ा यहां न भेज सकें तो वहां खादी संघ को देकर रसीद ली जा सकती है। खादी संघ वालों का हिसाब तो यहां रहता ही है।

बच्चे सब अच्छे होंगे। सबको प्यार। रतनजी के खांसी सरदी की क्या बात लिखी, वह योंही साधारण ही होगी।

विजया के काम में काफी दिक्कत होरही है, पर चलता है, ठीक तो हो ही जायेगी। विजया की वजह से मेरा आना शायद देर से भी हो सकता है। भागीरथ जी तो सितम्बर शेष तक जा ही रहे हैं।

४

३०-११-५३

आपका १३।११ का पत्र परसों मिला। आपके हाथ से लिखा पत्र पाकर बड़ी तसल्ली हुई। आपकी इस बार की बीमारी ने हम सबको हिला दिया। आपको जो कष्ट हुआ उसका तो आपको ही मालूम है पर हम लोगों को जो कष्ट हुआ उसको तो क्या तो भगवान जानता है यदि वह कहीं हो तो, क्या हमारा दिल जानता है। उन दिनों कितने संकल्प विकल्प तथा शंकाएं घेरे रहती थीं मन को। जो हो यह संकट टल गया। यह तो भगवान की बड़ी कृपा माननी चाहिए। अब आपको जयपुर जाकर पूरी जांच और इलाज कराना चाहिए। आपके दोनों गीत पढ़े। आपकी काव्य रसिकता चालू रह सके तो रखनी चाहिए। वह काम की चीज तो है ही, साथ ही एक मनोवैज्ञानिक आपके मानस का प्रतीक भी समय समय पर उसमें आता रहेगा। पर आपके दिमाग पर किसी भी बात का गहरा असर या बोझ तो बिल्कुल ही नहीं पड़ना चाहिए। आपको तो अपने मनोबल के सहारे ही डटकर रहना है। जो होगया सो होगया जो होगा सो हो जायगा। और अच्छा ही होगा यह मानकर चलना है, संतोष करना है।

मेरा वस चले तो मैं आपको एक सैकिंड भी चिन्ता ग्रस्त नहीं देख सकता। आजकल मैं क्या कहूं, मेरे मन में जितनी वातें चल रही हैं उनमें आप मौके मौके पर सामने रहते है। आपको मैं क्या कहूं ? आपसे वातें करने का जी चाहता है। क्या आप स्वास्थ्य के खयाल से डाक्टरी जांच या इलाज कराने के लिए यहां नहीं आ सकते ? इस वारे में सोचिएगा। यदि ठीक लगे तो पन्द्रह दिन के लिए कलकत्ते आ जाएं तो क्या हर्ज है। शायद वहां से कुछ दूर होने पर मानसिक परिवर्तन भी हो और वह काम का भी हो।

आपके मन पर सवसे ज्यादा असर रुपया देना है उसका है ऐसा लग रहा है। व्यापारी आदमी तो इन सब वातों को सोच नहीं सकता। पर जिनके मन एक दूसरी ही तरह के वने हुए हैं वे तो हैं ही। खैर पत्र में लिखने की वातें तो हैं भी नहीं। आप पत्र लिख सकें तो लिखें नहीं तो रतनजी से या किसी और से सुशीला, ~~क्ष्म~~ आदि से वहां के आपके स्वास्थ्य के समाचार लिखने की व्यवस्था करदें। रतनजी का पत्र मिल गया है। उनको आप कह दीजियेगा। उसका उत्तर नहीं दे रहा हूं। रतनजी के पत्रों से आपके वारे में पूरी वातें मालूम हो जाती हैं। वे भी पत्र लिखती रहें तो बहुत ठीक रहे। विजयसिंहजी का भाड़ा न आना अच्छी वात नहीं। और सब लोग प्रसन्न होंगे।

५

३-२-७०

कल आपका ३०-१-७० का पत्र मिला। पिछले कुछ दिनों से आपकी वहुत याद आती रही। मैं सोचने लगा कि यह क्या स्थिति है हम लोगों की कि इतने लम्बे समय तक परस्पर कुछ खोज खवर नहीं लेते। वनस्थली के उत्सव के समय पत्र लिखने का विचार आया, पर वह भी यों ही आलस्य कहो या और कुछ कहो टलता गया।

वनस्थली में वादशाह खान ने जो कहा उसको यहां विश्वमित्र में पढ़ा। हो सकता है वह बहुत ही कम आया हो, पर जितना सा आया वह भी बहुत महत्वपूर्ण और आपके तथा वनस्थली के लिए बहुत गौरव की वात है और मेरे लिए बहुत ही खुशी की वात है। वादशाह खान ने खुलकर अपने काम की प्रशंसा की है। मैं उनसे कलकत्ते में मिला, वात भी की तो मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा और ऐसा भी लगा कि अब यह आदमी खतम हो गया है। इसके द्वारा कुछ होगा ऐसा नहीं लगता है। उनका त्याग, तप और कष्ट की कहानी से जो भी प्रेरणा मिल सकती है वह लेनी चाहिए। जोभी हो वह आदमी अपने ढंग से सोचता और कहता है इतना ही बहुत है।

मेरी ऐसी स्थिति है कि मन से कहीं वाहर जाने की इच्छा नहीं होती या होती है तव भी जाना नहीं वनता। वनस्थली गये इतना अधिक समय हो गया वह उचित तो नहीं पर हो ही गया। देखें कव सव से मिलना होता है। आप जिस रूप में वाहर फिर रहे हैं, रुपया मांगने का काम कर रहे हैं, यह काफी कष्टकर है। इसे समाप्त करने की वात

तो वार वार आती है पर द्रौपदी के चीर का अन्त नहीं होता । जो आवश्यकताएं हैं उनकी पूर्ति हो ही नहीं सकती वे बढ़ती रहेंगी और आप रुपया लाने के काम में ही शेष हो जाएं तो यह क्या बात हुई। आपकी महत्ता केवल यही नहीं है कि आपने वनस्थली को यह रूप दे दिया। इसके अलावा भी आपका काम है फिर स्वास्थ्य और उम्र का भी अपना स्थान है। यात्राएं, फिर अर्थ संग्रह की यात्रा तो बहुत ही कठिन है। यदि यों ही किसी प्रचार के लिए यात्रा हो तो वह इतना गहरा श्रम नहीं लेती, पर अर्थ संग्रह का काम कितना कष्टकर और मान सम्मान में बाधक है। तथा आज जिस तरह की विचारधारा चल रही है उसमें कितनी कठिनाई है यह सब सोचकर लगता है आप इसको कैसे करते हैं और कब तक करते रहेंगे। बात तो सब मिलें तब ही हो सकती है पर सोचने विचारने तथा मानसिक स्थिति का प्रभाव या असर तो रहता ही है।

श्याम की तबियत के समाचारों से चिन्ता हुई। इधर तो श्याम स्वस्थ रहता है यह मान लिया था। इतना बीमार रहा, यह पता ही नहीं लगा। यह भी हम लोगों के लिए एक ऐसी ही बात है जो अपने लोगों के जीवन और सम्बन्ध में हुई तो कष्ट होता है। जो भी हो अब श्याम बिल्कुल स्वस्थ रहे इसका पूरा पूरा प्रयत्न करना चाहिए। रतनजी को उसके पास रखना चाहिए और आप भी कुछ समय वहां रहो।

दया फिर काम करने लगी तो यह अच्छा ही हुआ। सुधाकर, कमला, सुशीला, सिद्धार्थ, आशु और कमला की छोटी बड़ी लड़कियां सब अच्छी होंगी। दया की आभा अब एम० ए० हो गयी होगी। सबकी याद आपके पत्र से आ गयी। सबका नाम लिख नहीं रहा हूं पर इतने दिनों बाद पत्र मिलने पर नाना बातें मन में आयीं और वनस्थली के अनेक मित्र जो बहुत गहरे हैं, मन पर अंकित हैं और नाना रूपों के हैं, वे सबके सब उभर आये। अब उनको यहां कैसे अंकित किया जाय।

श्री कपूरचन्द्र पाटणी के पत्र पण्डित हीरालाल शास्त्री के नाम

१

५-१२-३८

आशा है आप सकुशल होंगे। इधर वैसे कोई खास बात नहीं है। आज आफिस में अभी शाम को खास-खास कार्यकर्ताओं की मीटिंग रखी थी। वर्तमान परिस्थिति पर काफी विचार विनिमय हुआ। लोगों में काफी उत्साह है। कार्यक्रम पर साधारण बातें हुईं।

आज शाम को पं० मिश्रजी ने मि० यंग से टेलीफोन पर बातचीत की थी। मिश्रजी को ladies और बालबच्चों के लिए जापान जाने के लिए पासपोर्ट की आवश्यकता है। उसी सम्बन्ध में उन्होंने बात चलाई कि हमें मालूम हुआ है कि आप छुट्टी जा रहे है, अतः हमारा पासपोर्ट जल्दी आ जाना चाहिए। इस पर मि० यंग ने पासपोर्ट सम्बन्धी उनकी बात का तो समुचित जबाब दे ही दिया, साथ ही यह भी कहा कि वे छुट्टी नहीं जा रहे हैं। पहिले उनका इरादा छुट्टी जाने का था पर अब वह छोड़ दिया है। मिश्रजी बातचीत खत्म कर फोन रखने को ही थे कि मि० यंग ने उनसे पूछा कि आप लोगों की तर्फ की क्या नई खबर है। मिश्रजी ने जबाब दिया कि "वैसे कोई खास खबर तो नहीं है पर सुना जाता है कि स्टेट प्रजा मंडल को दबाने का विचार कर रही है और इसका जबाब देने के लिए हम लोगो ने भी आवश्यक तैयारी करली है और लड़ाई शुरू होने का इंतजार कर रहे हैं।" इस पर यंग ने कहा कि "यह खबर तो बिल्कुल गलत है कि स्टेट प्रजामंडल को दबाना या इससे लड़ाई करना चाहती है-इतनी गलत तो दूसरी कोई खबर हो नहीं सकती। अभी तक स्टेट का इस किस्म का कोई इरादा नहीं है। मालूम नहीं ऐसी गलतफहमी कैसे हुई है।"

मिश्रजी—सुना है कि स्टेट वालों का यह खयाल है कि प्रजामण्डल वाले देहात में Non-payment of taxes का प्रचार कर रहे हैं पर उनका यह खयाल बिल्कुल गलत है। प्रजामंडल की तर्फ से ऐसा कोई propaganda नहीं है और अधिकारियों को जो इस किस्म की खबरें मिलती हैं तो वे गलत हैं। हमने तो अपनी position clear करने के लिए यहां तक सोची थी कि एक पर्चा प्रजामंडल की तर्फ से निकाल दिया जाय कि प्रजामण्डल के बारे में कुछ लोगों में यह गलतफहमी है कि प्रजामण्डल वाले काश्तकारों को non payment of taxes preach करते हैं पर यह बात गलत है। प्रजामण्डल वाले इस किस्म की कोई बात नहीं चाहते। हां, यह अवश्य चाहते हैं कि जहां पर पैदावार न हुई हो अथवा कम हुई हो वहां के लोगों से पैदावार के हिसाब से ही taxes लिये जावें और गरीब लोगों को ख्वामख्वाह तंग न किया जाय। अफसोस तो यह है कि शास्त्रीजी तक के लिए यह समझ लिया गया है कि वे non-payment of taxes preach करते हैं और शहर में तो यह अफवाह है कि उनके लिए warrant तक निकाल दिया गया है।

यंग—शास्त्री के सम्बन्ध में ऐसा कोई idea नहीं बनाया गया है। खबरें कई तरह की आती हैं पर मैंने तो शास्त्रीजी से पहिले ही कह दिया था और अब आपको भी कहता हूं कि मैं उनकी सत्यता के बारे में उनसे खुद से अथवा आप लोगों से Verify किये बिना कभी कोई action नहीं लूंगा। शास्त्रीजी के गिरफ्तार करने के इरादे की बात भी बिल्कुल गलत है। स्टेट का ऐसा कोई इरादा नहीं है। आपने जो पर्चा निकलवाने की बात कही वह बहुत दुरुस्त है—उसे जरूर निकाल दीजिए। इससे स्थिति बहुत साफ हो जाएगी—यह जरूर कर दीजिए।

मिश्रजी—हम लोगों का कई दिन से ऐसा इरादा था कि हम यहां के Cabinet Ministers से (including Prime Minister) बातचीत कर उन्हें प्रजामण्डल की स्थिति साफ साफ बतला दें और हमारा point of view समझा दें। पाटणी ने कहा कि इस बारे में आपसे भी बातचीत करना ठीक होगा। इस पर हमने कहा कि ठीक है—आपसे भी मिल लेंगे। तो शायद पाटणी ने आपको लिखा होगा या अब लिखेंगे। सो यदि आप मुनासिब समझोगे तो उस समय political स्थिति पर बातचीत करेंगे।

यंग—हां जरूर कर लेंगे। पाटणीजी का पत्र आने पर समय निश्चित कर लेंगे।

मिश्रजी—आप २, ४ दिन कहीं बाहर तो नहीं जा रहे हो।

यंग—नहीं मैं यहीं हूं। यदि चला गया तो १, २ दिन के लिए थोड़ी बहुत दूर जाऊंगा, बाकी अधिकतर यहां ही रहूंगा।

इस प्रकार की इन दोनों में बातचीत हुई थी। मिश्रजी ने जो कुछ मुझसे कहा और उस पर जो कुछ जिस प्रकार मुझे याद रहा वह लिख दिया है—थोड़ा बहुत फर्क हो सकता है पर सार यही है। अब इस सब पर से मालूम यही होता है कि अभी इन लोगों का लड़ाई मोल लेने का इरादा नहीं है—मैं उसमें कोई खास चालबाजी या झूंठ तो नहीं समझता। अब मैं कल यंग को पत्र लिखूंगा और मिलने का टाइम आने पर मिश्रजी और मैं दोनों उससे मिलेंगे। हो सका तो हरिश्चन्द्रजी को भी साथ में ले जाएंगे। आगे जो कुछ मालूम होगा सो आपको लिखा जाएगा। बाकी सब कुशल है।

२

१०-१२-३८

मैं मिल आया हूं। यंग सा० का खयाल तो बिलकुल ठीक है पर जब तक Conference न हो जाय उनसे कोई स्पष्ट लिखित उत्तर आ सकना मुश्किल है। उन्होंने अपनी असमर्थता पर बहुत ही लाचारी प्रगट की, पर कहा कि उन्हें P. M. से उनकी (Young की) पालिसी मंजूर करा लेने की पूरी आशा है। Conference next week यानी ता० १३ से १६ तक कभी होगी। अभी dates निश्चित नहीं है। पर यंग सा० ने खूब जल्दी करने की कही है।

ता० १६ तक वह पत्र किसी पर प्रगट न कर अपने पास ही रोक रखा जाय, ऐसी बात उन्होंने चाही है। उन्हें उनके mission में सफलता की पूरी आशा है और Col. Huban और Col. Cole दोनों का पूरा Support बताया-उस P. M के पत्र वाली बात से वे थोड़े शर्मिन्दा थे।

मैंने अपनी Position और आपके upset होने की बात कह दी थी– इस पर उन्होंने कहा कि "मैं इस सबको पूरे तौर पर Understand करता हूं– लेकिन यही आशा करना चाहिए कि सब ठीक हो जाएगा।" उन्होंने कहा कि वे काम के rush की वजह से आपके पत्र का उत्तर न दे सके हैं और अब यदि हर्ज न हो तो मैं यही सब बात आपको Communicate कर दूं– मैंने कहा कि आप फिक्र न करें–मैं शास्त्री जी को कह दूंगा।

सारांश यह है कि बातचीत सब संतोषप्रद हुई है। मैं कचहरी होता हुआ यहीं परभारा आ गया, अतः आपसे नहीं मिल सका।



३०–१–३६

कल रात को आपको एक पत्र भेजा था सो मिला होगा। यहां पर कोई बात नहीं है। पुलिस वाले जामा मसजिद वाले मामले में इतने संलग्न मालूम होते हैं कि दूसरी बातों की ओर उनका ध्यान ही नहीं मालूम होता। ऐसा लगता है कि जैसे प्रजामण्डल वाला मसला उनके दिमाग के सामने है ही नहीं। इसके दो कारण हो सकते हैं, या तो इन्होंने प्रजामण्डल के मामले में कोई खास नीति निश्चित करली है यथा ऐन मौके पर समझौते का कोई मार्ग निकालना अथवा इन्हें जितने आल्टरनेटिव्ज में जितनी बातें तै करनी थीं वे सब सोचली हैं। पर समझौते की ओर तो इनका सुझाव नहीं मालूम होता क्योंकि यंग सा० बराबर इस बात की कोशिश में हैं कि मुसलमान प्रजामण्डल के साथ न हो जावें। वे जगह-जगह मुसलमानों की सभायें करवा रहे हैं और मुसलमानों को यह समझवा रहे हैं कि मसजिद का दरवाजा बहुत जल्दी निकलवा दिया जायेगा, तथा जो लोग मारे गये हैं उन्हें रियासत की ओर से रुपया दे दिया जायेगा। कई जगह तो यंग सा० ने खुद ने जाकर लोगों से यही बातें कही बताई। पर आम मुसलमानों को इन बातों से कोई संतोष नहीं हो रहा है और उनमें राज के प्रति काफी असंतोष है। कई जगह तो इन नेताओं को बुरा भला भी कहा गया बताया। घाट दरवाजे वाले-की तो नीलगरों के नले में कमणीगरों के मुहल्ले में गहरी पिटाई होते होते बची बताई। यह⋯⋯भी पुलिस की ओर से काफी कुप्रचार में रात दिन लगा हुआ है।

पुलिस की ओर प्रो-गवर्नमेंट पर्चों का काफी जोर है। रोजमर्रा ४–५ पर्चे निकल कर बंट रहे हैं। ⋯⋯⋯⋯⋯⋯⋯नाम से पर्चे निकले हैं। यह मुलाजिम और इस तरह स्टेट सर्वेन्ट है। कई अजीब अजीब नामों से पर्चे बंट रहे हैं। आम जनता पर इन पर्चों की बाढ़ का कोई असर नहीं है। बल्कि यों कहा जाना चाहिये कि उल्टा असर हो रहा है। कुछ भी हो जनता के सामने प्रजामण्डल के नाम का खूब प्रचार हो रहा है। मुसलमानों में भी कई लोगों का प्रजामण्डल की तर्फ काफी आकर्षण हो रहा है, पर ऐसा मालूम होता है कि अभी तक उनकी शंकायें पूरे तौर पर साफ नहीं हुई हैं और परिस्थितियों के मारे वे प्रजामण्डल की तर्फ थोड़े झुकते हैं। कॉमन आपोजीशन की वजह से। ⋯ ⋯⋯⋯⋯को पकड़ लिया गया था पर कल शाम को यह कह कर छोड़ दिया गया कि प्रजामण्डल वालों के पास मत जाना। वह कल रात को कई मुसलमानों को साथ लेकर अग्रवालजी से मिला था।



२३–१२–४३

आशा है कि आप प्रसन्न होंगे। श्रीमती रतन बहिन का स्वास्थ्य अब कैसा है? बुखार तो अब नहीं है? यहां पर सब लोग अच्छे हैं।

परसों पं० देवीशंकरजी और मैं सर मिर्जा से मिले थे। शेखावाटी की समस्या पर काफी जोर के साथ उनसे कहा गया। Tenancy Laws Committee के बारे में हम लोगों ने कहा जब Legislature जल्दी ही बनने वाला है तो फिर फिलहाल act के Consideration को मुल्तवी क्यों न कर दिया जाय। यह उनके थोड़ी जंची तो है। शायद सलाह मशविरा करेंगे और पीछे से और जोर लगाया जाय तो Committee खत्म हो जाय। चेयरमैन M. B. के लिए नाम सुझा दिया गया है जो उन्हें भी पसन्द आया। वे पहिले अग्रवालजी के चाचा गोपीनाथजी के लिए सोच रहे थे और भी बहुत सी छोटी छोटी बातें हुई जो मिलने पर कहूँगा। पर कोई खास बात नहीं है।

Reforms के बारे में announcement १ जनवरी को कर देने का विचार है। सर मिर्जा का खयाल है कि किसी भी प्रकार जल्दी करके April-May तक ही L. Council और Assembly का furnctioning हो जाना चाहिये। अतः इस बारे में हम लोगों को भी बहुत जल्दी विचार करना है। आप इधर कब तक आ रहे हैं।

Supply Deptt. अमरसिंहजी से हट कर अब अटलजी के पास चला गया है। संभवतः वालावाकर और जनरल साहब में न बनने के कारण ही ऐसा हुआ है। अटलजी अभी बीमार हैं। Influenza है। २–३ दिन में ठीक होते ही वे Charge ले लेंगे।

परसों नवलगढ़ वाले प्रह्लादजी सजा पूरी करके छूट आये। परले दिन amicus curie application पर हाईकोर्ट ने व्रजलालजी गोयनका को छोड़ दिया। परसों आजाद मोर्चे की ओर से इन दोनों के स्वागत में एक पब्लिक मीटिंग जौहरी बाजार में हुई थी। भंडारीजी सभापति थे। बाबा बोले थे। कोई खास बात तो नहीं कही गई पर भंडारीजी ने अन्त में अपनी स्पीच में यह कहा बताया कि अब म्यूनिसिपल व दूसरे चुनाव जनता के सामने आने वाले हैं। आशा है कि जनता State Congress को नहीं भूलेगी।

कृपया समाचार दीजियेगा कि आप यहां कब तक आ रहे हैं। तिवाड़ी के हालचाल साधारणतः ठीक हैं। बाबा उनके प्रजामण्डल में शामिल हो जाने पर काफी नाराज हुए बताये जिससे शायद तिवाड़ीजी थोड़े विचलित भी हुए दीखे। आपके पत्र का उन पर अच्छा असर हुआ दीखता है।

(जिन लोगों से मेरा पत्र व्यवहार अपेक्षाकृत कम हुआ है उनके पास से आये हुए या उनके पास भेजे हुए हिन्दी और उर्दू के पत्र यहां दिये गये हैं।)

पत्र डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजी का श्रीमती रतन शास्त्री के नाम

१६–५–४१

आपका पत्र मिला। चि० उषा और उर्मिला सीताराम के साथ आराम से ठीक समय पर पहुंच गयीं। रास्ते में कहीं कोई तकलीफ नहीं हुई। मुझसे मिलने पर पैर छूकर दोनों ने प्रणाम किया जो यहां नहीं किया करती थीं। बातें पूछने पर भी बहुत कम बोलीं। आप शायद जानती नहीं होंगी कि मैं आश्रम में अलग रहा करता हूं और उषा के पिता मृत्युजन्यप्रसाद अपनी माता और पत्नी तथा घर के दूसरे लोगों के साथ पटना शहर में अलग मकान लेकर रहते हैं। दोनों बच्चियां वहां पर ही गयीं। मैंने वहां जाकर उनको देखा। फिर यहां भी एक दिन अपनी और दो छोटी बहनों को साथ लेकर आयीं और दिन भर रहीं। कल उर्मिला छपरे गई। वहां मेरे छोटे लड़के धनन्जयप्रसाद वर्मा अपनी पत्नी के साथ हैं। हमारे घर में नव लड़कियां हैं जिनमें सबसे बड़ी यही दोनों हैं। उषा की चार बहनें हैं, उर्मिला की तीन बहनें और हमारे भतीजा जनार्दनप्रसाद वर्मा की दो लड़कियां, कोई लड़का नहीं है। उनकी दादी मुझसे कहने लगीं कि क्या नवों लड़कियों को वहां ही भेजा जाएगा— यहां पर वैसा ही स्कूल क्यों नहीं खोला जाय कि उनके अलावा दूसरी लड़कियां भी पढ़ सकें। आप इसी से समझ सकती हैं कि उन लोगों पर उसका कितना प्रभाव पड़ता है। हम सब आपके ऋणी हैं और हमारी आशा है कि इसी प्रकार बच्चियों के साथ प्रेम और कृपा बनाये रखेंगी। दोनों ने इतने कम समय में हिन्दी जो हमारी बोली से कुछ भिन्न है सीखली है और शायद यहां की बोली भूल ही जायेंगी। मुझे एक ही डर है। अगले १–१॥ महीने में वे जो कुछ सीख कर आई हैं शायद भूल न जायें क्योंकि यहां पढ़ने का या वहां के नियमित जीवन पालन करने का कोई सामान नहीं है।

और सब आनन्द है।

अज जानिब पण्डित हीरालाल शास्त्री
बखिदमत मौलाना अबुलकलाम आजाद

७-११-४७

برسوں کا ارمان تھا کہ کسی دن آپ ہمارے بیچ میں موجود ہوں گے۔

اس سال تو آپکا پکا وعدہ ہو گیا تھا اور اعلان بھی کر دیا گیا تھا کہ ہمارا جلسہ آپکی صدارت میں ہوگا۔ لیکن ملک کے حالات اور آپکی مصروفیت نے اس سال بھی یہ نہ ہونے دیا۔ آپ بعد میں کسی روز تشریف لانے کا ارادہ رکھتے ہیں آج تو ہم اسی خیال سے اپنے دل کو سمجھا لیتے ہیں۔ آخر کبھی تو وہ دن بھی آئیگا۔

ہمیں پورا اطمینان ہے کہ آپکا ہاتھ ہمارے سر پر ہے اور اس ودیا پیٹھ کو آج کے نسبت بہت اونچے درجہ تک پہنچانے میں آپ دل کھول کر ہماری مدد کرینگے۔ شری گاڈگل جی یہاں پر آپکی نمائندگی کرینگے۔ ہماری خواہش ہے کہ اپنی بیمثال بولی میں اپنی قلم سے لکھ کر آپ ایک سندیش ہماری ہمت بڑھانے کے لیے ضرور بھیجینگا۔

अज जानिब मौलाना आजाद
बनाम पण्डित हीरालाल शास्त्री

२०-११-४७

مجھے افسوس ہے کہ اس موقعہ پر میں نہ آسکا
مگر میں خوش ہوں کہ میرے دوست گاڈگل صاحب
جا رہے ہیں - آپ لوگوں نے اس ودیالیہ
کو قائم کرکے ایک بڑی قومی خدمت انجام
دی ہے اور جس ڈھنگ پر آپ کام کر رہے
ہیں اسکی قدر و قیمت ہم سب نے محسوس کی ہے
میری دلی خواہش ہے کہ آپ کا یہ کام
زیادہ سے زیادہ ترقی کرے اور پوری
طرح پھلے پھولے

पत्र पंडित हीरालाल शास्त्री का पंडित अर्जुनलाल सेठी के नाम

१०-११-२८

आशा है, आपका स्वास्थ्य अब सुधरा होगा।

आप जब मिलते हैं तब ही जोश दिलाने वाली सैकड़ों बातें कह डालते हैं और मैं प्रायः चुपचाप सुन लिया करता हूं। इससे आप यह तो नहीं समझे होंगे कि उन बातों का मुझ पर कुछ असर ही नहीं हुआ। अलबत्ता आपकी एक बात मुझे बहुत अच्छी नहीं लगती है और वह यह कि आप देश के प्रायः सभी नेताओं और कार्यकर्ताओं को एक दम आड़े हाथों ले डालते हैं। संभव है, आप अपने बड़े अनुभव से ऐसी बातें कहते हों। तथापि दूसरों के बारे में इतना निर्दयतापूर्ण विचार करने से हम कहीं आगे नहीं बढ़ जाते। अस्तु। मुझे खुद तो जोश दिलाने के सिवाय आपने कोई काम की बात अभी तक नहीं बतायी है। राजपूताने में झण्डा खड़ा करने के लिए आपने कई बार कहा है। किन्तु प्रत्यक्ष में प्रारम्भ करने के लिए आपने नया कार्यक्रम सोच रखा है सो मुझे नहीं मालूम। दैनिक पत्र निकालने की चर्चा आपने की है। दैनिक पत्र अथवा कोई भी पत्र रुपये से निकलता है और रुपया धनिकों के पास से लेना पड़े जिससे आप तो क्या मैं खुद ही अच्छा नहीं समझ सकता। आपको यह मानना होगा कि धनिकों से रुपया लेने वाला पत्र कभी स्वतन्त्र हो ही नहीं सकता। आप एक ही पत्र का नाम बताइए जिसने राजा महाराजाओं अथवा और किन्हीं से रुपया न लिया हो अथवा रुपया लेकर स्वतन्त्र रह गया हो। असल बात तो यह है कि धनिकों से रुपया लेने वाला कोई काम कर ही नहीं सकता और धनिकों से रुपया लिए बिना कौनसा ठोस काम पार पड़ने वाला है। यह आप अपने अनुभव से मुझे बताइए जो काम आप करवाना चाहते हैं उसका क्या प्रकार होगा, उसकी क्या नीति होगी ? मेरे खुद के एक दो सिद्धान्त स्थिर हो रहे हैं उनको मैं नहीं छोड़ सकता। उदाहरण के लिए मुझे वह नीति पसन्द नहीं हो सकती जो सत्य से दूर हो। मुझे सदा यह डर रहता है कि दूसरों पर आश्रित रहने वाला

आदमी कब तक सत्य की उपासना करेगा। मुझे कभी कभी यह मालूम होता है और आपने भी शायद एक बार कहा था कि राजनैतिक विभूति बनाये बिना बड़ा काम नहीं हो सकता। अपने निज के स्वार्थ के लिए किसी भी प्रकार की विभूति बनाने को मैं गर्हणीय समझता हूं। परन्तु लोकहित के लिए किसी प्रकार की विभूति के चक्कर में फंसना भी पड़े तो वह क्षन्तव्य होगा।

यों तो बहुत कुछ लिखा जा सकता है। परन्तु अपनी ओर की मोटी बात मैंने आपसे कहदी। बातों का कभी अन्त नहीं हो सकता। आप कोई कार्यक्रम बताइये जिसे उठाया जाय। कार्यक्रम को निभाने के लिए चाहे मर मिटना पड़े। किन्तु उस कार्यक्रम में आज की न सही १०० वर्ष बाद की तो आशा हो कि हम जो कुछ करना चाहते हैं वह पार पड़ेगा। आपने अभी तक खण्डनात्मक बातें बहुत कही हैं। सबको दुकानदार बता डाला है। परन्तु इस पत्र के उत्तर में आप कोई रचनात्मक बात लिखिए और कोई ऐसे व्यक्ति का आदर्श अथवा प्रतिबिम्ब मेरे सामने रखिए जो सफल कार्यकर्त्ता भी हो, नेता भी हो, किन्तु दुकानदार न हो।

कोई अनुचित बात हो तो क्षमा करेंगे और पत्र का उत्तर शीघ्र भेजेंगे।

श्री सिद्धराज ढड्ढा का पत्र पंडित हीरालाल शास्त्री के नाम

१–२–६५

दिल्ली में सर्व सेवा संघ द्वारा चौथी पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में एक सेमिनार ता० २७, २८ जनवरी को आयोजित किया गया था, इसलिए भरतपुर सम्मेलन से जल्दी ही रवाना होकर दिल्ली जाना पड़ा। मुझे भाई जवाहरलालजी ने बतलाया कि दूसरे दिन सम्मेलन में आप बोले थे। आपने जो कुछ कहा उसका सार उन्होंने बतलाया।

इसमें कोई शक नहीं कि राज्य की जकड़बन्दी दिनोंदिन मजबूत होती जा रही है। मुझे खुद को यह आज की सबसे बड़ी समस्या मालूम होती है। आपने कहा बतलाया कि सर्वोदय का कार्य क्रान्ति का काम नहीं है, सिर्फ पुण्य कार्य है। यह सही है कि बहुत से सर्वोदय कार्यकर्त्ताओं को अपने काम के वास्तविक उद्देश्य का भान नहीं है। फिर भी यह तो आप भी जानते हैं कि अगर वह सिर्फ पुण्य कार्य ही होता तो मेरे जैसे को तो कोई दिलचस्पी उसमें रहती नहीं। मैं यह सब बहस के लिए नहीं लिख रहा हूँ। मैं जानता हूं कि आप खुद इन सब बातों को अच्छी तरह समझते हैं। यह सही है कि सर्वोदय के काम का 'इम्पेक्ट' जैसा होना चाहिए था वैसा नहीं हुआ है। काम में कुछ गलतियां रही हैं पर मौजूदा परिस्थिति को बदलने का इससे बढ़कर कोई उपाय मुझे नजर नहीं आता कि गांव गांव में लोगों को जागृत और संगठित किया जाय। आज के हालात इस काम के लिए सबसे अनुकूल हैं। मंहगाई, अभाव आदि ने सरकार की नीति का खोखलापन जाहिर कर दिया है। पार्टियों से लोग ऊब गये हैं। गांव गांव की योजना और व्यवस्था गांव के हाथ में होनी चाहिए—इस विचार को ग्रहण करने की अनुकूलता पैदा हुई है। यह गांवों में मेरा खुद का अनुभव है।

मैं अभी कुछ दिन पहले विनोबाजी से मिलने गया था। उस वक्त मैंने अपनी जो बात उनके सामने रखी थी उस नोट की एक प्रति आपकी जानकारी के लिए भेज रहा हूँ। गांव गांव में ग्राम सभाओं की स्थापना और ग्राम आयोजन यह ग्राम स्वराज्य का पहला कदम आज हो सकता है। इससे ग्राम स्वराज्य का मार्ग प्रशस्त हो सकता है ऐसा मुझे लगता है। मैं जहां जहां जाता हूँ वहां आजकल इसी बात पर जोर देता हूं। अभी

पंजाव से लौट रहा हूँ वहां कुछ कार्यकर्त्ता पदयात्रा करके गांव में घूम रहे हैं। उन्होंने भी इस बात की ताईद की। जालन्धर में करीव करीव सव प्रमुख दैनिक पत्रों के संचालकों से, जो विभिन्न पार्टियों के हैं, मिला। जो गहराई से विचार करते हैं उन सवने मुझसे कहा कि इस समय गांव के लोगों को संगठित करने और ग्राम आयोजन की प्रेरणा उनको देने का कार्यक्रम सफल हो सकता है। दो तीन महीने पहले मैं गुजरात के गांवों में गया था वहां तो इसका प्रत्यक्ष चित्र देखा।

कार्यकर्त्ताओं के योगक्षेम की चर्चा एक वार पहले भी आपने मुझसे की थी। मैं आपकी वात से पूरा सहमत हूं कि कार्यकर्त्ता को राज्य का आश्रय नहीं लेना चाहिए—न प्रत्यक्ष, न अप्रत्यक्ष। तो फिर कार्यकर्ता का निर्वाह कैसे चले? मेरे खयाल से इस प्रश्न का हल वहुत मुश्किल नहीं है। छोटे वड़े मित्रों से तथा ग्रामलोगों से सहायता ली जा सकती है।

मैं धृष्टता करना नहीं चाहता। लेकिन एक मोह है कि आप जैसे व्यक्ति अगर इस क्षेत्र में उतर पड़ें तो कितना अच्छा हो। दूसरा कोई व्यक्ति दलील से आपका समाधान कर सके ऐसा लगता नहीं। इसमें कुछ वाधा आपकी ओर से भी है यह शायद आप भी अनुभव करते होंगे। सर्वोदय विचार में इधर उधर कहीं कमियां नहीं होंगी ऐसा मैं नहीं कहता। पर दिशा सही है यह तो आपको भी लगता होगा। ऐसा हो तो फिर सारा क्षेत्र स्पष्ट हो तव तक मेरे खयाल से इंतजार करने की जरूरत नहीं है। हम लोग वड़े छोटे सव मिलकर एक दूसरे के अनुभवों से लाभ उठाते हुए एक दूसरे को वल पहुंचाते हुए इस काम को आगे वढ़ा सकते हैं।

जवाहरलालजी मुझे कह रहे थे कि आप विनोवाजी के पास जाने की भी सोच रहे हैं। आजकल वे पवनार में ही हैं। कान से सुनना कम हुआ है और चिन्तन की दृष्टि से वे खुद भी अधिकतर मौन रहते हैं। इसलिए वातचीत आजकल अधिकतर दोनों ओर से लिखकर ही होती है।

मैंने सुना कि आपने अपने भाषण में यह भी कहा था कि राजनीति के दलदल में आप गये वह एक भूल हुई और निकलने""शायद आपने कहा था कि "निकाले जाने" के वाद वापस जाने की कोशिश करना दूसरी भूल हुई। पहली वात भूल थी या नहीं यह तो मैं नहीं कह सकता लेकिन दूसरी वात में भूल हुई यह तो सही है। आपको याद होगा कि मैंने भी, जिस ढंग से मैं कह सकता था, आपको उस समय यह कहने की कोशिश की थी।

मैंने लिखने में कुछ धृष्टता की हो तो माफ करें, पर मैंने ऊपर जिस 'मोह' का जिक्र किया है उसी के कारण आज यह पत्र लिखने की इच्छा हुई।

आपका स्वास्थ्य आजकल ठीक रहता होगा। राजस्थान की तरफ तो अगले दो तीन माह आना हो सके ऐसा नहीं दीखता। आपको तथा सा को सादर प्रणाम।

पण्डित हीरालाल शास्त्री का पत्र श्री सिद्धराज ढड्ढा के नाम

७–३–६५

तुम्हारे लम्बे पत्र को मैंने आज पूरे ध्यान से पढ़ा है। तुमने लिखा है :

१. यह सही है कि बहुत से सर्वोदय कार्यकर्ताओं को अपने वास्तविक उद्देश्य का भान नहीं है—यह सही है कि सर्वोदय के काम का 'इम्पैक्ट' जैसा होना चाहिए था वैसा नहीं हुआ हैं। काम में कुछ गलतियां रही हैं, पर मौजूदा परिस्थिति को बदलने का इससे बढ़कर उपाय मुझे नजर नहीं आता कि गांव गांव में लोगों को जागृत और संगठित किया जाए। २. कार्यकर्ताओं के योगक्षेम की चर्चा एक बार पहले भी आपने मुझसे की थी। मैं आपकी बात से पूरा सहमत हूँ कि कार्यकर्ता को राज्य का आश्रय नहीं लेना चाहिए—न प्रत्यक्ष, न अप्रत्यक्ष। तो फिर कार्यकर्ता का निर्वाह कैसे चले? मेरे खयाल से इस प्रश्न का हल बहुत मुश्किल नहीं है। छोटे बड़े सब रूप में मित्रों से तथा आम लोगों से सहायता ली जा सकती है। ३ एक मोह है कि आप जैसे व्यक्ति इस क्षेत्र में उतर पड़ें तो कितना अच्छा हो। ४. जवाहरलाल जी मुझे कह रहे थे कि आप विनोबाजी के पास जाने की भी सोच रहे हैं। ५. मैंने सुना कि आपने अपने भाषण में यह भी कहा कि राजनीति के दलदल में आप गये वह एक भूल हुई और निकलने—शायद आपने कहा था—कि निकाले जाने के–बाद वापिस जाने की कोशिश करना दूसरी भूल हुई। पहली बात भूल थी या नहीं यह तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन दूसरी बात में भूल हुई यह तो सही है।

मैंने अपने भाषण में तथा बाद में जवाहरलालजी आदि दो चार साथियों से जो कुछ कहा था और प्रस्तुत सिलसिले में मेरे जो विचार चलते रहते हैं उनका बहुत संक्षिप्त सार यह है :

१. सर्वोदय विचारधारा मुझे बहुत पसन्द है। मैं उसे रुपये में चौदह पन्द्रह आने मानता हूं। सर्वोदय विचार का प्रसार करना अच्छा काम है, पर केवल प्रचार से मेरा समाधान नहीं हो सकता। सर्वोदय विचार के अनुसार जो रचनात्मक प्रवृत्तियां—खादी, ग्रामोद्योग, गोपालन, हरिजन सेवा, शराबबन्दी, भूदान, ग्रामदान आदि—चलती हैं वे सब अपने आप में और पुण्यकृत्य के रूप में बहुत अच्छी हैं। परन्तु जिस प्रकार प्रवृत्तियां चलायी जा रही हैं उनसे मुझे क्रान्ति होती हुई दिखायी नहीं दे रही है। तुम भी काम की चाल से संतुष्ट तो नहीं मालूम होते हो ?

२. सर्वोदय विचार के आधार पर किसी एक इकाई—तहसील, सबडिविजन, जिला में प्रयोग करने के लिए स्पष्ट और निश्चित योजना होनी चाहिए और उस योजना को स्वयं विनोबाजी उपस्थित करें। योजना को अमल में लाने का यत्न करने के लिए अपने में से सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ता को अपनी मंडली सहित किसी पसन्द किये हुए क्षेत्र में एकाग्रता के साथ जमना चाहिए। ऊंचे दर्जे के काम को साधारण कार्यकर्ताओं के भरोसे छोड़ दिया जाएगा तो कार्य का बड़ा परिणाम सामने नहीं आयेगा। (गांवों के लोग मौजूदा कार्यक्रमों से जागृत-संगठित हो रहे होंगे, ऐसा मुझे नहीं लगता है।)

३. उपर्युक्त योजना में काम करने वाले कार्यकर्ताओं को हर्गिज भी और किसी भी रूप में राज्य आश्रित नहीं होना चाहिए, क्योंकि राज्याश्रितों के द्वारा क्रान्ति कभी नहीं हो सकती। किसी निधि का—गांधी निधि तक का—आश्रय भी ठीक नहीं हो सकता। क्षेत्र के बाहर के धनाढ्यों से प्राप्त किये हुए धन का आश्रय भी साधक होने के बजाए बाधक हो सकता है। किसी भी पुण्य कार्य के लिए तो कहीं से भी, किसी से भी सहायता ली जा सकती है, पर क्रान्तिकारी कामों के लिए नहीं। तुम जितना आसान कार्यकर्ता के निर्वाह के सवाल को माने हुए हो उतना आसान वह नहीं है।

४. राज्य आदि का आश्रय नहीं होगा तो फिर कार्यकर्ताओं का निर्वाह कैसे होगा ? आजकल पैसे के रूप में खर्चा बहुत बढ़ा हुआ हो गया है। किसी जमाने में हमने ६ पैसे प्रतिदिन में दोनों समय का भोजन (ग्राम कार्यकर्ताओं की दृष्टि से) बड़े आराम से किया था, आज तो ४-६ पैसों में रोटी के साथ खाने के लिए चटनी भी शायद ही बन सके। कार्यकर्ता के साथ परिवार लगा हुआ हो तो उसके निर्वाह का क्या हो ? ऐसी हालत में क्रान्तिकारी को परिवार का त्याग ही करना पड़े। कार्यकर्ताओं के निर्वाह के अलावा दूसरा खर्चा किन किन कामों में कितना कितना हो और वह कहां से आए ? (इतना त्याग करने वाले कितने हैं, कौन कौन हैं, दूसरी बातों को छोड़कर इस तरह बलिदान होने वाले कौन हैं ?)

५. योजना के लिए चुने हुए क्षेत्र में राज्य की जकड़बन्दी से कितना बचा जाएगा और किस प्रकार ? कोर्ट, कचहरी, थाना, स्कूल, दवाखाना, पंचायत सभी कुछ सरकार का है। इन सब में सहयोग करना या नहीं, मदद लेनी या नहीं ? जनता को जो

त्रास भ्रष्टाचार, मंहगाई मिलावट आदि से हो रहा है उसका तत्काल क्या करना ? उसे तो अपने तात्कालिक सवालों के जवाब पहले चाहिए। दूसरे, टैकनालौजी को कितना अपनाना और कितना उसका व्यवहार करना, इसका सीधा, स्पष्ट जवाब चाहिए। (राज्य की जकड़बन्दी से बचने की और टैकनालौजी का समन्वय बिठाने की ये दोनों ही बातें बहुत बड़ी हैं।)

राजनीति के संबंध में मेरी बात यह है कि मुझ जैसे कार्यकर्ता को सत्तावाली राजनीति में जाना धर्म नहीं हो सकता था। राजनीति में जाकर जो काम किया वह तो अपनी जान में अच्छा ही किया और वह उस समय आवश्यक भी था। लेकिन जो यह धर्म में फंसना हो गया वह तो भूल ही मानी जाएगी। फिर एक बार निकलजाने या निकाले-जाने के बाद बुरा माने हुए आदमी की भांति राजनीति की ओर दुबारा ध्यान देना तो बड़ी भारी भूल थी ही। इस प्रकार राजनीति का यह सारा मामला मेरे लिए व्यभिचार जैसा हो गया।

बिहार बंगाल की पदयात्रा में प्रायः दो हफ्ते साथ रहकर मैंने विनोबाजी से लम्बी बातचीत की थी और उनकी विचारधारा को समझने का पूरा प्रयत्न किया था। बाद में पुरी में सर्वोदय सम्मेलन से कुछ पहले मैंने उनसे चाहा था कि वे एक जिले में प्रयुक्त होने योग्य योजना मेरे मार्ग दर्शन के लिए नोट करा दें। विनोबाजी ने कहा कि मुझे खुद को ही योजना लिख लेनी चाहिए। तीसरी बार, नवद्वीप में मैंने विनोबाजी से फिर वही बात कही। वे बोले—मेरे साथ तीन दिन तक और रहो। मैंने कहा सात दिन तक रहूंगा। उसके अनुसार मुझे विनोबाजी के पास जाना है, मौका मिलते ही। मैं सर्वोदय क्रान्ति की व्यावहारिक योजना का स्पष्ट रूप अवश्य देखना चाहता हूँ उनके पास बैठकर, उनसे सुनकर।

वनस्थली के जिस काम में मैं लगा हुआ हूं वह काम भी पुण्यकृत्य के तौर पर बहुत अच्छा काम है, पर यह सीधे क्रान्ति का काम नहीं है। मुझे इस काम को जल्दी ही एक ऊंची फैज पर पहुंचा देना है। फिर मैं एक बार विदेश यात्रा के लिए जाना चाहता हूँ। इस सब में दो एक साल लग सकते हैं। उसके बाद मुझे क्या करना सो तै होना है। मुझे ऐसा काम नहीं करना है जिसमें से मुझे कोई पद मिले, पैसा मिले या नाम मिले। इन तीनों चीजों की जरूरत मुझे कभी नहीं थी, अब भी नहीं है। मेरे लिए एक प्रिय काम हो सकता है सर्वोदय विचार के अनुसार समाज रचना में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के किसी ठोस कार्यरूप में अपने को झोंक देने का। यह तभी हो सकता है जब विनोबाजी की खुद की बनायी हुई योजना में मेरा विश्वास हो जाये। मेरा दूसरा प्रिय काम सकता है सदा के लिए एकान्त में लीन हो जाने का। बड़े काम तो मेरे यही दो हो सकते हैं, पर छोटे मोटे दूसरे काम भी हो सकते हैं। जो मेरा काम नहीं होगा सो मैं बता ही चुका हूँ यानी सत्तावाली राजनीति का।

प्रत्येक मनुष्य का समाधान अपने पास ही हुआ करता है। अपने वर्तमान काम में तुम्हारा समाधान है सो मुझे उसमें क्या कहना या करना है? हालाँकि मेरे हिसाब से तो अपने आपको मेरी (और असल में तुम्हारी भी) कल्पना को किसी सर्वोदय की ही क्रान्तिकारी व्यावहारिक योजना में लगा पाते तो वह बहुत ज्यादा अच्छी होती। बाकी तो मैं अपने खुद के लिए और तुम्हारे लिए भी यह सोच सोच कर मन ही मन हंसता रहा हूं—"ऊंदरा का जाया तो बिल ही खोदैला" समझा भायाजी या और समझाऊं?

(जिन लोगोंसे अपेक्षाकृत मेरा कम पत्र व्यवहार हुआ उनको भेजे गये या उनके पास से आये हुए अंग्रेजी के पत्र यहां दिये गये हैं ।)

From the President, Jaipur Rajya Prajamandal (Seth Jamnalal Bajaj) to the President, Concil of State, Jaipur.

9-1-39

The attached order dated 16th December, (1938) last was served on me on the 29th of the same month at Sawai Madhopur whilst I was on my way to Jaipur.

The order came as a painful surprise to me. At the station I had over an hour's chat with Mr. F. S. Young, I.G.P. who was persuading me not to commit a breach of the order. I did not need much persuation as in a discussion with Gandhiji, of the possibility of such an order being served on me, he had advised me not to break the order immediately but to consider the whole situation in consultation with him before taking any final step.

Accordingly, I suspended my journey and proceeded to Delhi. After having conferred with friends and fellow workers and finally Gandhiji, I have come to the conclusion that on the 1st of February next I should commit a breach of the order unless, before then, it is unconditionally revoked.

The authorities knew that a public appeal was issued by me on 1st November last on behalf of the Jaipur Rajya Praja Mandal, of which I am President, that as famine had overtaken Shekhawati and other areas, relief work was to be undertaken by the Mandal to the exclusion of all other activity. They were also aware that on a news-paper report having appeared to the effect that Civil Disobedience was to be started in Jaipur, I had issued a flat oontradiction.

I do not know what had happened on or before the 16th December to warrant the passing of the order in anticipation of my seeking to enter Jaipur State. I note that on the same date a notification was published in the State Gazatte to the effect that "an emergency has arisen which makes it necessary to provide against instigation to illegal refusal to the payment of certain liabilities." Seeing that the order against my entry was passed the same day, it is reasonable to assume that in the opinion of the authorities I would be connected with the feared movement of illegal refusal of taxes. Surely, if the authorities had any fear of my leading such a movement, they might have at least asscertained from me as to the truth or otherwise of the information in their possession. They knew me sufficiently to feel sure that I would not conceal the truth from them.

Indeed, the authorities know, I rendered help to them also during the recent crisis in Sikar consistently with my obligations to the people. They know that my offices were usəd entirely on behalf of peace.

My surprise may, therefore, be better imagined than I can describe it when I learnt from the order that "Your (my) presence and activities are likely to lead to a breach of the peace and that, therefore, it is considered necessary in the public interest and for the maintenance of public tranquility to prohibit your (my) entry within the Jaipur State". I have no hesitation in saying that the notice belies tho whole of my public career.

I observe that I have been described as of Wardha. I hope this is a slip. For the Jaipur State, surely I am of Jaipur, I do not cease to be of Jaipur because I have interests in Wardha and elsewhere.

It has become a serious question for my co-workers and me to consider our position in the State.

The Praja Mandal was started in July of 1931 and reorganisəd in November 1936. It has a Constitution. It has many distinguished men of Jaipur State as its members. It has hitherto carried on its activities within the four corners of the Jaipur law and submitted even to irksome and illiberal restrictions regarding meetings and processions.

But the order served on me has opened the eyes of the Mandal. It has come to the conclusion that it must resort to civil disobedience, if civil liberty is not guaranteed and meetings and processions and

forming of associations are not allowed without let or hindrance so long as they observe strict non-violence.

I should define the scope of our activity. There is no mistake as to our goal. We want responsible Government under aegis of the Maharaja. We must, therefore, tell the people what it is and what they should do to deserve it. But we do not propose to offer civil disobedience for it. We must however seek the redress of the grievances of all classes of the people, we must carry on constructive and educative activities. The Mandal has no desire whatsoever to preach non-payment of taxes at this stage. If we secure the cooperation of the State in our essentially peaceful and life-building activities and in the redress of admitted grievances, there never need be any resort to non-payment of taxes. But should it unfortunately become a necessity, the Mandal will give the State authorities ample notice of its intention to do so.

For the Mandal stands for open, honourable and strictly non-violent methods. Therefore, what I am pleading for is full liberty to the Mandal to carry on its perfectly legitimate and non-violent activities without let or hindrance. If, however, this reasonable request is not granted before the 31st day of this month, I shall reluctantly be compelled to attempt to enter the State in spite of the order and the Mandal will hold itself free to take such steps as it may deem necessary for self-expression consistent with human dignity.

I hold that to do less will be to commit civil suicide. I trust that the Council of State will not put an unbearble strain upon my loyalty and that of the members of the Mandal.

(*Note*—Gandhiji wrote out the draft of the above letter in his own handwriting.)

From Pandit Hiralal Shastri
to Sir Stafford Cripps

1

27-3-42

I write to confirm my telegram of today's date which reads as follows ;—

"While offering you hearty welcome Jaipur State Prajamandal regrets no leader directly representing Indian States' people appears to have been invited to confer with you. I need hardly say that princes who nave done little to deserve confidence of awakened states' people cannot represent them and that people cannot be bound by any settlement made without their consultation. Indeed, Jaipur Prajamandal's frank view is that no Indian settlement can succeed which may be arrived at without taking into consideration views of millions of states' people as expressed through their duly accredited representative. I, therefore, request that necessary steps may kindly be taken for proper representation of Indian Stotes peoples' views before making any decision in matter so vitally important both for Britain and India.'

I also send for your kind consideration copy of a resolution passed unanimously by the fourth annual session of the Jaipur Rajya Prajamandal held at Sri Madhopur on March 25 and 26.

2

30-3-42

I thank you for your Secretary's letter of yesterday's date. Please execuse me for making it clear that I did not suggest that you should see representatives of individual Indian States. I expressed the Jaipur Prajamandal's frank view that no Indian settlement could

succeed which might be arrived at without taking into consideration the views of millions of States' people as expressed through their duly accredited representative. As a matter of fact I do not attach much importance to the number of the representatives of the people of the Indian States whom it may be possible for you to see; but what I do wish to emphasise is that the gentlemen whom you choose to see should be true representatives of the States' people enjoying their full confidence. I was glad to learn from yesterday's papers that 'an invitation has also been sent to representatives of States' people, but we in Jaipur do not know how many and who these representatives are. I carefully read in the morning papers the draft declaration brought by you and a few minutes ago I attentively listened to your radio broadcast. But I am sorry to find that it is not at all clear as to (i) who will appoint the representatives of the Indian States to the constitution making body and (ii) who will decide whether or not an Indian State elects to adhere to the constitution and (iii) in what manner the cooperation of the States' people during the war will be sought in the Government of India's task of organising to the full the military, moral and material resources of India. May the people of the Indian States hope that these most important points will be made clear beyond any doubt to enable them to see that the British Government has at last ceased to regard the Princes as the masters of the States ? I am sure you will find time to make the clarification suggested by me and thus earn the gratitude of the millions inhabiting the Indian States.

While waiting to be favoured with an early reply, wish you all success in your great mission which I believe has been undertaken in the cause of full freedom and self-government for the whole of India.

(*Note* : In accordance with the above Pandit Hiralal Shastri met and placed the Jaipur Prajamandals' view point before one of the members of the Cabinet Mission namely, Shri Sorenson when he visited Jaipur and had talks with the State's Prime Minister.)

Copy of the resolution No. 3 passed unanimously at the fourth annual session of the Jaipur Rajya Praja mandal held at Sri Madhopur on March 25 and 26:—

"The Jaipur Rajya Prajamandal trusts that, in any settlement between India and Britain which may be made either for the duration of the war or for the future it will be borne in mind that the Princes cannot be the true representatives of the people of the States and that due consideration will be given to the needs and aspirations of the latter as expressed through their chosen and accredited representatives and declares that if any settlement were arrived at in contravention of this the people of the Jaipur State will not be bound to accept the same."

From Pandit Hiralal Shastri
to Dr. Pattabhi Sitaramayya

1

1-2-42

The news that you met Sir Stafford Cripps yesterday on behalf of the Standing Committee of the All India States' Peoples' Conference has given me some consolation, although I do not know whether you were invited by Sir Stafford in the capacity of a representative of the people of the States or the interview was sought by you or the Standing Committee to represent the case of these unfortunate people. I have had some correspondence with Sir Stafford Cripps, copies of which I enclose herewith for your perusal and consideration. Since my letter of March 30 to Sir Stafford I have seen nswspaper reports which state that it has been left to the Rulers of the States to decide how their representatives should be chosen, whether by election or nomination. Sir Stafford is reported to have said—"We have not the same control over the Indian States as we have over British India", and further—"The British Government will stick to its treaties". Now if all this is true what the unhappy millions of the States whose very existence is being thus denied are to do ? I have no doubt that you must have taken a very bold stand on behalf of the States' people and I feel confident that the Indian National Congress would never agree to a settlement with Britain in which so many millions of the Indian nation may have no voice and no place. And then, I would declare that no Indian settlement can succeed which may unfortunately be arrived at without giving one fourth of the Indian nation its proper place. The tremendous difficulties of the people of the States are no secret, but

the time must come when all difficulties will be overcome and all barriers will be removed which at present beset our path. Evidently, the British proposals sponsored by Sir Stafford Cripps are open to a number of other objections; but I feel sure that the proposals would have no chance of acceptance by the Congress even if the British Government's refusal to recognise the people of the Indian States in their rightful status were the only one objection to the proposals. Whatever the fate of the British proposals may be, I have to convey through you my predominant sentiment of the moment that the States' people can consider themselves entireiy safe in the hands of the Congress and leaders like Mahatma Gandhi and Pandit Jawaharlal Nehru.

2

22-4-47

So many thanks for your very kind (and interesting) letter of May, 11. I arrived here only yesterday and today at 8 A.M. I took my seat in your drawing room which has been rearranged with a small 'gaddi' and a 'takia'. I shall keep the room in this form for a week and then I think, I must vacate it for you. I was taken ill at Jaipur; hence the week's delay for which I am very sorry.

2. I have begun to feel my way and I hope to find it within a week. These are the first lines which I am penning after occupying this seat fhis morning-exactly a month after my appointment.

3. I shall try my best to make permanent arrangements for the housing of the office. I don't know, but I am dreaming to have a new office building somewhere on this earth before you arrive. I am staying with family at 29 Canning Lane for the present and am looking out for a suitable house.

4. About the meeting of the Standing Committee I had a talk with Vyasji this morning and we felt that the meeting should be held some time between the 7th and 15th of June; as soon after the 2nd as possible. I am consulting Balwantbhai and shall then fix up. You are also coming, I understand, by the 30th.

5. Yes, we must give more attention to our building affair and do all that we can to possess a house. Why do you talk of retiring ? I don't think you will ever 'retire'. This brings to my mind the following :—

"Ajaramaravat Prajno
Vidyamarthancha Chintayet
Grhitaiwa Kesheshu
Mratyuna dharmamacharet."

6. Regarding the men (and women) for the office I regret I have not yet made any progress. But I shall make up my mind about our requirements finally in a day or two. I had in my mind a gentleman for the post of Office Secretary; but I now don't think we can or should have him. Then there is Anand (my personal assistant) who has been working in the office, I can think of transferring him to the office. Seshan is here. Raman is still in bed, suffering from chicken pox. There are two more friends found by Vyasji and Venkatraoji. But we shall reconsider the position and then settle. Santaram has not arrived.

7. There is one letter for you from Dewes Juuior together with a constitution. You will see the letter here; meanwhile I am sending him an acknowledgement.

From Pandit Hiralal Shastri
to Pandit Govind Vallabh Pant

31-7-58

I am grateful to you for the very patient hearing which you so kindly gave us on July 19 in regard to our plea for the restoration of the Jaipur Bench of the Rajasthan High Court. Between then and now I have, on the one hand, watched the situation which shows no signs of returning to normal, and, on the other, I have made attempts, without success of course, to see if those on Jodhpur side who are in the forefront in this matter can be made to agree to some via media.

I arrived in Delhi this morning. If you had been here, I would have asked you to please give me a little time for another discussion of this matter. I met Panditji and Dhebarbhai in the course of the day whom I acquainted with the situation as I see it from the Government and the Congress point of view. Right or wrong, a situation has developed in Rajasthan which cannot be allowed to drag on like this indefinitely. With the consent of Jodhpur side, as for as possibie, something will have to be done for the the satisfaction of Jaipur side which, however, may not necessarily involve a complete reversal of Government orders. With your vast experience and influence, I feel, it should not be difficult for you to find and implement a common formula.

I am returning to Jaipur, but I will be coming again soon after your return to Delhi. Then, I hope, I will get an opportunity of making a submission as to how this tangle may be best resolved.

From Pandit Hiralal Shastri
to Snri U. N. Dhebar

31-7-58

I have just received your letter (No. P. Co. 14(B)17767) of July 25-26 for which I am grateful to you.

The principles indicated by your use of the words—(1) emotional integration of the people, (2) inconvenient decisions—taken in the interest of the nation (3) the Party and the Government as one family etc. are unexceptionble, but I donot see how you make them applicable to the High Court problem in Rajasthan.

The Capital of integrated Rajasthan was located in Jaipur, and owing to considerations which we all know the High Court was located in Jodhpur and a Bench was kept in Jaipur. That was in 1949. In 1954 the Rajasthan Government again resolved that the principal seat of the High Court should continue in Jodhpur and a permanent Bench of the Court be maintained in Jaipur. The construction of a new building for the Jaipur Bench of the High Court was sanctioned. The foundation of the said building which is nearing compleltion, was laid by Pandit Govind Ballabh Pant. The Rajasthan Capital Enquiry Committee, which I have reasons not to regard as what you call an "independent forum", recommended, among other things, the abolition of the Jaipur Bench, I understand that for some time Pantji was not in favour of abolishing the Jaipur Bench. But something happened later and Pantji took a decision which a seasoned administrator like him should have certainly not taken. Pantji's letter conveying that decision reached the hands of the Chief Minister of Rajasthan some day in the last week of June. 1958. The contents of the said letter

were made known even to some of the Ministers most vitally concerned at least a week after the receipt of the letter and not earlier than a few hours before the hurriedly called Cabinet meeting at which orders to abolish the Jaipur Bench were pasaed. Within a few hours after that, the Cabinet's decision was endorsed by the Rajasthan Pradesh Congress Working Committee. But the matter was not placed before the Pradesh Congress Committee which met only the next day. Not one of the Congress Committees and Congressmen concerned was taken into confidence, and no steps were taken to explain the Government's decision to Congressmen who were upset by the Government in such an ununderstandable hurry. Now all this makes so many questions to crop up. But I would not like to state the questions in this letter.

The principle of having unified High Court may be good or bad, but it has not yet been accepted by the Government of India; and even after the acceptance of that principle I have no doubt there will be some exceptions. In the case of Rajasthan, what the Capital Enquiry Committee failed to take proper notice of should have been fully considered by the Government. Surely, there can be certain aspects of a question which the Government alone can understand thoroughly. In my opinion, the wisest decision in regard to the Rajasthan High Court would have been to reaffirm the location of the High Court in Jodhpur and to allow the Jaipur Bench to continue at least till the acceptance or otherwise or the Law Commission's recommendations in respect of unified High Courts.

I am sorry to observe that the Government's decision does not seem to me to be in accordance with any accepted principle. It was merely an administrative question, and only an administrative answer should have been given, The interests of neither the Nation nor the State of Rajasthan as a whole were at stake. The convenience so far allowed to one part of the State was suddenly withdrawn without any justification whatsoever. It is our great misfortune that in Rajasthan the Congress is not functioning like one family; here, not even the work of the Cabinet representing only a group in the State Congress is being carried on in a co-operative spirit, The way in which the decision to abolish the Jaipur Bench of the High Court was taken furnishes positive proof of what I have said.

I do not wish to say anything about the movement which was started as a result of the Government's decision, nor do I wish to

comment on the way in which the movement is sought to be suppresssd by the Government. What only I feel constrained to say is that, in my humble opinion the Government's decision is wrong and it is not a decision then on merits, but a decision taken under onesided persuation and pressure. For myself, I would like to make it clear that although on one or two occasions I allowed myself to think about I have no desire to throw my weight on this side or that side. I wish, however, to do what little I can to help all concerned in finding a satisfactory solution of a problem that has been un-wisely created by the Government's short-sighted and hasty action in this particular matter.

More, when we meet in Delhi soon.

From Shri U. N. Dhebar
to Pandit Hiralal Shastri

26-7-58

I am in receipt of your letter of 21st July. I have gone through the note also. It is so very unfortunate that we of the older generation cannot appreciate the issuess in their proper bearing. What are the priorities in your minds ? If the priority is to strengthen and fulfil the great dream of unification of our people socially, politically and economically, then we should operate from that level. It may be that people at times may not appreciate what we say or do. But a person who is wedded to a mission cannot always think in terms of likes and dislikes, conveniences and inconveniences. The means of all of you-the stalwarts in Rajasthan were associated with a great mission - the unification of Rajasthan through the elimination of the princely order and strengthening of the edifice of Indian independence. If that is the dream that is to be fulfilled, if that is the mission then the first thing that they will consider will be the emotional integration of the people. It is unfortunate that administrative and other considerations propel us, drag us into paths in conflict with that main purpose. It becomes my painful duty to remind everyone of the former Indian States' workers that there is a long leeway to be made up. Feudalism does not attach merely to land, it attaches to customs, way and conduct of life and thinking also.

If the walls of feudalism have to be broken, we have to emphasise the emotional aspect and that emotional aspect is that we shall all enjoy the advantages together as we shall suffer the disanvantages together. One cannot emphasise the disadvantages or the

advantages only and secure that atmosphere of cooperation and collaboration which is needed for working out a scheme of integration The lead, I think, that should be given to the people is one of considering integration as the first priority and be prepared for inconvenience in the interest of that integration.

Once the people are set on a wrong track, then all the difficulties follow and what you have mentioned in the note is a necessary consequence. Here, the question was examined time and again by an independent forum before which everybody had an opportunity to have his say. The grace and wisdom lies in accepting the decision. People have the capacity to bear even more difficult things, if they are in the interest of the country and they are once convinced that they are so. It is of course, more difficult for the party in power to explain the difficulties and the reasons why the people have to cheerfully bear them. But that is the essence of training public opinon. We cannot always think in terms of convenient decisions. Inconvenient decisions have, at times, to be taken if they are in the interest of the nation and a nation develops and grows as it learns that both conveinent and inconvient decisions are part of nation's existence. The only test is that they should further some national interest. You must have seen in today's paper the interview of Shri Govindan Nair in Kerala. There is a student's agitation. The Party and the Government both are trying their best as one family to guide the students into proper channels. It is not that I agree with their policy in supressing the students. But what I am saying is that a party can not function in the way we are functioning and by 'we' I mean the senior amongst us at the provincial and the district level.

I was, therefore, worried that instead of throwing your weight on the side of the implementation of the recommendations in the report, you should have thrown your weight on the other side. Even now, it is not too late. It is better to realise a corporate mind about the problems and their solutions.

I have already written to you requesting you to come to Delhi and I hope you will take an early opportunity.

From Pandit Hiralal Shastri
to Sir T. Vijayaraghavacharya

19-2-47

I am very sorry to inform you that the Udaipur train left before my train arrived here. I could not understand where was the hurry. Any way, I found myself left in a mood of penance in this deserted place. Being already booked for tomorrow in Jaipur and Banasthali I cannot afford now to visit Udaipur by the next train. Therefore, with a heavy heart I have decided to leave back, having completed only half the visit ? As I wired in the morning I send this note with my companion.

Now I come to the subject. I was surprised to hear that the Mewar reforms were announced early this month. This is not what should have been done. We must have been given the opportunity of previous discussion. Even at this stage I intend to have a few (shall I say innocent ?) suggestions which I feel must be considered by you. For a successful working of any scheme of constitutional reforms you will agree that it would be necessary to satisfy progressive political opinion. If you think that some useful purpose would be served by an exchange of views I should be glad to see you at the next earliest opportunity.

I have got the Prajamandal name for the Constituent Assembly, but I should like to communicate it to you personally. As regards the electoral college, I am definitely of the opinion that the Udaipur Municipality should be used as one. This would be the easiest course. You should not think of forming an electoral college from the Village Panchayats.

Please let me know your programme. I shall be in Delhi on the 21st, 22nd and 23rd. On the 24th I shall be in Jaipur. Then for a week I shall be wandering about from one end of Rajputana to another from Idar to Dholpur. I cannot possibly put many things on paper; nor do I request you to send me a definitely written reply. But I hope you will give me some indications by letter and by communicating something through my companion who brings this letter to you.

From Sir Vijayaraghavacharya
to Pandit Hiralal Shastri

20-3-47

Many thanks for your letter from Chittor which was delivered to me by your friend last night.

I was hoping to have an interesting discussion with you. I am disappointed. We can however meet early in April. That was the date suggested by your friend. Any date between 4th April and 20th April will suit me.

Considering that amongest other progressive features we have given adult franchise and wholly elected Assembly, I should have thought that the proposals would have been considered much in advance of any constitution framed so far. But anyway, I shall gladly consider any suggestions that you propose to make.

From Pandit Hiralal Shastri
to H. H. Maharaja Rama Varma of Travancore

10-8-68

Yesterday was one of the happiest days of our life when Sm. Shastri and I found ourselves in the presence of not only H. H. the Maharaja of Travancore but also the revered mother for over an hour. Indeed, it was so nice of you both to have spared all this time for unknown people like us: in any case, we felt that your Sandhya programme was perhaps delayed on account of us. As it happened, I did most of the talking in which both of you took such a keen and patient interest from the beginning upto the end. We are grateful to you and much more to the mother. And again I dare not fail to thank you for your hospitality and the fine arrangements so kindly made by you for our comfortable stay in Trivandrum.

In regard to our educational work I have only to say that we want our people residing in all parts of the country to have a feeling of sharing in the unique national endeavour which is the Banasthali Vidyapith. In Trivandrum we have so far been known only to the Government which has been helping the Vidyapith for the last so many years; we are now known to you. It may not be a question of money, but it is certainly one of sentiment that we get some monetary help from some of the citizens of Trivandrum and that can only be through you. Naturally, the more the better; but our request to you is that you kindly ask some of your intimately connected peope to contribute something to the Banasthali University Fund. If the number of contributors is large, the total amount may also be so, even if each contributor gives a small sum only; and if the number is small, then each donor may have to give more in order to make the total amount sizable. In any case, we have made you Banasthali's agent for Trivandrum. Needless to say that we will be satisfied with whatever we will get through your agency.

The Brahma-Mandiram's case, however, is different. If the total money required is not comparatively much. the likely donors also cannot be more than a few. Each donor's share may have therefore to be somewhat larger. There was a time when anyone "Bhakta" like you could have given the entire sum of Rs. two lakhs. But the present position is not so, In the existing situation. therefore, even the most willing donor may have to give only token help as you indicated to us with visible regret. To that I said that even a token contribution from a liberal and generous Maharaja may be something considerable. For my part I made it clear that though I may be needing and expecting handsome contributions from the few "Bhaktas" whom I have in view, it is my rule not to embarrass our kind helpers by telling them the particular amounts which I want from them. Each donor's amount has therefore to be left to be decided by the donor himself; he alone can be the best judge of his own situation and present capacity to give. On that judgment, in your case, I can entirely depend. After all, it is the Lord's own work to be shared by the Lord's own "Bhaktas" amongst themselves; my function is to approach the "Bhaktas' concerned; that I do in all humility on the one hand, but also with some pride which is a Brahmana's natural privilege. As a 'Brhamana' I cannot utter a word which may not ultimately prove true. I mean to say that if I venture to indicate a particular amount, the same must then be forthcoming. Now, this is what I call pride. And the humility is always there to say-"here I am with a beggar's bowl : you please put into it according to the Lord's command."

I feel by now that I have used far more words than perhaps I should have done. But what was to be said has been said: I talk from the innermost depths of my heart and so I cannot and in fact would not like to restrain myself. I am sure you will kindly excuse me if I have said herein what was not necessary.

We are likely to wander about in the South for about two months more; in Kerala upto August 20, then Madurai. Rameswaram, Pondicherry, Madras, Bangalore, Hyderabad and then again Madras; Kerala address being C/O Shri G. S. Dhara Singh, Palace Road, Cochin-2 and Madras address C/O Messrs. Dadha and Co., 86, Nyniappa Naick Street, Madras-3. I will be writing to you again as and when necessary.

With all my affection and respect for you and the mother.

From Shri Jainarain Vyas to
Shri Harish Chandra Sharma.

15-9-45

In spite of long talks, I was personally of the opinion that you ought not to have gone out of and opposed the Prajamandal. If there was any thing wrong with the topmost leaders, as you expressed, you ought to have tried to get things in order through persistent efforts.

You had requested Pandit Jawaharlalji to give you an opportunity to interview him. He may, if occasion arrives give you time, but he cannot advise you to work in your state in the name of the congress nor can he agree to your action of opposing the Prajamandal under any name, of course if there is anything wrong with the Prajamandal, you are at liberty to mend matters from within.

I appeal to you once again to have no rival organisation.

From Shri Dwarkanath Kachru to
Pandit Hiraial Shastri.

17-11-42

After leaving Delhi on the 6th afternoon I had to spend a week in the Central Indian States and then proceed on to Bombay. Within a week's time I shall again leave for Central India and after staying there for a few days I shall rush back to Delhi. In any event, I shall be back in Delhi by the close of this month. On my arrival there I shall send word to you and we can fix up a meeting. At that time I shall also expect to receive from you the second instalment Rs. 1000/- atleast. I hope you will be able to manage it by then.

Regarding the work assigned to Omji and his selected workers, I had asked them to prepare a detailed report and submit it to us. An initial sum of Rs. 1000/- was also advanced to them. (Rs. 500/- loaned by me and the other half made over to them by you prcbably). In my absence they were to submit the report to 'vakil Sahib', our technical adviser who in turn had to discuss it with you with a view to fix up things finally. Bhaiji, I was glad to learn later, was kept entirely at the disposal of the Rajasthan Committee and he was instructed to work in close cooperation and under the instructions of the Rajasthan Committee. I hope things are going on alright. And since you are there to look into things personally I need have no apprehensions. I have also asked Omji to keep regular accounts for the monies received and spent. There should be no confusion and no muddling up.

I hope your 'Committee of Action' has started its work. While in Delhi, I was told by some one that the Committee of action was intended to be or at least desired by some people to be independent of the Praja Mandal-a Committee not under the discipline and control of the Praja Mandal. This is a very dangerous development and a tendency, and I must warn you against it. Such a scheme if accepted will make of the committee of action a 'Fascist clique' with a tremendous potentiality to do incalculable harm to our policical cause. The Committee must therefore function under the direction, superintendece and control of the Praja Mandal.

As I have already told you the money that you have promised to the Congress must as a matter of course and of necessity be always handed over to Dr. B. V. Keskar who is at present incharge of the three provinces of U. P., the Punjab and Delhi on behalf of the All India Congress Committee. It may not be always possible for him to meet you as he is mostly travelling about and has very often to come down here for important Committee meetings and consultations; but he can appoint some one of his workers—and I am sure he must have by now done that—who will be known to you and to whom you can advance money when and if he shows you a letter of authority from Dr. Keskar. This is very important as the A.I.C.C. are very particular about their accounts etc. By the way this reminds me of a minor incident which occured here a week ago. Due to some serious irregularities and inconsistencies on his part the High Command of the Congress have thought it desirable to ask Mr. Bishamber Nath, one of the close associates of Dr. Keskar at Delhi, to retire from the work that was assigned to him at Delhi. He has, I am told, been given some other work. I do not yet know the exact situation, but I hear that the present action against him is the cumulative effect of wavering and vacillating and very often irregular and unauthorised attitude and actions indulged in by him for the last so many months. Under the present circumstances, such tendencies if encouraged and allowed to continue, will prove injurious to the larger interests of the Country. This affair though I have referred to it here only incidentally should also serve as a note of caution to you and other friends against any misrepresentations of the official position and stand of the Congress. We have to abide by the superior decision and all that we can do is to wish that our friend could work sincerely and in a disciplined manner so as to remove the impression created on his superiors.

I am anxiously watching the situation in Jaipur. What I really do not want is a split in the Praja Mandal. There are many unfortunate tendencies working inside the Praja Mandal and outside it. If a spilt ever comes it will damage our cause and reputation which Jaipur has gained all these years of toil and struggle. I am always at your disposal and a mere letter or a message will bring me to you.

Please give my namaskars to Mataji and love to Sudhakar and Shyam. Also please remember me to all other comrades and friends.

P. S.

Since this letter was written many days have gone by, I am now leaving Bombay for Delhi on or about 24th of this month. I shall be there for only a week and then I rush back to Bombay. It is urgently necessary for me to meet you. Therefore kindly send an express telegram informing me about the date and venue of the meeting. I can come over to Banasthali or Jaipnr or even wait for you at Delhi. Please therefore, decide and let me know immediately.

Dr. Keskar, will also be meeting you soon. He might come on wherever you ask. Since you had asked him to ask you a week in advance, for monetary contributions promised by you he wishes me to inform you that you should kindly arrange for an instalment towards the Congress fund. Please therefore send word through Fateh Chand about the date and venue of your meeting with him next week.

An extract of a letter From Pandit Hiralal Shastri (than Jaipur Raj Motmid at the Mayo College, Ajmer) to some important People in Jaipur.

9-4-23

I have received with great concern the news of the resignations tendered by three members of the Mahakma Khas. I have not been able to get a first hand knowledge of the circumstances under which the resignations were forced on these members—so far it is clear that the disagreement with Sir Charles Cleveland has reached a stage at which the members found it impossible to work in co-operation with the veteran ex-Director of C.I.D.

Personally, I have always doubted the wisdom of importing this brilliant head and nominating him to an office of the highest importance. I presume, similar doubt was entertained by a large section of the thinking public of the State. The only argument that appeared to go in favour of this most unfortunate importation is that without him it would have been impossible to win the socalled adoption case. As I am not in the know of the mystery of that important case I cannot discuss the validity or otherwise of the said argument. Supposing that the argument was sufficiently sound, one might be forced to feel that the treatment of one disease by inviting another might have been advisable to some extent. But, then, public opinion, I am confident, was steadfastly going against the continuance of Sir Charles in his office, after the business, for which he was required, no longer existed. I am sure you will agree with me when I say that the presence of Sir Charles was a matter of common resentment.

Letter from Hiralal Parasara, who was a Student of the 1st year class, to Jaisingh a senior friend of his, appearing for the B. A. Examination of Allahabad, University.

28-3-17

Yours of the 26th instant to hand. I too, am very sorry for Pt. Ratnakar Shastri's losing a paper in his M.A., Examination. But there is no great harm if the other four papers would make up for the loss. I am glad to learn that Mr. Ranbir Singhji has appeared in the B. A. Examination.

I went twice to Jobner House after your going over to Allahabad. But I am sorry neither your Kamdar nor any one else has come there from Deorhi. So nothing about your home affairs can be written this time.

The two men, who came to see you, parted with me on the very day they had come and I asked them no questions as to where they had put up in Jaipur, so it is very difficult or rather impossible to find them out. The only way open now is that they can see you in Allahabad if they have taken the trouble of going there in accordance with their words to me.

The rainfall we got here was not good. Hail too (though not large in size) fell. Fortunately, Jobner has not been visited by this misfortune.

Messrs. Sabal Singh and Pitam Singh have gone to Jobner. The annual examination there will be held on April 16th and the following days. Plague is raising in many cities in India. For these two causes I think it proper that you would not intend to stay long in Allahabad after your examination.

I hope you will be pleased to give me an account of your papers.

With all good wishes,

P. S.

Nothing fresh to pen.

८

भाषण, वक्तव्य

भूमिका

भाषण देने के जमाने में मैंने भाषण बहुत दिये। परन्तु ज्यादातर भाषणों के ऐसे नोट मेरे पास नहीं निकले जो आराम से पढ़े जा सकें। मेरी ओर से वक्तव्य बहुत कम निकलते थे। मेरे कुछ भाषण व वक्तव्य तथा दूसरों के लिए लिखे गए कुछ भाषण व भाषणांश भी इस भाग में दिये गये हैं।

हीरालाल शास्त्री

Extracts from English Translation of the welcome Address of the Chairman, Reception Commitee of the sixteenth All India Ayurvedic Conference, Jaipur.

1

April, 1926

I have said above that there is no monopoly in Science or in Art. It is, again, beyond doubt that the sea of knowledge is unbounded. The reservoir of learning is full to the brim and is inexhaustible. One is sure to get his share which would certainly be commensurate with the hard work he can put in. It is well-known that Science and Art grow in special conditions. For the acquisition of knowledge we want sturdy men of patience who have got no object other than the one fixed aim and who kave at the same time no anxiety whatsoever with regard to the earning of bread. Society is specially indebted to such great seekers of truth and it is the sacred duty of Society to hold itself responsible for making the way for these great men smoother and easier. For whatever wonderful inventions these scholars may be able to make will surely contribute to the well being and glory of Society. The real object of the State in giving permanent landed property to talented persons is that they should be free from the necessity of thinking of making both ends meet while they dive deep in the ocean of Science. You will agree with me, gentlemen, when I say that a man who has to worry himself at every step with question of providing necessaries of life for his family and himself cannot ordinarily be successful in scientific research.

2

24-16-68

Gentlemen, I have now nothing in particular to add. Selflessness and selfsacrifice are the inevitable conditions for the progress of learing. Endeavours to gain knowledge with an ulterior motive to collect money should not fully succeed. Money may be a secondary gain but learning should be for its own sake. If we can get students swearing allegiance to these high principles the progress of Ayurveda is undoubted. Favourable conditions should be created in which the students may have a mad enthusiasm for learning. That is what happen in other countries. Society supports such great men. Indians are endowed with this quality by nature and do not need to learn it from others.

मान्या विद्वांसश्छात्राश्चान्येऽप्युपस्थिताः सज्जनाः !

धन्या वयं यदस्या महत्याः पण्डितसभायाः सम्मेलनस्य द्वितीयोऽयं शुभावसरः संप्राप्तः। गताब्द एवास्माभिर्विद्यापीठस्योपाधिवितरणोत्सवविषयकः प्रस्तावः कृत आसीत्, इदानीं तु स प्रस्तावः कार्यरूपे परिणतोऽस्माभिर्दृश्यत इति नो हर्षस्थानम्। प्राचीनकाले गीर्वाणवाणी सर्वसाधारणस्यापि जनस्य मातृभाषा आसीदिति विदितमेव सर्वेषाम्। अधुना तु संस्कृतेनैव भाषमाणानां नानाशास्त्रनिष्णातबुद्धीनां विदुषां पारस्परिकः समागमो यदाकदाचिदेव सुलभः। विद्यन्तेऽस्मिन् जयपत्तने दिगन्तप्रसिद्धकीर्तयः पण्डितवर्या इत्यस्माकं सौभाग्यलक्षणम्, पुण्यप्रतापस्यास्मन्महाराजस्य परमानुग्रहस्य प्रसादश्च। अपण्डितोऽप्ययं कश्चिदत्रभवद्भिर्भवद्भिः पण्डितसभाया अध्यक्षपदेन मण्डितोऽस्तीति भवद्भिर्मयि कृतायाः कृपायाः पराकाष्ठा। एतस्य परमोच्चस्य पदस्य प्रकाण्डपण्डितमण्डनीयस्य नितान्तमयोग्योऽहमिति बुद्धिः भृशं मां बाधते स्म। किं च महाकवेः श्रीकालिदासस्य "प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः" इति सदुक्तिरसक्तृत् मे स्मृतिपथमारोहति। तथापि परमोदारैर्महानुभावैः श्रीमद्भिर्भवद्भिरयोग्यस्यापि मे सम्यङ् निर्वाहः कृतः, इति मे परमः सन्तोषः।

अज्ञानान्धकारेणावृतमपि मे हृदयं पण्डितानां प्रतिभाप्रभावेण किंचित् किंचित् प्रकाशसाक्षि संजातमित्यात्मानं परमं धन्यं मन्यमानोऽहं भवदीयचरणारविन्देषु कोटिशो धन्यवादानर्पयामि आशासे च यत् किंचिदपि स्खलनं जातं तत्सर्वेऽप्युपस्थिता महानुभावा न गणयिष्यन्तीति।

अयि महानुभावा विद्वांसः! दैवदुर्विपाकात् पौरस्त्यपाश्चात्यसभ्यतापद्धत्योर्धर्मव्यवस्थाक्रमयोश्च महदेकं द्वन्द्वयुद्धमस्मदीये देशे समुपस्थितम्। मन्ये भवद्भिः प्रत्यक्षीकृतं भवेदेव। भारतीया धर्मव्यवस्था क्रमशो विलुप्यमाना अव्यवस्थारूपिणीव्यवस्थान्तरप्रतिस्पर्द्धया विकला चास्मद्दृष्टिपथे वर्तते। बहवश्चास्माकं बन्धवः स्वकीयं पुण्यं मार्गं तुच्छमुद्भावयन्तो मार्गान्तरं च ग्रहणयोग्यं मन्यमानाः प्रतिदिनं जलप्रवाहे पतिता इव नात्मानं स्थिरं कर्तुं क्षमा इत्यपि विचारपरैर्विद्वद्भिः साक्षात् कृतं स्यात्। क्वास्माकमाचारः? क्वास्माकं व्यवहारः? क्वास्माकं रीतिः? क्वास्माकं धर्मपरता? क्वास्माकं तपश्चर्या त्यागश्चेति निरन्तरं ध्यानावस्थितं कुर्वतो मम विचलति धैर्यं त्रुट्यते चाशाबन्धः। संवत्सराणां कोटिभिः परिवर्धितो विदेशीयाक्रमणेभ्यः कथमपि परिरक्षितोऽस्माकं विद्याकोषोपीदानीं क्रमेण क्षीयते दुरुपयोगवशाच्चानादरणीयो भवतीत्यत्रापि न कस्यापि संशयः। भारतीयानां सभ्यता स्वकीयेनैव प्रमादेनान्येषां चरणधूलिषु लुठति चेदस्मात् परं किं दौर्भाग्यं लज्जास्थानंच?

भवतु तावत्। न वयमेके ब्राह्मणाएवपरमन्येऽपि भारतीया निराशावादिनो भूत्वा तूष्णीं स्थातुमर्हन्ति। विचार्यतां निर्धार्यतां च कश्चिदुपायो येन वयमस्माकमाचारादीनां रक्षणे परिवर्धने च समर्था भवेम। अयि विचारशीला विद्वद्वर्याः! मया तु यथाबुद्धि भृशं निर्धारणं कृतम् यत् संस्कृत भाषायास्तद्द्वारा च भारतीयानां प्राचीनशास्त्राणामध्ययनमध्यापनं चानयोरन्यतरः प्राधान्यमुपगत उपायः। अस्मदीयस्य वास्तविकस्य तत्त्वस्य कश्चित् परिचायको विद्यते चेदुपायस्तर्ह्येक एव सोऽस्माकं प्राचीन विद्यायाः साक्षात्कारः। यदि च केनाप्युपायेनास्माकं प्राचीनं गौरवं स्मर्येत तर्हि प्राचीनरीत्यनुसारं प्राचीनशास्त्राणां परिशीलनमेव स उपायः।

एतदेव चोद्देश्यं पूरयितुमुद्यतेयं बहुना कालेन श्रीमती संस्कृतपाठशाला। प्रतिवर्षमनेके छात्रा अत्रानेकेषु शास्त्रेषु गतिं लब्ध्वा आचार्यादिपदवीः प्राप्नुवन्ति, प्रदेशान्तरेभ्योऽप्यनेके विद्यार्थिनः पुण्यं जयपत्तनमागच्छन्ति सौकर्येण विद्यालाभं च कुर्वन्ति। बहवश्चात्र विद्वांसो निपुणाः मथितशास्त्रसमुद्राः पूज्याः श्रद्धास्पदपादाः आसन् सन्ति च, पुण्यकर्मणां महानुभावानां स्कन्धे स्थितेयं प्राचीनविद्यावाहिनी धूः। एत एवास्माकं विद्याकोषस्य गोप्तारः,

विज्ञानोद्यानस्य मालिनः सत्पथस्य प्रदर्शयितारः सभ्यता-नौकाया नाविकाः निःस्वार्थसेवातपोवनस्य तपस्विनः सद्गुरवो विराजंते। रूप्यकाणकपरिमितं यदपि स्तोकमेते फलं लभन्ते तथाप्येतेषां महतः कार्यस्य महदेकमन्यत् फलम्। यदेतेषां परिश्रमवशात् भारतीयत्वस्य रक्षा यथाकथंचित् स्यादेव। मन्ये सर्वेऽपि गृहधर्मिणोऽर्थमभिलषन्ति तत्प्राप्तिं च जीवननिर्वाहार्थमत्यन्तमावश्यकं गणयन्ति - न तथापि गीर्वाणवाणी भारतीयं शास्त्रं चापणे विक्रयविषयी-कर्त्तुमर्हति। देववाणीसेवकाः सन्तो ब्राह्मणास्तपस्विनोर्थरूपं फलं न बहु मन्येरन् इति मे दृढः संकल्पः।

अयि प्रियवराः प्राप्तपरिश्रमफलाः लब्धपदवीका युवानः। युष्माकं केचित् पाठशालीयं नियमितं अध्ययनं स्थगितं कदाचित् कुर्युः, तथाप्याशासे निरन्तरं यूयं योग्यतावर्धनोपायानवलम्बिष्यध्वे। ये चापि युष्माकं मध्ये पाठशालीयमध्ययनमधुनापि करिष्यन्ति ते गुरुतरेण परिश्रमेणोच्चतराः पदवीः लभेरन् इति मे पूर्णाशा। अयि भाविनो नागरिकाः। अत्र सभामध्ये कृतानि प्रतिवचनानि यूयं न कदापि विस्मरिष्यथ इति मे दृढोऽनुरोधः। याः का अपि प्रतिज्ञा युष्माभिरस्मत् समक्षे कृतास्तासां सर्वासामपि निर्वाहः सम्यक् आजीवनं करिष्येत इति मे आशा-आशीर्वादश्च।

अस्मात् परं च भवद्भिः कश्चित् समयानुकूलमपि ज्ञानलाभः क्रियेत। एतत् क्रियमाणैरपि भवद्भिर्नकदाचिदर्थकामावेव मुख्ये साध्ये मन्येताम्। लोकसेवैव भवद्भिर्मुख्यं कर्तव्यं सदा गण्येत। भवन्त एवाधारो मातृभूमेः, भवन्त एवाश्रयो भारतीयायाः प्राचीनायाः सभ्यतायाः। सदैव स्वीयं कर्तव्यं यथोचितं पालयद्भिरिह कीर्तिपदं लप्स्येत भवद्भिः।

परमोदारा महानुभावाः ! नास्त्यन्यदकिञ्चनस्य मम समीपे किंचिदुपदेष्टुम्। यथा कथंचिदपि वयं तिष्ठेमइति मे हृदयस्थो मनोरथः। या कृपा ममोपरि सम्माननीयैर्भवद्भिः कृता तदर्थं श्रीमद्भ्यः पुनरपि हृद्भावेन धन्यवादान् निवेदयामि।

हनुमानपुरा (शेखावाटी)

२५-११-३८

हनुमानपुरा का नाम मैंने सुना है; इससे मुझे प्रेम भी है, क्योंकि यहां की लड़कियां वनस्थली पढ़ती हैं।

शेखावाटी के हालात मुझे सब मालूम थे। लेकिन दूर बैठे-बैठे हालत को जानना काफी नहीं था। मैंने यहां कई नई बातें जानी हैं। इधर के करीब-करीब सब गांव ठिकानों के आधीन हैं, और वे ऐसे हैं जैसे उनका कोई मालिक ही नहीं। राज की क्या जरूरत है मैं यह बतलाता आ रहा हूं। आदमी लड़भिड़ कर न मर जायें, इसलिए राज की जरूरत हुई और वह प्रजा की मर्जी के माफिक चल सकता है, इसके खिलाफ नहीं। इसके खिलाफ राज नहीं चल सकने वाला है और नहीं चल सकता। इसके अलावा राज, मालगुजारी व अन्य टैक्स वसूल करता है। इसके विषय में राज का फर्ज है कि वह प्रजा के लिए खर्च करे। पिछले दिनों में मैंने राजा और सूर्य भगवान की उपमा दी है कि जिस प्रकार सूर्य भगवान समुद्र से पानी खेंचकर मेह के रूप में बरसा देते हैं और कुछ पानी जमीन सोख लेती है बाकी वापस ही समुद्र का समुद्र में चला जाता है। इसी तरह राजा खुद ही उस रुपये को न बिगाड़े। उसे खुद के मतलब के लिए चाहिये उतना सा रख ले बाकी सारा प्रजा के लिए वापस दे दे। यानी अच्छे कामों में खर्च करे। लेकिन इस तरह हम हमारे राज की परीक्षा करके देखें तो दुःख है कि हमारा राज ऐसा नहीं है। दूसरे कर का तरीका भी एकसा नहीं है। शेखावाटी में असली बस्ती किसान की है, मैंने जिस इलाके में 10 वर्ष किसानों के बीच में बिताये है वहां 100/- खर्च करने पर 200/- की आमदनी होती है। अगर किसान के घर के ५ आदमियों की दो आने रोज़ के हिसाब से मजदूरी जोड़ें तो 125/- हो जाय यानी सब मिलाकर उसके पूरे 200/- खर्च हो जाते हैं और उसे नफा नहीं मिलता। फिर भी राज तिहाई मांगता रहता है। यह तरीका गलत है जब पैदावार नहीं होती है तो इतना कहां से देंगे। जमीन किसकी है। जमीन उसी की माननी होगी जो जगत को अन्न पैदाकर खिलाता है।

किसान के पास रुपया नहीं। फिर भी उससे इतनी मालगुजारी वसूल करली जाती है। बाकी जयपुर शहर में राहदारी के टैक्स के (जो कपड़े-लत्ते पर लगता है)

अलावा कुछ नहीं लिया जाता। दूसरी ओर किसान के पास से उसकी आमदनी से ज्यादा लिया जाता है। मजे की बात यह है कि जिनसे कुछ नहीं लिया जाता उन पर ज्यादा खर्च होता है और जिनसे ज्यादा लिया जाय उन पर कुछ नहीं। जयपुर राज्य की आमदनी १॥ करोड़ है जिसमें लाख दो लाख से ज्यादा गांव वालों पर खर्च नहीं होता। सड़कें, रोशनी, म्युनिसिपैलिटी, पानी, कॉलिज और स्कूल सब जयपुर शहर में ही हैं। जयपुर शहर के लिए बहुत खर्च कर देना और उनसे कुछ भी वसूल न करना यह कहां का न्याय है? १॥ करोड़ रुपये में से ८० लाख गांवों में से मिलता है और उनके लिए कस्बों में जो अस्पताल और स्कूल हैं उनसे बहुत कम फायदा मिलता है। यह तो बड़े राज की बात हुई। अब ठिकानेदारों की ओर देखते हैं कि यहां सारी शेखावटी में ठिकानेदारों का एक स्कूल और एक भी अस्पताल नहीं बताया। उनका तो मालगुजारी वसूल करने से मतलब है। ठिकानेदार सोचते हैं महल बनाओ, मोटरें चलाओ, किसी भी तरह खर्च करो–जिनसे रुपया लिया है उनके फायदे के लिए कुछ नहीं। आप लोग समझते हैं कि हमारा इसमें क्या है, यह तो राज का ही है। अगर आप ऐसा समझते हों तो गलत है। किसान भाइयों ने दुःख पाने के लिए जन्म नहीं लिया है। किसानों की पाँती में तो दुःख ही दुःख आ जाय और दूसरे लोगों की पांती में सुख ही सुख आजाय, यह बंटवारा अगर भगवान के यहां भी हुआ है तो गलत हुआ है। किसानों को सफाई, डाक, रेल, शिक्षा और अस्पताल जिसकी भी जरूरत हो उसका प्रबन्ध होना चाहिए। मैं इन पिछले ५–७ दिनों में झुंझला सा गया हूँ। जो बातें सुनता था वह दृश्य देखने को मिला। अकाल पड़ा तो सब किसानों पर, और ठाकुर साहब के माथे पर नहीं। अरे भाई पैदा होता है तब भी मांगते हो? और पैदा नहीं होता है तब भी? मैं यह नहीं कहता कि आप मत लीजिये। पर जिस किसी के पास पैदा ही नहीं हो तो वह देगा ही कहां से?

प्रजामण्डल सारे जयपुर राज्य की एक पंचायत है, अब जो राज चलाया जाता है उसमें प्रजा की राय नहीं ली जाती। इसलिए प्रजामण्डल उत्तरदायी शासन चाहता है। यानी प्रजा की तरफ की चुनी हुई पंचायत राज काज चलावे, जो कानून प्रजा के हक में अच्छे नहीं उन्हें रद्द कर दें और नये कानून बनावें। उसी पंचायत में से मिनिस्टर चुने जावें जो प्रजा की मर्जी के माफिक कार्य करें और अगर उन्हें प्रजा न चाहे तो स्तीफा दे दें। यह नहीं कि प्रजा भले ही उन्हें नहीं चाहती हो और वे बेशर्मी से कुर्सियों पर चिपके रहें। इस परिपाटी को प्रजामण्डल बदलना चाहता है। किसान पंचायत और प्रजामण्डल एक ही हैं। किसान पंचायत का ध्यान किसानों पर ही है और प्रजामण्डल का सारी प्रजा पर, बस इतना सा फर्क है।

हम ठिकानेदारों से कहते हैं कि आप हमसे अच्छा खाना खाइये आप हम से अच्छे कपड़े पहनिये, मोटरों में घूमिये पर यह नहीं हो सकता कि हम भूखे रहें और आप

सारा खर्च कर दें। यह सच्ची और सीधी बात है। सारा नक्शा बदलता आ रहा है—सारे भारत का नक्शा बदलेगा, वैसे ही यहां भी होने वाला है। इस वर्ष भयंकर अकाल पड़ा है। इस अकाल की स्थिति में प्रजामण्डल और पंचायत ने जो बात सोची वह यह है।

गायों को खर्चा दे सकने वालों से खर्चा लेकर और न दे सकने वालों से न लेकर शिवपुर भेजना, शिवपुर ग्वालियर राज्य में, सवाई माधोपुर से ४० मील की दूरी पर है जहां लम्बा लम्बा घास है। वहां पानी की कमी नहीं हैं और जहां जानवरों का भी खतरा नहीं के बराबर है।

और इतनी गायें वहां भेजना सम्भव नहीं इसलिये वहां से घास लाकर के इधर बेचना-वहां घास कट रहा है गांठें बंध रही हैं—थोड़े दिनें में इधर आ जायगा—१) का ११॥ मन घास बेचने का हमने विचार किया है। जहां पानी की कमी है वहां पानी का भी इन्तजाम करने की सोची है।

और इस इन्तजाम के अलावा कुछ उद्योग धन्धे जारी करने का विचार भी है। जिन भाइयों के पास अकाल का समय निकालने को अन्न नहीं उनको कुछ न कुछ धन्धा दिया जायेगा।

गायें श्रावण तक वापस आ जायेंगी और वह उनके मालिकों को संभलवादी जायेंगी। जो गायें भेजें वे गायें पंचायत की मार्फत भेज सकते हैं।

अब रही मालगुजारी की बात सो यह राज की मर्जी के ऊपर है। वह चाहे तो माफ कर सकता है। मेरा तो राज से यही कहना है कि हर साल लेते हो अगर इस साल न लो तो क्या हो जाय? जिनके कुछ भी पैदावार नहीं हुई है वह तो देंगे ही क्या? हम भी राज से कहेंगे। अखबारों में छापेंगे—यहां की स्थिति बतायेंगे और मालगुजारी की माफी के लिए कहेंगे, आप भी उनसे दर्खास्त करिये। इस वर्ष अकाल पड़ा है,—राज को बीज और नुकसान देना चाहिये था। पर यह नहीं करते हो तो कम से कम कुछ लेओ तो मत।

एक बात किसान पंचायत के विषय में कहनी है कि इस किसान पंचायत को बड़ी बनानी चाहिए—पंचायत सब किसानों की होनी चाहिए यह जाट शब्द को त्याग कर बड़ी होगी। इस मामले में किसान भेदभाव को त्याग कर चलेंगे तो ठीक होगा।

Statement of the Prajamandal Working Committee members in the Mohanpura Camp Court,

February, 1939

We have the honour to belong to Jaipur Rajya Prajamandal, the premier association of the people of Jaipur which, in spite of the altogether autocratic and irresponsible form of administration prevailing in the State, tried its utmost to cooperate with the authorities until its very right of existence was denied by those who happen to wield power at the present moment. We hold that it is the people's birth right to organise themselves, take out processions, hold meetings and to adopt all other peaceful and legitimate means of self expression and development.

As such, we refuse to recognise the Public Societies Act of 1939 under which, we are told, we are being tried. Indeed, we regard the trying court as a part of the machinery which, so far as we can see, is determined to crush the popular movement in Jaipur. In the circumstances, the least that we can do is to express our firm and irresponsible determination to assert the people's rights and liberties and to proclaim that it is beyond the power of the Jaipur Government —no matter by whomsoever they are aided—to succeed in their attempts to suppress the Prajamandal's activities furthering the object of responsible government under the aegis of H. H. the Maharaja.

We can point out any number of irregularities and illegalities in the proceedings of this court, but as we are not interested in details, we would only say that nothing could be more unreal than the present trial. While we say this we want to make it clear that we have no feelings of ill will or disrespect towards any body.

सर्व श्री चिरंजीवलाल मिश्र, हीरालाल शास्त्री, चिरंजीलाल अग्रवाल, कपूरचन्द्र पाटनी, हरिश्चन्द्र शर्मा व हंस. डी. राय का वक्तव्य

अगस्त, १९३९

मयाद पूरी हो जाने पर हम लोग जेल से छोड़ दिये गये हैं, फिर भी हम अपने आपको ऐसे वातावरण में पाते हैं कि जिसमें स्वतंत्रता की हवा न होने से मानों दम घुटा जा रहा है। इसके अलावा हमारे चित्त पर इस बात का भी बड़ा बोझ है कि सेठ जमनालालजी अभी तक जेल में है और वहां पर उनका स्वास्थ्य भी काफी चिन्ताजनक है। आयंदा की कार्यप्रणाली के बारे में कुछ भी कह सकने के पहले हमको पिछले छह महीनों की राजनैतिक परिस्थिति का अध्ययन करना होगा तथा उन माननीय सहयोगियों से भी सलाह करनी होगी कि जिन्होंने हमारे जेल चले जाने के बाद काम को चलाया। परन्तु इतना तो हम आज फिर भी दोहरा सकते हैं कि जयपुर राज्य प्रजा मण्डल ने शुरू से आखिर तक हमेशा ही नर्म और राज के सहयोग के साथ काम करने की नीति रखी थी, मगर हमको यह पता चलता गया कि हमारे सहयोग के प्रयत्न बराबर विफल किये जा रहे हैं। इतना सब होने पर भी राज्य द्वारा सेठ जी पर पाबन्दी लगाया जाना एक ऐसा काम था कि जिसकी हमें कल्पना भी नहीं थी। इसके बाद ही प्रजा मण्डल को नामंजूर कर दिया गया और नामंजूर करने के ऐसे वजूहात दिये गये कि जिनका उचित साबित करना राज के लिए मुश्किल है और जिनका मान लेना किसी भी समझदार आदमी के लिए नामुमकिन है। बाद में जो कुछ हुआ उसका हाल तो हम कैदियों के बनिस्बत बाहर रहने वाले लोगों को ज्यादा मालूम है। जयपुर के नागरिकों को बधाई है कि उन्होंने प्रजामण्डल का दिल खोलकर पूरा साथ दिया। हम खास कर अपने उन सहयोगी कार्यकर्ताओं का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं कि जिनके कन्धों पर परिस्थिति बदलने से यकायक काम का पूरा भार आ गिरा और जिन्होंने इतनी कुशलतापूर्वक काम को चलाया। यद्यपि सत्याग्रह महात्मा गांधी की सलाह से स्थगित हुआ था, तब भी

हम महसूस कर सकते हैं कि सत्याग्रह के इस तरह अचानक स्थगित हो जाने से जनता को सख्त अफसोस हुआ होगा और उन हजारों भाई बहिनों को बड़ी निराशा हुई होगी जिन्होंने स्वतन्त्रता की वेदी पर अपनी अपनी भेंट चढ़ाने की तय्यारी कर रखी थी। सत्याग्रह आंदोलन अभी तक स्थगित ही है, परन्तु अधिकारी इस परिस्थिति से, समय रहते, लाभ उठा कर शांति स्थापित करने की धुन में नहीं मालूम होते।

ऐसी स्थिति में हमारा पहला काम इस बात का पता लगाना होगा कि राज्याधिकारी इस दिशा में क्या सोच रहे हैं और उनका आगे क्या करने का विचार है। प्रजामण्डल ने कोई अनोखी मांग तो कर ही नहीं डाली है। प्रजामण्डल ने आज की आज उत्तरदायी शासन (जिम्मेदाराना हुकूमत) कायम कर देने की मांग भी नहीं की है। जयपुर की जनता शांतिपूर्ण और न्यायोचित साधनों द्वारा श्री महाराजा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना चाहती है। इसी उद्देश्य को हासिल करने की गर्ज से प्रचार करने के लिए वह अपनी एक संस्था प्रजामण्डल को कायम रखने की आजादी चाहती है। इस सीधी सी मांग के जवाब में आखिर राज का क्या कहना है? क्या राज दर असल यह समझता है कि जनता के नागरिक अधिकारों को, जिनमें अखबार निकालने की आजादी भी शामिल है, मंजूर किये बिना कुछ समय तक भी काम चल सकता है? और राज सेठजी को भी आखिर कब तक "शाही कैदी" रखना चाहता है जबकि राज को यह मालूम है कि एक प्रमुख नागरिक पर इस तरह सिर्फ खयाली बुनियाद पर पाबंदी रखना किसी भी प्रकार वाजिब नहीं हो सकता। जहां तक हमारा अनुमान है, प्रजामण्डल को पहिले की तरह आज भी सहयोग की नीति से काम करने के लिए समझाया जा सकता है, पर हम यह अच्छी तरह बता देना चाहते हैं कि आपस में सहयोग का होना सिर्फ सम्मानपूर्ण शर्तों पर ही मुमकिन है। हकूमतों को दूसरी बातों के बनिस्वत अपनी शान का खयाल ज्यादा रहा करता है पर हमारा तो यह दावा है कि प्रजामण्डल ने जयपुर सरकार की शान को लूट लेने की कभी भी कोई चेष्टा नहीं की है। हमारा विश्वास है कि उत्तरदायी शासन ही रियासत की तमाम खराबियों के लिए आखिरी और अक्सीर दवा है। परन्तु जब तक पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित नहीं हो जाता तब तक भी जयपुर सरकार को बहुत कुछ ऐसे काम करने पड़ेंगे जिनसे लोग यह कह सकें कि राज के दिल में रिआया के लिए सच्ची हमदर्दी और उसकी भावनाओं को पूरा करने का खयाल है तथा जयपुर के शासन तन्त्र में रिश्वतखोरी, पक्षपात और पोल की गुंजाइश नहीं है। हम यह साफ कह देना चाहते हैं कि ऐडवाइजरी बोर्ड जैसी स्कीमों से उस असली जनता का सन्तोष नहीं हो सकता जिसका सन्तोष किये बिना काम चलने वाला नहीं है क्योंकि चाहे कुछ भी हो जाय, जागी हुई जनता की शक्ति हरगिज दबाई नहीं जा सकती। इस सम्बन्ध में यह संतोष की बात है कि जयपुर की समझदार जनता ऐडवाइजरी बोर्ड की थोथी स्कीम के खिलाफ अपनी राय साफ तौर से जाहिर कर चुकी है।

जनता से हमें यह कहना है कि सत्याग्रह के स्थगित होने से नाखुश होने की जरूरत नहीं हैं क्योंकि जो सेवा करना चाहते हैं उनके लिए रचनात्मक कार्य के विविध विभागों में बहुत कुछ करने को पड़ा है। रचनात्मक कार्य से एक तरफ जनता को सीधा फायदा पहुँचता है तो दूसरी तरफ कार्यकर्ताओं को अपनी ट्रेनिंग मिल जाती है। शक्ति बढ़ाने और उसका संचय करने से हम लोग कभी घाटे में नहीं रह सकते। युद्ध शक्ति को कम मौकों पर ही काम में लेना चाहिए। जब और उपायों से काम न चले तो अवश्य युद्ध शक्ति से ही काम लेना पड़ता है। इसलिए जनता को थोड़े समय के लिए धीरज के साथ इन्तजार करना चाहिए और इस अर्से में रचनात्मक कार्यों में अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए। रचनात्मक कार्य की तफसीलवार स्कीम जल्दी ही तैयार की जाएगी। हमें हार या जीत की भाषा में बातें नहीं करनी हैं पर तो भी हम जनता को एक बार फिर से विश्वास दिलाना चाहते हैं कि उनके सच्चे और न्याययुक्त पक्ष की सदा ही जीत होने वाली है। हम यह जानते हैं कि हाल के आंदोलन ने हम सबको स्वतंत्रता की आने वाली लड़ाई में बड़े से बड़े त्याग और कष्ट सहन के लिए और भी ज्यादा मजबूत बना दिया है।

मनोहरपुर
२८-१०-३९

हमारे यहां आने से राज के आदमी यह समझते हैं कि हम उनकी जड़ काटने आये हैं। दूसरी ओर प्रजा के आदमी यह समझते हैं कि हमारे आने में ही उनका सब काम हो जायगा। मै राज वालों से कहना चाहता हूँ कि हम उनसे दुश्मनी रखने वाले नहीं हैं और प्रजा को भी यह कहना चाहता हूँ कि बिना संगठन के हम कुछ नहीं कर सकते हैं। असल में यह समझना चाहिए कि राज क्या है। बहुत सारी बातें ऐसी भी होती हैं कि जिनका प्रबन्ध हम घर की घर में नहीं कर सकते हैं। जैसे डाक का प्रबन्ध, सुरक्षा का प्रबन्ध, सड़क आदि का प्रबन्ध इत्यादि। वह इन्तजाम सामूहिक रूप से एक जगह से ही हो सकता है। इसलिए राज की जरूरत पड़ती है। मैं राजा की उपमा सूरज से दिया करता हूं--राजा का भी यही काम है कि प्रजा से कर ले ले और उसे प्रजा की भलाई के काम में लगा दे। अगर राजा की तरह सूरज भी करने लगे और रोज समुद्र का पानी अपने पास रखने लगे तो सूरज भगवान ठंडे पड़ जाएं। अगर इसी तरह प्रजा की भलाई के काम में राजा कर का पैसा नहीं लगाएंगे तो वे राजा भी ठंडे हो जाएंगे। राजा को उस पैसे को रोकने का हक नहीं है। उनको चाहिए कि उस पैसे को वे प्रजा के काम में लगा दें। राजा को हम यह नहीं कहते कि वह सूखी रोटी में गुजर करे, और झोंपड़ी में रहने लग जाय। पर प्रजा के पास से जितनी आमदनी आए उसे वे अपने ऐश आराम में लगा दें, यह नहीं होगा। अगर प्रजा का पैसा प्रजा की भलाई में ही नहीं लगाया तो उस राजा का तप तेज नहीं रह सकता है। मैं यह बताना चाहता हूं कि कितने भी बड़े ये राजा लोग हों वें भी सबकी तरह नंगे ही जन्मे हैं। महल मोटर, जमीन, और थाल इनके साथ साथ पैदा नहीं हुए थे। भगवान की बनाई हुई यह जमीन है। एक ठाकुर मरे और यह समझे कि मेरी जमीन भी मैं मेरे साथ ले जाऊंगा

और वह जमीन अगर उनके साथ चली जाए तो संसार में खड्डे ही खड्डे पड़ जाएं और सारी जगह खाली हो जाए।

राजनीति के काम और समाज सुधार की वहस में मैं नहीं पड़ना चाहता। मेरा यह मानना है कि सबसे बड़ी ताकत यानी राज की ताकत पहले लानी चाहिए जिसके बाद बहुत से सुधार आसानी से हो जाएंगे। समाज सुधार कहने या लिखने से नहीं हो सकता है। बाल विवाह के प्रस्ताव करने से बाल विवाह बन्द नहीं हो सकता है। जब हम ऐसे कामों में शामिल नहीं हों और विरोध करें तब भले ही बन्द हो सकता है।

अब मैं अपने कुछ विचार राजनीति पर आपके सामने कहना चाहता हूँ। बहुत सी गलत फहमियां इस सिलसिले में लोगों में फैला रखी हैं। असल में सारी बात की जड़ समझने की जरूरत है। जिस समय सृष्टि पैदा हुई, लोग स्वतन्त्र रहते होंगे। आगे जरूरत हुई कि इनका इन्तजाम करने के लिए किसको रखा जावे। कुछ इन्तजाम एक आदमी करे और उसके बदले में गुजारे के लिए कुछ दे दिया जावे। इन्तजाम करने वाले को राजा समझ लिया जावे। राजा प्रजा की बन्दगी बजाने वाले हुए। राजा का नौकर नौकर का नौकर हुआ। शास्त्रों के अनुसार राजा वही है जो प्रजा को राजी रखे। पहले के जमाने में राजा प्रजा का अच्छी तरह से काम नहीं करते थे तो उन्हें अलग कर दिया जाता था। चाहे राजा हो चाहे महाराजा, कोई भी आदमी जमीन, महल, धन-दौलत लेकर नहीं पैदा हुआ है। गरीब की तरह ही राजा का लड़का भी पैदा हुआ है। हवा के अन्दर किसी की बपोती नहीं हो सकती। इस तरह राजा कहेंगे कि मैं तावड़े का धणी हूँ ऐसा नहीं हो सकता। कोई भी राजा जमीन, हवा, पानी, तावड़े का मालिक नहीं हो सकता। ये चीजें किसी एक आदमी की नहीं हैं। राजा हवा का मालिक बनकर बैठ जाए तो तमाम हवा महलों ही महलों में चलने लग जाए। उसी तरह सारा पानी महलों ही महलों में बरसने लग जाए और महल बह जाएं। और तावड़ा महलों पर ही तपने लग जाए तो महल में रहने वाले जल जाएंगे। शात्रों के अनुसार राजा का धर्म यह है कि वह प्रजा से जरूरत के माफिक कर वसूल करे और उसे प्रजा की जरूरत के लिए खर्च करे। यही उत्तरदायी शासन है कि प्रजा की मरजी से कर वसूल करें, प्रजा की मरजी से प्रजा पर खर्च करे। मन्त्री के ओहदे पर प्रजा के मान्यता प्राप्त आदमियों को बनाया जावे। और नालायक आदमियों को नहीं बनाया जावे। आज इंग्लैण्ड में जो राजा है वह महाराजाओं का भी महाराजा है। तब भी विलायत में राजा केवल नाम का राजा है। राजा ने अमुक स्त्री से व्याह कर लिया लेकिन वहां की प्रजा को यह बात नहीं जंची और राजा को राजगद्दी छोड़नी पड़ी। अपने यहां राजा एक को घर में घुसा ले, दो को घर में घुसा ले, और सौ को घर में घुसाले। इसके अलावा विलायत में प्रजा जिनको अच्छा आदमी समझती है वे ही पार्लियामेन्ट में मेम्बर बनते हैं, वे कानून बनाते हैं उनमें

से ज्यादा अच्छे आदमी मिनिस्टर बनाये जाते हैं। इतने बड़े विलायत के राजा का यह हाल है तो यहां क्यों नहीं अपने राजा को इन झगड़ों—टण्टों से ठाकुर जी की तरह अलग रहना चाहिए ?

२८ लाख आदमियों में एक ईश्वर जयपुर महाराजा कैसे हो सकते हैं। अगर राजा को ईश्वर बनना पड़ेगा तो उनको माया रहित और न्यायकारी होना पड़ेगा। अगर ईश्वर बने तो ईश्वर जितने नहीं तो थोड़े बहुत गुण तो उसमें होने ही चाहिएं। आज का राजा अपने ऐश आराम में खर्च करने के अलावा बड़े बड़े अन्याय भी करता है। असल में मैं कहना चाहता हूँ कि राज करने वालों को बलद मार खेती नहीं करनी चाहिए। अगर किसान मर जाएगा तो उनका राज कैसे रहेगा ? अगर राजा लोग अच्छे काम उपकार के वास्ते नहीं करते हैं तो अपने भले के लिए तो करें। अगर कोई हमारे हाथ में रास्ता है तो वह यही कि हम इकट्ठे हो जाएं और उद्योग करें। इसी के लिए प्रजामण्डल गठित हुआ है। प्रजामण्डल जनता का संगठन हैं। यह आप सब की बड़ी पंचायत हैं। प्रजामण्डल सारी प्रजा का है। अपनी चीज में जब सब का योगदान होता है तभी वह आगे बढ़ती है। वृक्ष बड़ा होता है तभी फलता फूलता है।

मैं राजा और जागीरदारों की भलाई चाहने वाला हूं। अगर वे अपनी भलाई चाहते हैं तो उनको बदले हुए जमाने के साथ साथ चलना चाहिए। मैं ब्राह्मण या गुरू की हैसियत से कहना चाहूँगा कि हमारी रगों में वही खून है। इसलिए मेरा कहना है कि प्रजा की भलाई करने के लिए जो बात कही जाए उसे राजा को सुननी चाहिए।

जयपुर महाराजा और प्रजामण्डल के बीच में समझौता हो गया है। थोड़ी शांति है। अब राज की नीयत मण्डल से छेड़ छाड़ करने की नहीं है और कोई भी काम रुकने वाले नहीं है। अब प्रजामण्डल को कोशिश करनी होगी उत्तरदायी शासन के लिये रास्ता ठीक करने की। राजा ने प्रजामण्डल को उत्तरदायी शासन तो नहीं दिया पर एक नकली चीज एडवाइजरी बोर्ड बनाया है। प्रजामण्डल ने उसे ठुकरा दिया है। प्रजामण्डल ने साफ कह दिया है कि रुपया दो तो कण्टान दो, खोटा क्यों ? प्रजामण्डल का उद्देश्य यह है कि वह राज का सिस्टम बदल देना चाहता है। प्रजामण्डल शिकायत करने वाली एजेंसी नहीं है। इसका उद्देश्य बहुत बड़ा है। प्रजामण्डल ने चाहा है कि राजनीति का तरीका बदला जाए, प्रजा की मरजी के माफिक राज चले। प्रजा का हित करने के लिए कानून बनें। चुने हुए आदमियों की पंचायत राज को संभाले और राजाजी छतरी की तरह विराजमान रहें। राजाजी का हर तरह से प्रजा सम्मान करे लेकिन राजा को भी ईश्वर की तरह बनना होगा या ईश्वर की तरह धर्म का पालन करना होगा। अगर प्रजा राजा को माता पिता मानेगी तो राजा को प्रजा की पालना करनी पड़ेगी। राजा को भी प्रजा को सुखी रखना पड़ेगा। यही राजा और प्रजा का धर्म है। अगर इसके

खिलाफ प्रजा की खरी कमाई को इकट्ठा करके प्रजा के आराम के लिए खर्च नहीं हो तो राजा की निन्दा ही करनी पड़ेगी। जो आदमी अपने स्वार्थ के लिए नौकरी करता है वह प्रजा की भलाई क्या कर सकता है। इस तरह के आदमी और संस्थाओं से प्रजा संतुष्ट नहीं हो सकती है। प्रजा की भलाई उन आदमियों से होगी जो प्रजा के लिए काम करने वाले हों और स्वार्थी न हों। आज मण्डल को नागरिक अधिकार मिल गया है। अब सभा करने, अखबार छापने, अपनी बात करने के लिए इजाजत की जरूरत नहीं हैं। अब प्रजामण्डल को अपनी मांग के लिए अपनी आवाज उठाने का हक है।

अगर अपन सभी काम नहीं करेंगे तो कुछ नहीं होने वाला है। सच्ची बात के लिए फांसी पर लटकना हो तो वह भी हो जाय। राजा प्रजा और समाज की भलाई की बात कहनी पड़ेगी। आज आपको खुशी होनी चाहिए कि राजा ने अपनी इतनी बात मानली। अब यह अध्याय खत्म हो चुका है। दूसरा शुरू हो गया है। यह चीज खुशामद से नहीं मिली है, यह प्रजा मण्डल की ताकत से मिली है। उम्मीद है कि हम दो तीन सालों में ही मन्जिल पर पहूँच जाएंगे। लोगों का पहले वाला डर मिट गया है। जिस चीज को अच्छा समझते हैं, उसके लिये निर्भय होना चाहिए। स्वार्थ की बातों को छोड़ दीजिए। लेकिन असल बात यह है कि प्रजामण्डल की ताकत आपके बिना कुछ नहीं है और प्रजामंडल के बिना आपकी ताकत कुछ नहीं है। प्रजामंडल के मेम्बर बनो इससे आपके सब दुःख दूर हो जाएंगे। जब सच्चे रास्ते पर हैं तो डरना नहीं चाहिए।

हिण्डोन
२७-११-३९

मैं साफ देख रहा हूं कि सामने पीपल के पेड़ के नीचे लिखने वाले हैं—यह जानकर मुझको बड़ी प्रसन्नता हुई। अब मैं जो कुछ भी कहूं वह तथ्य की बात होगी, वे जरूर उसे नोट करके और ईमानदारी के साथ जाकर कहें।

मैं और कुछ कहूं उसके पहले एक तकलीफ बयान करना चाहता हूं। मैं अभी ९–११ बजे उधर से जा रहा था। स्कूल में कुछ पूर्व की तरफ खड़े लड़के प्रार्थना कर रहे थे और कुछ पश्चिम की तरफ। मालूम हुआ हिन्दू-मुस्लिम अलग-अलग प्रार्थना कर रहे थे—खुदा और ईश्वर एक है। यह स्कूल किसी एक मजहब का नहीं है। यह आम जनता का स्कूल है। सार्वजनिक स्कूल में ऐसी बात का होना अफसोस की बात है और मुझे बड़ी तकलीफ पहुंची। मैं मि० ओवन्स को जल्दी ही यह खबर पहुंचाऊंगा कि यह आप घोर अन्याय क्या कर रहे हैं? ये बच्चे हैं। न ये हिन्दू हैं न ये मुसलमान हैं। कोई भी प्रार्थना ऐसी बन सकती है कि जिसको दोनों पालें। यह बड़ी ठेस पहुंचाने वाली बात है। यह नीति गवर्नमेण्ट की तरफ से थोपी जा रही है। प्रजामडल में जो लोग शामिल नहीं हैं, वे हिन्दू मुसलमान बहुत हो सकते हैं पर ऐसा कहने से कांग्रेस या प्रजामण्डल का प्रतिनिधि संस्था होना नहीं रुक सकता। हमारे यह कलंक का टीका क्यों कर रहे हैं। आज के बच्चे एक दूसरे को विरोधी दलों में समझने लग जायं, क्या इसीलिए यह इंतजाम किया है। मैं जोबनेर ठाकुर साहब से मिलने की कोशिश करूंगा। मैं नहीं चाहता अवि-

कारियों के सामने कोई बात पेश करूं पर इस शर्मनाक बात के बारे में जरूर कहूंगा। क्या हिंडोन की जनता के हिन्दू मुस्लिमों ने ऐसा कहा था ? अगर कहा था तो मैं उनसे कहूंगा कि उनने गलती की। खुदा या ईश्वर एक है। दोनों जाति उसके बच्चे हैं। एक पिता की एक जगह प्रार्थना करा सकते हैं और बच्चों को इस तरह की छोटी बातें नहीं सिखाना चाहिए। यह प्रजामण्डल हिन्दू मुसलमान सबका है यह जीमने, शादी, ब्याह के लिए नहीं है। इसलिये यह हिन्दू, मुस्लिम, हरिजन और आर्यसमाजियों सबका है। मुसलमान और आर्य समाजियों का होने पर उनके धर्म से इसका कोई खास ताल्लुक नहीं है। रोटी कपड़े और आराम तकलीफ का सवाल सबको बराबर है। अगर कोई मुसलमान खेती करता है तो उसको भी उतनी ही तकलीफ है। जाट है तो उसको भी। खेती की कोई बात कोई करेंगे तो सबकी ही करेंगे—इसी तरह व्यापारियों की बात में सब व्यापार करने वालों की—प्रजामण्डल मुसलमानों के मज़हब में कोई दखल नहीं देना चाहता और इसी तरह हिन्दुओं के मजहब में भी। इसी तरह प्रत्येक जाति के भाई-बहनों को प्रजामण्डल का मेम्बर होकर इसमें शामिल होना चाहिए।

हिंडोन निजामत के कार्यकर्ताओं ने बाहर की नाममात्र की मदद न होने पर भी सिर्फ अपने बाहुबल की वजह से यह सम्मेलन कर डाला। प्रजामण्डल का जल्सा हो चुका है, पर देहात में यह पहला जल्सा है। अपनी आदत न होते हुए भी मैं आज इनको धन्यवाद देता हूँ। इनका उद्योग सफल हुआ पर सैकड़ों कमियां इन को बतला सकता हूँ। छाया का इन्तजाम नहीं हुआ, रुपये की कमी होगी, आदमी नहीं होंगे। पर देखिए कितना सफल सम्मेलन इन्होंने कर डाला है—इसलिए बार-बार धन्यवाद देना चाहता हूँ। इसी तरह स्वयंसेविकाओं ने काम किया है। पर एक बात मुझे पसन्द नहीं है कि अलग-अलग जाति की संस्थायें इस तरह अलग-अलग रहें। स्वयंसेवक प्रजा के सेवक हैं—उनको पुलिस की तरह डण्डा लेकर गड़बड़ नहीं करना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि जल्दी ही यह बात सुधर जाएगी।

प्रजामण्डल जयपुर राज्य में एक जबर्दस्त राजनैतिक संस्था है। यह बनी रहने वाली है। किसी के मिटाये मिटने वाली नहीं है। जयपुर राज्य के अधिकारियों व जयपुर के महाराजा को मैं बड़े आदर की दृष्टि से देखता हूं। और अपने को बिना तनख्वाह का नौकर मानता हूं। ए० जी० जी० या रेजीडेण्ट या वायसराय या ग्लेन्सी या स्वयं सम्राट अथवा किसी बड़े से बड़े अधिकारी के चाहने न चाहने पर प्रजामण्डल की स्थिति निर्भर नहीं है। प्रजामण्डल अपने आपसे विराजमान है और रहने वाला है। किसी की मर्जी से मिटने वाला नहीं। राजा ज्ञाननाथ साहब भले ही कितने ही लोगों को यहां आकर कह जायें कि इन झन्डों को उठाओ। शास्त्री मिलेगा तो मैं उससे यों कहूंगा, त्यों कहूंगा""। मैं उनको बतलाना चाहता हूं कि न तो उनकी मर्जी से प्रजामण्डल कायम हुआ था और न उनकी मर्जी से कायम है। अगर वे इसे मार

डालना चाहते हैं तो मैं उन्हें बतला देना चाहता हूं कि वह हरगिज मिटने वाला नहीं है। जयपुर की तीस लाख प्रजा को प्राइममिनिस्टर साहब राजा ज्ञाननाथजी ने पैदा नहीं किया। जिस ईश्वर ने पैदा किया है उसी की मर्जी से प्रजामण्डल कायम रहने वाला है। राजा ज्ञाननाथ साहब जैसे पुण्यात्मा को अगर तकलीफ पहुंचती है तो हम क्या करें। हम तो हमारे अधिकारों के लिए कोशिश करते हैं। जैसा कि हमने बताया था कि हमें लड़ने का शौक नहीं है। पर यह मालूम रहना चाहिए कि अपने अधिकारों के लिए हमको लड़ना पड़े तो हम सत्य, शान्तियुक्त लड़ाई लड़ने के लिए हर घड़ी तैयार हैं। वह चाहें आज लड़ाई शुरू करदें या छः महीने बाद। उनके कहने के अनुसार यह डमडमी नहीं है, यह दुंदुभी है। इस शुभ अवसर पर (शाम के समय) सब विद्रोहों का नाश हो सकता है। इसी समय पर रामचन्द्र ने रावण जैसे पापी का नाश कर डाला था। ऐसे समय में मैं आपको अपनी सेवक की हैसियत से मुझको आपकी सेवा करने का जो अख्त्यार मिला हुआ है उसके आधार पर कहता हूं कि वह दुंदुभी सब विघ्नों को लोप करके बजती रहेगी। मैं राजा ज्ञाननाथ साहब से कोई खोटी बात नहीं कहना चाहता। पर उन्हें याद रखना चाहिए कि यह जयपुर की प्रजा की कोशिश है कि हिन्दुस्तानी मन्त्री राजा ज्ञाननाथ साहब का आना हुआ। अगर हमने कोशिश नहीं की होती तो उनका आना नहीं होता। अब भी मैं बता देना चाहता हूं कि वे प्रजा के प्रतिनिधिमण्डल के खिलाफ नहीं चल सकते। और चलना चाहते हैं तो उनकी खैर नहीं। क्या प्राइममिनिस्टर साहब राजा, सी० आई० ई० की पदवी धारण करने वाले ऐसी बात कर सकते हैं। उनसे एक वकील ने कहा, यहां बार रूम की जरूरत है। जवाब मिला "प्रजामण्डल के पण्डाल में जाकर बैठिए"। वकीलजी ने जवाब दिया "कचहरियों को वहां ले चलिए।" डमडमी की बात सुनकर मालूम हुआ एक मित्र ने कहा जब तक डमडमी बजती नहीं तब तक बन्दर नाचता भी नहीं। भले ही राजा ज्ञाननाथ साहब इसको गरीब प्रजा का आर्तस्वर मान लें, प्रजा की आवाज मान लें। यह कहा गया कि शास्त्री आयेगा, टप टप करके चला जायेगा। मैं उनसे पूछूंगा टप टप करना क्या होता है। मुझे बड़ा दुख होता है कि इतने बड़े आदमियों के मुंह से ऐसे शब्द निकलें। इतनी रोकथाम के बाद भी इतना सफल सम्मेलन हो गया, इसलिए हिंडोन के कार्यकर्ताओं को धन्यवाद देता हूं। मैंने राज की नौकरी को तिलांजलि दी है—तब मैंने सोचा कि इस काम में अपना सर्वस्व खर्च होने वाला है। पर मैं बताना चाहता हूं कि आज जो मेरे में मजबूती है उसका इंजेक्शन आपके लगा देना चाहता हूं। हमको अपनी आवाज तो बुलन्द करना है। इस संस्था को, इस प्रजामण्डल को उन महात्मा गांधीजी का जो सारे संसार में पूजे जाते हैं, आशीर्वाद प्राप्त हैं। प्रजामंडल का बाल भी बांका होने वाला नहीं है। हमने सोचा था कि हम राज को आदर पूर्वक सहयोग देंगे। पर राज तो डरता है। वह सहयोग नहीं चाहता। हमने निश्चय कर लिया जो सहयोग नहीं चाहते उसे सहयोग न देंगे। राजा ज्ञाननाथ साहब तो मिलने में भी झिझकते हैं। हम तो ख्याल करते हैं कि यह मर बीचम

के अवतार आ गये और हम अपनी नाराजी प्रकट कर देना चाहते हैं । मैं पूरी ताकत से साथ ऐलान करता हूँ कि इतनी बातों के बावजूद भी प्रजामंडल राज के साथ सहयोग करने को तैयार है । सेठजी जैसे ठंडे और मिश्रजी जैसे विचारवान आदमी ऐसे अपमान को बर्दाशत नहीं कर सकते । 'आप मदद कीजिये' कहें तो हम पुरानी बातों को भूलकर आज भी मदद देने को तैयार हैं । ऐसी छोटी बातें कोई बड़ा आदमी कहे। सामने कहे तो हम एक का दस जवाब दें । अगर हमारे काम में इस तरह की गड़बड़ी करेंगे तो हम बर्दाश्त करने वाले नहीं हैं । एक सत्याग्रह से नहीं धापे तो मालूम हो जायेगा दूसरे सत्यग्रह में उनकी ताकत का और हमारी ताकत का । हमसे तो कुछ कहना सुनना नहीं, और उन गरीबों को घुड़सवारों द्वारा रोकना बुद्धिमानी की बात नहीं है । आपकी जानकारी के लिए यह जवाब दे रहा हूँ । आपको मालूम हो जाएगा कि प्राइम मिनिस्टर साहब ने जो कुछ कहा है उससे मेरा क्या विचार है । मैं जयपुर पहुँचू उसके पहले राजा ज्ञाननाथ साहब को सी. आई. डी. बतादें कि जितनी सेवा हम करना चाहते हैं, उतनी वे नहीं चाहते हैं । वह दर्द राजा ज्ञाननाथ साहब को नहीं हो सकता जो शास्त्री ओर सेठजी के दिल में है, वह रेजीडेंट को नहीं हो सकता—पर उनको अपनी तनख्वाह को तो बचाना चाहिये । प्रजा का सारा रूपया राज्य के खजाने में चला जाता है-हम तो सिर्फ चन्दे के दो आने साल लेते हैं फिर भी हमारी सेवा कम नहीं है । फिर भी आहुति देने की तैयारी होते हुए भी अपने को छोटा मान सकते हैं । खैर हम कमजोर और गरीब सही । आप हमारी मदद चाहें तो काम करने का मौका तो दीजिये । जब हमारी ताकत बढ़ेगी तो वे रोकने की कोशिश करेंगे और वे रोकना चाहेंगे और लड़ाई होगी । पर याद रखिये वह लड़ाई नागरिक अधिकारों को लेने से नहीं उत्तरदायी शासन को लेकर ही खत्म होगी । अगर वे चाहते हैं कि उत्तरदायी शासन देर से आये तो दो चार साल हमें काम करने दें । आप हमें बिना अर्जी वैसे ही बता दिया करिए । राजा ज्ञाननाथ साहब ने भी ताने मारे हैं कि कुछ करके तो दिखाइये । हम वनस्थली में दिखा रहे हैं—पिलानी ओर शेखावटी में सब जगह हम ही हम हैं । आप याद रखिये कि आपको कहा जाएगा—"आप प्रजामंडल के जल्से में गये थे, क्या गांठ बांधकर लाये । क्या हासिल माफ कराकर लाये ।" जवाब देना "हम तो अपने दुख दर्द की बात कहने सुनने गये थे । आज हम दुख दर्द ओर उसके मिटाने का उपाय समझने लग गये हैं । हम वहां खजाना मिलने की आशा से नहीं गये थे—वहां तो मिला नहीं—अच्छा आप गांठ बंधवा दीजिए । जो दीवान बीरबहादुरसिंह जी आये सो कुछ दे गये क्या ? उनके पास साधन हैं जब ही वे कुछ देकर नहीं गये तो हमसे क्यों आशा रखें । हम अपने दुखी दिल से आपके दुखी दिल को लगाकर 'इस अन्तस' को मिला करके हम इस शाम के समय कहते हैं कि हम आपकी तकलीफों को जड़ से उखाड़ फेंकने वाले हैं । आपको जल्से में लाकर यही अंतकरण से प्रसाद दे सकता हूं । सम्मेलन में आने से रोका गया तो शायद बहुत कुछ लोग रुक गये होंगे । भला हम डर गये तो फिर हमारी तकलीफ कैसे मिट जाने

वाली है। कमजोरी के खयाल मिटा दीजिये। किसान भाइयों से मैं कहता हूं कि आपके अन्दर ताकत है—वह गाली देकर के नहीं मजबूती से पेश करके अपनी तकलीफें मिटाइये। जिस दिन वह ताकत हमारे अंदर आजाएगी उस दिन सातों ताले खुल जायेंगे। वह एक दिन आने ही वाला है।

राजा ज्ञाननाथ साहब ने कहा बताया कि तुम करो सो तुम करो, हम करेंगे सो हम करेंगे। उसका जवाब यह कह दूं कि हमने किया सो तो हमने कर लिया—तुम करो सो तुम करो—हमने यहां ऐलान कर दिया—तिजोरी में बन्द होकर नहीं कहा—लाउडस्पीकर की बात तो नाटानी के बाग तक नहीं पहुंचती—पर लिखने वालों तक तो पहुंच सकती है। नाजिम भी रास्ते में मिल गये—उनने कहा—आज तो नहीं आ सका–मैंने कहा "कल भी सम्मेलन है।" उन्होंने कहा जरूर आजाऊंगा। मैंने खराया और उनसे कहा कि नहीं आये तो सभा में कह दूंगा कि वादा किया था और नहीं आये। उनने कहा मैं तो माफी चाहता हूं मेरे नुमाइन्दे आयेंगे। मैंने कहा मैं तो खुद कहूंगा आप भी खुद आइये। जो कुछ हमने कर दिया ऐलानिया कर दिया। हमने तो कूलड़ी में गुड़ नहीं फोड़ा। हमने गुड़ या मूंड फोड़ा है वह चौड़े चौगान किया है। जहाँ तक हमारा खयाल है हमने कानून के अनुसार किया है। आज तो उन कानूनों की इज्जत करते हैं। सत्याग्रह करना ही होगा तो कानून नहीं मानेंगे। आज तो हम सत्याग्रह नहीं कर रहे। जहां तक हमारा कानून का ज्ञान है–आज यहां पर एम, ए., एल. एल, बी. बहुत से हैं। "भेड़िये और भेड़ का किस्सा।" पर ये भेड़ के बच्चे हैं नहीं जो यों ही किसी के मुंह में आजायें। अब हम दौरा करने वाले हैं और सब जगह कहेंगे। यही नवम्बर का महीना पहले था। नेतरामसिंहजी को शेखावाटी में घसीटे फिरते थे। यंग साहब ने लगानबन्दी का इल्जाम लगा करके सेठजी पर पाबन्दी लगाई थी अब वही दिसम्बर का महीना आ रहा है और मैं शेखावाटी में जा रहा हूं। इतिहास की पुनरावृत्ति होती है ऐसा कहा करते हैं। अगर ऐसा ही हुआ तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। आज पहले से अधिक ताकत है। जब सिद्धराज जैसे इंडिया चैम्बर को छोड़कर निकलेंगे तब मैं घोषणा कर दूंगा कि आज के छै महीने के बाद उत्तरदायी शासन की घोषणा करने वाला हूं।

आज तो मैं साफ मंजूर करता हूं कि अपनी ताकत को कमजोर मानता हूं क्योंकि प्रजा-मंडल में नागे आदमी कम है। अब तक ऐसे ५-५० आदमियों की नागों की मण्डली पक्की है। चाहे जमीन फट जाए–भूकम्प आ जाय। समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़ दे पर वे अपनी मर्यादा को छोड़ने वाले नहीं है। मैं इस नागाओं की मण्डली को बढ़ाना चाहता हूं। चाहता हूं कि इस सम्मेलन के अवसर पर एक नागा तो हो। कम से कम १०० नागे तो हैं। जिस रियासत में नेतरामसिंहजी, हरलालसिंह जी जैसे १०० नागे हैं–उसको तरीका

बदले बिना खैर नहीं। जिन १०० नागों को राज चुनकर रखले उनसे अपनी खैर न समझले। यह देख लो कि सर काटा और सैकड़ों पैदा हो गए। हम राक्षस तो है नहीं पर मान लो तो भी एक काटो और सैकड़ा पैदा हो जायं—हम पांच छै आदमी बैठे थे ही कि वहीदुद्दीन आये—कहा चलिये—झट तैयार हो गये। दूसरे दिन जयपुर चौपट हो गया। इन नागों की मण्डली बढ़ाने का सवाल है। महात्मा जी का सारे संसार में प्रकाश है उनके लेफ्टीनेंट सेठजी भी बड़े हैं। पर यह न मानलें कि इनके आशीर्वाद से सब कुछ हो गया—सरदार पटेल अच्छे मान लिये गये तो सब कुछ हो जाएगा। यह भी न मानें कि मिश्रा, शास्त्री खड़े होगये तो सब कुछ हो गया। आप अपनी अंधेरी कोठरी में खुद दिया जलाइये। हिंडोन जिले का उत्थान हिंडौन के बाहर रहने वालों से नहीं होगा। कांग्रेस की यह नीति कि खुद अपनी ताकत से होगा सो तो ठीक है। मैं इस बात को दोहराता हूँ। एक शर्त के साथ कि जैसा टूटा फूटा अपने आपको समझता हूँ वैसे ११ आदमी हों तो मैं १२ आदमी होने पर पक्की बात कह दूं कि एक साल बाद उत्तरदायी शासन हमारा है। वह प्रत्येक जिले को सम्भाल लेंगे। इस तरह वे नागे होकर मैदान में आ जाते है तो सब कुछ हो जाएगा। यह जरूर है कि नेतरामसिंह जी जितना हो सके कर रहे हैं। इन बारहों में देवियां हमारे साथ नहीं है। मेरी पत्नी ११६ लड़कियां को वनस्थली में संभालती है, पर वे मैदान में खासतौर से नहीं आना चाहतीं। यह शिकायत की गई कि पलटन तैयार की जा रही है। यह ठीक है। हमारी कमेटी में स्त्रियां नहीं हैं अगर इन १२ में स्त्रियां हो तो ठीक है। वे ११ घर की कमाई न करें। मैं तो हूबहू यही कहने वाला हूँ कि जैसा मैं हो गया हूँ वैसे ही टीकारामजी, मिश्रजी, सिद्धराजजी को कर देना चाहता हूँ। फिर आपके आंत ओजड़े यों सुकड़े हुए नहीं रहेंगे। अगर हिंडोन जिला, शेखावटी जिला आदि में वकील व्यापारी सब कुछ छोड़कर आ सकते हैं तो उनके सामने हिमालय पहाड़ भी विघ्न नहीं हो सकता। हम में वह ताकत आजाएगी कि हिमालय को उठाकर विंध्याचल के पास रख देंगे। दुनियां की कोई ताकत नहीं हो सकती कि इस ताकत को रोक दे। उस गांधी ने जो जरा सा आदमी है अपने आत्मःबल से हिन्दुस्तान में इतनी ताकत पैदा कर दी कि उस आत्मबल का काल नहीं पड़ने वाला है। यह वह सच्चाई की ताकत है कि जिसका मुकाबिला करने वाली कोई ताकत नहीं हो सकती। आप अपने घर भी जाकर देवियों से कह दीजिए कि हमें उपदेश मिल गया।

पहले पहल यहां हिंडोन में चन्द्रशेखर को मकान नहीं मिला। थानेदार मोहनसिंह लठ्ठ लेकर फिर रहे हैं। मुझसे पूछा मैं कहां बैठूं। मैंने कह दिया कि तू मर्द का बच्चा है, पेड़ के नीचे बैठ जा। हिंडोन वाले कुछ करें या न करें तू धूनी रमा कर बैठजा। बोर्ड भले ही गले में लगा ले। इस मजबूती के पीछे यह काम होने वाले हैं। आज उसी हिंडोन में जलसा होने जा रहा है। शेखावटी के लोगों ने पूछा कि प्रजामंडल क्या है? यह उनको मालूम नहीं था कि प्रजामंडल क्या है? तो मैंने कहा

कि मैं साक्षात प्रजामंडल हूँ। पालीवालजी में, मिश्राजी में इन सब में साक्षात प्रजामंडल है। मैं आपको अन्त में यही उपदेश देता हूँ कि आप नागे बन जाएं-आबरूदार नागे। मुझे नहीं मालूम कौन आदमी अपने अन्दर जी मसोसता होगा। जिस दिन कलकत्ता में लालाजी की मृत्यु का समाचार मिला तो मैंने सोचा कि मैं क्या करूं, खूब रोया। १० हजार की सभा हुई, उसमें आप को भूलकर व्याख्यान दिया। मैंने कहा उनकी जगह को भरने की जरूरत है—मैं चींटी जितनी जगह तो रोक ही सकता हूँ। सन् २८ के नवम्बर मास में यह सोचा। मुमकिन है, कोई कल परसों या सालभर के अंदर नागा बनना मंजूर कर ले लेकिन प्रजामंडल के मेम्बर तो धड़ाधड़ बन सकते हैं। इससे आपकी ड्यूटी खत्म हो गई। फीस २ आने के पैसे यों रखी गई कि कोई नूर्‌या कपूर्‌या शामिल न हो जाय। धन जोड़ने की बात नहीं है। राजवाले कहते हैं धन जोड़ते हैं। यह आपकी चीज आपके समर्पण है। आप अपनी ईमानदारी का सबूत दीजिए और आप अपनी आहुति दें। अब मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है।

राजा ज्ञाननाथ साहब के बारे में अगर कोई तेज बात कह दी हो तो माफी चाहता हूं। पर अगर सच्ची बात कह दी उसके लिए मैं न तो माफी मांग सकता और न मेरे बाप दादा ही मांग सकते हैं।

किसान भाई अभी देखें। काम करना सीखें। आपको अपनी तकलीफ मिटाने के लिए तकलीफ भी सहना पड़ेगा। तब आपका काम होने वाला है। यह कोई हलवा नहीं है जो चट से आप निगल जायें। यह ताकत की और हकूक की लड़ाई है। मामूली मुकदमें में बड़ा जोर आता है। इस मुकदमे में जीत करने के लिये कक्कड़जी, पालीवाल जी, लक्ष्मीनारायण जी को दूसरी तरह की पैरवी करनी होगी। मेरी तरह ही खोपड़ी उघाड़ना पड़ेगा। जिस प्रकार मैं आबरू नहीं रखता हूं, मैं सबसे कहता हूँ कि इस तरह आपको बन जाना पड़ेगा। रोटी का क्या सवाल है? मैं भी खाता हूँ, आबरू भी उनसे कम नहीं है। मामूली आरामतलबी की बातें आप छोड़ दीजिये।

राजपूताना कार्यकर्त्ता शिक्षण शिविर
वनस्थली

२–६–४२

अपनी व्याख्यान माला का काम आज से प्रारम्भ होता है। मैं अपना सौभाग्य समझता हूं कि मेरा पहला व्याख्यान देने की बारी आई । बोलने के लिए जो विषय मैंने रखा वह सार्वजनिक सेवा के मूलभूत सिद्धान्त हैं। मैंने कल्पना की थी कि थोड़ा बहुत इस विषय पर मैं रोज बरोज कहा करूंगा। वह हिसाब नहीं बैठा तो इस विषय को भी व्याख्यान माला में जोड़ दिया गया। इस प्रकार २–३ बार या ज्यादा इस विषय पर व्याख्यान देने का विचार है।

सबसे पहले मैं आप लोगों से हिन्दुस्तान के पुराने जमाने की याद दिलाना चाहता हूं कि जिस समय भारत में एक खास तरह की समाज व्यवस्था वर्णाश्रम के आधार पर प्रचलित थी। अलग अलग चार वर्ण थे और अलग अलग चार आश्रम थे। मेरे चित्त पर एक बात का बड़ा असर है। प्राचीन भारत में धर्म का बहुत बड़ा आधार था। हर एक बात को उस समय धर्म में बांध रखा था कि फलां काम ऐसे होगा और अमुक काम इस प्रकार होगा। छोटी छोटी बातें भी स्मृतियों में विस्तार के साथ निश्चित कर रखी थीं। मनुस्मृति या याज्ञवल्क्य स्मृति को आप देखेंगे तो मालूम पड़ेगा कि कितने विस्तार के साथ उसमें लिखा है। यह बड़ा जरूरी था कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी धर्म या आश्रम का हो, वह अपने धर्म का पालन करे। राजधर्म यह था कि वह धर्म की रक्षा करता रहे और धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाले को दण्ड दे। यह जिम्मा राजा का था। लोगों की अपने आपसे यह वृत्ति बनी हुई थी कि भूल से कोई धर्म विरुद्ध आचरण हो जाता हो तो वह अपने आपको पेश कर देते और स्वयं प्रायश्चित्त करते। अब वे सब बातें दुबारा आ सकती हैं यह मैं नहीं मानता। ऐसी कोशिश भी की गई कि जैसी व्यवस्था पहले थी वैसी आवृत्ति हो जाय लेकिन सफलता नहीं मिली, मिल भी नहीं सकती थी। उस व्यवस्था में खूबियां जरूर थी। उन्हें आज भी अपना सकें

तो अपनाना चाहिए। समाज का एक अंग ब्राह्मण था। वे ऐसे ब्राह्मण थे जो संपत्ति संग्रह नहीं रखते थे, जिनको शहर में रहने का शौक नहीं था, जिनके महल भी नहीं थे? अयोध्या का नाम आपने सुना होगा। अयोध्या में राजा थे पर वशिष्ठजी की अनुमति के विना कोई काम नहीं होता था। पर आपने यह नहीं सुना होगा कि वशिष्ठजी के महल था। सुना होगा तो यही कि उनके गाय थी, झोंपड़ी थी और एक ऋषिपत्नी थी। उन ब्राह्मणों को किसी की पर्वाह नहीं थी। उनका काम अपने ज्ञान का प्रसार करना और तपस्या करना था। उनको किसी की लागलपेट नहीं थी। ऐसे प्रभावशाली वे लोग थे। उन्होंने कड़ी से कड़ी जोखिमें उठाई सत्य की खातिर और धर्म की खातिर और धर्म के खातिर तकलीफ सही। पुराने जमाने में व्यक्तिगत आचार ज्यादा था। अपने आपसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने अपने धर्म की और मोक्ष की चिन्ता थी। पर धर्म के पालन पर खूब जोर था। धर्म का प्रचार करने के लिए ब्राह्मण मौजूद थे। रक्षा करने के लिए क्षत्रिय मौजूद थे और कमाई तथा धन धान्य सम्बन्धी कार्य करने की सब बात वैश्यों पर छोड़ रखी थी। चौथा सेक्शन सेवा करने वालों का बना रखा था। सब चीजें कर्म के अनुसार थीं। वाल्मीकि जन्म से कौन थे? पर उनकी बड़े ऋषियों में गिनती हुई। ऐसे और भी लोग थे। यह तो पुराने जमाने की याद दिलायी। अब वह जमाना चला गया है, बहुत पीछे रह गया है। आज देश पराधीन हो गया है। धर्म का रास्ता भी छूट गया। पराधीनता के कारण दासता की मनोवृत्ति भी आ गई। देश का व्यापार, व्यवसाय और उद्योग धन्धे भी नष्ट हो गए। आज तो बड़ी से बड़ी चिन्ता रोजी की पड़ी हुई है। यह बड़ा फिक्र हरेक आदमी के सामने है। पहले लोगों की जरूरतें भी कम थी। आबादी भी कम थी। जमीन का तो कहना ही क्या? लोग कहते हैं पहले के जमाने में बारिश भी ज्यादा होती थी। कुछ भी हो पर यह सच है कि पहले धन धान्य की कमी नहीं थी। जरूरत के लायक कपड़ा पहन लिया—पेट भर खाना खा लिया। अब जीवन की जरूरतें बढ़ गईं आबादी बढ़ गई और देश की चीजें बाहर जाने लग गईं, हम गरीब हो गये। तीसरी पार्टी हमारे देश में आ गई। दो देश के भाइयों में आपसी गड़बड़ हुई, तो तीसरी ने मिलकर एक का साथ दिया और इस प्रकार फूट पैदा की गई और देश का उद्योग व्यवसाय ही नहीं बल्कि स्वाधीनता तक छिनकर दूसरों के हाथों में चली गई। किसी भी हिन्दुस्तानी का दिल दहले बिना नहीं रह सकता जिस तरह हमारा सब कुछ छिन गया। कभी सिराजुद्दौला की खिलाफत कर मीरकासिम का साथ दिया गया। कभी हैदराबाद से मिलकर देश के दूसरे पक्ष को दबाया गया। मरहठा राजपूत आपस में लड़े। सिक्ख बचे सो उनको खत्म कर दिया गया। हिन्दुस्तानी राजाओं ने सोचा कि इस पार्टी से मेल रखने में कुछ तो रहेगा ही, सो उन्होंने उसकी प्रभुता स्वीकार करली। हमारा स्वत्व भी गया—धन-धान्य भी गया और कद्र करने लायक चीज वह स्वाभिमान भी गया। ऐसी स्थिति में ही हम दूसरे देशों के सम्पर्क में आये और जाना कि कैसे प्रजातन्त्र बना—किस प्रकार शक्ति प्रजा के हाथ में आई। इंग्लैण्ड का इतिहास देखने से मालूम होगा कि वहां राजा का क्या स्थान था?

राजा ईश्वर का अवतार व प्रतीक माना जाता था। और लोग उसको बड़ी ऊंची दृष्टि से देखते थे। हमारे यहां अब भी ऐसे सनातनधर्मी पाये जाते हैं जो उनको यवन व म्लेच्छ कहते हैं पर वे उस वर्ग में हैं, इसलिए वे सनातनधर्मी राजा नाम से ही मुग्ध और प्रभावित हैं। बहुत सारे लोग ऐसे मिलेंगे जो राज पक्ष का समर्थन करते हैं हालांकि उनकी ओर से वे दूसरी जाति के तथा हेय हैं। वर्णाश्रम स्वराज्य संघ जैसी संस्थाएं भी आपको मिलेंगी। इंग्लैण्ड में यहां तक नौवत आ गई है कि राजा निकम्मा था इसलिए उसकी गर्दन तक उड़ादी गई। और प्रजा का पक्ष प्रबल होता गया आज वहां प्रजा का जोर है। यह कहा जा सकता है कि वहां (धनवानों के) एक वर्ग का जोर है। और गरीबों का कम है—पर यह मानना पड़ेगा कि प्रजा पक्ष का जोर है जरूर। हमारे यहां भी यह बात नहीं थी सो नहीं है। वेणु, राजा को अन्याय के कारण अलग कर दिया गया था। हमारी वह वृत्ति आत्माभिमान का जोर नहीं पकड़ सकी—क्योंकि हमारे बीच फूट कराने वाले मौजूद थे। रोजगार न होने के कारण रोजी का सवाल ज्यादा हो गया। जब हम बेकार किये जा चुके थे, सब कुछ नष्ट हो चुका था तब कुछ नई विचार धारा और पुरानी विचारधारा को लेकर लोगों ने आन्दोलन व संगठन शुरू किया।

मेरा ऐसा मानना है कि सार्वजनिक सेवा जो नाम रखा है वह मुश्किल काम है—त्याग व सेवा से हम घबड़ाते हैं क्योंकि इनका तत्व भूल में पड़ गया। ऊपर की चीज ऊपर आ गयी दम्भ या पाखण्ड बहुत हो गया। कहने को तपस्या पर बातों में तत्व कम, इसलिए कई अच्छे अच्छे आदमी इन शब्दों का प्रयोग करते हुए घबड़ाते हैं। असली तत्व अब माना गया है पर मैं तो आज उन शब्दों का ही प्रयोग करूंगा। सेवा कठिन चीज है बिना त्याग के सेवा हो ही नहीं सकती। ब्राह्मणों में बड़प्पन और राजा का राजा कहलाने लायक होना, पुराने जमाने में तो वह त्याग के कारण हुआ। राज व्यवस्था के लिए राजस्व लिया गया। बाकी जो कुछ भी हुआ धर्म या त्याग के आधार पर हुआ। देश-सेवा या लोक-सेवा करना चाहते हो तो वह त्याग के आधार पर हो सकती हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि सेवक परिवार के भरण-पोषण के भार से मुक्त रह सके। जीवनकुटीर के जमाने में साड़े सात वर्ष के बाद यह सोचा कि सबसे पहले कार्य करने वाले के बंधन न हो, वह अकेला रहे। वह पहले से ही अविवाहित रहे और यह प्रण करले कि हमको यावज्जीवन देश की सेवा करनी है। उसे घर की तरफ ध्यान नहीं देना है। यह स्टेज पार कर चुका हो तो बुद्ध की तरह से वैरागी होना चाहिए। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि विवाह न करने की बात अनिवार्य है। दोनों ही पति-पत्नी हैं तो पत्नी को इस योग्य बनादे कि वह अपना भरण-पोषण कर सके, बल्कि अपने बच्चों का भी। और कोई जरिया हो तो निर्वाह के बारे में चिन्ता न करनी पड़े और कोई जरिया न हो तो किसी भी सार्वजनिक कोष से पैसा लेना मंजूर करले। इसकी पर्वाह न करें कि उनको मौके पर मिलता है या नहीं। यह भी न हो तो

अपना निर्वाह जिस हद तक करना चाहते हैं उस तरह होता रहेगा और इस प्रकार जितना बने वह सेवा कार्य करते रहें। किसी भी आदमी को उपदेश नहीं दिया जा सकता कि विवाह करो ही मत और कर भी लिया तो छोड़ दो या परिवार को स्वावलम्बी बना दो या सार्वजनिक कोष से ले लो। जिसकी स्थिति में जो बात लागू हो वह वही करेगा। हम जितना कर सकते हैं उतना ही करेंगे। यह बात दूसरों के उपदेश से ताल्लुक नहीं रखती। खुद के साहस की बात है। कोई कठिनाई आ जाय तो दूसरों से पूछलें। वह रास्ता बता दें। मंजूर हो तो उसको स्वीकार करलें। हमारे देश की स्थिति क्या है ? हमारे देश का जो बहुत अच्छा मानव तत्व है वह तो सरकार के लिये हड़प लिया जाता है। जो तेज तर्रार होते हैं—वे सरकारी नौकरी में हड़प लिए जाते हैं। इसके बाद के दर्जे के जो रहते हैं वे व्यापार में फंसे रहते हैं। तीसरा नम्बर उन लोगों का आता है जो डाक्टरी और वकालत जैसे धन्धों में फंस जाते हैं और उनमें से जो लोग बचते हैं वे शिक्षा विभाग में। मैंने शिक्षा-विभाग को अलग गिनाया है। अगर कोई थानेदार नहीं बन सकता तब जाकर उसके जिम्मे लड़के पढ़ाने की जी में आयगी। लड़के पढ़ाना निन्दा की बात मानी जाती है। लड़कियाँ पढ़ाने की बात तो और भी वैसी गिनी जाती है। फिर बचे सो सार्वजनिक सेवा या लोकसेवा के नम्बर में आते हैं। मैं निन्दा नहीं करना चाहता पर होता क्या है। सब तरह से हार गये तो पांचवें छठे नम्बर पर देश सेवा में आया—पर वास्तव में यह काम इतने ऊंचे दर्जे का है कि यह काम करने वाला अधिक से अधिक योग्यता वाला होना चाहिए। उसमें दुनिया भर की योग्यता होगी—राजकारण से लेकर छोटी छोटी बातों तक की। राजतन्त्र में सभी तरह के लोग होते हैं अफसर भी और चपरासी भी—इसी तरह डाक्टर और वकीलों में भी है। कोई डाक्टर वैद्य अच्छा है तो कोई साधारण—कोई वकील किसी पेशी पर खड़े होने के हजार रुपये ले लेता है तो कोई आठ आना की अर्जी लिखकर ही संतोष मान लेता है। सभी तरह का वर्ग है। देश सेवा का काम ऊंचे दर्जे के आदमियों का है। लियाकत न हो तो वृत्ति तो ऊंचे दर्जे की होनी चाहिए। राज करने वालों का एक दल बन गया है। दूसरा प्रजा की सेवा करने वालों का। इस प्रकार देश के लिए अच्छा करना चाहने वालों का तथा राजवालों का दो ग्रुप हो गये हैं। राजवालों के हित में कोई बाधा नहीं पहुंचे तब तक तो ठीक वर्ना काम करने वालों की मुसीबत है। एक आदमी प्रजामण्डल के ढंग का काम करेगा तो यह याद रखना पड़ेगा कि उसके घर में रहने वाले का थानेदारजी क्या करेंगे। व्यापारी को अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करते हुए भी यह ख्याल रखना पड़ेगा कि राहदारी के दारोगा से उसका क्या सम्बन्ध है ? इस देश में धन का नाश तो पहले से ही हो गया पर रोजी का सबसे बड़ा सवाल होने के कारण लोग पूंजी रखने की कोशिश करना चाहते हैं। आपस में झूठी इज्जत आबरू बनी हुई है। लोग उसके लिए तरसते हैं। यह कौन है ? यह रायबहादुर है। इनको सोना बख्शा है। यह म्युनिसिपैलिटी के नोमीनेटेड मेम्बर हैं, इनको फलां टाइटल मिला हुआ है। लेना देना पैसे का भी हो या न हो, चाहे रायबहादुरी की कौड़ी की कीमत न हो पर

लोग चाहते हैं कि उनका सिर ऊंचाई पर दिखायी दे। वे लोग ऐसा काम नहीं करना चाहते कि जो राज कर रहे हैं उनके काम में बाधा पहुंचे और उनकी इच्छा के खिलाफ घर पर कोई आदमी कुछ करने लग जाय तो रायबहादुर सोचेंगे कि मेरा लड़का अथवा फलां रिश्तेदार ऐसा करता है ? उनसे कहा जाता है तुम ऐसे हो, तुम वैसे हो, तुम्हारे बाप-दादा ने गदर में हमारा साथ दिया था, तुम सरकार के खैरख्वाह हो। इसके अलावा आमतौर पर रोजी का असली सवाल है। फिर आजकल स्टेण्डर्ड बढ़ गये। जितने में भोजन का खर्च चले उतने में बाप-दादा सारा काम चला लेते थे। उतने ही पैर पसारना चाहिए जितना कपड़ा हो। पुराने ढंग के लोग अब भी ऐसा करते हैं। मैं निन्दा के तौर पर नहीं कहता पर आमदनी से स्टेण्डर्ड और जरूरतें बढ गयीं। बाबू साहब के बाल भी उस तरह कटने चाहिए फिर तेल साबुन भी और कपड़े धोने के लिए धोबी भी चाहिए। घर में नाज कम हो पर फर्नीचर भी चाहिए। मैंने ऐसे घर देखे हैं कि सैकड़ों का फरनीचर मिल जायगा पर घर में कुछ नहीं। जयपुर में मैं २७ वर्ष पहले पहुंचा था तब दो घोड़ों की गाड़ी रखना बड़ी बात थी और सौ डेढ़ सौ की तनखा वाले तो उस समय वैसे ही चलते थे। आज उनके घर में मोटर देख लीजिए। हमारी जरुरतें बढ़ गयीं। मैं उस तरह के त्याग में विश्वास नही रखता हूं पर हमारे पास आमद नहींहै और स्टेण्डर्ड बढ़ता जायगा तो दुःख ही पायेंगे। बनस्थली में कम से कम खर्च पर रहने का वातावरण बन चुका है, वहां भी हमारे भोजन खर्च के १० रु० से कम नहीं है। आजकल कोई भी आदमी जिसकी आमदनी २० रु० है उसका निर्वाह कैसे हो ? हम कितने खर्चे में ही काम चला सकते हैं ? पांच-छः आने तो अकेले बाबूजी को ही चाहिए। बच्चों की शिक्षा और कपड़े आदि मिलाकर कम से कम २५) ३०) नहीं मिलते तब तक काम नहीं चलता। हरेक को कहां से इतना रुपया मिल जाय। आर्थिक स्वावलम्बन होने से दूसरे काम को करते हुए सार्वजनिक काम पार नहीं पड़ सकता। १) रु० रोज पूरी ताकत लगाकर पैदा कर लिया तो वह सेवा कैसे कर सकता है ? ऐसा काम करते हुए दूसरे लोग बाधा पहुंचायेंगे। सांगानेर में सम्मेलन हुआ तो नाजिम ने रामसहायजी के भाई लक्ष्मीनारायणजी को बुलाकर डांट दिया और कहा कि मजा चखाऊंगा और तुझे समझूंगा। उन्होंने आज तक तो उनको समझा नहीं पर राहदारी वाले उनके व्यापार-व्यवसाय में कई मुश्किलें पैदा कर देते हैं। इस जोखिम को कौन उठाए। राज की नौकरी खुद की तो छोड़ दे पर भाई बन्धु की छूट जाए तो ? इसके अलावा रोजगार में बाधा पहुंच जाए। वक्त मिले उतना भी करे तो घर वाले विरोध करें। इसके अलावा और भी बहुत सी बातें हैं जिनका ताल्लुक व्यक्तिगत है। एक तो यह है कि करें या न करें पर प्रसिद्ध होने का रोग बहुत बढ़ गया है। अखबारों में जरा सी बात पर नाम छप गया और तसवीर भी छप गई। कई बार ऐसा भी हुआ है कि एक ओर जवाहरलालजी की तसवीर है तो बराबर में 'मुन्नीलालजी' की। मेरे मन में डर लगता है कि 'मुन्नीलालजी' ने सोच लिया होगा कि उनमें और जवाहरलालजी में अब दो ही अंगुल का तो फर्क रहा। यह भावना मन में

जम जाती है और धोखे में पड़ कर आदमी असलियत को भूल जाता है। गधे पर बाघ का चमड़ा डालने से वह बाघ समझा जाय, यह निरर्थक बात है। कहते हैं साहब मतभेद हो गया। मत तो मालूम पड़ा नहीं और मतभेद होते रहते हैं। सुकरात के दर्जे का या बड़े बड़े लोगों के बराबर अपने आपको समझता है। जो कुछ है सो वही है। गान्धीजी क्या कहते हैं? जवाहरलालजी क्या कहते हैं? यह मालूम नहीं। राजगोपालाचार्य क्या कहते हैं? हिटलर और मुसोलिनी क्या कहते हैं? सो पता नहीं। पर उनका वाद जरूर है। कहते हैं हम फलां पार्टी के हैं। जहां अंकुर नहीं बनता वहां बीज पैदा कैसे हो? और इस महत्वाकांक्षा के कारण दलबन्दी हो जाती है। जहां झूठा नाम चाहने की बात होगी वहां पर यह होगा कि दिखावा बनने लगेगा। नकली जीवन और ऐसा नकली जीवन अपने आप से नफरत की चीज हो जाता है। कई कच्चे आदमियों को वैराग्य भी हो जाता है। मैंने आपके सामने पुराने और नये जमाने की तुलना करते हुए देश की उस स्थिति का चित्र पेश करने का प्रयत्न किया है जिसके कारण काम करना मुश्किल हो रहा है। मैंने जान बूझकर निराशा का चित्र पेश किया है। सब कुछ होते हुए भी मैं पूरा आशावादी हूँ। हमारे देश में कुछ होने वाला होगा सो तो होकर रहेगा। पर मैं पूछता हूँ जितने लोग देश के लिए कुर्बानी करने को तैयार होने चाहिए उतने हैं क्या? चाहे रूस की कार्य प्रणाली से मतभेद हो। रूस पर इल्जाम लगाने वाले भी हैं ही। लोग कहते हैं ऐसे विचारों के होते हुए भी फिनलैण्ड पर हमला क्यों किया, पर जैसा है वैसा है। जर्मनी भी जैसा है वैसा ही है। दोनों के मुठभेड़ हो गयी। आक्रमण करने वाला कहता है कि ठीक किया। दूसरा पक्ष कहता है, गलत किया। देश की आजादी के लिए वे जी जान से मुकाबला कर रहे हैं एक एक इंच भूमि भी कैसे जा सकती है। यहां तो युद्ध की बात के पहले प्राण निकल जायं। जर्मनी की बात सुनिये। जयपुर की आबादी से आधी फौज सरहद पर पड़ी है (कितने ही मर गये) जो मौजूद हैं उनको मरने की पर्वाह नहीं है। न घर वालों को उनकी पर्वाह। सिद्धान्ततः मतभेद हो, पर सबसे बड़ा जान देने का सिद्धान्त है। जो इस ध्येय को मानता है उसको जान देने की पर्वाह नहीं है। किसी भी सिद्धान्त के अनुसार जान दीजिए पर दीजिए। बुजदिली से तो वह हिंसा भी अच्छी है जिसके अनुसार जान देने की तैयारी हो। आप में से कितने लोग जान देने को तैयार हैं और कितने धीरज रखकर कष्ट सहने को तैयार हैं? हम क्षीण हो जायं दुनियां के अर्थ में, इस तरह का क्षीण होने वाला अमर होता है। हमारी किस हद तक तैयारी है? मैं लियाकत की पर्वाह नहीं करता कौन मिडिल है और कौन बी० ए० है। यह होनी तो चाहिए पर सबसे बड़ा असल सिद्धान्त यह है कि कौन जान देने को तैयार है? हम यह आवाज जीवनकुटीर में लगाया करते थे कि है कोई मरने वाला? हम अपने परिवार को त्याग देने को तैयार हैं। रोगी होने पर भी बीमारी का कोई ख़्याल न कर काम करने को तैयार हैं। सवारी न सही पैदल ही सही और पूरा कपड़ा न सही अधूरा ही सही। आराम या सुविधा सुलभ हो जाय और दुनिया में जो लोगों के प्रेम की चीज है वह भी मिल जाय पर उसको

मिट्टी से भी बढ़कर जान कर आत्माभिमान और इज्जत के साथ मरने को कौन तैयार है ? रास्ता पकड़े कोई सा और कोई भी वादी हों, यह बहस तो बाद में उठती है। पहला सवाल तो यह है कि हम पूरी ताकत के साथ कुर्बानी करने को तैयार हैं या नहीं। अगर नहीं है तो हमें धिक्कार है। और अगर हैं तो हम कोई से भी वादी हों, ब्राह्मण हों चाहे बनिये हों, हिन्दू हों चाहे मुसलमान हों, आर्य समाजी हों या और कोई हो, सब कोई देश का काम कर सकते हैं। पर पहली चीज होनी चाहिए पूरी सचाई व ईमानदारी के साथ कुर्बानी करने की। सार्वजनिक सेवा का पहला मूलभूत सिद्धान्त मैं इसी को मानता हूँ।

धौलपुर राज्य में श्री हीरालाल शास्त्री का दौरा, राजे और नवाबों को अपने शासन का उत्तरदायित्व प्रजा के हाथों में सौंप देना चाहिए।

यदि भारतीय राजा महाराजा समय की गति के अनुसार न चले तो उन्हें रूस और जर्मनी के जार व कैसर की भांति अपना अन्त देखना पड़ेगा।

दैनिक सैनिक, ४-४-४७

धौलपुर, २ अप्रैल। पंडित हीरालाल शास्त्री ज्योंही रेल से आगरा फोर्ट स्टेशन पर उतरे और उनका स्वागत समाप्त हुआ कि धौलपुर शहर के कोतवाल ने उन्हें एक बन्द लिफाफा देकर कुछ बातचीत करनी चाही। शास्त्रीजी ने उनसे अपनी मोटर में बैठकर बातचीत की। अधिकारियों के इस पत्र और बातचीत से मालूम होता था तथा जो कुछ खबरें वहां से आरही थीं उनसे स्पष्ट था कि रियासत वाले इस समय शास्त्री जी की यात्रा का स्वागत नहीं करते हैं। जब शास्त्री जी ने श्री ज्वाला प्रसाद जिज्ञासु के यहां स्नान आदि से फुर्सत पाई तो धौलपुर के अधिकारियों ने फिर उनसे बातचीत की। चूंकि इस बीच शास्त्री जी धौलपुर की स्थिति से कार्यकर्ताओं द्वारा अवगत करा दिए गए थे, उन्होंने अपना कार्यक्रम रियासत के इन अधिकारियों को बता दिया और साफ साफ कह दिया कि वे अपने निश्चित प्रोग्राम के अनुसार धौलपुर की यात्रा करेंगे। अस्तु। दोपहर को २॥ बजे दो मोटर कारों में नेता लोग धौलपुर के लिए रवाना हुए। नेताओं की मोटरों के आगे और पीछे दो मोटरें धौलपुर के पुलिस अधिकारियों की भी रवाना हुईं। इन दोनों सरकारी मोटरों के बीच तिरंगे झण्डे फहराती हुई नेताओं की कारें एक सुखद और आकर्षक दर्शनीय कनवाय बन गईं। सैंया के चौराहे पर नेताओं का पान सुपारी से सत्कार किया गया और जो बसई आदि के कार्यकर्ता वहां उपस्थित थे उन्हें बता दिया गया कि शास्त्री जी शाम को बसई पहुँचेंगे।

जब नेताओं की कारें धौलपुर रियासत की हद में दाखिल हुईं और पहली बरहेठा की चौकी से गुजरी तो उन्होंने देखा कि चौकी पर काफी तादाद में लोग लट्ठ लिए बैठे थे, पर मालूम होता था कि आगे जो सरकारी मोटर गई वह उन्हें आदेश कर गई कि किसी प्रकार का प्रदर्शन न करें। जब नेता लोग धौलपुर पहुँचे तो नए और

पुराने शहर दोनों जगह उत्सुक लोगों ने खड़े होकर नेताओं का अभिवादन और स्वागत किया पर चूंकि शास्त्रीजी का आदेश पहुँच चुका था कि किसी प्रकार का जुलूस व प्रदर्शन न किया जाय, इसलिए लोग सिर्फ कतार बांध कर खड़े रहे। जैसे ही कारें प्रजामण्डल के दफ्तर और सेठ कन्हैयालाल के मकान पर पहुँची, जनता ने राष्ट्रीय नारों से नेताओं का स्वागत किया और उन्हें फूल मालाएं पहिनाई। सेठ कन्हैयालाल की ओर से नेताओं को जलपान कराया गया।

प्रजा मण्डल के दफ्तर की छत और नीचे सड़क पर व गलियों में हजारों हिन्दू मुसलमान नेताओं के दर्शन तथा भाषण सुनने के लिए जमा हो गए। श्री जगदीशप्रसाद की अध्यक्षता में सभा आरम्भ हुई। पहले श्री गोकुल भाई भट्ट ने प्रजामण्डल के उद्देश्य तथा कार्यक्रम पर प्रकाश डालते हुए बताया कि प्रजामण्डल न तो राजाओं का दुश्मन है और न हिन्दू और मुसलमानों में भेद डालना चाहता है बल्कि जमाने की रफ्तार के मुताबिक राजा और प्रजा के हित में उतरदायी शासन शान्ति और अहिंसात्मक उपायों से प्राप्त करना चहता है।

श्री शास्त्री जी का भाषण

इसके बाद पं० हीरालाल शास्त्री ने अपना महत्वपूर्ण और ओजस्वी भाषण आरम्भ किया। आपने कांग्रेस का इतिहास बताते हुए समझाया कि जब अंग्रेज हिन्दुस्तान से जून १९४८ से पहले पहले जाने और सारी हुकूमत की बागडोर जनता के हाथों सौंपने की घोषणा कर चुके हैं तब राजा और नवाबों को जो अंग्रेजों के मातहत और अनुयायी रहे हैं, प्रजा को अधिकार सौपने में हिचकिचाहट का कोई कारण नहीं है। कांग्रेस ने अंग्रेजों को भारत से निकल जाने की मांग इसलिए की थी कि वे हिन्दुस्तान के नहीं हैं पर राजे और नवाब चाहे वे किसी प्रकार से बने हों आखिर हैं हिन्दुस्तान के ही। इसलिए उनसे निकलजाने की गद्दी छोड़ने की बात नहीं कही जाती बल्कि केवल यह कि वे जनता को अपने शासन का उत्तरदायित्व सौंप दें। और जिसप्रकार इंगलेंड का बादशाह अपनी प्रजा की आज्ञानुसार प्रजा द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की सलाह से शासन करता है उसी प्रकार भारतीय राजे महाराजे भी करें, इसी में उनका कल्याण है। अन्यथा रूस और जर्मनी के जार और कैसर की भांति उन्हें अपने अन्त को देखना पड़ेगा।

आगे शास्त्रीजी ने हिन्दू और मुसलमानों से प्रेम पूर्वक रहने और आपसी भेदभाव को भुलाकर सगठित रूप से अपने अधिकारों के लिए शान्त और वैधानिक उपायों का अवलम्बन करने का उपदेश दिया। आपने उन लोगों की भर्त्सना की जो जनता के इन आंदोलनों को भेद नीति द्वारा कुचलने की कोशिश करते हैं। आपके भाषण के दौरान धौलपुर के बहुत से मुसलमान सज्जन भी आए और उनमें से एक मुन्नू ठेकेदार ने भी भाषण दिया। आपने हिन्दू मुसलिम एकता पर जोर दिया।

सभा के बाद सर्व श्री हीरालाल शास्त्री, गोकुलभाई भट्ट, प्रकाशनारायण शिरोमणि और देवेन्द्र शर्मा आर्मी मैम्बर पं० रघुवीर सिंह से मिलने गये। आप लोग महाराज धौलपुर तथा सरदार रणवीर सिंह से मिलना चाहते थे। किन्तु वे लोग बम्बई हैं इसलिए यह मुलाकात फिर कभी होगी।

धौलपुर से नेतागण तसीमों और बसई के लिए रवाना हुए।

नेताओं के पहुंचने के पूर्व कुछ लोगों ने प्रजामण्डल के दफ्तर पर लगे तिरंगे झण्डे को उतारने के मूर्खतापूर्ण प्रयत्न किये, पर वे ऐसा न कर सके। मगर बाजार बंद हो गया।

Statement by Pandit Hiralal Shastri,
Prime Minister, Jaipur State.

April, 1948

On the historic occasion of the New Cabinet's entry into office I wish to address a few words to the people of Jaipur.

2. I respectfully offer my heartiest congratulations to His Higness who has voluntarily and spontaneously agreed to give the right of responsible Government to the people. I know how wise and far-sighted His Highness is; I therefore feel confident that in future he will be always prepared to do every thing for the good of his beloved people. Shri V. T. Krishnamachari, who has given proper advice to H. H. according to the need of the times, also deserves our thanks. I hope Shri Krishnamachari's presence in the cabinet as Dewan will be of special help in the interim period. I have no doubt in my mind that the two sardar members of the Cabinet will have their full share in carrying out the progressive policy of the new Ministry.

3. Eleven years ago the Jaipur Praja Mandal started the movement for responsible government and it is a matter of gratification that with growing popular support and with His Highness' recognition of the justice of the Praja Mandal's demand it has been possible for us to get the substance of responsible government in such a peaceful manner.

4. Our country is passing through difficult times and I am afraid that the interim Cabinet's plans may not bear fruit in full measure within the short time at its disposal.

5. As far as I think production is our chief problem. Only through production we can raise the standard of living of the common man, through the development of agriculture and industry. The Government must have sufficient funds to take up big schemes of public welfare. The new Cabinet will do all that lies in its power for the benefit of the peasantry, labour and the Harijans. Necessary steps will be taken to root out corruption. Local talent will be given ample opportunities for development. By universal use of Hindi in Government work and by other means the new Cabinet will provide necessary facilities to the people in general.

जयपुर राज्य के प्रधान मन्त्री पण्डित हीरालाल शास्त्री के बजट सम्बन्धी भाषण में से

जून १९४८

गत वर्षों के बजट व आगामी वर्ष के आय-व्यय के अनुमान से, जो हाउस के सामने है, ज्ञात होगा कि राज्य की आर्थिक स्थिति संतोषजनक है परन्तु समय की विषमता, उन्नति की दौड़, जीवन निर्वाह के लिए मुसीबतें, कीमतों की बढ़ती हुई प्रवृत्ति, समाज के चन्द लोगों का स्वार्थवश धनसंचय, उत्पादन में कमी, जनसंख्या में वृद्धि, सरकार के लिए बड़े महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनका मुकाबिला बुद्धिमानी एवं दृढ़ता के साथ करना है। देश में जो दुष्ट प्रवृतियां फैली हुई हैं, जिनसे समाज की हानि होने की शंका है, दमन करनी हैं। जनता में सद्भावना व पारस्परिक मेल पैदा करना है जनता का नैतिक, सामाजिक व आर्थिक उत्थान करना है। इन तमाम कार्यों के लिए सर्व प्रथम जनता की सच्ची सहायता व धन की आवश्यकता है। मैं आशा करता हूं कि जनता सरकार को इस कार्य में पूर्ण सहयोग देगी। रहा धन का प्रश्न। प्रथम तो रियासत अपने सुरक्षित कोष से पूंजी खर्च के कामों के लिए रकम खर्च करेगी और इस तरह रियासत की उत्पादन शक्ति की वृद्धि करेगी। यदि यह रकम कम पड़ेगी तो सार्वजनिक कर्जा लेने में भी कोई हिचकिचाहट नहीं होगी।

सार्वजनिक कार्यो के लिए सरकार अधिक से अधिक व्यय कर रही है और करने को तैयार है। यातायात की कमी व बाहर से यंत्रों आदि के आने में दिक्कत के कारण कई औद्योगिक धंधों को उन्नत करने में भी बाधा पड़ रही है। फिर भी दो बड़े बिजली के यंत्र मंगवा लिये गये हैं। दो और मंगाये जा रहे हैं। और ऐसी आशा है कि बहुत जल्द ही रियासत के कोने कोने में बिजली पहुंचाई जा सकेगी। टेलीफोन की सुविधा भी बढ़ाई जा रही है। जयपुर स्टेट रेलवे की नई लाइनें डाली जा रही हैं। परन्तु स्लीपरों व पटरियों के अभाव के कारण काम में यथोचित प्रगति नहीं हो सकी है।

शिक्षा, चिकित्सा, पशुचिकित्सा व कृषि-उन्नति पर भी सरकार बहुत बड़ी रकम खर्च कर रही है और रियासत की आय का लगभग ४०% सार्वजनिक कार्यों में खर्च होता है।

बढ़ती हुई मंहगाई में कर्मचारियों को सहायता पहुंचाने की बात भी सरकार के ध्यान में है। कर्मचारियों के वेतन में समय समय पर वृद्धियां की गई और ३५,००,००० रुपया सालाना मंहगाई के भत्ते पर खर्च किया जा रहा है। परन्तु मंहगाई का इलाज वेतन वृद्धि या मंहगाई का भत्ता बढ़ाना नहीं है। अपितु यह बातें मंहगाई बढ़ाने में सहायक होती हैं। अतः यह आवश्यक है कि रियासत की उत्पादन शक्ति बढ़ाकर कीमतें नीची लाई जावें।

आगामी वर्ष में जयपुर के लिये सबसे बड़े महत्व की बात कांग्रेस अधिवेशन का जयपुर में होना है। स्वराज्य के बाद होने वाला और किसी भी देशी राज्य में होने वाला यह पहला कांग्रेस अधिवेशन होगा।

इतना कह कर मैं बजट सदन के समक्ष रखता हूँ।

देवली (देसूरी)
१७–४–४६

'इस नये बने प्रान्त में शान्ति और व्यवस्था की रक्षा सरकार का पहला दायित्व है और मैं विश्वास दिलाता हूँ कि राजस्थान सरकार पूरे प्रयत्न और पूरी शक्ति के साथ इस दायित्व को निभायेगी।' ये शब्द राजस्थान के प्रधानमन्त्री पं० हीरालाल शास्त्री ने गत १७ अप्रैल को मारवाड़ के देवली गांव में हुए देसूरी परगना राजनीतिक सम्मेलन में अपना भाषण प्रारम्भ करते हुए कहे।

प्रधानमन्त्री ने अपने भाषण में सर्व साधारण को विश्वास दिलाया कि कष्टों को दूर करने, जीवन की आवश्यकताएं सुलभ करने और हरेक व्यक्ति को निजी विकास करने की पूरी सुविधा देने का राजस्थान सरकार भरपूर प्रयत्न करेगी।

प्रधानमन्त्री ने भारी संख्या में उपस्थित ग्रामीण जनता को ग्रामीण बोली में ही राजनीतिक परिवर्तनों का महत्व समझाते हुए कहा कि फूट के कारण ही हमारा सरताज-देश विदेशियों का गुलाम बना किन्तु पूरे प्रयत्न के बाद हमने इसे आजाद कर लिया है। अंग्रेजों का शासन खत्म होते ही राजाओं ने कांग्रेस के साथ चलने में ही अपना हित समझा। जनता की भलाई को दृष्टि में रखते हुए एकीकरण की जो योजना हाथ में ली गई उसके फलस्वरूप आज हमारे देश में केवल इनी-गिनी रियासती इकाइयां ही बच रही हैं। राजाओं ने स्वेच्छा से जन—प्रतिनिधियों को सत्ता सौंप कर देश भक्ति का काम किया है जिससे उनकी इज्जत बढ़ी ही है। इस दूरदर्शिता के लिए उनका सदा आदर किया जाएगा।

प्रान्त निर्माण संबंधी हुए महान परिवर्तन की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए प्रधानमन्त्री ने जनता से नयी जिम्मेदारी समझने की अपील की और कहा कि हमें इस ऐतिहासिक अवसर पर संकुचित दृष्टि या ओछे दिल से काम नहीं लेना चाहिए। बड़ी बातों में, सार्वजनिक हित की जगह व्यक्तिगत हित साधना में और दीर्घकालीन उद्देश्य को

जगह सामयिक सफलता की चेष्टा में यदि हम लोग रहेंगे तो इतिहास हमें एक ऐतिहासिक अवसर के अयोग्य होने का दोषी ठहरायेगा।

भाषण जारी रखते हुए आपने राजस्थान सरकार के तात्कालिक कार्यक्रम का दिग्दर्शन कराते हुए कहा कि कानून का राज मजबूती से कायम रखना और कहीं शान्ति भंग न होने देना सरकार का पहला कर्त्तव्य है। बेगार, चोर बाजारी, घूंसखोरी आदि की रोकथाम पूरी चेष्टा से की जायगी। इसके साथ ही अन्न, वस्त्र की कमी दूर करने की भी पूरी कोशिश की जायगी। लेकिन इस सम्बन्ध में जनता को अपने दायित्व का भी निर्वाह करना चाहिए। पैदावार बढ़ाना तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करना हमारा एक मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। इसके अलावा रचनात्मक कामों में भी हमें अपनी पूरी शक्ति लगा देनी चाहिए।

शिक्षा प्रसार, रेलें, सड़क निर्माण, सफाई, चिकित्सा एवं जागीरदारी आदि समस्याओं का जिक्र करते हुए प्रधानमंत्री ने बताया कि इन कामों को सरकार अपनी पूरी शक्ति के साथ तुरन्त हाथ में ले रही है। लेकिन इस अर्से में हमें सब्र से काम लेना चाहिए। जागीरदारों और पूंजीपतियों को भी पैदावार बढ़ाने और रचनात्मक कामों में हाथ बंटाना चाहिए। इसके साथ ही कांग्रेसजनों को भी चाहिए कि अपने लक्ष्य पर ध्यान रखते हुए सामूहिक एकता एवं अनुशासन की भावनाएं अपनाएं। अगर वे आपसी झगड़े में लगे रहे तो यह बड़ा मौका उनके हाथ से चला जायगा।

जागीरदारों को सम्बोधित करते हुए आपने कहा कि उन्हें अपना अधिकार जनता को खुशी खुशी सौंप देना चाहिए, इसी में उनका हित है। आज जब सैनिक सेवा के लिए अलग से पारिश्रमिक दिया जाता है तब जागीर प्रथा का कायम रहना अनुपयुक्त है। जनता की मर्जी के खिलाफ जब अंग्रेज अपने अधिकार कायम नहीं रख सके, जब निजाम जैसे शासक अपने अधिकार बनाए नहीं रख सके तब जागीरदार कैसे अपने अधिकार बनाए रखने के स्वप्न देखते हैं? यह अधिकार उनके लिए शोभास्पद नहीं हैं। उन्हें अपने हाथों इस कलंक को धो डालना चाहिए। आपने विश्वास प्रकट किया कि जैसे आपसी समझदारी से राजाओं का सवाल हल हो गया, वैसे ही जागीरदारों का भी हल हो जायगा।

किशनगढ़ में हाल में कुछ जागीरदारों द्वारा कुछ राज कर्मचारियों पर हमला करने की चर्चा करते हुए आपने कहा कि जागीरदारों को इस प्रकार की कार्यवाही में हाथ नहीं डालना चाहिए। उसी सिलसिले में आपने बताया कि राजपूताना में जनता की सरकार कायम हो गई है। यदि कोई भी शान्ति भंग या कानून के खिलाफ कार्यवाही करेगा तो बर्दाश्त नहीं किया जावेगा।

राजस्थान के पूंजीपतियों के बारे में बोलते हुए आपने बताया कि पैदावार बढ़ाने में और कल कारखाने चलाने के लिए रुपयों जरूरत है तो पूंजीपतियों के रुपयों

से फायदा क्यों नहीं उठाया जाय ? राष्ट्रीयकरण को असामयिक बताते हुए आपने कहा कि सरकार के पास न तो पैसा ही है और न अक्ल व मशीनरी, जिससे कि राष्ट्रीयकरण का काम किया जा सके। हमें तो पूंजीपतियों से मेल मिलाप रखना है। अगर नहीं रखें तो राजपूताने में न तो सीमेण्ट की फेक्टरी होगी न रुई का और न ही शक्कर आदि का कारखाना।

अजमेर मेरवाड़ा का जिक्र करते हुए आपने कहा कि वह राजस्थान का स्वाभाविक अंग होने के नाते शीघ्र ही प्रान्त में मिला लिया जावेगा। भरतपुर कहां मिलेगा, इसका निर्णय स्वयं उसी पर छोड़ दिया गया है। सिरोही के बारे में भी एकदम निराश होने का कोई कारण नहीं है। इन सवालों पर अधीर होने की आवश्यकता नहीं। समय के साथ ही ये सवाल स्वयं हल हो जायेंगे।

७ अप्रैल को कार्य-भार संभालने के बाद यह पहला अवसर था जबकि प्रधानमन्त्री किसी सार्वजनिक सभा में बोल रहे थे। इस अवसर पर राजस्थान के और तीन मन्त्री श्री भूरेलाल बया, श्री फूलचन्द बाफना और श्री नरसिंह कछावा ने भी अपने भाषणों में वर्तमान राजनैतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए जनता से अपना दायित्व समझने तथा संगठित होने की अपील की। सम्मेलन के सभापति श्री देवीचन्द सागरमल ने प्रधानमन्त्री तथा उनके साथियों का उत्साहपूर्ण शब्दों में स्वागत किया। मारवाड़ जिला कांग्रेस के सभापति श्री मीठालाल त्रिवेदी तथा प्रान्तीय कांग्रेस के कई सदस्यों ने भी सम्मेलन में भाग लिया।

संयुक्त राजस्थान राज्य के प्रधान मन्त्री पंडित हीरालाल शास्त्री का सरकार की नीति के सम्बन्ध में वक्तव्य

२८-४-४६

राजपूताने के ऐतिहासिक राज्यों का एकीकरण एक वड़े महत्व की घटना है। इसलिये यह एकीकरण यदि अनेक कठिनाइयों के बीच में होने जा रहा है तो कोई आश्चर्य नहीं। इतने वड़े संयुक्त राज्य के मंत्रिमण्डल की रचना भी कल्पनातीत कठिनाइयों के बीच में हुई है। इस प्रकार जो काम अपने आपसे बहुत भारी था वह बाहर और भीतर की कठिनाइयों के कारण और भी अधिक भारी हो गया। राजस्थान सरकार पूरे आत्म विश्वास के साथ आगे बढ़ने के लिये तुली हुई है परन्तु हमें स्वीकार करना चाहिए कि हम लोग अपने कन्धों पर आये हुए इस कार्यभार से अपने आपको कुछ कुछ दवा हुआ भी पाते हैं। हम देख रहे हैं कि हमारा सबसे पहला काम अपने घर का बसाना हो रहा है। हमें किसी चलते हुए राज्य का कार्यभार नहीं सम्भलाया गया है बल्कि इस संयुक्त राज्य को हमें ही बनाना भी है। सैकड़ों वर्षों से चली आयी बड़े बड़े राज्यों की राजनैतिक हदबन्दियां मौजूद हैं और उन हदबन्दियों के साथ साथ न केवल सर्वसाधारण जनता की बल्कि हम जैसे कार्यकर्ताओं की मानसिक हदबन्दियां भी अपने आग्रह को अभी तक नहीं छोड़ रही हैं। अपने अपने राज्यों तथा अपने अपने शहरों और कस्बों में हमारी विशेष दिलचस्पी अभी तक जारी है। अस्तु। अब इस नये बड़े राज्य के आवश्यकतानुसार डिवीजन और उनके मुख्य कार्यालय कायम करने तथा नये जिलों और तहसीलों का विभाजन करने का काम भी कई कठिनाइयों से भरा होगा। राजधानी का निर्णय होते ही हम सोचेंगे कि कौन कौन से बड़े विभाग किन किन बड़े शहरों में रखे जाएं। हमें यह ध्यान रखना है कि जहां तक बने किसी भी शहर की रौनक कम न होने पावे और इतना बड़ा राज्य हो जाने पर भी राज्य संबंधी मामलों में जनता को कम से कम असुविधा हो।

अब तक हमें पुराना राजस्थान, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर ये पांच इकाइयां मिल चुकी हैं और हम मत्स्य–भरतपुर, धौलपुर व अलवर, करौली के फैसले के इन्तजार में है। अजमेर–मेरवाड़ा का फैसला अभी तक नहीं हो पाया है तथा

सिरोही के बारे में भी हम से बार बार प्रश्न किया जाता है। जिन सवालों का तय होना बाकी है उन सब का, मैं आशा करता हूं, ठीक ठीक फैसला हो जायगा। जो कुछ हमें मिल चुका है उसी को लेकर एकीकरण का काम हमने शुरू कर दिया है। नयी राजस्थान सरकार के लिए मुख्य कार्यालय की रचना की जा रही है और उसके लिए ओहदेदारों और कर्मचारियों की नियुक्ति हो रही है। हाईकोर्ट और पब्लिक सर्विस कमीशन का निर्माण किया जा रहा है। इन्सपेक्टर जनरल पुलिस, एकाउन्टेट जनरल आदि बड़े बड़े ओहदेदारों की नियुक्ति भी की जा रही है। साथ ही अब तक के विभिन्न राज्यों के सभी विभागों का एकीकरण का काम बड़े पैमाने पर हाथ में लिया जा रहा है जिसके लिए एकीकरण समिति की नियुक्ति की जा चुकी है। कहना न होगा कि एकीकरण का काम अत्यन्त कठिन सिद्ध होने वाला है। विभागों, ओहदेदारों और कर्मचारियों के एकीकरण के साथ साथ आर्थिक एकीकरण भी होगा। आर्थिक एकीकरण के बाद ही पता चलेगा कि नये राज्य की आमदनी के सम्बन्ध में क्या स्थिति होती है। मुझे आमदनी घटने का और खर्च बढ़ने का अन्देशा है पर मैं आशा करता हूँ कि हमारी स्थिति काम चलाऊ ठीक रहेगी। हम ओहदेदारों और कर्मचारियों को राहत पहुँचाने का खयाल रखेंगे लेकिन देखना यह होगा कि हमारी आर्थिक मर्यादा कहां तक हमारी सहायता करती है। हमें सब प्रकार के कानूनों का एकीकरण भी करना होगा। इस बीच में विभिन्न इकाइयों में शासनतंत्र का भार अमुक ओहदेदारों के सुपर्द किया गया है और थोड़े समय तक तो शासन का काम काज जिस प्रकार अब तक चलता आया है लगभग उसी प्रकार चलेगा। इस परिवर्तन काल में हमारे सब प्रयत्नों के बावजूद भी काम काज थोड़ा बहुत अस्तव्यस्त हुये बिना नहीं रहेगा, परन्तु मुझे आशा है कि एकीकरण के काम को हम जल्दी निपटा देंगे और थोड़े समय में ही सारी व्यवस्था ठीक कर लेगें।

हमें तत्काल ही अपने नये राज्य के साधनों की, संभावना की जांच करनी होगी। भोजन, वस्त्र तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हमें अपने उत्पादन की शक्ति को अधिक से अधिक बढ़ाना होगा। इसी सम्बन्ध में हम राज्य की पशु सम्पति बढ़ाने का प्रयत्न भी करेंगे। हमारे यहां जो सम्पति भूगर्भ में छिपी है उसकी खोज करनी होगी। हमें अपने जंगलों की रक्षा करनी होगी। हमें आवश्यकतानुसार अपने यहां की बिजली की शक्ति बढ़ानी होगी। सिंचाई के लिए छोटे और बड़े साधन जुटाने होंगे। हम यह भी देखेंगे कि बहुत बड़े पैमाने पर सिंचाई की कोई योजना सफल की जा सकती है क्या ? हमें अपने यातायात के साधनों को भी बढ़ाना होगा। रेल और सड़क के मार्गों में कुछ अधिक समय लग सकता है लेकिन हवाई मार्ग की सुविधा बढ़ाने का प्रयत्न हम जल्दी करना चाहेंगे। हम मोटर ट्रांसपोर्ट का विकास भी करेंगे, परन्तु इस व्यवसाय में एकाधिकार देने के हक में हम नहीं होंगे। रेडियो तथा टेलीफोन के जरिये से भी हमें राज्य के विभिन्न विभागों का आपसी सम्बन्ध स्थापित करना होगा। राहदारीकी आन्तरिक सीमाओं को तोड़कर तथा अन्य उपायों के द्वारा भी व्यापार की

तरक्की करेंगे। इसी प्रकार सम्वन्धित लोगों को सुविधाएं देकर भी अपने यहां आवश्यक उद्योगों और व्यवसायों की अच्छी शुरूआत करायेंगे। साथ ही हम गृह उद्योगों को हर प्रकार से प्रोत्साहन देंगे। सार यह है कि सर्वतोमुखी विकास का एक वड़ा क्षेत्र सामने खुला हुआ है जिसमें हमें अधिक से अधिक सफलता प्राप्त करनी है। संभव है विकास की सब योजनाओं के लिये नये राज्य के पास प्रर्याप्त पूंजी न हो। ऐसी हालत में जिन कामों को सरकार हाथ में लेगी उनके लिए आवश्यकतानुसार पूंजी उधार लेने में भी हमें कोई संकोच नहीं होगा।

एकीकरण और विकास की योजनाएं आगे वढ़ती रहेंगी। साथ ही साथ हमें सरकार के मामूली कर्त्तव्यों का पालन भी करना ही होगा। सबसे पहले हम यह चाहेंगे कि राजस्थान की विस्तृत सीमाओं में शान्ति और व्यवस्था कायम रहे। शान्ति और व्यवस्था के सम्वन्व में हम किसी प्रकार की ढिलाई नहीं आने देंगे और हमारा संकल्प है कि शान्ति और व्यवस्था में जो कोई भी विघ्न वाधा उपस्थित करने का साहस करेगा उसके साथ हम पूरी शक्ति से पेश आयेंगे। हमारे यहां कई सौ मील की वाहरी सीमा है जिसकी व्यवस्था भी हमें करनी होगी। अन्दरूनी और वाहरी दोनों ही प्रकार की रक्षा के काम में हम आवश्यकतानुसार भारत सरकार से भी परामर्श और सहायता लेते रहेंगे। मुझे वड़ी खुशी है कि फौजी मामलों में हमारे राजप्रमुख बहुत सिद्धहस्त हैं और मुझे भरोसा है कि उनकी फौजी प्रतिभा का पूरा लाभ इस नये राज्य को तथा तमाम देश को मिलेगा।

यह छिपी हुई वात नहीं है कि राजस्थान में साधन हीन जनता को कई प्रकार से त्रास होता रहा है। जो सवल हुआ उसने दुर्वल को सताया है। हमारा निश्चय है कि आइन्दा हम यह नहीं होने देंगे। राज्य के कोने कोने में हमें यह देखना होगा कि कोई किसी को सता तो नहीं रहा है। किसी को किसी से भी वेगार लेने का कोई हक नहीं हो सकता, न किसी को उचित भूमि कर के अलावा लागवाग लेने का हक है। रिश्वत लेना गुनाह माना गया है लेकिन इन गुनाहों को करने वालों की पकड़ होकर उन्हें सजा देना वड़ा काम होगा। चोर वाजारी ने भी जनता को वहुत सता रखा है। इन मामलों में जहां तक जनता का सम्वन्ध आता है वहां तक मैं जनता से भी अपील करूंगा कि वह ऐसे वुरे कामों में हिस्सा लेने का दोष अपने ऊपर न आने दे। जनता को अपनी मामूली शिकायतों के सम्वन्ध में भी वहुत त्रास होता है। इसमें जनता की जानकारी वढ़ाने की जरूरत है जिससे कोई उसे धोखा न दे सके। आधुनिक न्याय-प्रणाली की वजह से देर लगे तो उसमें तो स्पष्ट है कि सरकार निकट भविष्य में शायद ही कुछ कर सकती है लेकिन सामान्य शासन के सिलसिले में हम अवश्य कोशिश करेंगे कि जनता को ज्यादा परेशान न होना पड़े और उसे तुरन्त राहत और न्याय मिल जाय।

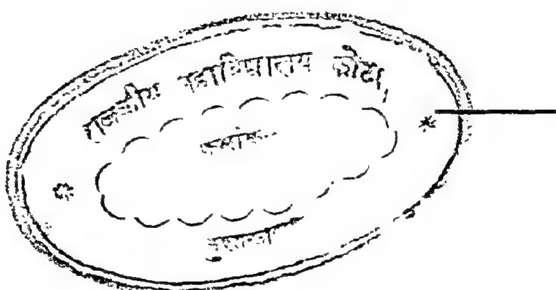
नई सरकार जनता में शिक्षा और ज्ञान के प्रचार का पूरा प्रयत्न करेगी। स्त्रियों और पिछड़ी हुई जातियों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जायेगा। प्रौढ़ शिक्षा का विस्तार भी करना होगा। अनिवार्य शिक्षा की योजना बनायी जायगी। प्राचीन संस्कृति और कला की रक्षा की ओर भी हम पूरा ध्यान देंगे। टेक्नीकल शिक्षा के साधनों को बढ़ाया जायगा और इस सम्बन्ध विदेशों में विद्यार्थियों को भेजकर लाभ उठाया जायगा। राजपूताना विश्वविद्यालय के कानून में आवश्यक संशोधन करके तथा अन्य उपायों के द्वारा भी उच्च शिक्षा को व्यवस्थित और समन्वित किया जायगा प्रारम्भिक अवस्था के शिक्षाक्रम में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन करने होंगे। जनता को बीमारी से बचाने के पूरे उपाय किये जायेंगे और बीमार पड़ने पर उसके लिये चिकित्सा के साधन उपलब्ध करने होंगे। गांवों में चिकित्सा के व्यापक प्रसार के लिये आयुर्वेद आदि से भी पूरी सहायता ली जायगी। चलते फिरते औषधालयों की योजना भी बनायी जायगी। विस्तार के साथ फैलने वाली बीमारियों को रोकने के लिए भी कुछ करना होगा। शिक्षा और स्वास्थ्य के साथ साथ जनता में स्वसंगठन और स्वावलम्बन की भावना लानी होगी। ग्राम-पंचायत आदि स्वायत्त शासन की संस्थाओं के आधार पर जनता को यह सिखाना होगा कि किस प्रकार सामूहिक तरीके से और अपने खुद के दिये हुए खर्चे से अपना प्रबन्ध अपने आप ही किया जा सकता है जिससे अपने बस के मामलों में तो दूसरों का मुंह न ताकना पड़े। स्वावलम्बन की दिशा में आगे बढ़ने लिए और ग्रामोन्नति के लिए सहयोग समितियों के संगठन की सहायता भी ली जायगी। जल-कष्ट-निवारण आदि के द्वारा भी जनता को राहत पहुँचायी जायगी। जनहितकारी कार्यो को आगे बढ़ाने में सार्वजनिक कार्यकर्ताओं का भी अधिक से अधिक सहयोग लिया जायगा।

नयी सरकार का कर्त्तव्य होगा कि वह अपनी सीमाओं में हकों की समानता लाने के लिए जल्दी से जल्दी और अधिक से अधिक प्रयत्न करे। आज इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि जागीरदारी प्रथा इस जमाने की चीज नहीं है। किसी जमाने में इस प्रथा की आवश्यकता समझी गयी थी और उपयोगिता मानी गयी थी परन्तु अब जमाना बदल गया है। इस बदले हुये जमाने में जागीरदारी प्रथा का समर्थन नहीं हो सकता। इसलिये जागीदारों से चाहा जायगा कि वे अपने सब अधिकार खुशी के साथ छोड़दें। जागीरदारी प्रथा के विषय में अन्तिम फैसला करने में समय लग सकता है परन्तु एक बात तो जल्द ही करनी पड़ेगी कि जागीरों की आमदनी में से एक माकूल हिस्सा सरकार को जनहित के कार्यो के लिए मिले, जिससे जागीरदारों को यह सन्तोष हो कि वे भी दूसरे लोगों के साथ साथ राष्ट्रनिर्माण में हाथ बंटा रहे हैं। चाहे जागीरदारी इलाका हो या खालसा इलाका हो, किसान को उसका हक मिलना ही चाहिएं। जहां कहीं नहीं हुआ हो वहां जमीन का बन्दोबस्त होकर ऐसे कानून बन जाने चाहिए जिनसे किसान की स्थिति सुरक्षित हो जाय। जहां तक मैं देखता हूँ, राजस्थान में बड़े पैमाने के उद्योग बहुत नहीं है लेकिन जहां कहीं हैं वहां मजदूरों के हितों का

संरक्षण भी किया जायगा। मैं आशा करता हूँ कि राजस्थान के धनपति अपने प्रान्त के विकास के लिये आगे आयेंगे। सरकार उन्हें इस अच्छे काम में सहायता देगी। लेकिन उनसे यह आशा भी करेगी कि वे एक ओर काम करने वाले लोगों के हितों का पूरा ध्यान रखें और दूसरी ओर सरकार को उसकी अर्थ व्यवस्था में भी सहायता पहुँचावें। राजस्थान सरकार का कर्त्तव्य होगा कि वह हरिजनों, आदिवासियों और दूसरे पिछड़े हुये लोगों के हितों का भी पूरा ध्यान रखे और उन सबको दूसरों के साथ समान स्तर पर लावे। शरणार्थियों को राहत पहुँचाने का तथा उनके पुनर्वास का काम पूरी शक्ति लगा कर करना होगा। नये राज्य में बिना किसी भेद भाव के सब को अपने विकास के लिये समान अवसर मिलेगा और किसी भी जाति या वर्ग के साथ किसी भी क्षेत्र में अनुकूल अथवा प्रतिकूल दिशा में पक्षपात नहीं किया जायगा।

मैं सोचता हूँ कि ऊपर के वक्तव्य में मैंने सभी आवश्यक बातों का थोड़ा बहुत दिग्दर्शन करा दिया है। मैं फिर दोहराना चाहता हूं कि हमारा काम बड़ा कठिन और जटिल होगा। उस काम में सफलता प्राप्त करके हमें अपनी जनता की योग्यता और क्षमता सिद्ध करनी होगी। हमें खुद को अपना पूरा भरोसा है लेकिन दूसरों को भरोसा तभी होगा तब वे हमें सफल होते हुए देख लेंगे। मैं बार बार महसूस करता हूँ कि हमारी देशभक्ति और योग्यता दोनों बड़ी कसौटी पर चढ़ी हुई हैं ऐसी कठिन परिस्थिति में मैं सबसे पहले कांग्रेसजनों से अपील करना चाहताहूँ कि वे मौके की जरूरत को जरा विशाल दृष्टिकोण से देखें और जिस प्रकार उन्होंने उस शुभ घड़ी को लाने के लिये कुर्बानी की है उसी प्रकार जो कुछ हमें मिला है उसे पक्का कायम करने में अपनी ताकत लगावें। परीक्षा के समय, समय आने पर, हमारे लिये यह न कहा जाय कि हम अपने बड़े बड़े दावों के मुकाबले में आखिर छोटे ही साबित हुए। राजा महाराजाओं से मेरा निवेदन है कि एकीकरण को स्वीकार करके उन्होंने देशभक्ति का परिचय दिया है—इसलिये जनता की निगाह में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी है। मैं जानता हूँ कि इस परिवर्तन से शासन की जिम्मेदारी जनता के पास चली गयी है, तब भी इससे राजा महाराजाओं की मान मर्यादा में किसी प्रकार से कमी नहीं आवेगी। जागीरदारों से मैं यह कहना चाहता हूँ कि उनके बड़ों ने गुजरे हुये जमाने में बड़े काम किये थे। वे भी आज इस बदलते हुये जमाने में बड़े काम करें। और उनके लिए सबसे बड़ा काम तो यही है कि बड़ों की कमायी हुई पूंजी का सहारा लेना वे छोड़ दें और जनसाधारण के बीच में आकर अपनी उस योग्यता को साबित करें जो इतिहास के प्रमाण से उन में निश्चित रूप से मानी जा सकती है। जागीरदार किसी को भी यह समझने का मौका न दें कि वे किन्हीं भी दूसरों की अपेक्षा देशभक्ति में अथवा स्वार्थत्याग में कम हैं बल्कि संसार में यह बतादें कि वे जमाने की जरूरत के अनुसार अपने आपको देश के लिए कुर्बान कर सकते हैं। बड़े और छोटे राजकर्मचारियों से मुझे कहना है कि इस बड़े मौके पर उनकी जिम्मेदारी भी बहुत बढ़ गयी है। मैं जानता हूँ कि एकीकरण के समय उनमें से कई

एक को दिक्कत और मुसीबत का सामना करना पड़ेगा लेकिन मैं उन्हें यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि राजस्थान सरकार सभी कर्मचारियों के हकों का समान भाव से ध्यान रखेगी। सरकार नीति और कार्यक्रम पेश कर सकती है लेकिन उसे असली रूप देने का भार कर्मचारियों पर ही होगा। मैं आशा करता हूँ कि कर्मचारी अपने बढ़े हुए भार को देशभक्ति और जनकल्याण की भावना के साथ उठायेंगे। आम जनता से मैं केवल यही कह सकता हूँ कि हमारे लिये यह संक्रमण काल है। इसमें थोड़ा सा समय और अवसर इस नयी सरकार की सेवा करने का मिला है। इसलिये आम जनता हमारी मजबूरियों का थोड़ा ध्यान रखें और हमसे जरूरत से ज्यादा आशा न करें। मेरा आग्रह है कि अब यह जमाना जातिवाद, वर्गवाद और सम्प्रदायवाद का नहीं है। हम अपने पाये हुए स्वराज्य को कायम रखना चाहते हैं इसलिये जनता को सब प्रकार की बातों को छोड़ कर सरकार को उसकी योजनाओं में अधिक से अधिक सहयोग देकर सफल बनाना चाहिए। हम सबको यह याद रखना चाहिये कि राजस्थान के इस एकीकरण में भारत सरकार का प्रमुख हाथ है और इस आयोजन को सफल बनाने में भी उनका हिस्सा होगा। मैं जानता हूँ कि भारत सरकार से इस नयी सरकार को हर प्रकार की सहायता मिलेगी। अन्त में मैं समाचारपत्रवालों से भी थोड़ा कह दूं। वह यही है कि वे सबसे पहले सचाई का पता लगाने का पूरा प्रयत्न करें और इस बात को भी सोच कर देखें कि किस सच्चाई को कब किस प्रकार प्रकट करना जनहित के लिये लाभदायक हो सकता है। आज के समय में कामों को बनाने बिगाड़ने में समाचार-पत्रों का बड़ा हिस्सा हो सकता है। मैं समाचार-पत्रवालों से निवेदन करूंगा कि वे इस बात का ध्यान रखें कि उनकी किसी कार्यवाही से काममें बिगाड़ न होकर सुधार हो।



भाषण, वक्तव्य



राजस्थान के प्रधान मन्त्री पं० हीरालाल शास्त्री के १९५०–५१ के बजट भाषण में से

१

राजपूताना की समस्त रियासतों का वर्तमान संयुक्त राजस्थान के रूप में एकीकरण कई एक घटनाओं के परिणामस्वरूप हुआ है। सबसे पहिले अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली का एकीकरण मत्स्य के नाम से हुआ। बाद में कोटा, बूंदी, झालावाड़, टोंक, किशनगढ़, शाहपुरा, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ की एक इकाई राजस्थान के नाम से बनायी गयी। इस दूसरी इकाई का काम शुरू नहीं होने पाया था कि उसमें उदयपुर भी शामिल हो गया। फिर पुराना राजस्थान, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर को शामिल करके संयुक्त राजस्थान बनाया गया, जिसमें कुछ समय बाद मत्स्य को और हाल में सिरोही के ६/७ वें हिस्से को शामिल कर दिया गया। अब भी अजमेर-मेरवाड़ा के सवाल का हल होना बाकी है। विभिन्न मूल इकाइयों की आर्थिक स्थिति में स्वभावतः विषमता थी। फिर एक बार मत्स्य के और बाद में पुराने राजस्थान के बनने से और आखिर में सब इकाइयों के शामिल होने से भी आर्थिक पेचीदगियां बढ़ गयीं। शासन तंत्र के एकीकरण का मुश्किल काम बहुत कुछ पूरा हो चुका है, तब भी यह मानना पड़ेगा कि एकीकरण की प्रक्रिया का अन्तिम दौर अभी तक बाकी है। इसलिये आर्थिक एकीकरण में भी किसी हद तक अपूर्णता समझनी होगी।

२. हमने ७ अप्रैल, १९४९ को कार्यभार सम्भाला। हमने देखा कि शामिल होने वाली इकाइयों के आर्थिक संवत् अलग-अलग हैं। संयुक्त राजस्थान के आर्थिक संवत् को अप्रैल से मार्च तक रखने का निश्चय किया गया और केन्द्रीय सरकार द्वारा माना हुआ हिसाब किताब का तरीका भी अपनाया गया। विभिन्न इकाइयों के जो बजट हमें मिले उनमें दिए हुए आंकड़ों का जोड़ लगाने से आमद १७,००,२३,००० और खर्च १८,६६,७५,००० पाया गया अर्थात् १,६६,५२,००० का घाटा हमें मिला, जिसमें

१,१७,५६,००० का घाटा अकेले जोधपुर के बजट में था। वास्तव में यह स्थिति घबड़ाहट पैदा करने वाली थी।

२

यह सन्तोष का विषय है कि अत्यन्त कठिन परिस्थितियों के बावजूद हमें अपनी पिछली बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति को ठीक करने में और आगे के लिए उसका एक अच्छा चित्र पेश करने में सफलता मिली है। हमारी मूलभूत नीति है कि हम स्वावलम्बन के सिद्धान्तों पर चलेंगे और केन्द्रीय सरकार को कम से कम कष्ट देने की इच्छा रखेंगे। हमारी नीति की दूसरी मूलभूत बात यह होगी कि हम १९५०–५१ में अपनी आमदनी को देखते हुए खर्च करेंगे अर्थात् हमारे अनुमान के अनुसार आमदनी आती हुई दिखायी नहीं देगी तो हम बजट में (खासकर पूंजी बजट में) रखे हुए किसी भी खर्च को कम कर सकते हैं। ऐसा करने से हमारे सुरक्षित कोषों में कमी होने का मौका नहीं आयेगा, और केन्द्रीय सरकार को किसी प्रकार की परेशानी नहीं होगी। साधारणतया सुरक्षित कोषों को तो सुरक्षित रखने का ही हमारा विचार है। एकीकरण का काम प्रायः समाप्त होकर शासनतंत्र का जो ढांचा बना है उसे सुव्यवस्थित और मजबूत बनाने में अभी तक और समय लगेगा। इतने लम्बे चौड़े क्षेत्र में शान्ति व व्यवस्था कायम रखने का भार भी हमारे ऊपर है। परन्तु इन आवश्यक कामों के साथ साथ हम राजस्थान के साधनों का विकास करने में और उनके द्वारा अपने यहां का उत्पादन बढ़ाने में भी अपनी शक्ति लगा सकेंगे। हमारे सामने सर्व तो भद्र विकास का विशाल क्षेत्र खुला हुआ है जिसके लिए हम राजस्थान की समस्त जनता के सहयोग की अपेक्षा रखते हैं। जागीरदारी प्रथा के सम्बन्ध मे केन्द्रीय सरकार का निर्णय हो जाने के बाद एक नयी परिस्थिति में हमें अपने यहां की अर्थ रचना को बनाने का अवसर मिलेगा। केन्द्रीय सरकार की सिफारिश के अनुसार हमारे यहां एक 'प्लानिंग कमेटी' भी बनेगी जो अपनी तजवीजें हमारे सामने पेश करेगी। जाहिर है कि इस कठिन और महान् कार्य के सफल होने में समय लगेगा। लेकिन हमें सफलता की पूरी आशा है। बहरहाल हम आगामी आर्थिक संवत में विश्वास और दृढ़ता के साथ प्रवेश कररहे हैं।

३

परिशिष्ट (१)

राजस्थान के विभिन्न मण्डलों के लिए १९५०–५१ के बजटों का गोशवारा—

१.	संस्कृत मण्डल	रु० २,००,०००
२,	लोक शिक्षण मण्डल	रु० २,००,०००

३.	मजदूर मण्डल	रु० २,००,०००
४.	आदिवासी मण्डल	रु० ४,००,०००
५.	शरणार्थी मण्डल	रु० ४,००,०००
६.	हरिजन मण्डल	रु० ४,००,०००
७.	किसान मण्डल	रु० ४,००,०००
८.	स्वायत्त शासन मण्डल	रु० २,००,०००
९.	ग्रामोद्योग मण्डल	रु० ४,००,०००
१०.	आयुर्वेद मण्डल	रु० २,००,०००
		रु० ३०,००,०००

८

परिशिष्ट (२)

एक वर्षीय योजना का विस्तृत विवरण

१. शिक्षा

५०० नई आरम्भिक पाठशालायें	६,४०,८५६
प्रौढ़ शिक्षा (५०० केन्द्र)	२,२४,२३५
५० प्रारम्भिक पाठशालाओं का माध्यमिक स्कूलों में परिवर्तन	१,१०,१५०
२० माध्यमिक स्कूलों का हाई स्कूलों में परिवर्तन	१,८२,८००
एक हाई स्कूलका इण्टर कालेज में परिवर्तन	१२,२००
५० छात्रावास	१,०३,२५९

२. चिकित्सा

२५ नई डिस्पेन्सरियां	२,१२,५००
५ चलती फिरती डिस्पेन्सरियां	१,००,०००
एण्टी टी० बी० स्कीम और बी० सी० जी० वेक्सीनेशन	१,३०,०००
जीप व ट्रक	८०,०००
एंण्टीस्केबीज ट्रीटमेण्ट	२५,०००
चलता फिरता अस्पताल	१,००,०००
एण्टी० टी० बी० क्लिनिक	१,००,०००
५० आयुर्वेदिक औषद्यालय	२,००,०००

	६ चलते फिरते औषधालय	९६,०००
	१०० वैद्यों को गांवों में जाकर बसने के फलस्वरूप दी जाने वाली सहायता	६०,०००
	देहातों में औषधि वितरण	४०,०००
३.	**सार्वजनिक स्वास्थ्य**	
	ग्राम–सफाई	१,००,०००
	एण्टीमलेरिया योजनायें	१,२७,०००
	स्कूल स्वास्थ्य सेवा	१,००,०००
	स्वास्थ्य शिक्षा	१,००,०००
	२५ शिशुपालन और प्रसूतिगृह	२,००,०००
	स्वास्थ्य प्रचार	४,०००
	भोजन संबंधी प्रचार	२५,०००
४.	**पशु चिकित्सा**	
	८५ पशु चिकित्सालय	५,००,०००
५.	**सार्वजनिक निर्माण विभाग**	
	५५० प्रारम्भिक पाठशालाओं की इमारतें व छात्रालय आदि	२,७५,०००
	कुओं की मरम्मत	१,९२,५००
	हवाई अड्डों की मरम्मत और नये स्ट्रिपों का निर्माण	१,३६,०००
	नये कुए	७,७५ ०००
	तालाब आदि १००	५,००,०००
	जल योजनायें	१९,६३,७००
	१०० मील लम्बी पक्की सड़कें	१६,००,०००
	२०० मील लम्बी कच्ची सड़कें	४,००,०००
	पुलिया आदि	२,८४,८००
		१,००,००,०००

भाषण

वनस्थली
२-१०-५०

हम लोग खाली गांधीजी का नाम लेते रहें या गांधीजी की जय बोलते रहें तो उससे कुछ बनने वाला नहीं है। मैं आप लोगों से गांधी पंचामृत का पान करने के लिये कहना चाहता हूँ। आप इस अमृत को ग्रहण करें और गांधीजी के सिद्धान्तों को अपने जीवन में उतार कर कृत कार्य हों—राजस्थान के मुख्यमंत्री पण्डित हीरालाल शास्त्री ने गांधी जयन्ती के अवसर पर झण्डाभिवादन के समय यहां पर कहा।

शास्त्रीजी ने गांधी पंचांमृत का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया।

१. अविचल ईश्वर भक्ति रखना और जीवन को प्रार्थनामय बनाना,
२. सब को प्यार करना और किसी का अनिष्ट चिन्तन नहीं करना,
३. सत्य का आग्रह रखना और आवश्यकता पड़ने पर सत्य के लिए अपने जीवन की बाजी लगाने को तैयार रहना,
४. जैसा मानना वैसा कहना जैसा कहना वैसा करना, और
५. शुद्ध एवं निःस्वार्थ भाव से जनता की सेवा करना।

आगे श्री शास्त्री जी ने बतलाया कि विचार अथवा वचन का उतना मूल्य नहीं है जितना आचरण का। और आचरण का मुख्य तत्व यह है कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में खुद आचरण करें। हमें यह सोचने की उतनी आवश्यकता नहीं है कि दूसरे करते हैं या नहीं अथवा करते है तो क्या करते हैं या हमारे आचरण के बारे में वे क्या सोचते हैं या कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने खुद के आचरण का ध्यान रखे तो बहुत कुछ ठीक हो सकता है। गांधी जी की सबसे बड़ी खूबी यही थी कि वे केवल कहते नहीं थे, करते भी थे और जो कुछ वे करते थे उसमें अपना पूरा अस्तित्व लगाते थे।

Statement of Pandit Hiralal Shastri.
Prime Minister, Rajasthan

August, 1950

My attention has been drawn to numerous tendentious and misleading reports published in a certain section of the Press and to the whispering campaign carried on by some interested persons in regard to the strained relations between the Rajputana Provincial Congress Committee and the Rajasthan Ministry. I feel, therefore, that I should explain the position once again so that there may be no misunderstanding in the minds of those who are interested in the welfare of Rajasthan.

It is no longer a secret that some top Congressmen of Rajputana suggested my name for the Premiership of Rajasthan to Sardar Vallabhbhai Patel who accepted the suggestion. The selection thus made was given the form of election by the Rajputana Provincial Congress Committee. I am grateful to Sardar Patel and the Provincial Congress Committee for the confidence they all placed in me. For my part, I can only say that from the very beginning up to the present moment I have not done anything for which the confidence resposed in me should be shaken. If some of my friends felt at any stage that I was not acting rightly, they should have, in fairness, brought the matter to my notice and they should have drawn the attention of Shri Gokulbhai Bhatt who was then President of the Rajputana Provincial Congress Committee and they should have, in any case, approached Sardar Patel before starting their move for getting signatures to a no-confidence motion against me. We know that all this was not done.

In response to the requisition for a meeting of the Rajputana Provincial Congress Committee Shri Gokulbhai Bhatt had declared, within the prescribed time limit, that he was calling a meeting of the Committee on June 5. Owing to certain difficulties regarding the necessary arrangements Shri Gokulbhai Bhatt had to fix June 12 which was a week later than the date previously indicated. As far as I know June 11 which was finally fixed was the date mutually agreed to by Shri Gokulbhai Bhatt and some of the requisitionists including their convenor. Even then the latter called a meeting of the P.C.C. on June 9 which, on account of its unconstitutional character was not attended by us. The meeting of the P.C.C. which we regard constitutional was held on June 11. But the newly elected President Shri Jainarain Vyas allowed this latter meeting to continue even after all the items on the agenda had been finalised under the Presidentship of the outgoing President Shri Gokulbhai Bhatt. In these circumstances the proceedings passing a vote of no-confidence against me either on Juue 9 or on June 1 cannot be accepted by us as valid. The representation submitted by us to the General Secretary of the A.I.C.C. in regard to the validity or otherwise of the proceedings and number of other irregularities has not yet been disposed of.

On the one hand Shri Jainarain Vyas forwarded the resolution of no-confidence passed on June 11 to me and other Ministers for necessary action. On the other hand, Sardar Vallabhbhai Patel wired back in reply to Shri Jainarain Vyas's telegram that I and my other colleagues would continue as Ministers till the election of a Legislature for Rajasthan. Now, it was not for me to question the competence of Sardar Patel or the Rajputana Provincial Congress Committee; but quite obviously the only practical course open to me was to continue. In reply to Shri Jainnarain Vyas's letter to me, I have stated that it was not a question between him and me; rather it was a question between Sardar Patel and the members of the Rajputana Provincial Congress Committee who stand for the motion of no-confidence against me. As Sardar Patel's verdict is apparently not acceptable to Shri Vyas and others, they have, I understand, approached the Congress Working Committee. I do not know if and when the issue will be considered by the Working Committee; nor am I in a position to forestall the Working Committee's decision which has, I think, to be awaited in any case. Meanwhile, Shri Jainarain Vyas has declared that if I did not resign by a certain date I would make myself liable for disciplinary

action. Shri Vyas would not stop at that, he has issued a circular asking Congress Committees and Congressmen to boycott the Rajasthan Ministers' receptions and parties.

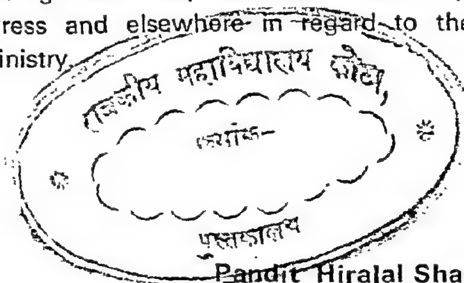
It will thus be seen that the situation is not so plain as it may appear on the surface. The entire circumstances are peculiar. Apart from this, however, one thing is certain and this is that if I am to remain a congressman (and there can be no doubt about it) I must abide by the decision of the Congress, whether I am a Minister or not. But the decision must come to me as an authoritative decision of that part of the Congress which according to the organisation's own judgement is competent to take it.

Without any desire to exaggerate, I have to say that the Rajasthan Ministry has been entrusted with a most difficult job at a most critical time. To the best of our ability we are getting into grips with the stupendous task of integration in this gigantic unit. Then, there are the problems of law and order, food production and refugee rehabilitation. We can only look forward to a tough fight not only against medievalism but also against sectarianism and caste-consciousness. Then, we are looking to our finances and formulating our constructive schemes for the development of the vast areas entrusted to our care in this interim period. In the midst of all this work we have to face a storm of unjustifiable opposition, not only from those opposed to the Congress, but also from congressmen themselves, who should have given all the cooperation and help that they could have to make the new Congress Ministry in Rajasthan successful. This may be a strange irony of fate. But I do hope that we will have the necessary strength and self-confidence to continue our work with unflinching devotion to duty and unshakable loyalty to the Congress organisation and its ideals. I never had any intention to flout the organisation to which I have the honour to belong, nor had I the least desire to question the legitimate competence of any of its constituent bodies. But I am sorry to notice that misrepresentation of all varieties is being deliberately indulged in by people who should have certainly behaved better at a time when the Congress organization is faced with so many internal and external problems.

I have never been able to understand whom, all that has happened in Rajasthan circles during the last three months, is going to help. It is certainly not going to help, the Congress. I have often

tried to find out from others and from within my own self what I could have done to avert this unseemly demostration of our weaknesses.

If it were not open to me to have refused to accept this post of duty, I feel it is still not open to me to forsake it. But I am perfectly clear in my own mind that I have not the least idea of sticking to it at any cost. I trust this plain statement of facts by me will clear the misunderstanding which may have been created by all that has been said in the Press and elsewhere in regard to the position of the Rajasthan Ministry.



—Pandit Hiralal Shastri's Statement

5-1-51

I have submitted the resignation of the Rajasthan Ministry to His Highness the Rajpramukh today. On this occasion, I express my profound feelings of gratitude to the Government of India, H. H. the Rajpramukh, the services, public workers and the people in general for the kind help and cooperation which the outgoing Ministry received from them all. Admittedly, the task with which the Ministry was entrusted was exceptionally difficult and delicate. My colleagues and I have the realisation that our work has not been free from shortcomings, all the same we are satisfied that during our tenure of office we did our duty well—honestly, diligently and firmly.

As regards my future plans naturally it will be some time before I am able to make them. In any event, I propose to stick to my resolve to serve the country to the best of my ability. For Rajasthan I will certainly pray "God be with our infant State."

भाषण

वनस्थली
५-१-५१

"मैं व्यक्तिगत रीति से देखता हूं तो आज मेरा चित्त बहुत हल्का हो गया है लेकिन देश राजस्थान और कांग्रेस की दृष्टि से देखता हूं तो अपने आपको बहुत चिन्ता की अवस्था में पाता हूं।" ये शब्द राजस्थान के मुख्यमन्त्री पद से त्याग पत्र देकर यहां आने पर एक सभा में पंडित हीरालाल शास्त्री ने कहे।

श्री शास्त्रीजी ने कहा कि लोग समझते हैं कि मंत्री बनने वाले को मान मिलता है लेकिन मैंने कभी यह महसूस नहीं किया कि मंत्रि-मंडल में पद स्वीकार करने से मुझे कोई नया मान मिल गया हो। मंत्री बनने से सत्ता भी मिलती है लेकिन मुझे तो सत्ता का कभी भान ही नहीं हुआ। मैंने कभी अपने कर्तव्य पालन के अलावा सत्ता का उपयोग नहीं किया। रहने के लिए मुझे एक सरकारी मकान मिला था जिसमें रहकर मैंने कभी सुख का अनुभव नहीं किया और मेरा दिल बराबर खेजड़े के रास्ते के लिये टूटता रहा। मत्रि-पद का कुछ मासिक रुपया भी मेरे पास आया लेकिन मैंने अपने लिये उसका उपयोग नहीं किया। मैंने अपना गुजर वैसे ही चलाया जैसे पहले चलाता था और जैसे अब चलाऊंगा। अलबत्ता सुभीता मुझे हुआ और वह यह कि बैठने के लिये और यात्रा के लिये सवारी का प्रबन्ध अच्छा हो गया, जैसा पहले नहीं था। मैंने अपने रहन-सहन का, खाने-पीने आदि का वहीं पहले जैसा तरीका रखा। उसी सेवा की भावना से काम किया। उसी प्रकार कड़ा परिश्रम किया। इतने बड़े और कठिन काम को करने के लिये मैंने अपने स्वास्थ्य तक की बाजी लगा दी। फिर भी कुछ लोगों ने समझा कि मैं मंत्री बनने के बाद पहलेवाला आदमी नहीं रहा और मैंने सुना है कि कल-परसों से ही वैसी आलोचना करने वाले लोगों ने ही यह कहना शुरू कर दिया कि मंत्रिमंडल के बारे में यह जो कुछ होने जा रहा है, वह सब ठीक नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि जो आदमी मन्त्री बनने से पहले अच्छा था वह मन्त्री बनने पर खराब हो गया और वही

मन्त्री पद से हटते ही अच्छा होने लग गया। इसलिए मैं सोचता हूँ कि मन्त्री पद से छुटकारा पाकर अब मैं खुद कुछ नफे में रहूंगा। दूसरे मेरे सिर पर बड़ा भारी झंझट था। झंझट और झगड़े का मुकाबला करने में मैंने अपनी ताकत नहीं लगाई लेकिन झगड़े को झेलने में आखिर मेरी कुछ न कुछ ताकत लगी ही सही। उस हद तक मेरे काम में कमी रही। लेकिन आज वह सारा झंझट और झगड़ा मेरे सिर से उतर गया और मैं हल्का हो गया।

भाषण को जारी रखते हुए श्री शास्त्रीजी ने कहा—लेकिन ये सब बातें तो व्यक्तिगत हुईं। मुझ जैसे किसी भी व्यक्ति के खुद के हानि लाभ की या आराम तकलीफ की आखिर क्या कीमत है। हमारे सामने सवाल तो देश का है और हमारे नए प्रान्त का है। और कांग्रेसजन होने के नाते मेरे सामने कांग्रेस का सवाल भी है। कांग्रेस का खण्डन करने वालों का मैं डटकर मुकाबला करता रहा हूं। मैं कांग्रेस के विरोधियों से पूछता हूं कि यदि कांग्रेसजन बुरे हो गये तो हमें आप बताओ कि अच्छे कौन हैं? लेकिन यह तो सवाल का जवाब हुआ। इस जवाब से कांग्रेस का काम कब चला? मैं ईमानदारी से महसूस करता हूं कि कांग्रेस संस्था की जड़ में कीड़ा लग गया है। वह कीड़ा उसे जरूर खा जायगा। यदि अब भी हम लोग नहीं चेतें। यह कड़वी बात है लेकिन सभी जनता पूछती है कि कांग्रेसजनों ने सत्ता का उपयोग किस प्रकार से किया? कांग्रेसजनों का आपस का व्यवहार कैसा है? सत्ता हमारे सामने लक्ष्य के रूप में आगई मालूम होती है। इसी कारण एक कांग्रेस-जन दूसरे को बुरा बताता है। और यहां तक कि गिराने की कोशिश भी करता है। दूसरी ओर कांग्रेस-जन आपस में मिलकर एक दूसरे के दोषों को छिपा लेना भी चाहते हैं इस प्रकार हमारा नैतिक आधार समाप्त हो रहा है। और हमारा संगठन बल क्षीण हो रहा है। ऐसी हालत में कांग्रेस के सामने क्या भविष्य है?

श्री शास्त्रीजी ने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। भारत की आन्तरिक अवस्था बहुत ठीक नहीं है, अकेली खाद्य स्थिति ही जानकार लोगों के दिल में घबराहट पैदा कर रही है। कांग्रेस के मुकाबले के लिये नये नये दल खड़े हो रहे हैं। और राजस्थान की हालत तो बहुत ही नाजुक है। उस नाजुक हालत को सम्भालने के लिये सब कांग्रेसजनों की सम्मिलित शक्ति की जरूरत है। पिछले २१ महीनों में वह सम्मिलित शक्ति कांग्रेस को नहीं मिली। हमारे मंत्रिमंडल ने जो कुछ किया वह इन विकट परिस्थितियों में किया। हम अपने काम की कमियों को भी जानते हैं। तो हमसे जो कुछ बना उससे हमको सन्तोष भी है। हमने अपना काम ईमानदारी से किया, परिश्रम से किया, मजबूती से किया। हमने कभी किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया लेकिन किसी की धौंस में आकर के भी हमने कुछ नहीं किया।

अन्त में शास्त्रीजी ने कहा कि अभी आज तो उस नाटक का अन्त हो गया है और मैं सोचता हूँ कि कल से मुझे क्या करना है। यदि मैं अपनी जान बचाना चाहूँ तो मेरे पास सेवा कार्य की कमी नहीं। इसी स्थान पर जमा हुआ अच्छी से अच्छी सेवा मैं कर सकता हूं। इस सेवा कार्य का विस्तार भी किया जा सकता है। परन्तु मेरे सामने सवाल यह है कि देश और प्रान्त की वर्तमान अवस्था में मेरा प्रथम कर्त्तव्य कौन सा है? यदि कांग्रेस में एकता नहीं आयी तो देश और प्रान्त का काम विगड़ जायगा। एकता लाने के लिये मैं क्या कर सकता हूं। यदि मैं एकता नहीं ला सकूं तो मुझे क्या करना पड़े। कांग्रेस इसी रास्ते पर चलती रहे तब फिर मैं क्या करूं? यह सब सवाल मुझको सता रहे हैं और मैं एक प्रकार की व्याकुलता का अनुभव कर रहा हूं।

अपने मंत्रिमंडल की आखिरी बैठक में भाग लेकर श्री शास्त्रीजी २ बजे के करीब यहां पहुंचे तो वनस्थली संस्था और ग्राम ने हर्षध्वनि के साथ उनका स्वागत किया। उल्लास इस बात का था कि अपनी खोई हुई वस्तु जैसे वनस्थली को मिल गई हो।

श्री प्रेमनारायण माथुर कुछ देर से पहुंचे। उन्होंने अपने भाषण में अपने अनुभवों का दिग्दर्शन कराया और देश की स्थिति का विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण किया। श्री माथुर ने यह भी बताया कि महकमा खास से विदा होते समय कैसे स्नेह भरे दृश्य उन्हें देखने को मिले। उन्होंने बड़े बड़े अफसरों को रोते हुए देखा। अपने आप तमाम अमला इकट्ठा हो गया। सारे वातावरण में उदासी थी और खेद था। श्री माथुर ने कहा कि अपने आपसे प्रकट होने वाले ऐसे स्नेह का बड़ा भारी मूल्य है। और इस प्रकार अपने साथी सहायकों का स्नेह पाकर हमने सब कुछ पा लिया।

वनस्थली
मई, १६५२

आज का अक्षय तृतीया का दिन मेरे जीवन का बहुत बड़ा दिन है। १७-१८ वर्ष की उम्र में मेरे चित्त में जो संकल्प हुआ चाहता था वह संकल्प आज से २२ साल पहले आज के दिन इस गांव में चरितार्थ हुआ। वह संकल्प यह था कि अपने खुद के लिए किसी प्रकार की कामना न करना, लालसा न करना और जगत के कल्याण के लिए अपने जीवन को लगाना। मैं ऐसा जानता हूँ कि २२ साल पहले किए हुए संकल्प को निभाने का सच्चा से सच्चा और पूरा से पूरा प्रयत्न मैंने किया है। कहां तक उसमें मुझे सफलता मिली होगी यह कहना मेरा काम नहीं है। मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूं या कहना चाहूंगा कि जीवन भर मुझे इसी संकल्प को भली भांति निभाने का प्रयत्न करते रहना है और इसमें किसी प्रकार की कमी को नहीं आने देना है।

सेवा संकल्प को निभाने के प्रकार कई हो सकते हैं। उसमें एक प्रकार राजनीति का भी समझा गया है जिसमें मैंने हिस्सा लिया। लेकिन मैं यह बता दूं कि राजनीति का वह प्रकार किसी भी समय मेरी प्रकृति के बिल्कुल अनुकूल नहीं था। इसका मतलब यह नहीं है कि उस प्रकार को मैंने छोड़ दिया है या आगे जाकर छोड़ देने का मैंने कोई निश्चय कर लिया है। सिर्फ इतना ही मैं जानता हूँ कि अपना जो स्वभाव रहा है और उसमें वर्तमान राजनीति के चालू तरीके मेरे स्वभाव के विपरीत पड़ते हैं। खैर, मैंने भी उस रास्ते को अपनाया सही और न सिर्फ अपनाया बल्कि मैंने यह भी देखा कि उस रास्ते पर चलने के समय में भी उन सहज विकारों का शिकार किसी हद तक हुआ जो विकार इस रास्ते पर चलने वाले के चित्त में हो जाया करते हैं। इस निगाह में जब मैं देखता हूं तो मुझे लगता है कि उस रास्ते पर जो चलने से सेवा हुई होगी या न हुई होगी लेकिन मेरा निज का नुकसान बहुत हो गया। जीवन में जिन चीजों को एकत्र किया है उन चीजों में बहुत कोशिश करने के बाद भी कुछ न कुछ घाटा जरूर पड़ा है। अब मुझे उस रास्ते पर दुबारा चलना हो या न चलना हो तब भी कम से कम

इतना ध्यान तो रखना ही है कि वैसे विकार कितने भी आये हों वे सब नष्ट हो जायें और दुबारा उन विकारों के पैदा होने का मौका न मिले।

अभी आपने 'जिनगानी को झरणो' नामक गाना सुना। इसका मतलब यह है कि जीवन का एक प्रवाह चलता रहता है अपनी खुशी से। किसी का कोई ठिकाना नहीं। कैसा चलता है, कब तक चलता है कौन जाने, लेकिन चलता है। अभी आप जब यहां से उठेंगे उससे पहले आप पुरानी 'प्रलय प्रतीक्षा' को भी सुनेंगे। बड़े आश्चर्य की बात है कि देश में इतना सब कुछ हो जाने के बाद भी जिस प्रकार उन दिनों प्रलय की प्रतीक्षा थी आज भी हमें उसी दिशा में प्रलय की प्रतीक्षा करते ही रहना है। जब तक प्रलय अर्थात् बड़ी क्रान्ति न होगी तब तक मुझे नहीं लगता है कि हमारे देश में कल्याण का मार्ग खुल जायगा। स्वराज्य के बाद जिस चाल से हम चलते आये हैं वह ठीक नहीं है। इसीलिए हमको पहले की भांति अब भी प्रलय की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

बस इतना ही मुझे कहना है और मैं अपने सेवा संकल्प को, जो आज से २२ साल पहले किया था, फिर दोहराता हूं, फिर मजबूत करता हूं, फिर पक्का करता हूं। और आप लोगों में से किसी के दिल में भी संकल्प हुआ हो तो आप भी मजबूत करें। अब कोई होने वाला हो तो अब करलें उस संकल्प को और उसको निभाने का प्राणपण से प्रयत्न करें।

जयपुर
१२–६–५४

"आज देश भर में निराशा, क्षोभ व अविश्वास का वातावरण फैला हुआ हैं। संस्थाओं अथवा कार्यकर्ताओं पर से जनता का विश्वास उठ चुका हैं। न केवल राजकर्मचारियों में बल्कि जिम्मेदार समझे जाने वाले कार्यकर्ताओं तक में भ्रष्टाचार बढ़ गया है। चोरी, डकैतियों में वृद्धि हुई है, मध्यम वर्ग में बेकारी मुंह बाये खड़ी हुई है और आज शिक्षा प्रणाली दूषित होने के बारे में बार बार कहा जाने पर भी कुछ नहीं किया जा रहा है। इन समस्याओं का कोई समाधान इस वातावरण में नहीं हो रहा है।" ये शब्द आज शाम को ८ बजे माणकचौक चौपड़ पर श्री चिरंजीवलाल मिश्रा की अध्यक्षता में हुई आम सभा में राजस्थान के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री व नवजीवन कुटीर के संस्थापक पंडित हीरालाल शास्त्री ने अपने भाषण में कहे।

सभा में सभी श्रेणियों व वर्गों के लगभग १० हजार व्यक्ति उपस्थित थे। पिछले कुछ वर्षों में जो आम सभाएं शहर में हुई हैं, उनमें उपस्थिति, और श्रोताओं के मनयोग की दृष्टि से यह सभा सबसे अच्छी थी। इसमें काफी मात्रा में विधानसभाई सदस्य, शहर के विभिन्न दलों के कार्यकर्ता, प्रतिष्ठित नागरिक व अन्य बुद्धिजीवी भी उपस्थित थे।

श्री शास्त्री ने अपना भाषण प्रारम्भ करते हुए कहा कि मैं अपने पिछले काम का कोई दावा नहीं करता न आगे के लिए ही कोई दावा है। मैं किसी प्रकार के टंटे में पड़ना भी नहीं चाहता था। लेकिन चारों ओर से पुकार आने के कारण पहले की तरह काम करना जरूरी हो गया।

आपने कहा कि हमारे देश में स्वराज्य, क्रान्ति के द्वारा नहीं, समझौते के द्वारा आ गया है। इसलिये हमारा सारा का सारा ढांचा व तौर तरीके पुराने ही हैं। क्रांति के जरिये जो आमूलचूल परिवर्तन आने चाहिये वे नहीं आ पाये। आज भी जिस

मंथर गति से काम हो रहा है उसमें इन बुराइयों के जल्दी समाप्त होने के कोई आसार नहीं दिखाई देते ।

जनता से निराशा त्यागने की अपील करते हुए श्री शास्त्री ने कहा कि हमें दृढ़ संकल्प से मनोयोगपूर्वक संगठित होकर कुछ न कुछ काम करना चाहिये । इसमें सफलता अवश्य मिलेगी । हमें तो आज दृढ़ संकल्प से मौजूदा भय व चिन्ताजनक, दिल को मुरझाने वाले व आत्मविश्वास समाप्त होने के वातावरण में पुनः अलख जगाना है । जीवन में आत्मविश्वास का विशेष महत्व है, हमें तो संकल्प के साथ काम करने पर जुट जाना चाहिये ।

आपने कहा कि भ्रष्टाचार पहले भी था किन्तु नये किस्म का संक्रामक भ्रष्टाचार विष की भांति, प्लेग की भांति बहुत बढ़ गया है । छोटी तनख्वाह पाने वाला यदि कोई रिश्वत ले ले तो उसको समझा जा सकता है, किन्तु बड़े बड़े लोग आज जिस प्रकार से रिश्वत लेते हैं उन्हें कोई नहीं पकड़ सकता । कार्यकर्त्ताओं में व्याप्त भ्रष्टाचार से हृदय में बड़ी वेदना होती है ।

आपने कहा कि ब्राह्मणों व क्षत्रियों का युग अब समाप्त हो गया है और आज पूंजीपतियों का युग है । आज तो पूंजीवाले का—काफी पैसे वाले का ही चारों ओर बोलबाला है । सर्वत्र उनका प्रभुत्व है, इसी कारण जनतन्त्र होते हुए भी हमारे देश में चुनावों में धनहीन हिस्सा नहीं ले सकते । एक चुनाव के लिए हजारों, लाखों रुपया चाहिये और कोई भी धनहीन उतना रुपया खर्च नहीं कर सकता किन्तु अब यह युग समाप्त होने वाला है और हाथ से मेहनत करने वालों का नया युग आने वाला है । इसमें बुद्धिजीवियों का भी सहयोग रहेगा । इसमें अधिक समय नहीं लगेगा । यह स्वराज्य की तरह हमारी कल्पना के पहिले ही आ जायगा । उसे कोई चाहे या न चाहे, कांग्रेस चाहे या न चाहे क्रान्ति आकर रहेगी । उसके लिये हमें तैयारी करनी है ।

नवजीवन कुटीर के त्रिविध कार्यक्रम की चर्चा करते हुये आपने कहा कि मेरा कार्यक्रम तीन प्रकार का रहेगा:—

१. प्रचारात्मक अथवा शिक्षणात्मक
२. रचनात्मक या सेवात्मक और
६. आन्दोलनात्मक या संघर्षात्मक ।

मैं चाहता हूँ कि जनता को पत्र पत्रिकाओं, पैम्पलेटों व पुस्तकों द्वारा देश विदेश के बारे में अधिक जानकारी कराई जाय, गरीबों की सेवा की जाय और जनता के

अभाव अभियोग अधिकारियों तक पहुंचाये जायें और उसका कुछ नतीजा न निकले तो पुरजोर कार्यवाही की जाये। शास्त्रीजी ने अन्त में बताया कि अपने यहां नवजीवन कुटीर की स्थापना करनी है। स्थान तो कार्यकी निगाह से बदलना होगा। बड़े पैमाने पर काम करना है तो वनस्थली उसका केन्द्र होने के लिए उपयुक्त नहीं है। राष्ट्र के जीवन में नवजीवनकुटीर क्रान्तिवाहक स्थान बनना चाहिए। यहां पर देश में बड़ा परिवर्तन चाहने वालों का अड्डा, हैडक्वार्टर, अखाड़ा होना चाहिए। नवजीवनकुटीर का खर्च जरूर ही मांग कर लाना पड़ेगा, पर वह हजारों लोगों से आना चाहिए। मैं खुद तो आज की बात ज्यादा देखा करता हूं। आज सामने है, कल आयगा तो कल भी देख लेंगे। फिर भी जितनी सी कल्पना कल के बारे में होती है वह यही है कि 'चलते चलो, बढ़ते चलो जवानो और बढ़ो, क्रान्ति की राह पर।'

जयपुर जिला राजनीतिक सम्मेलन

जयपुर
२४–६–५५

आप विश्वास करें या न करें, लेकिन आज यहां खड़ा होकर बोलने के लिए तैयार होने में मुझ बड़ा जोर पड़ रहा है। और मैं अपने आपको मुश्किल में फंसे हुए आदमी के रूप में देख रहा हूँ। मैं रात भर चलकर यहां आया था, दिन भर गोरख धंधे में लगा रहा फिर रात भर चलकर दिल्ली पहुचूंगा। इसके अलावा मुझे लग रहा है कि ऐसी सभा में जिस में कोरे कांग्रेसजन ही हों ६॥ वर्ष बाद बोल रहा हूँ। मुझे शंका होती है कि मेरे बोलने का अभ्यास नष्ट तो नहीं हो गया होगा। वह अभ्यास कम तो नहीं हो गया होगा। जिस मौके पर हम लोग यहां पर मिल रहे हैं वह एक कठिन मौका है, एक पेचीदा मौका है। यह तो बड़ी आसान बात हो सकती हैं कि कुछ तेज तर्रार बातें कह कर मैं जोश में हो जाऊं और आपको जोश दिला दूं। पर मैं उसमें कोई फायदा नहीं देखता। यह भी आसान बात है कि मैं अपने गुण का बखान करने लग जाऊं और आपको भी प्रेरणा दू कि आप अपने गुणों का बखान करें और दूसरों के अवगुण बखानें।

सचमुच देखने की बात तो यह है कि आज वस्तुस्थिति क्या है? वह जरूरी भी है। जैसे लोग शरीर का चेक अप (cheek-up) करते हैं। बीमारी की शंका होने पर लोग शरीर की जांच करते हैं। समृद्ध लोग वैसे भी यह जरूरी समझते हैं कि समय-समय पर वे अपनी जांच करालें। वैसे ही हमें अपनी जांच करानी है। पुराने जमाने में मैं सुना करता था कि इस जांघ को उघाड़ो तो लाज आए और उसे उघाड़ो तो लाज आए। इसलिए हमें संतुलन से बात करनी चाहिए, मैं अपना यह जिम्मा महसूस करता हूँ।

अध्यक्ष महोदय ने कहा—मैं अभी जाने वाला हूं। जाने के पहले मैं कुछ काम की बात कह जाना चाहता हूँ। ताकि मेरे मन में यह अरमान न रहे कि मैंने अमुक बात नहीं कही। मैंने आपको पहले ही बताने की कोशिश की कि यह मामला जरा टेढ़ा है। बैठे बैठे मन में विचार चल रहा था। १६२० का पुराना जमाना याद आ रहा था, वह समय सेठीजी का था–पथिक जी का था–रामनारायण जी का था–हरिभाऊ जी का

था। चाहें तो उसे जयनारायणजी का कह दें–बाबा नरसिंहदास जी का कह दें। उस जमाने में एक शान थी हमारे राजस्थान की। जब हिन्दुस्तान में गांधी जी ने सत्याग्रह नहीं शुरू किया था राजस्थान में बिजोलिया सत्याग्रह हुआ था–यह खयाल होते ही दिल में एक धड़कन शुरू होती है। हम देशी राज्यों के रहने वाले लोग थे। अंग्रेजों से संघर्ष के जमाने में यहां हमारे लिए करने को कुछ विशेष न था। फिर भी अपने लोगों ने बाहर जाकर जितना बड़ा हिस्सा लिया।

फिर हरिपुरा का जमाना आया। देशी राज्यों को अपने बल पर खड़ा होने को कहा गया। जिससे यहां की रियासतों में प्रजामडल और प्रजा-परिषदें बनी। जयपुर में प्रजामंडल बना, जोधपुर में लोक परिषद्, मेवाड़, बीकानेर, कोटा, बूंदी, अलवर, भरतपुर सब में प्रजामण्डल और प्रजापरिषदें बनीं। किशनगढ़, डूंगरपुर छोटी नीमराणा, लावा, दांता, ईडर, विजयनगर, पालनपुर, गोकुलभाई वाली सिरोही में चारों ओर अपने २ नमूने की जागृति थी। लेकिन वह राजाओं का जमाना था उन राजाओं के साथ हमारे दिमाग भी उसी सांचे में ढले थे। व्यास जी जोधपुर के थे, मैं ढूंढाड़ का था और मेवाडाधिपति की तो बात ही क्या? कहीं राज से झगड़े हुए तो जाना पड़े। डूंगरपुर के महारावल को डांट बतानी पड़ी। कभी अलवर में जायं और कभी भरतपुर में सिर फोड़ें। कभी ईडर, विजयनगर पहुंचे। कभी तो ऐसे स्थान पर जाएं कि पता ही न लगे कि कहां पहुंच गये। एक बार मैं और गोकुलभाई एक भील के घर में घुस गए और वहां रोटी खाकर आए। जैसा यह हमारी रियासतों का नक्शा था वैसा ही हमारे दिमागों का नक्शा था। यह बात अलग है कि नौकूटी मारवाड़ वाले नौ कूंट में फैले और चार कूंट वाले अपने चार कूट में।

फिर अंग्रेजों के जाने का जमाना आ गया। आंख झपकते ही जैसे सब कुछ हो गया। लगता है रात को हम सोये और सुबह आंख खुलते ही हमें नक्शा बदला हुआ मिला। हम शान तो बहुत बघारते हैं लेकिन सच्ची बात तो यह है कि हमारा सौदा बहुत सस्ता हो गया। हां, कुछ पिटाई कुटाई हुई। श्मशान में भी कुछ लोग पहुंचें हैं, जिन्हें हम याद कर सकते हैं पर हमें चीज बहुत बहुत बड़ी मिली। असलियत यही है कि उसके लायक प्रयास हमने नहीं किया था। ऐसा करते करते यह राजस्थान बनने का समय आ गया—जगह जगह मंत्रिमंडल बने–जोधपुर में, जयपुर में। कहीं पर एक ही मन्त्री बन गया। शाहपुरा में सबसे पहले हमारे प्रधानमन्त्री बने। इनके बारे में क्या कहा जाय? कैसे तो ये मन्त्रिमण्डल बने और कहां के मन्त्री? यह बहुत बड़ी गलती हुई–इतने मन्त्रियों व छुटभैया मन्त्रियों को लेकर राजस्थान बना। वैसे तो कोई बात नहीं क्योंकि आज भी हम सुनते हैं कि बंगाल में तीसों मन्त्री हैं। राजस्थान में भी रह जाते तो क्या बुरा था। चाहे यह बात मेरे चुभ जाए, चाहे और किसी के चुभ जाए। माफ कीजिएगा–हम यहां आज अपनी गलती देखना चाहते हैं, जो बीमारी है उसे पकड़ना चाहते हैं।

हम में से कुछ बड़े माने जाते हैं। हमारे सबसे बड़े जो हैं वर्मा जी हैं, वे हाजिर नहीं हैं। मैं उनकी मूर्ति की कल्पना करके उसे व्यास जी व गोकुल भाई की बगल में बैठाकर त्रिमूर्ति को नमस्कार कर लेता हूं। हमने तय किया जिसे बाहर रहना हो रहे, जिसे भीतर (मन्त्रिमण्डल में) जाना हो चला जाए। आपसी बातचीत और समझौते से सारी बात हो, लेकिन चुनाव न हो। यह चुनाव वह लड्डू है जिसे खाओ तो पछताओ, न खाओ तो पछताओ। वह मुकदमा है यह जिससे मुदई मुद्दायलह दोनों ही हारते हैं। यही वह समय था जब हमारे दिमाग दुरुस्त नहीं हुए। मैं ज्यादा तो क्या बताऊं यह बात सबको याद है। (आवाज "हम नहीं जानते बताइये") सिवाय उनके जिनकी पैदायश तब न हुई थी,बाद में हुई है वे नहीं जानते होंगे। जो हमारी प्रसव पीड़ा के समय हाजिर न थे, जिन्होंने नये राजस्थान के बनने के समय थाली की आवाज नहीं सुनी थी। वे नहीं जानते होंगे। यह जो आपके सामने खड़ा है वह अपने आप में बड़ा लज्जित सा है। उसकी हालत वैसी है जिसे कि दो चार भाई मिलकर पीटें और वह इधर उधर अपने बाप दादा को पुकारता फिरे। कहीं से कोई न सुने तो वह या तो डंडा उठाये, दो एक को पीटे या घर जाकर बैठ रहे। यह मैं कोई कहानी नहीं सुना रहा हूँ। यही तथ्य है जो मैं आपके सामने पेश कर रहा हूँ। हम अपने आपको देखने बैठे हैं। इसलिए एक दम सफाई हो जानी चाहिये। दस्त लगाकर एकदम मैदा साफ हो जाय।

अभी जब मैं वापस आया तो मालूम पड़ा कि वही अडंगे फिर से जल्दी ही शुरू हो गये थे। बीज उगने के पहले ही उसमें विषफल लगने लगे थे। दूसरा, तीसरा, चोथा, पांचवा, छठा आया। यह सब मैं किसी को नाराज करने के लिए नहीं कह रहा हूँ, न खुश करने के लिए ही कहता हूँ और न मन बहलाव के लिए। यह सब कुछ मैं अपने मन का दुख प्रकट करने के लिए और आपको दुखी बनाने के लिए कह रहा हूँ।

यह सर्दी की शुरूआत हमारे लिए भारी पड़ती है। सर्दी शुरू होते ही हमें सांस चढ़ना शुरू हो जाता है। मैं बहुत दिनों तक अखबार नहीं पढ़ता था। जिस बात में पड़ना नहीं उसे जानना भी क्यों? एक दिन चक्कर में आ गया-मुझ से पूछा गया तुम कहां पड़े हो, तुमसे तो हमें काम लेना है। क्या ख्याल है तुम्हारा? मैं क्या कहता—कहा जो आपका ख्याल है। और जिस घर को छोड़ भागे थे उसमें फिर आ गये। और जब यहां आ गये तो लगता है कि जिसे छोड़ भागे थे उससे डरावना हाल अब है। उस समय कम से कम अपने पास भुजबल तो था, अपनी ताकत थी, श्रद्धा थी, आज तो यह हालत है कि हिदायत दें तो माने कौन? सलाह भी नहीं दे सकते। दिल्ली में जो विराजमान हैं—वे बहुत बड़े हैं। पर वे कुछ करना चाहते हैं, कर नहीं पाते हैं। वे डरते हैं कि कहीं कुछ ऐसा वैसा हो जाय!

आज जो यह सम्मेलन हो रहा है यह भी अच्छी बात है--इसमें देश की बातों की चर्चा हो जायेगी। दिल के गुबार निकल जायेंगे। आवाज कानों में पड़ेगी तो हलचल भी शुरू होगी। इधर हलचल शुरू होगी तो उधर भी हो जायेगी यद्यपि वह अच्छी बात नहीं है। उससे तो बचना ही चाहिये। राजस्थान की भलाई के लिए हमें अपनी ताकत को लगाना होगा। आज जो ताकत वह पूरी नहीं पड़ती है। वह हमारे पास कुल मिलाकर भी कम है। प्रश्न जन शक्ति का है। यदि हम टक्कर ही लेते रहें, बारह और आठ की लड़ाई होती रहे तो हम ४ ही बचते हैं और मिलकर २० होते हैं। अस्तु। नतीजा तो सब शक्तिओं के मिलने से निकलेगा। हममें से कोई भी दो चार मिलकर एक को परास्त कर दें तो इससे कोई नतीजा नहीं निकलेगा। हमने परास्त होकर देख लिया। चाहें तो और परास्त होकर देख लेंगे। उसका नतीजा बहुत भोग लिया इसलिए अब परास्त करने की भावना नहीं रखनी चाहिये। मिलने की भावना पैदा करनी चाहिये सवाल है कि मिलें कैसे? मुझ से कोई पूछता है तुम भाग कैसे गये? भागता नहीं तो क्या करता? खंभ ठोककर खड़ा भी हो जाता तो क्या होता? नतीजा वही आता। इसलिए मिलने की ही बात सोची। व्यास जी ने सुनायी दलबन्दी, गुटबन्दी, जातिवाद, सम्प्रदाय आदि की बात। यत्र तत्र दोष बढ़ गया है। जितने हम यहां बैठे हैं उनमें दोष नहीं है ऐसा नहीं मानना चाहिए। कहीं भी दोष हो वह हमारा ही है। हमारा यह शरीर है इसके किसी भी अंग में दोष हुआ तो भी शरीर तो एक है। एक अंग के खराब होने से पूरा शरीर ही रोगी हो जाता है। आंख, नाक, कान सब अलग अलग होते हुए भी एक शरीर के ही अंग हैं। एक के रोगी होने पर दूसरे का स्वस्थ्य बना रहना सम्भव नहीं है। मौके की बात होती है उसे देखना होता है। जिस दिन जरूरत हो एक अंग कट जाय, दो कट जाय, शरीर भी कटे तो कट जाय। पर ऐसी स्थिति तो पंजाब में भी नहीं है। और तीसरी जगह भी नहीं है। पोल सभी जगह है पर और लोग चालाक हैं। भीतर लड़खड़ाकर भी बाहर वे एक दीखते हैं। हमही बेवकूफ हैं कि आपस में लड़े और लड़ लड़ाकर अलग हो गये। लड़ लड़कर बर्बाद हो गये। जो हाल घर में हैं उससे बुरा बाहर दिखायें तो गड़बड़ रहता है। यह बड़ी खुशी की बात है कि हम घर में बैठे बात कर रहे हैं। यदि यह बहुत बड़ा मजमा होता। यहां की बात बाहर जाती तो कोई लाभ नहीं होता। हां उससे एक बात तो होती कि हम अपनी बीमारी समझ लेते। हम यह भी सोच सकते है कि हमारी गड़बड़ औरों को भी मालूम हो जाय तो क्या बात है। प्रक्षालन की दृष्टि से तो यह ठीक है, पर एक हद तक परदा भी रखना पड़ता है। अब सवाल पैदा होता है कि जिसके पास ताकत आ गई तो वह उसे भींचता है। कोशिश करता है कि हाथ में आई हुई चीज थैली में से खिसक न जाय। दूसरा उसे ले लेने की कोशिश करता है। जिसके पास है वह धेला पैसा भी दूसरों को नहीं देना चाहता। बांटने के लिए स्वराज्य के पहले कुछ न था। अब है तो बात दिखाई पड़ने लग गयी। जरूरत है कि जिसके पास अधिकार है उसमें दूरदर्शिता आवे।

सबसे पहली बात है कि जिसको लीडर बोलते हैं वह लीडर ही हो। उसके लिए सब लोग कहें कि मेरा पंच यही है। पर वह स्थिति ठीक नहीं जिसमें आधा कहे कुछ और बाकी कहे कुछ। जब ७।८ एक बात कहे और १।८ की उससे भिन्न राय हो तो अच्छी बात तो यही है कि वह भी उसी में अपने को शामिल कर दे। आज अपनी यही हालत है। हम जनतन्त्र की बात करते हैं पर जनतन्त्र के यह मानी नहीं कि १८ मिल गया तो उसे लेकर भाग चलें। उसे रखो पर बांट लो– धेला पैसा जो भी पांती आए। केवल गवर्नमेण्ट का ही सवाल नहीं है। उसके पुछल्ले भी तो हैं। छोटे बड़े सबसे मैं कहता हूँ कि वह मौका ही न आने दो। सोचो तो जरा कि तुम कांग्रेस को कहां ले जा रहे हो। अपने साथ-साथ कांग्रेस का भी तो ख्याल करो। आपके जीतने से ही क्या हो सकता है यदि कांग्रेस न जीती। आपकी जीतने की प्रतिष्ठा के साथ ही कांग्रेस की भी प्रतिष्ठा बढ़नी चाहिए। हारने वालों की मनोवृति होती है कि जितना मिल जाय अच्छा। मैं नहीं कहता कि यहां सब वैसा ही है। बाहर भी अच्छे हैं यहां भी हो सकते हैं। पर वह कहे तुम बुरे और तुम कहो वे बुरे—इस प्रकार एक दूसरे को जहां बुरा बताना शुरू करते हैं वहीं बुराई पैदा होती है। इसे टालना होगा। यह लड़ाई एक दूसरे को बुरा बताने की बंद करनी होगी। क्यों न अपने बड़ों को कह दो कि हम लड़ाई नहीं करते। हम लोगों के पास वोट के लिये जाते हैं। बदले में उससे वादे करते हैं। पर यह सोचना नहीं चाहिए कि यह किसी पर कृपा है, कृपा का यह सवाल नहीं है। आज हम जिस वोट को माँगते हैं वही कल जाकर सोंट हो जाता हैं। वोट ही जीतने वाले के लिये सोंट हो जाता है। दूसरे पक्ष वाले को इससे रंज नहीं आना चाहिए। उसे महसूस न हो, कोई रंज न हो। उसे सोचना चाहिए कि कांग्रेस की स्थिति सब तरह से सुदृढ़ हो।

कहीं छपा हुआ था कि मेरा भाषण राजनैतिक स्थिति पर होगा। मेरी राय में इस समय हमारे सामने दो चीजें हैं—

(१) जहां कहीं भागे हुए लोग हों वे आजायं।
(२) जो शक्ति बंटी हुई है उसे मिलाने की कोशिश करनी चाहिए।

जहां हम न कर सकें वहां दिल्ली वाले कर सकते हैं। उनके पास ताकत है। जबरदस्ती करके भी एक बार मिला दिया जाय तो मिलने का स्वाद आजाय। मैंने ४०, ४५ मिनट बोलने की बात कही थी। जितनी बात मुझे कहनी थी कह दी। अब तो एकता की बात करनी चाहिए। काम की ताकत होनी चाहिए—काम तो बहुत पड़ा है पर उसके साथ ही अपने घर को भी संभालना होगा। किसी ने कहा:—साहब, राजस्थान में दिमागों का एकीकरण नहीं हुआ। मैंने कहा—साहब यही तो बात है। शारीरिक एकीकरण हुआ है दिमाग का नहीं। रियासतें तो मिल गई पर लोगों के दिमागों का एकीकरण नहीं होने पाया। हम इसीलिए दुख पाते हैं प्रांतीयता के भाव से।

यदि हमें पुकार करना है तो कौन रोकता है करो। अपनी ताकत बढ़ानी है तो खूब बढ़ाओ, कौन रोकता है। काम करना है तो करो, कौन रोकता है। हमारी ताकत कम नहीं है। राजाओं के सामने हम कम थे पर उनका मुकावला कर लिया। सरकार के पास शक्ति वहुत है यह सब कुछ होते हुए हम जो करना चाहें कर सकते हैं। हम रचनात्मक काम इस तरह से करें कि अगले चुनावों में उसका लाभ मिल सके—यदि हम इस दृष्टि से कार्य करते हैं तो वह भी वड़ी रद्दी चीज है। मैं अब समाप्त करता हूं इस प्रार्थना के साथ—हम अपनी कमी दूर करें—काम करें।.जव तक हम अपनी कमी दूर नहीं करेंगे, कांग्रेस की बुराई दूर नहीं होगी। अपनी बुराई यदि हम नहीं देखेंगे तो कांग्रेस को मजबूत नहीं बना सकेंगे। बुढ़िया को आधी जली लालटेन नहीं दिखती है तो पूरी तलाश करके वह क्या करेगी? हमने आंखे मींच रखी हैं। खोलते ही नही। वरना शंकर की एक आंख खुलते ही बुराई भलाई सब भस्म हो गयी तो हम आंख खोलकर अपनी कमियों को क्यों न दूर करें? जनतंत्र कैसे हो इसे हल करना उनके हाथ में है जिनकी ओर दुनिया आशा से देख रही है। आज हमारी कांग्रेस का सिर नीचा है। इस जलसे में इतने इकट्ठे हो गए इस पर गर्व न करें।

आखिर में मजाक की बात कहकर समाप्त करता हूं। फिर मौका मिलेगा तो आज का सीखा काम आएगा। बात यह है कि सारी बुराई भलाई ठीक हो जायगी यदि हम याद रखें ..मेरी दादी कहा करती थी :—

वाट चूंट कर खाणो।
वैकुंठ में जाणो॥



मालपुरा सर्वोदय सम्मेलन

७–२–६५

आप लोग जो काम कर रहें हैं--सभी तरह का—वह अपने आप में बहुत अच्छा है। एक साधु अपने स्थान पर बैठा बैठा राम नाम जपता रहे तो तो वह भी ऊंचा ही काम माना जाएगा। जैन दिगम्बर साधु जो एक दम नगे रहते हैं उनका काम व तपस्या भी मुझे अच्छी लगती है और कभी–कभी मेरी भी इच्छा होती है कि क्यों न सारे कपड़े फेंक–फांक दिये जायं। जीवन में कभी वह दिन आएगा इसमें शंका है पर इतना जरूर लगता हैं कि वे लोग जो काम कर रहे हैं वह भी जगत के कल्याण का ही काम कर रहे हैं।

भूखे को भोजन देना, तेलघाणी चलाना, गाय पालना, हरिजन सेवा, शराब बन्दी यह सब काम बहुत कीमती हैं, उनका अपना महत्व है। सब करने लायक हैं, करने चाहिएं और सब को मिलकर करने चाहिएं, इसमें मुझे कोई शका नहीं। विनोबाजी ने जितने प्रकार के दान निकाले वे सब उत्तम से उत्तम हैं।

यह सब तो ठीक, पर जब समाज की रचना बदलने का, 'क्रान्ति' का शब्द आप बोलते हैं तो वह मुझे कुछ जंचता नहीं। इस सबमें मुझे कहीं क्रान्ति लगती नहीं। अब मैं वनस्थली में बहुत बढ़िया पाठशाला चला लूं तो अच्छा काम तो वह हो सकता है, पर मैं यह कहूं कि यह समाज परिवर्तन का, क्रान्ति का काम कर रहा हूँ तो वह तो उससे नहीं बन सकता। मुझे इन बातों का-और क्रान्ति का कोई बहुत सम्बन्ध नजर नहीं आता।

क्रांन्ति की, समाज परिवर्तन की बात करोगे तो नक्शा थोड़ा भिन्न बनेगा। पक्षातीत की बात भी मुझे जंचती नहीं। आप कितने ही पक्षों से अलग रहें पर क्या अलग रहकर स्वयं एक पक्ष नहीं बन जाते? मुझे स्पष्ट लगता है कि जो राज्याश्रित हो वह क्रान्तिकारी नहीं हो सकता। गांधी-निधि या दूसरी जगह से रुपया पाकर सर्वोदय

वाले कुछ क्रान्ति करेंगे वह कदापि सम्भव नहीं। मैं तो कभी—कभी कहा करता हूँ कि किसी संस्था को डुबोना हो तो उसका निधि से सम्बन्ध जोड़ दो। पुण्य के काम के लिये आप चाहे जहां से पैसा ले, सरकार से लें या सेठ साहूकार से मुझे एतराज नहीं, पर क्रान्ति की आय के स्रोत कुछ भिन्न ही होंगे।

आज राज्य दिनों दिन इतना हावी होता जा रहा है, समाज के सब लोगों के दैनन्दिन के जीवन में कि जीना भी मुश्किल हो गया है। थाना, पुलिस अदालत, कोर्ट कचहरी के अलावा पाठशाला, ग्राम पंचायत आदि सभी पर उसका एकछत्र अधिकार हो गया है। अब राज्य की इस जकड़बन्दी के खिलाफ क्रान्ति की आवाज आप बुलंद करें तो वह राज्याश्रय से तो होगा नहीं। जब राज्याश्रय से न हो तो प्रश्न यह है कि आपकी मेरी रोटी का खर्च कहां से चले ? आखिर कार्यकर्ता कम से कम जरूरत रखे तब भी वह कैसे पूरी हो, उसका जवाब आपके पास नहीं मिलता। आप कैसे कार्यकर्ता रखेंगे ? यदि परिवार वाला होगा तो उसको उस हिसाब से निर्वाह व्यय करना चाहिए या फिर फक्कड़ ही रखने होंगे।

हम प्रचलित समाज व्यवस्था को बदलने की बात करते हैं तो राज्य के खिलाफ दूर तक जाना होगा। तब आपको स्पष्ट कहना होगा कि हमारा इस कलह पैदा करने वाली पंचायतराज व्यवस्था से कोई सरोकार नहीं। जो भी बात आपकी क्रान्ति के विरुद्ध जाती है वहां कोई सहकार आप नहीं रख सकते। क्रान्ति करना चाहेंगे तो इन सब बातों पर सोचना ही होगा, नहीं तो रोज कहते जाओ 'सच बोलो दिल मत दुखाओ' पर जीवन में कितना उतरेगा ? जीवन की रोजमर्रा की घटनाओं में आपका इतना झूठा व्यवहार चलता है तो वैसा कैसे चलेगा ?

एक भाई ने जब राजनीति छोड़ आश्रम बनाकर बैठने की सोची तो मैंने कहा कि तुम जो करने जा रहे हो वह प्रयोग तो वनस्थली में मैं कर चुका हूं। और जितनी कड़ी तपस्या मैंने की है उतनी तो तुम जिन्दगी भर नहीं कर सकोगे और फिर तुम एक काम में तो अपने को डालते नहीं, बीसों काम ले रक्खे हैं इस तरह कुछ बनने वाला नहीं। फिर तुम्हारा काम तो बहुत बड़ा है, उसमें कितनी शक्ति लगने की आवश्यकता है, कितना जौहर चाहिए। वह तब तक नहीं बनेगा जब तक कि सब छोड़कर उसी को लेकर नहीं बैठोगे। जो न बैठना चाहें वे न बैठें, पर जो बैठना चाहें वे पूरे सर्वस्व को समर्पण करके बैठें तभी कुछ मजा आ सकता है।

वनस्थली
३०–११–६९

३० नवम्बर, १९६९ को प्रातःकाल श्री शान्तासदन में 'संकल्पपाठ' किया गया। यह पाठ प्रतिवर्ष विद्यापीठ के स्थापना दिवस पर किया जाता है। लेकिन विद्यापीठ के अध्यक्ष पंडित हीरालाल शास्त्री की अनुपस्थिति के कारण उस दिन यह पाठ नहीं किया जा सका। इस अवसर पर बोलते हुए अध्यक्ष ने कहा :—

आश्विन शुक्ला १ सं० २०२६ को मैं बाहर था, इसलिए आज मेरी उपस्थिति में यह कार्यक्रम रखा गया है। संयोग से आज मेरा जन्मदिन है। आश्विन शुक्ला १ को जबलपुर में मेरे सामने श्रोता नहीं थे। इसलिए मैंने थोड़ा सा लिख डाला था सो इस प्रकार है :—

ब्रह्माण्ड के आदि अन्त का पता नहीं, इसके ओर छोर का पता नहीं। जड़ की, चेतन की उत्पत्ति कहां से हुई, इसका पता नहीं। मैं वर्तमान जीवित अवस्था में न रहूँ तो किसकी क्या हानि हो जाय, इसका पता नहीं। इस सारे रहस्य को क्या किसी ने कभी सचमुच जान होगा ? या जिसने लगाया केवल अनुमान ही लगाया ? जिसने सचमुच जान लिया हो ऐसा कोई क्या कभी मिल सकता हैं ? और वह मिल जाए तो क्या वह किसी दूसरे को सचमुच बता सकता है ? जिसकी जैसी श्रद्धा हो वैसा ही मानलें तो इसमें क्या विशेषता होगी ?

मुझे लगता है कि जो कुछ है सो मनुष्य के भीतर ही है और वह है उसकी आन्तरिक श्रद्धा। मनुष्य को सुख चाहिए और सुख शान्ति से मिल सकता है। इसलिए हर सूरत में मनुष्य को शान्ति चाहिए, शाश्वत शान्ति चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को अपनी मति के अनुसार भले बुरे की पहिचान अवश्य होती है। बस मनुष्य भला करे, बुरे से दूर रहे। ऐसा करने से आत्म संतोष होगा, शान्ति मिलेगी।

इस महाप्रश्न का उत्तर क्या कभी किसी को मालूम हुआ है ? न आदि है जिसका, न अन्त है जिसका, चेतन है जो, अपनी निज की अनुभूति ही जिसका एकमात्र प्रमाण है :—

"दिक्कालाद्यनवच्छिन्नान्तचिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ।।"

अपना लिखा हुआ यह जो कुछ मैंने सुनाया है उसमें मेरा विचार मंथन है सो चलता रहता है । इसका यह मतलब नहीं है कि मैं किसी प्रकार के सन्देह में रहता हूं । हमारे सामने एक दीपक टिमटिमा रहा है । उसी की ओर हम लोग बढ़ रहे हैं। दीपक तक हमारा पहुंचना हो जायगा तो उसके आगे हमें दूसरा प्रकाश दिखायी देने लग जायगा और हम बढ़ते चले जायेंगे ।

अक्षय तृतीया सं० १९८६ को जो चिमटा वनस्थली में गाड़ा गया था वह अडिग है । वह आज तक हिला नहीं, आगे भी हिलेगा नहीं । उस चिमटे के उखड़ जाने का तो सवाल ही नहीं है । हमें जो अच्छा लगता है वही हम निष्ठा के साथ करते हैं । यही शक्ति हमारे पास है । आज जो कुछ हम कर सकते हैं सो हम करते हैं । कल की चिन्ता हमें नहीं सताती, क्योंकि कल कभी आता नहीं है !

अपनी वनस्थली में भेद के लिए स्थान नहीं है । जो भेद प्रकृति जन्य है उसे कोई मिटा नहीं सकता । सूर्य का प्रकाश सब पर एक सा पड़ता है। पर वह सोने पर पड़ता है तो सोना चमकता है, मिट्टी के ढेले पर पड़ता है तो वह नहीं चमकता । इस भेद का सूर्य क्या करे ।

हम सब लोग वनस्थली को अपनी मानें । इसे हमें अपना सब कुछ दे डालना है । हमारी लेने की इच्छा नहीं होनी चाहिए । इसी भावना से हमको शक्ति मिलती है, इसी में वनस्थली का कल्याण है ।

वनस्थली
३०-११-६६

३० नवम्बर, १६६६ को पंडित जवाहरलाल नेहरू की मूर्ति का अनावरण तीन छोटी छोटी बच्चियों के हाथों से हुआ। इस अवसर पर बोलते हुए विद्यापीठ के अध्यक्ष पंडित हीरालाल शास्त्री ने कहा "महात्मा गांधी का आशीर्वाद वनस्थली को विपुल मात्रा में मिला था। पंडित नेहरू के हाथ से भी वनस्थली का बहुत सा काम हुआ था। इसीलिए दोनों मूर्तियां यहां पर लगायी गयी हैं। दोनों महापुरुषों की याद कम से कम इस स्थूल रूप में तो हमें बनाए ही रखना है। मूर्ति एक प्रतीक है, इसके द्वारा सगुण उपासना होती है, ऐसा हम समझ सकते हैं।

"एक म्हाको फूल प्यारो" इत्यादि शब्दों का व्यापक प्रचार हुआ। उससे भी ज्यादा प्रचार जवाहरलाल जी के इस वाक्य से हुआ "यदि मैं लड़की होता तो अपनी शिक्षा के लिए वनस्थली जाता।" बापूजी ने हमें एक बार यह लिख भेजा—"वनस्थली मेरे दिल में बसी है।" बापूजी के इस वाक्य में हमारे लिए कितना बड़ा आशीर्वाद भरा है।

वनस्थली
२७-१-७०

"हमें बहुत खुशी है कि गांधी जी के प्यारे शागिर्द व साथी यहां आये हैं। हम यहां पर गांधीजी की बतायी कुछ बातों को कम-ज्यादा अमल में लाने की कोशिश करते हैं।" खान अब्दुल गफ्फार खाँ का स्वागत करते हुये पंडित हीरालाल शास्त्री ने कहा।

देश की हालत के बारे में बोलते हुए शास्त्रीजी ने दुःख प्रकट किया कि चारों ओर स्वार्थवाद फैला हुआ दिखायी देता है। गांधीजी के बताये हुए सचाई और प्रेम के मार्ग पर बहुत से प्रभावशाली देशवासी नहीं चल रहे हैं। वे अपने को बनाने में और दूसरों को बिगाड़ने के धंधे में लगे हुए हैं। दूसरी ओर सर्वोदय और भूदान के नाम पर जो काम हो रहा हैं, वह देश में बड़ा परिवर्तन जल्दी लाने की दृष्टि से मुझे प्रभावशाली नहीं लगता है।

शास्त्रीजी ने अन्त में कहा कि ऐसे हालात में समय मिलते ही मैं अपनी साफ बातें लेकर जनता के सामने उपस्थित होने का विचार रखता हूँ।

खान साहब ने अपना भाषण शुरू करते हुए कहा—"हिन्दुस्तान की जनता का प्यार और गांधी जन्म शताब्दी मुझे खींच लायी। मैंने सोचा, मैं हिन्दुस्तान जाऊं, वहां के लोगों का हाल देखूं। पिछले चार महीनों से मैं हिन्दुस्तान में घूम रहा हूं। सभी प्रकार के लोगों से मिल रहा हूं। मैंने देखा हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में धनवान अधिक धनी और गरीब और अधिक गरीब होते चले जा रहे हैं। लोग मुझ से कहते हैं—हम रचनात्मक काम में लगे हुए हैं। लेकिन रचनात्मक काम के नाम पर जो हो रहा है इससे देश का उद्धार नहीं होगा। हमने गांधी को भुला दिया है। गांधी के रास्ते को छोड़ दिया है। हिन्दुस्तान से जैसे बौद्धमत को निकाल दिया गया, लगता है उसी तरह गांधीवाद को भी निकाल दिया गया। इंसान निहायत खुदगर्ज हो गया है। वह अपने ही स्वार्थ की बात सोचता है। अपने पड़ौसी, समाज और मुल्क का उसे ध्यान भी नहीं है। मैं कहता हू नेता को कभी

हुकूमत में नहीं जाना चाहिए। यहां के नेता हकूमत में शरीक हो गये अब हर कोशिश उनकी उससे चिपके रहने की है। इसी से देश में इतनी गिरावट आयी। यह सब देखकर मुझे निहायत मायूसी हुई। यहां वनस्थली में आकर जब मैंने श्री हीरालाल शास्त्री का काम देखा। उनके खयालात सुने। मुझे बड़ी खुशी हुई। मुझे इससे नयी उम्मीद बनी। वह काम के आदमी हैं। जो शख्स कुछ नहीं से एक शहर बसा सकता है वह क्या नहीं कर सकता? यहां के काम को देखकर मुझे बड़ी तसल्ली हुई। यहां आप जो कर रहे हैं उसके लिए किसी आशीर्वाद की जरूरत नहीं होगी—काम खुद आशीर्वाद है। शास्त्रीजी जैसा आदमी जनता के पास जाकर सही सही बातें समझा सकता है। हुकूमत में बिठाने वाला गरीब नागरिक है पर उसका कोई ध्यान नहीं। उन्हें यह समझाने की जरूरत है कि तुम्हारी हुकूमत में तुम्हारा यह हाल क्यों। यह शास्त्रीजी कर सकते हैं।

५

लेख आदि

भूमिका

प्रकाशित, अप्रकाशित लेख मेरे पास बहुत निकले हैं। उनमें से बहुत थोड़े से इस प्रकाशन में दिये जा सके हैं। बाद में सुविधा होगी तो "लेखमाला" (एक या अधिक) अलग से प्रकाशित की जा सकती है।

लेखों के अलावा मेरी कलम से लिखी गयी रिपोर्टों के और मेरे निकाले हुए कुछ बुलेटिनों के अंश भी छांटे गये हैं यथा—जीवन कुटीर की, राजस्थान संघ की, विद्यापीठ की, जयपुर राज्य प्रजा मंडल की और मातृ मंदिर विद्यालय, जोबनेर की रिपोर्टों के अंश उद्धृत किये गये हैं और खासतौर से अखिल भारत देशी राज्य लोक परिषद् के जमाने के कुछ बुलेटिनों के अंश दिये गये हैं।

हीरालाल शास्त्री

विद्यार्थी काल की समाप्ति के आसपास दिमाग में उठने वाले कतिपय प्रश्न

१. यह संसार क्या है ? कहां से आया है ? और कहां जा रहा है ?

२. ईश्वर भाव का क्या स्वरूप है ? किसी सच्चिदानन्द शक्ति में विश्वास रहने से एक शांति विशेष रहती है, इसीलिए तो ईश्वरभाव की कल्पना नहीं हो गयी है ? शांति और समभाव को प्राप्त करने का क्या कोई और उपाय नहीं है ? यदि मिल जाए तो फिर ईश्वर भाव को कल्पना मात्र क्यों नहीं समझते ? अथवा अपने व्यक्तिगत स्वरूप के लिये कोई पृथक ईश्वर है ?

३. सुख का स्वरूप क्या है ? सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

४. सभ्यता किसे कहते हैं ? प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यताओं में भौतिक भेद क्या है ? फिर दोनों में कौन श्रेय है ?

५. भारतवर्ष के राजनैतिक आंदोलन का परिणाम सम्भवतः क्या होगा ? एक व्यक्ति विशेष के पीछे एक जाति लग जाए—इसमें क्या भूल है और यह कहां तक अच्छा है ? नेतृत्व की योग्यता कैसे आ जाती है ?

६. भारत के सोचने वालों के लिए वर्ण व्यवस्था क्या कितनी विकट समस्या है ? स्त्री समाज के विषय में कौनसा सिद्धांत न्याय्य और शुभ है ? स्त्री शिक्षा का स्वरूप कैसा होना चाहिए ?

७. मनुष्य के ईश्वरदत्त अधिकार क्या हैं ? वे समाज में कैसे छीन लिये गये हैं ? इन सब झगड़ों का अन्त कैसे हो सकता है ?

८. शिक्षा पद्धति का आदर्श क्या है ? किसी देश की उन्नति में सार्वजनिक शिक्षा का कैसा स्थान है ? भारत में सार्वजनिक शिक्षा का प्रसार कैसे होगा ?

९. असाधारणों में असाधारणता क्या है ? प्रतिभा और परिश्रम क्या कर सकते हैं ? मनुष्यों के भविष्यत को कौन निश्चित करता है ? बनाने वाला अपने आप को कहां तक बना सकता है ?

१०. विषय वासना कहां तक हेय है ? मनुष्य की उन्नति (उन्नति का स्वरूप क्या है ?) में विषय वासना कहां तक बाधक है ? विषय वासना के ऊपर कैसे निकला जा सकता है ?

धर्मविजय नाटक

(अप्रकाशित "धर्मविजय" नाटक में नायक सत्यमूर्ति अपनी पत्नी से कहता है।)

दिसम्बर, १६२२

प्राणप्रिये ! इसमें आश्चर्य क्या है? यह तो सिद्ध बात है कि सम्पत्ति सुख का हेतु नहीं है। सम्पत्ति से सुख नहीं हो सकता है। मनुष्य अब तक इसी भूल में पड़ा हुआ है कि हमारी इच्छाओं को तृप्त करने की जितनी अधिक सामग्री हमारे पास हो, उतने ही हम अधिक सुखी हैं। पर, प्रिये ! यह विचार भ्रमात्मक है। हमारी इच्छाएं अनन्त प्रकार की और संख्या में भी अनन्त हैं। उनकी तृप्ति होना असम्भव है। चलती हुई आंधी में, प्रबल अग्नि का घड़ों के पानी से बुझना सम्भव हो तो सांसारिक सामग्री से इच्छाओं की तृप्ति होना सम्भव हो। हम अपनी इन इच्छाओं की जितनी चापलूसी करते हैं, जितना प्रयत्न हम इनकी शांति के लिये करते हैं, उतनी ही ये अधिक होती हैं। हमने एक इच्छा को पूर्ण किया, इस विचार से कि फिर तो हम सुखी हो जायेंगे, पर कहां उस एक इच्छा के सेजैं-तैसे तृप्त होते ही नवीन इच्छाओं का नूतन आविर्भाव हो जाता है। उनको तृप्त करने का प्रयत्न किया, वे तृप्त हुई भी सही, पर उनके बाद और नई इच्छाएं पैदा हो जाती हैं। मनुष्य की सब इच्छाएं तृप्त नहीं हो सकतीं। क्योंकि इच्छाएं अनन्त हैं। तृष्णा की कोई सीमा नहीं हैं। कहा है "तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णयाः।" यह कितनी प्रबल सदुक्ति है। अब भी सभ्यता की डींग मारने वाले असंख्य मनुष्य ऐसे हैं, जिनका यह

विश्वास है कि जीवन की सामग्री, हमारी इच्छाओं को तृप्त करने की सामग्री पर हमारा सुखी होना निर्भर है। उनके विचार से मनुष्य दुःखी इसीलिए है कि उसके पास वह जो चाहता है, वह नहीं है। पर जब चाहे पदार्थ मिल जाने से भी सन्तोष नहीं होता है, तब इन विशिष्ट सभ्य पुरुषों के भ्रम स्पष्ट देख पड़ते हैं। इन बुद्धि के सागरों ने आकाश पाताल तौल लिये हैं। प्राकृतिक शक्तियों को इन्होंने अपना दास बना लिया है। हम सुना करते है कि रावण के यहां मरुत् देव तो झाड़ू लगाया करते थे, इन्द्र देव जल भरा करते थे, अग्नि देव रसोई बनाया करते थे और सम्भवतः चन्द्र और सूर्य उसके रोशनी-घर के फर्राश होंगे। इन विराट बातों का अर्थ हम जैसे चाहें करें, पर आजकल साक्षात् सिद्ध है कि प्रकृति देवी की ये महती शक्तियां बहुत कुछ नाथ डली हुई हैं और पालतू करली गई हैं। भाप और बिजली की शक्तियां उनकी सदा आदेशवर्तिनी क्रीत-दासियां हैं। इनको हाथों से काम नहीं करना पड़ता है, पैरों से चलना नहीं पड़ता है। ये कहां के कहां बैठे बात कर सकते हैं। ये पृथ्वी पर उड़े फिरते हैं, जल को चीरते हुए चले जाते हैं। आकाश इनका मार्ग होता जा रहा है। ये यहां बैठे मीलों की दूरी पर सैकड़ों मनुष्यों की हत्या कर सकते हैं। इनके जासूस सूरज के पुत्र हैं। इनके राजनीतिज्ञ अदृष्ट द्रष्टा हैं। पर कौन कह सकता है कि ये लोग जिनके हाथों में ऐसी प्रबल शक्तियां है, जिनके पास विविध प्रकार की इच्छाओं को तृप्त करने की सामग्री सदा उपस्थित रहती है, ऐसे ये विशिष्ट पुरुष सुखी हैं। संसार तो इनको सुखी नहीं बताए तो ठीक है। पर अब ये भी जागने लगे हैं और चौकन्ने होकर इधर-उधर देखते हैं। और कहते हैं—अरे, कहां चले आये ? आगे बढ़ें कि पीछे चलें ? और यह पिछला उत्तर अपनी तान सुनाने लग गया है। इससे प्रिये ! सम्पत्ति सुख का हेतु नही है। सुख बाह्य पदार्थों पर निर्भर नहीं है। सुख भीतर खोजने का एक सूक्ष्म पदार्थ है। सुख शान्त-चित्त का, संतुष्ट पवित्र मनका स्वाभाविक साथी है। हम अपने आपको सुखी होने की कल्पना करें, हम सुखी है, इससे विरुद्ध कल्पना करें, हम दुःखी हैं। इच्छाओं के प्रबल वेग को रोकना शुभ है। इस प्रवाह में न गिरना बुद्धिमत्ता है। इच्छाओं को सीमाबद्ध रखते हुए उनकी तृप्ति बाह्य पदार्थों से करना और अन्तः सन्तोष रखना–ये सुख के उपाय हैं। जब सब इच्छाओं का तृप्त होना असम्भव है, तब इच्छाओं को रोकने का प्रस्ताव स्वयं सिद्ध है। प्रिये ! हमने हमारी इच्छाओं को रोक रखा है। जो मिलता है उसी से मस्त हैं, संतुष्ट है—इससे सुखी हैं। सम्पत्ति बेचारी क्या करने वाली थी ? हमें उसकी आवश्यकता ही नहीं है।

विवेक-सूत्र

१६२८

१. समालोचक हो, निन्दक नहीं।
२. निर्लिप्त हो, उदासीन नहीं।
३. नम्र हो, चापलूस नहीं।
४. वीतराग हो, अकर्मण्य नहीं।
५. क्षमाशील हो, भीरु नहीं।
६. खरे हो, खारे नहीं।
७. स्पष्ट हो, उद्दण्ड नहीं।
८. चतुर हो, कुटिल नहीं।
९. मितव्ययी हो, सूम नहीं।
१०. गम्भीर हो, मनहूस नहीं।
११. भले हो, दुर्बल नहीं।
१२. प्रेमी हो, पागल नहीं।
१३. न्यायी हो, निर्दय नहीं।
१४. उत्साही हो, जल्दबाज नहीं।
१५. धीर हो, सुस्त नहीं।
१६। सावधान हो, वहमी नहीं।
१७. सरल हो, मूर्ख नहीं।
१८. दृढ़ हो हठी नहीं।

पराधीनता से स्वाधीनता

दिसम्बर, १९२८

पराधीनता ! यह शब्द ही अशुभ है, भयानक है। अराजकता की स्थिति अच्छी और पराधीनता की बुरी। अराजकता के समय में देश में परस्पर संघर्ष होगा, किन्तु वह थोड़े समय तक होकर निवृत हो जाएगा। पराधीनता के समय में संघर्ष की योग्यता ही चली जाती है। और जितने अधिक समय तक पराधीनता रहती जाएगी, स्वाधीनता की योग्यता उतनी ही कम होती जाएगी। देशों में और राष्ट्रों में परोपकार-बुद्धि प्रायः नहीं होती। इसलिए यह घोषणा करते रहना कि हमने अमुक देश को अपने स्वार्थ के लिए पराधीन नहीं रख छोड़ा है और हम उसे स्वाधीन नहीं होने देते हैं तो इसमें हमारा कुछ स्वार्थ नहीं है, उस देश का ही भला है, सर्वथा निरर्थक और भ्रान्तिकारक है।

पराधीन देश को निःशस्त्र रखना पड़ेगा, क्योंकि, ऐसा किये बिना राज्य करने वाला देश निश्चिन्त नहीं हो सकता। न जाने कब बलवा हो जाय, कब अचानक सैनिक संगठन हो जाय और हमको विदा होना पड़े ? यह डर राज्य करने वाले देश को अवश्य होता है। और प्रकट में बहाना यह मिल जाता है कि निशस्त्र किये बिना पराधीन देश की प्रजा आपस में लड़ेगी और उसकी लड़ाई के कारण देश में शान्ति न हो सकेगी, शान्ति के अभाव में देश की उन्नति में नाना प्रकार की बाधायें उपस्थित होंगी। निःशस्त्र करने के अलावा पराधीन देश की प्रजा को सैनिक शिक्षा का जितना कम अवसर दिया जाना सम्भव हो उतना ही कम दिया जावेगा। और जिन दो एक जातियों को सैनिक कार्य के योग्य समझ कर राज्य करने वाले युद्ध के लिए तैयार करेंगे

उन्हे भेद नीति से, प्रलोभनों द्वारा, ऐसी दासता के पाश में जकड़ कर रखेगें कि वे कभी सहज ही उनसे विरुद्ध होकर देश के लिए लड़ने का विचार नहीं करेंगे।

आयात-निर्यात पर कर लगाने का पूर्ण स्वातन्त्र्य होने से राज्य करने वाला देश समय-समय पर ऐसे कर लगाएगा, जिनसे पराधीन देश के सब उद्योग-धन्धे नष्ट हो जाँय, और उस देश के निवासियों की स्वतन्त्रता पूर्वक अपनी रोटी कमा खाने की योग्यता लुप्त हो जाय। राज्य करने वाला देश जब यह देखेगा कि पराधीन देश की वस्तुए अपने यहां बहुत आ रही हैं और अपने यहां की वस्तुओं को दूर हटाकर अपना अड्डा जमा रही हैं, तो वह फौरन रक्षा-नीति का अनुसरण करके पराधीन देश की वस्तुओं का बहिष्कार कर देगा। और जब देखेगा कि अपने व्यवसाय खूब चल निकले हैं और पराधीन देश में जाने लगे हैं परन्तु वहां की वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा में अपनी वस्तुएं हार मानती हैं, तो व्यापार स्वातंत्र्य की नीति की घोषणा कर दी जाएगी और आयात के कर उड़ा दिये जाएंगे तथा आवश्यकता होगी तो पराधीन देश में उत्पादन पर और कर लगा दिये जाएंगे। इतना ही नहीं, पराधीन देश का कच्चा माल अपने यहां ले जाने की व्यवस्था कर दी जाएगी और अपने यहां के पक्के माल की खपत हो, इसका प्रबन्ध भी दूसरे देशों से आने वाले माल पर आयात कर लगाकर कर दिया जाएगा। निःशस्त्र होने से पराधीन देश के भुज-दण्ड टूटे और इस व्यापार नीति ने उसकी पेट भरने की योग्यता कम कर दी।

शिक्षा की नीति और शिक्षा के आदर्श में अवश्य परिवर्तन किया जाएगा। और पराधीन देश की प्राचीन सभ्यता और प्राचीन संस्कृति को नष्ट करने का भरसक उद्योग किया जाएगा। राज्य करने वाला देश अपनी भाषा को प्रधानता देगा और पराधीन देश की भाषा या भाषाओं को गौण स्थान देगा। राज्य करने वालों की भाषा द्वारा जो शिक्षित होंगे उनका विशेष आदर प्रचलित होगा। और उद्योग धन्धों का लोप होने से पराधीन देश-निवासी और किसी कारण से नहीं तो आर्थिक विफलता के कारण ही विदेशियों की नौकरी के जाल में आदर के साथ फंसकर अपने आपको धन्य समझने लगेंगे। ऐसा अवसर बहुत धीरे धीरे दिया जाएगा और कम आदमियों को दिया जाएगा। इस नीति से नवशिक्षितों की एक अलग जाति बन जाएगी, जो अपने देशवासी अशिक्षितों से अपने आपको अच्छा समझने लगेगी। नौकरी का पाश ऐसा जकड़ दिया जाएगा कि वे विदेशियों के आश्रय के बिना जीवित रहने की भी आशा नहीं रख सकेगें और इसीलिए विदेशियों की जड़ को पक्की करने में सहायक बनेंगे।

विदेशियों की भाषा का रौब जम जाएगा यहां तक कि पिता पुत्र का पत्र-व्यवहार भी उसी भाषा में होगा, व्याख्यान उसी में दिये जाएंगे, और समाचार पत्र भी उसी में निकलेंगे। विदेशियों की भाषा का रौब जमने का अर्थ होगा, अपनी भाषा का रौब

घटना। अपनी भाषा का रौब जाएगा, उसके साथ-साथ अपने आचार व्यवहार और संस्कृति का भी अवश्य जाएगा। फिर तो विदेशियों की भाषा बोलना, उन जैसे कपड़े पहनना, उन जैसे भोजन करना, उन्हीं जैसा कौटुम्बिक जीवन रखना और सभी कार्य उन्हीं जैसे करना—इस नकलीपन का आदर होने लगेगा और प्राचीनता और स्थानीयता दोनों को लज्जित और संकुचित होना पड़ेगा। जब निज की भाषा व संस्कृति की अवहेलना हो जाएगी तो स्वदेशाभिमान भी नहीं रहेगा। और जिनमें स्वदेशाभिमान नहीं होगा उनसे देश आशा भी क्या रक्खेगा ?

राज्य करने वाले विदेशी लोग सर्व साधारण जनता को चकाचौंध करने के भी कुछ उपाय करेंगे। जनता को भ्रम होगा कि जो आराम अब हैं, वे पहले नहीं थे। अस्पताल, स्कूल, रेल, तार, डाक–ये पहले कब थे ? इतनी शांति कब थी ? लूट खसोट से बचाने वाले कहां थे ? 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' होने से दुर्बल की रक्षा करने वाला कौन था ? अब सर्वत्र शांति का राज्य है। सरकार की दृष्टि में सब बराबर हैं। और सबकी रक्षा एकसां की जाती है। कोई किसी का हक नहीं छीन सकता। इन विचारों का प्रचार होना अस्वाभाविक नहीं है। यही नहीं, प्रजा का असलियत को भूल जाना भी स्वाभाविक ही है। उनको यह स्मरण नहीं रहता कि ऐसी शांति के प्रभाव से उनमें आत्म-रक्षा का बल ही नहीं रह गया है–ऐसे दिखावटी आरामों के कारण उनकी कष्ट-सहिष्णुता ही जाती रही है। इधर प्रजा ऐसे भ्रम में पड़ ही जाती है, उधर राज्य करने वाले अपने किये हुए उपकारों का सर्वत्र प्रचार करने में दत्तचित रहते हैं।

जब पारितोषिक वितरण विदेशियों के हाथ में रहता है, तो किसी को कम दिया, किसी को अधिक दिया। कम पाने वाले की अधिक पाने वाले के साथ ईर्ष्या हुई और चला दोनों में झगड़ा। कहने को सब बराबर, परन्तु ऐसी भेद-नीति चली जाती है कि लड़ने वालों को वर्षों तक पता नहीं चलता कि उनके साथ क्या खेल हो रहा है। और राज्य करने वाले आग सुलगाकर दूर हो जाते हैं और तमाशे देखते हुए कहते हैं—'देखो तुम आपस में ही लड़ते हो। यह तो हम मध्यस्थ न्याय करने को यहां पर मौजूद हैं, नहीं तो, तुम आपस में ही कट मरोगे। भला, तुम अपने घर को कैसे सम्भाल सकोगे ? अभी कुछ समय और शिक्षा पालो, पीछे देखा जाएगा।' उदासीन संसार भी इसी धोखे में आ जाता है–असलियत को खोजकर देखने की किसको चिन्ता ?

अपने देश की पराधीनता की बेड़ियों को मजबूत बनाने में विदेशियों की सहायता करने वालों को पदवियों के रूप में और अन्य प्रकार से उनके परिश्रम का फल मिलता है। अपने देश वासियों में खड़े होने पर सबसे बड़े दीखने का लोभ हर किसी को लुभा लेता है। कभी-कभी इस मोह ने पीछा छोड़ा और देश के हित का विचार

मन में आया भी, तो यही डर कि राज्य करने वाले नाराज हो जायेगें, पद भी छीन लेवें, यह आदर सम्मान नहीं रहेगा ! बस, फिर क्या ?

सभी सपूत कपूत नहीं होते, कुछ तो सपूत भी निकले। उन्होंने सोचना शुरू किया कि यह क्या मिथ्याडम्बर रचा हुआ है—देशवासियों का रक्त चूस लिया गया, उनको नामर्द बना दिया गया, उनको कमा खाने लायक भी नहीं छोड़ा। और फिर यह दुन्दुभि बजायी जाती है कि परोपकारी राज्य करने वालों ने देश का कल्याण कर दिया ! इस सत्य के अनुभव का, इस आत्माभिमान के प्रज्वलन का, इस स्वाधीनता की भूख के पूर्वरूप का वेग कल्पनातीत होता है और माता के सपूत तैयार हो जाते हैं मर मिटने को। परन्तु उन्होंने ऐसा विचार कहा, तो राजद्रोह; लिखा, तो राजद्रोह; विदेशियों का बनाया हुआ कानून विदेशी राज्य की रक्षा के निमित निरन्तर तैयार है।

राजद्रोह की बात करने वालों को नौकरी में कैसे रखा जाय ? अथवा, नौकरी की तो जाने दीजिए, उनको स्वतंत्रतापूर्वक विचरने भी कैसे दिया जाय ?

पराधीनता के विरूद्ध किसी को लड़ना हो तो वह राज्य करने वालों से लड़े, अपने भाइयों से (जो विदेशियों के सहायक हो रहे हैं) लड़े, अपने कुटुम्ब से (जो उसकी कमाई की आशा रखता है) लड़े, अपने आप से लड़े; क्योंकि आराम से अपना काम करना, खूब कमाना और खूब खर्च करना, सबकी दृष्टि में प्रतिष्टित रहना—यह छोटा सा लोभ नहीं है और इसी के साथ अस्थिरता में कूद पड़ना, आज खा लिया तो कल क्या होगा—इस चिन्ता के क्षेत्र में उतरना कोई छोटा डर नहीं है।

परन्तु किसी को नशा छा ही गया, तो क्या वह इस बड़े लोभ का, और इस बड़े डर का—इन दोनों का त्याग नहीं कर देगा ? जब यह ज्ञान हो जाएगा कि हमारे साथ अबतक अन्याय हुआ, उसको हम अब नहीं होने देंगे तो क्या इस ज्ञान के प्रकाश में लोभ का अन्धकार ठहर सकेगा ? जब विदेशियों द्वारा स्थापित और उद्घोषित शान्ति का वास्तविक स्वरूप समझ में आगया तो क्या फिर हमें उसी शान्ति से कोई बैठा सकेगा ? जब हमने पराधीनता की मीमांसा कर ली, जब हमने पराधीनता के जाल के गुंथन की डोरी-डोरी को देखकर समझ लिया, तो क्या हमें इस उलझन को सुलझाने से कोई रोक सकेगा ? जब हमने पराधीनता में रहकर द्रव्योपार्जन करने को बुरा मान लिया, तो क्या कोई कमण्डलु लेने में बाधक हो सकेगा ? त्याग का रहस्य समझ में

आ गया, तो अपने आपको त्याग कर पुत्रों द्वारा त्यागी हुई 'त्यागभूमि' के सच्चे सपूत बनने का संकल्प करने से क्या कोई हमें मना कर सकेगा ?

जब ऐसी लहर वाले मनुष्य अधिक संख्या में हो जाएंगे, तभी पराधीनता विदा होगी। विदेशियों से लाभ की आशा रखने वालों से और लाभ उठाने वालों से काम नहीं चलेगा, और न काम चलेगा घृणा करने वालों से। ऊपर कही सारी स्थिति को भारतवर्ष पर घटाकर पूछना है कि यहां की पराधीनता को विदा करा सकने वाले योग्य सपूत कितने हैं ? मालूम होता है, यह संख्या और बल में बढ़ रहे हैं और बढ़ते ही रहेंगे ।

स्वाधीनता के वीर

फरवरी, १६२६

जिस देश की स्वाधीनता छिन गयी हो, उसको फिर से स्वाधीन करना बड़ी कठिन समस्या है। पराधीनता के स्थान पर स्वाधीनता लाने के लिए समूह-शक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है। जब तक **व्यक्तियां अपने निज के स्वार्थ का ही ध्यान रखती हों, कुटुम्ब परिपालन को एक मात्र कर्तव्य समझती हों**, तब तक समूह-शक्ति भी दूर की वस्तु रहेगी। लाखों में सैकड़ों व्यक्ति तो ऐसे हों जो जाति के लिए मर मिटने को तैयार रहें—कुछ तो ऐसे तपस्वी हों जो अपने आपको होम देने के लिए सदा तत्पर रहें। ऐसा होने पर ही पराधीन देश के स्वाधीन होने की आशा हो सकती है।

स्वाधीनता के वीर का पहला गुण 'त्याग' होना चाहिए। 'त्याग' से यह तात्पर्य नहीं हैं कि वह संसार या देश का त्याग करके विरक्त हो जाय। त्याग का अर्थ है किसी उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने निज के संकुचित स्वार्थ को छोड़ देना। त्यागी वीर सब कार्य उसी प्रकार करेगा, जैसे कोई बड़ा गृहस्थ अपने कुटुम्ब-परिपालन अथवा सम्पन्न होने के लिए करे, भेद इतना ही होगा कि त्यागी अपने खुद के लिए न करके सब कुछ जाति या समूह के लिए करेगा। त्याग के इस आदर्श से किसी भी 'सांसारिक' मनुष्य का विरोध नहीं हो सकता—क्योंकि ऐसे त्याग के अभाव में संगठन होना ही असम्भव है। त्यागी अपने खुद के लिए सम्पत्ति आदि मोटी चीजों का ही त्याग नहीं करेगा, किन्तु उसे अपने यश-अपयश के लोभ का भी त्याग करना होगा।

स्वाधीनता के वीर का दूसरा गुण सार्वजनिक प्रश्नों को भली भांति समझने की योग्यता होनी चाहिए। क्योंकि ऐसी योग्यता के बिना त्याग का वेग शायद अनुचित मार्ग में प्रवृत्त हो जाय। देश की परिस्थिति के मर्म को समझे बिना वास्तविक कार्य का होना कठिन है। पराधीनता का मूल क्या है और अब पराधीनता की स्थिरता के क्या-क्या अवलम्बन हैं, यह पहले समझ लेना चाहिए। पराधीनता का कुछ ऐसा-वैसा जाल नहीं—यह तो विकट भूल भुलैया है, जिसमें मनुष्य भटका ही करे। पराधीनता एक विशेष प्रकार की परिस्थिति का पोषण करती है, जिसमें स्वदेश वासियों को अपने हिताहित पहचानने की शक्ति ही कम हो जाती है। इस परिस्थिति की पूर्ण रूप से मीमांसा करने की योग्यता स्वाधीनता के वीर में होना आवश्यक है।

तीसरा गुण क्षमा शीलता होना चाहिए। त्याग की तरंग भी हुई और योग्यता भी हुई—फिर भी, यदि 'क्षमा' का गुण नहीं है तो, संगठन कठिन हो जायगा। सम्भव है कि जिस विषय का हम बड़ी योग्यता से प्रतिपादन करते हों, और जिसमें हमें दूसरा दृष्टिकोण ही नहीं ज्ञान पड़ता हो, उस विषय में भी हमारे किसी भाई का ही मतभेद हो—केवल मतभेद ही नहीं, वह हमारे प्रतिपादन के मूल में हमारा कुछ स्वार्थ भी समझता और बतलाता हो। ऐसी कठिन स्थिति में क्षमा की वृत्ति रख लेना खेल नहीं है। हमारे भाइयों के अलावा दूसरे भी कई ऐसे आदमी हो सकते हैं जो हमारे बड़े से बड़े त्याग को 'कुछ नहीं' और हमारी अच्छी से अच्छी योग्यता को 'तुच्छ' कहने को तैयार हों। परन्तु, यदि हमें देश का कार्य करना है तो, ऐसे लोगों को भी क्षमा की दृष्टि से देखना पड़ेगा। बल्कि हमें उद्योग करना होगा, और सफलता की आशा में रहना पड़ेगा, कि आज जो हम से सहमत नहीं हैं वे भी किसी शुभ घड़ी में हमारी बात को समझ कर सहमत हो जाएंगे। हमसे मतभेद रखने वाले को हम बुरा मान बैठे, हमारा उसके प्रति घृणा का भाव हो गया, तो समझना चाहिए हम अपने आदर्श से गिर गए। क्षमावृत्ति रखने में कभी-कभी अपने अन्तःकरण पर बड़ा जोर पड़ सकता है—कभी ऐसा अवसर भी आ सकता है, जब हमें अपने सिद्धांत को भी स्थगित कर देना पड़े। परन्तु स्वाधीनता के वीर को तो ये कड़वी घूंटें निगलनी ही पड़ेंगी।

चौथा गुण 'शांत निर्भयता' होना चाहिए। उद्दण्डता को निर्भयता नहीं कह सकते। व्यर्थ ही किसी पर ऐंठ जाना निर्भयता में शामिल नहीं है। बलिष्ठ से बलिष्ठ मनुष्य भी यदि हमारे प्रति अनुचित कार्य करने का विचार रखता हो, तो उससे किसी प्रकार का भय नहीं मानना यह स्वाधीनता के वीर के लिए प्रतिदिन के जीवन में आवश्यक है। स्वाभिमान की रक्षा के लिए निर्भय होकर आवश्यक हो तो चाहे लड़ पड़ना चाहिए, परन्तु केवल अभिमान के कारण निरर्थक उदण्डता दिखाना न वीरता है और न निर्भयता। अपने मत के विशेष के प्रकाशन और प्रतिपादन में भी निर्भयता होनी चाहिए

परन्तु शांतभाव को छोड़कर दूसरों पर अपना मत आरोपित करने की चेष्टा भी निर्भयता न रह कर उद्दण्डता ही समझी जायगी।

त्याग, समझने की योग्यता, क्षमाशीलता और शांत निर्भयता के साथ-साथ एक पांचवा गुण व्यवहार कुशलता भी स्वाधीनता के वीर के लिए परमावश्यक है। व्यवहार कुशलता का अर्थ किसी को धोखा देना नहीं हैं, परन्तु सच्चे देशभक्त को यह देख लेना आवश्यक होगा कि उसके कौनसे कार्य से कहां, किस पर, क्या प्रभाव पड़ेगा! कार्य-सिद्धि को सदा लक्ष्य में रखना चाहिए—कार्य सिद्धि तो हुई नहीं और व्यर्थ ही किसी का दिल दुखा दिया, अकारण किसी को अपना विरोधी बना लिया, यह व्यवहार-कुशलता नहीं हुई। अपने सिद्धांत की हानि न होती हो तो अप्रिय सत्य को कह डालने के आन्तरिक वेग को रोक लेना आवश्यक है। सत्य अहिंसा आदि कई उच्च सिद्धांत हैं और इन सिद्धांतों की रक्षा भी करते रहना आवश्यक है; परन्तु साथ में यह भी समझना चाहिये कि कार्य सिद्धि कर लेना ही एक सिद्धांत है—इतनी ही बात देखने की है कि कार्य सिद्धि के लिए सरासर नीच मार्ग में तो प्रवृत होना नहीं पड़ा रहा है। जो मनुष्य अपने आपको अधिक सच्चा समझते हैं, और जो वास्तव में सच्चे होते भी हैं, वे कभी-कभी कार्य-कुशलता के लक्ष्य को भूल जाते हैं। सब मनुष्यों में गुण और दोष दोनों होते हैं, इस मर्म को समझना चाहिए और फिर यह उद्योग करना चाहिए कि दोषवान के दोषों से तो हम अपनी रक्षा कर लें और उसके गुणों से लाभ उठावें। अमुक में अमुक दोष है तो उसके निकट ही नहीं जाना और उसके गुणों के लाभ से वंचित रह जाना व्यवहार-कुशलता नहीं हैं। हमारी सज्जनता और उदारता को हमसे यह उद्योग कराना चाहिए कि हम किसी दोषवान् को देखें तो उसे उन दोषों से मुक्त करने का कुछ उपाय करें।

कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वाधीनता के वीर का व्यक्तिगत चरित्र विशुद्ध होना चाहिए। उसे अपना कुल रहन सहन सादा रखना चाहिए। उसे ब्रह्मचर्य के आदर्श तक पहुँचने का सतत उद्योग करना चाहिए। क्योंकि ब्रह्मचर्य शक्ति का मूल है, पवित्रता का उद्भव स्थान है, तेजस्विता का मार्ग है, सफलता का मन्त्र है। अपनी आवश्यकताओं को कम करके रखने से ब्रह्मचर्य में सहायता मिलेगी और हमारा त्याग भी उच्चकोटि का बनेगा। क्योंकि-समाज से कम से कम लेना और समाज को अधिक से अधिक देना ही तो वास्तविक त्याग है।

स्वाधीनता के वीर को इन गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। ऐसा होने पर भी सम्भव है उसके सामने कभी कभी निराशा के दृश्य आएं, धर्म विध्वंस के काले बादल छाये हुए जान पड़ें, परन्तु, कुछ भी हो, सदा प्रसन्न रहने का उद्योग किया जाय और सदा आशावादी होकर रहा जाय। कृष्ण पक्ष के अस्तित्व को पहचाने, उसके प्रभाव को भी

भलीभांति समझे, परन्तु कृष्णपक्ष के अन्धकार में घबरा जाना वीरोचित कार्य नहीं। कृष्णपक्ष जायगा और शुक्ल पक्ष आयगा, यह अटल विश्वास रखना चाहिए।

यह न तो सम्भव है और न आवश्यक ही है कि देश के सारे मनुष्य इसी प्रकार के वीर हो जाएं। परन्तु यह आवश्यक है कि ऐसे मनुष्यों की संख्या जितनी अधिक होगी उतनी ही स्वाधीनता सुगम होती जायेगी। जन समुदाय में से तपस्वी कम ही हो सकते हैं, ब्राह्मण वृत्ति को कम ही अंगीकार कर सकते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि तपस्वी बने बिना मनुष्य स्वाधीनता के समर में योग दे ही नहीं सकते। लड़ने वाले लड़ेंगे, मरने वाले मरेंगे, परन्तु लड़ने की सामग्री को कोई जुटा जायगा? जैसे जिसकी इच्छा और शक्ति, जैसी जिसकी प्रवृत्ति, वैसी ही सहायता पहुंचाना प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है।

स्वाधीनता का शांत, गम्भीर समर चल रहा है। वीर होकर आने वाले वीर होकर आवें, केवल धन-देने वाले धन ही दें, सहानुभूति रखने वाले हार्दिक सहानुभूति ही रखें, प्रार्थना करने वाले प्रार्थना करें, जो तन से सेवा करने वाले हैं वे तन से ही यथा शक्ति सेवा करें। परन्तु सब एक दूसरे को अच्छा, भला समझते हुए, किसी की वृथा निन्दा अथवा अपवाद में सम्मिलित न होते हुए। सद्भाव से परस्पर सहयोग किया जाय और समान लक्ष्य की ओर निरन्तर पैर बढ़ाया जाय। श्रीभगवान् की कृपा से वह सुदिन आएगा, जब पराधीनता की बेड़ियां कट चुकेंगी—जब देश स्वाधीन होकर अपने पूर्ण विकास के कार्य की ओर अग्रसर होगा।

नुकते की कुप्रथा

(नुकते की कुप्रथा नाम की पुस्तिका से)

१६२६

मुझको मालूम है कि हजारों आदमी ऐसे हैं, जिनकी समझ में आ गया है कि नुकता करने से कुछ भी लाभ नहीं है, तो भी वे समाज के बंधन से मजबूर हैं। बदनामी किस से सही जाए ? इसीलिए समाज को कहने की जरूरत है कि जो डूबना नहीं चाहते है उन्हें जबर्दस्ती तो न डुबाएं। हमारी ही बदनामी और हम ही करने वाले, जब हम सब मिलकर यह तय करदें कि नुकता करना बुरा है, नुकता नहीं करना चाहिए तो जैसे आज नुकता न करने वाले की बदनामी होती है वैसे ही कल नुकता करने वालों की होने लग जाएगी। परन्तु जब तक समाज की या जाति की समझ में नहीं आए तब तक कुछ ऐसे आदमी जरूर होने चाहिएं जो समाज और जाति के हित के लिए अपनी बदनामी सहने को तैयार हों। जो आदमी समर्थ हैं, वे ऐसी बदनामी सहज सह सकते हैं। जाति उनका क्या बिगाड़ कर सकती है ? वे कोई पाप तो करते नहीं, अन्याय करते नहीं, जिस कार्य को वे समाज के लिए अहित कर समझते हैं, अपने लिए अहितकर और नाशकारी समझते है, उस काम को न करने के लिए समाज से प्रार्थना करते हैं और खुद न करने की इजाजत चाहते हैं। समाज खुद भी नहीं माने और दूसरों को इजाजत भी न दे तो इसका अर्थ क्या ? यही कि समाज अपने संगठन को तोड़ना चाहता है, दूसरों को मजबूर करना चाहता है, कि वे समाज की अवहेलना करें, तिरस्कार करें। समाज को अवश्य दूरदर्शी होना चाहिए, उसे अवश्य ही समय की पहचान करनी चाहिए। आज कल चारों ओर सब लोग अपना संगठन कर रहे हैं, अपना युग-धर्मानुसार प्रबंध कर रहे हैं। हम लोग जो अपने आपको उच्च जाति के मानते हैं वे अगर इस अवस्था पर ध्यान नहीं देंगे तो निश्चय है कि हम जैसे रह गये हैं वसे भी नहीं रह जाएंगे। इसलिए जो लोग समर्थ हैं, जिनके पास रुपया है, उन्हीं को सब से पहिले इस नाशकारी प्रथा को बंद करना चाहिए। उनकी देखा देख सबलोग बंद कर देंगे क्योंकि समाज में बड़ा दिखाई देने का मोह सब को होता है। नुकता करने से बड़े नहीं होते हैं, उसे बंद करने से अच्छे आदमी गिने जाते हैं यह आदर्श समाज के सामने आना चाहिए। इसके अनुकूल वातावरण बन रहा है और अब हिम्मत करने वालों के मार्ग में अधिक कठिनाई नहीं है। अब तो बड़ा मन करके इरादा कर लेने की ही बात है। इतना ध्यान रहे कि व्यर्थ के खण्डन मण्डन और निन्दा स्तुति से हमारा लाभ नहीं हो सकता। जो नुकते के पक्षपाती हों उन्हें चाहिए कि नुकता बंद करने वालों के साथ वैरभाव नहीं रखें और नुकता बंद करने वालों को चाहिए कि नुकते के पक्षपातियों के साथ वैरभाव न रखें, इसी में समाज का हित है। इस लेख द्वारा दोचार देशवासियों का भी नुकता न करने का संकल्प दृढ़ हो जाएगा तो मैं अपने को कृतार्थ मान लूंगा।

फक्कड़ समाज

१०–३–३६

जिन लोगों का चुनाव जीवनकुटीर की पूंछड़ी के कार्य के लिए हो जाएगा वे अपना काम वनस्थली क्षेत्र में करेंगे, बाकी बचे हुए लोग वृहत क्षेत्र में प्रचार करेंगे। जिन लोगों पर परिवार के भरण-पोषण का बोझा नहीं होगा परिवार के न होने से, परिवार से वैराग्य हो जाने से अथवा परिवार के स्वावलम्बी बना दिए जाने से, वे गांवों में विचरेंगे और लोगों को सच्ची–सच्ची बातें बताएंगे और जाति के आधार को छोड़कर गरीबी के आधार पर उनका संगठन करेंगे। सहारे के लिए दवा अथवा पढ़ाई का काम साथ में रखा जा सकता है। प्रचारकों का रोटी कपड़ा गांवों में से निकल सकेगा। जो प्रचारक अपना रोटी कपड़ा गांवों में से न निकाल सकें वे काम भी शायद ही कर सकें। घरवालों को या तो कुछ भी देने की बात न रखी जाए अथवा यों रखा जाए कि मामूली तौर से न देना और कदाचित पास में कुछ हो ही तो दे दिया जाए। गांवों में लोगों से क्या कहना, उनको कौन से गीत सुनाना–यह सब कुछ पहिले से तय हो जाएगा। वाणी का संयम रख सकने वाले प्रचारकों के लिये यह कार्य बड़ा सरल रहेगा। फक्कड़ समाज वाले एक उद्देश्य के आदमी होंगे, एक ही रास्ते से अपने लक्ष्य तक पहुंचना चाहने वाले होंगे—इसलिये मौलिक रीति से वे एक दूसरे के नजदीक आएंगे, एक दूसरे का विश्वास करेंगे और एक दूसरे का सहयोग प्राप्त करेंगे। फक्कड़ समाज का जीवन पारस्परिक विश्वास पर निर्भर होगा, कानून पर नहीं। संगठन में शामिल होने वाले सब बातों को सोचकर अपनी इच्छा से शामिल होंगे। वे पहिले से ही देख लेंगे कि ऐसे संघ में हमारा निर्वाह हो जाएगा या नहीं। पहिले तो मतभेद होंगे ही कम, परन्तु सब बातों के निबटारे के लिये और मार्गदर्शन के लिए वे अपने में से किसी एक को पंच नियुक्त कर लेंगे। मेरा विश्वास है कि इस प्रकार गांवों में विचरने वाले, पैसे की कम आवश्यकता रखने वाले साफ सुथरे, सच्चे फक्कड़ सर्वत्र दिखाई देने लग जाएंगे तभी जाकर इस देश का उद्धार होगा।

(This article was sent out from Jhalana Camp Jail and published in the Hindustan Times.)

Jaipur Prajamandal and Jaipur Government

June, 1939

Jaipur may perhaps be described as a premier State in Rajputana. It has area of over 16,000 sq. miles, a population of over 26 lacs and an annual revenue of about 150 lacs. During the third quarter of the last century Jaipur was ruled by an enlightened prince who tried to put his progressive ideas into practice and to whose solicitude for public welfare and good government many of the existing institutions of the State bear testimony even today. Jaipur can rightly be proud on the one hand of her many philanthrophists who freely gave away their money for the public good and on the other of the various bands of the public workers who have staked their all for the service of their fellow brethren. The people of Jaipur have to their credit a brilliant record of social service in the spheres of Khadl, Harijan work, medical relief, village uplift and education of boys and girls.

2. The last two decades have witnessed political awakening and political advancement almost everywhere in India and quite naturally the people of Jaipur began to feel the necessity of constitutional reforms in the State. With the object of attaining responsible Government under the aegis of the Maharaja they started the Jaipur Prajamandal which was reorganised and placed on a sound footing in November, 1936 by a band of silent and selfless public workers. From the very beginning the Prajamandal had the sympathies and support of influential citizens many of whom joined the Mandal's committees all over the State. With thousands of ordinary members on its rolls

and with committees functioning in each and every district of the State the Prajamandal soon became a representative and powerful institution. But the Mandal did not put up over ambitious schemes all at once and with reference to the Government the workers adopted a policy of good will and mutual trust, discussion and cousultation, and help and co-operation.

3. Personal contacts were successfully maintained between State officials and Prajamandal workers and for the time being it seemed that it would be a smooth sailing for both. It was, however, discovered later on that the authorities were only pursuing a policy of vacillation and drift and were not really responding to the Prajamandal policy of cooperation with Government. The Government tried to strike the first serious blow when on the eve of the annual session of the Prajamendal "A Public Societies Regulation" was promulgated according to which even the existing Association like Prajamandal were required to apply for recognition within three months. But quite surprisingly things took a different turn. The authorities assured the Prajamandal workers that the new regulation was not at all aimed at the Mandal which would be recognised under the Regulation, as soon as formal application was submitted. Although the Prajamandal was strongly opposed on principle to the Public Societies Regulation which together with the already existing "Pubiic Meetings Regulation" completely robbed the people of their civil liberties ; still the Mandal workers put their faith in solemn assurances given by the authorities and duly applied for recognition.

4. The first annual session of the Prajamandal was a great success under the able presidentship of Seth Jamnalal Bajaj who, being an eminent citizen of Jaipur had already been taking a regular and active interest in various works of public welfare carried on within the borders of the Jaipur State. During and after the annual session it seemed that with regard to the popular and powerful Prajamandal the authorities were wavering between the policies of toleration and of suppression and apparently they could not for some time make up their mind one way or the other. While continuing to put up favaourable appearances the State officials obviously did all that they could from within "purdah" to undermine the popularised influence of the Prajamandal. The issuing of a secret circular to mention only one thing out of many, at the time of the Jaipur City municipal elections can be cited as an instance of Government's hidden machinations. In

utter disgust the Prajamandal had to ask its nominees to withdraw from the municipal elections. The authorities, however, continued there virtuous task of finding out one means after another to counteract the activities of the Prajamandal and one such device was discovered in the scheme of Advisory Boards which is now being advertised as a scheme of constitutional reforms.

5. The Prajamandal, however, went on with its work. For the time being Seth Jamnalal Bajaj, the President of the Mandal decided to devote the entire resources and energies of the Prajamandal to famine relief work in Shekhawati and other parts of the State. Famine relief work was organised on a big scale and Seth Bajaj was coming to personally supervise the operations when it got into the head of the Jaipur Government that the entry of Sethji into Jaipur, State (his own birth place) would endanger peace and tranquillity. Sethji did not then and there disobey the banning order served on him at Sawai Madhopur : on the contrary he gave authorities time to reconsider the position taken up by them. But the authorities replied by declaring to refuse to register the Prajamandal as an association which refusal amounted for all practical purposes to the Mandal being declared illegal. The authorities forgot that the Prajamandal had held with their permission its annual session under the Presidentship of Seth Bajaj and that they had even congratulated the workers for the success achieved by them ; they further forgot that they had accepted and had been benifitted by the eminent Sikarian Bajaj's help in the Sikar affairs and they also forgot that the Prajamandal had all along been functioning and that while submitting the application for recognition the Mandal workers had understood from the Government officials that it was merely a formal act to be performed to meet the requirements of the law and that tbere was no question of the Mandal being not recognised. The Mandal did hardly realise at the time that it was intended by the authorities to hang a Damocles' sword over the Mandal's head.

6. Thus came the conflict which was forced on Seth Bajaj and the Prajamandal who were left with no option in the matter. The shabby manner in which Seth Bajaj was treated when he thrice attempted to enter the Jaipur State need not now be described by me. Any way, Satyagraha was started by the Praja Mandal, and within a few weeks the movement gained such a momenteum that the authorities

seemed simply bewildered; Complete Hartals in Jaipur City defied the influence and ingenuity of the authorities who hopelessly failed to get a single shop opened. Hundreds sought arrest and were sent to detention camps. In Jaipur City thousands of peaceful men, women and children (on no occasion less than 20 thousands and on some even 50 thousands) assembled to have "darshan" of their beloved Satyagrahis. The movement had rapidly spread to the districts all of which gave striking proof of life throbbing within them. In the third week of March, 1939, Mahatma Gandhi meat the Viceroy, but we don't know what passed between the two about Jaipur affairs. All that we knew is that Gandhiji advised the suspension of Satyagraha when the movement was in its full swing. To the people of Jaipur it seemed that the authorities would be on their knees before the month of March was out. At such a time it could be Gandhiji alone who in a spirit of magnanimity advised suspension and it redounded to the credit of the Jaipurians that they obeyed the leader's command without a murmur.

7. But what has been the Jaipur Government's response to such a grand gesture on Gandhiji's part ? Voluntary suspension continues in letter and spirit and the authorities seem to think that the Prajamandal is vanquished, crushed; It seems that not very creditable activities are carried on to cajole and mislead some of the Satyagrahis in detention camp. Probably, it is being represented to the new Prime Minister that the Government need not do any thing; they should simply wait for some time more and they would find that there are very few people left in the detention camps, the rest having grown wiser and left after an expression of regret. I wonder if the authorities can really be so unimaginative or it may be that some lesser people are misleading others in high positions for reasons best known to themsleves.

9. In the circumstances Prajamandal people are getting impatient, and it seems, that while after successful Khadi Exhibition fresh plans are being prepared to carry on Gandhiji's wishes about constructive work, almost everybody is looking forward to fresh advice from him. Mahatma Gandhi's patience and his policy of giving the opponent a long rope are well known. But Praja Mandal circles are confident that Gandhiji would not want people to wait indefinitely. Gandhiji's latest statemenr that Satyagraha cannot remain suspended

for ever has cheered the people who hope that the present political stalemate cannot now last long.

9. Now, what is the new Prime Minister going to do? He must have tried to study the situation. But has he cared or will he care to understand things from the Prajamandal view point also? I don't yet know what way his mind is working. But in my own humble opinion Mr. Todd has, in any case, to remember:—

(i) that the entry of a public leader of Seth Jamnalal Bajaj's eminence who is a born citizen of Jaipur can't remain banned for long,

(ii) that an association like the Prajamandal which has got prominent citizens as its leaders and workers and which has got the sympathies of almost the entire population can't remain unregistered and what is more important cannot die for want of technical registration and that no activities on the part of Government officials and their hirelings—whatever their shape or form may be—can succeed in undermining the influence of the Prajamandal.

(iii) that in these days of political progress all over the country civil liberties and even resposible government cannot for long be withheld in an awakened State like Jaipur and that "reforms" in the shape of "Advisory Boards" are not going to satisfy any section of the politically conscious people of Jaipur.

10. In conclusion, may I appeal to Mr. Todd that he may and may I hope that he will rise to the occasion and realise that it is better to take genuine action before it is too late and settle the outstanding questions between theh Government and the Prajamandal with far-sightedness and with grace and in a spirit of good will and broad mindedness? This and no other way I hope he will appreciate that peace and tranquillity lie. It can be hoped that the Prajamandal people will not fail to respond if an approach is made in the proper spirit. In case nothing of the sort happens the resumption of Satyagraha sooner or later may be regarded as the only alternarive which can hardly be expected to be a better alternative for the Government. Let us, however, wait and watch and hope for the best.

हॉबी

२५–७–४०

किसी को बाग लगाना, किसी को तीतर, कबूतर पालना, किसी को ताश खेलना, किसी को गाना बजाना, किसी को जुआ चोरी करना, किसी का प्रसिद्ध हो जाना हॉबी होती है तो सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की हॉबी क्या हो ? मेरी राय में सार्वजनिक कार्यकर्त्ता की हाबी जानबूझ कर दुःख पाना होनी चाहिए। चारपाई पड़ी है परन्तु उस पागल को जमीन पर सोने में मजा आना चाहिए। चाहे तो अच्छा भोजन मिल सकता है, पर उसे साधारण भोजन में ज्यादा मजा आना चाहिए। सवारी तैयार खड़ी है पर उसे पैदल चलकर खुश होना चाहिए। दूसरे लोग कांम कर देने को तैयार खड़े हैं, पर उसे अपना काम अपने हाथ से करने का शौक होना चाहिए, आराम से पड़ा रहा जा सकता है, पर उसे दौड़ धूप करने की सनक होनी चाहिए। निश्चिंत होकर सोया जा सकता है, पर उसको इधर उधर की दर्द भरी कथाओं से बेचैन रहना चाहिए। खूब शान से रहा जा सकता है, पर उसे अपमान करवाने में मजा आना चाहिए। पिटाई से बचकर रहा जा सकता है, पर उसे पिटाई के बिना चैन नहीं पड़ना चाहिए। अच्छा मजे का तकदीर है, पर उसे यह कहलवाने में आनन्द मिलना चाहिए कि इसका मुकद्दर ही ऐसा है। जिसमें यह हॉबी नहीं है, जो आराम की तलाश में रहता है—मैं जानता हूं कि वह काबिल होते हुए भी अधूरा सार्वजनिक कार्यकर्त्ता ही हो सकेगा, यह मेरा मानना है। मैंने कुछ बेढंगे ढंग से इस बात को लिखी है, परन्तु तत्वतः यह बात सही है।

(अखिल भारत देशी राज्य लोक परिषद की
राजपूताना प्रान्तीय सभा के बुलेटिन से)

अंग्रेज मन्त्री शिष्टमण्डल

७-५-४६

अंग्रेज मन्त्री शिष्ट मण्डल दिल्ली में कई हफ्तों तक चलने वाली अपनी अनन्त बातचीत का अन्त करके शिमला की ऊंचाई पर पहुंचा है। इस घड़ी वह आशावाद दिखायी नहीं दे रहा है, जो कुछ समय पहले नेताओं के उद्गारों से प्रकट होता था। जो हो रियासती जनता का ध्यान इस बात पर से नहीं हट सकता कि शिष्टमण्डल ने अब तक उसकी उपेक्षा की है। वह यह भी जानती है कि उसकी मर्जी के खिलाफ किसी दूसरे का किया हुआ फैसला उस पर लादा नहीं जा सकता। अंग्रेज सरकार और शिष्ट मण्डल का अभिप्राय बहुत अच्छा होगा। रियासती जनता अपने आपको कांग्रेस के हाथों में आसानी से सुरक्षित मान सकती है। सम्भव है कि राजा मण्डल का इरादा भी अब की बार भारतीय स्वाधीनता में बाधा पहुंचाने का नहीं होगा। परन्तु इन सभी बातों का यह मतलब नहीं हो सकता कि रियासती जनता की उपेक्षा कर दी जाये, और उसे अपने हितों का सच्चा और मौलिक प्रतिनिधित्व का अवसर न दिया जाये। यह हो ही नहीं सकता कि रियासती जनता का प्रतिनिधित्व राजा मण्डल या उसके कर्मचारी कर दें। रियासती जनता का प्रतिनिधित्व प्रतिक्षण उसके बीच में रहने वाले उसके अपने सेवक ही कर सकते हैं। शिष्ट मण्डल के प्रयत्नों का क्या परिणाम होगा? यह भारतीय जनता को मालूम नहीं है। भारतीय जनता एक और अखण्ड भारत चाहती है। भारत में किसी प्रकार के पाकिस्तान के लिये कोई गुंजाइश नहीं है। सभी सम्बन्धित लोगों को समझ लेना चाहिये कि भारत में रियासती पाकिस्तानों के लिए भी कोई स्थान नहीं हो सकता अंग्रेज मन्त्री और भारतीय नेता भले ही राजा मण्डल के परामर्श से एक बार पहली घाटी को पार करलें, परन्तु पहली घाटी के पार कर चुकते ही दूसरी घाटी को भी तुरन्त पार करना ही होगा। और वह होगा रियासती जनता की सलाह

से और उसकी मर्जी से। यदि संयोग से पहली घाटी ही पार न हुई तो रियासती जनता वही करने को तैयार मिलेगी जो आदेश कांग्रेस की ओर से उसे मिलेगा। फिलहाल रियासती जनता शेष भारत की भांति सिर्फ इन्तजार कर सकती है। कहा जाता है कि जो कुछ होने वाला है वह थोड़े ही समय के बाद मालूम हो जायेगा। तब हमें कल्पना के घोड़े दौड़ा कर क्यों परेशान होना चाहिए।

एक बात और है। देखा जाता है कि राजामण्डल की पिछली घोषणा का स्वयं राजामण्डल पर कोई खास असर नहीं हो रहा है। इधर उधर से दमन की खबरें ज्यादा आती हैं। यदाकदा कहीं से यह खबर मिलती है कि वैधानिक सुधारों की योजना बनाई जा रही है या घोषित की जा रही है। परन्तु आमतौर से रियासतों में जनता को पूरे, नागरिक अधिकार भी प्राप्त नहीं हैं। और राजपूताना में तो खासकर जागीरी प्रथा बड़े जोश के साथ अपनी तैयारी करती हुई नजर आती है। कौन कह सकता है कि यह तैयारी जागीरी प्रथा अपने अन्त के दिन देखने के लिये नहीं कर रही है। जनता का काम संगठित और मजबूत होना है। हमें कहीं भी अपनी शक्ति को अव्यवस्थित रूप से नहीं लुटा देनी है, बल्कि उसे बनाना है और वंचित करना है—आने वाले महान् कार्य के लिये। यदि हम आवश्यक शक्ति जुटा पायेंगे तो फिर हमें एक ओर शिष्टमण्डल की उपेक्षा करने में कोई कठिनाई नहीं होगी और दूसरी ओर राजा मण्डल की अब तक की हुई और आगे होने वाली घोषणाओं पर अवश्य ही अमल करा पायेंगे। शक्तिशाली होकर जैसी चाहेंगे वैसी घोषणा हम खुद कर देंगे, न कि हम किसी दूसरे की घोषणा का इन्तजार करते रहेंगे।

Circular to Regional Councils from Pandit Hiralal Shastri ,General Secretery, All India State's Peoples' Conference

28-5-47

I propose to submit a report to the Standing Committee when it meets next on the 11th and 12th June, 1947. It is, therefore, necessary to collect definite and authentic information regarding :—

(1) (i) States which have joined or agreed to join the Constituent Assembly of India.

(ii) States which still hesitate as to whether they should join or not;

(iii) States which are known to be opposed to the idea of joining the Constituent Assembly for this reason or that.

(2) (i) States which are sincerely trying to keep pace with the times by taking steps for immediate constitutional advance and by setting up the necessary machinery for constitution making along with the framing of the Indian and Provincial Constitutions;

(ii) States which are inactive and seem simply pursuing a policy of wait and see; and

(iii) States in which the Princes or the Administrations are siding with and organising and using the reactionary elements against the national movement.

(3) States in which the administrations and communal or otherwise disruptive forces are suspected of getting together to take advantage of the possibility of disturbed conditions in the country in the near future.

The present situation is extremely delicate and still more difficult times are ahead. At a time like this, we cannot afford to take a narrow view based on certain local conditions only but we must also have before us a full and clear picture of the entire Indian set up as it may gradually emerge. I shall be grateful, if you kindly arrange to send me a brief account, as indicated above, of the situation obtaining in your region to enable me to prepare the proposed report for the Standing Committee. I shall expect your reply by the 10th June, 1947 in any case.

(From All-India States' Peoples' Conference Bulleten)

General Secretary's Note

28-11-47

The division of the country which was based on the false, untenable and poisonous two-nation theory has created an unforeseen communal situation in which thousands of people have entirely lost their judgment. It appears that the communal trouble, though it is really not so widespread as it might seem to be, has thrown everything into the background. Practically, the whole energy of the newly established Government of the Indian Dominion has had to be devoted to the restoration of normal conditions. As criticism is always easier than performance our own people who should have known better may well talk lightly of the Government's too many shortcomings but I have no doubt that the Government of India have done their very best and that no other Government could have done better in the most difficult conditions which had to be suddenly confronted.

I feel convinced that if such an extraordinary situation had not arisen the Ministry of States would have been able to do a great deal more to help the popular cause in the States. The sudden disappearance of British Paramountcy had already put fantastic ideas into the heads of many of the Princes about their own status. Then the disturbed conditions which followed gave them an opportunity to create a fool's paradise for themselves. While some thought in terms of extending their territories, others took advantage of the communal frenzy and planned to fortify themselves against all possible movement of the progressive forces. Thus some of the Princes, at least, have unwisely played an unpatriotic role.

With the exception of one or two all the States that were invited have acceded to the Indian Dominion. The position of Jammu and Kashmir was most delicate and difficult. But now we have every

reason to believe that the State has been saved. It is as certain as anything that Hyderabad has no way out. There is hardly any doubt that the Nawab of Junagadh's folly will make him pay the heaviest price for it. Let any one of the Princes, therefore, not think for a moment that they will be left free to do whatever they like. The Princes have been given more than enough concession but they must understand that the States will have to fall in line with the Provinces and none of the concessions will help them to stand where they are.

The people of the States have only to make themselves strong and their legitimate demands will become irresistible. The difficulties which they will have to face are too many. All the reactionary forces will combine and co-operate with the Princes in their designs. In some of the States it will be possible for the Princes to find their own men among the people who will be bolstered up to pose as popular representatives. In others, the entire energies of the people's organisations may be spent and even wasted in the working of partial reforms which may not help them to strengthen and consolidate their position. The advent of power may create unhealthy differences in the people's organisations. Our local patriotism may give us a narrow outlook which may prevent us from taking a larger view of things.

All these and similar other difficulties will have to be overcome. We may have to make the biggest sacrifices, for in times to come it will not be a question of making speeches and paper propaganda. Either a fight may be avoided or if there is a fight in a particular State we shall have to paralyse the administration of the State concerned by using all the means at our disposal. In some States it may, more or less, be a military situation, and there may be tough fighting with feudalism. Generally speaking, we need not be out for a fight, but if one is forced upon us we are expected to accept the challange and face the consequences. Personally, I hope that wiser counsels will prevail in the bigger States as has been the case in Travancore, Mysore etc., and responsible government will be set up therein without avoidable delay. I trust the mediocre States too will agree to some adjustment of grouping or amalgamation and a final solution will also be found for the remaining tiny States and Estates. We shall not be unustified in expecting all possible help from the Centre, but I do firmly believe that our salvation lies in our own hands and our future will depend on our own inner strength.

बापू अमर हो गये

३०-१-४८

इस महाभयंकर वज्र पात के अवसर पर मुझ में कहां कुछ कहने की शक्ति है ? जिसका भीतर से कलेजा फट रहा हो, जिसकी अश्रु धारा रुकना नहीं चाहती है, वह कैसे कुछ कह सकता है ? पूज्य वापूजी संसार के वड़े से वड़े महापुरुष थे, उन्होंने अपने जीवन में वड़े से वड़े कार्य किये और आज उनकी मृत्यु के द्वारा वड़ा से वड़ा वलिदान हो गया। और न जाने क्यों मुझे भरोसा होता है कि प्यारे वापूजी के इस अन्तिम वलिदान का वड़ा से वड़ा और साथ ही अच्छा से अच्छा परिणाम निकलना चाहिए ? वापूजी ने सत्य की उपासना से न केवल इस देश की किन्तु समस्त संसार की सेवा में अपना जीवन विताया। और वही उपासना और वही सेवा करते हुए उन्होंने मृत्यु पायी। वापूजी पहुंचे हुए योगी थे और उन्हें कहां मृत्यु का भय था ? उनके लिए तो मृत्यु भी आनन्ददायक थी। फिर भी आज अचानक वापू के चले जाने से करोड़ों दिल रो रहे हैं और तड़प रहे हैं। जिसके हाथ से तथा जिन किन्हीं की प्रेरणा से यह काम हुआ है उन सव को भगवान सुवुद्धि दे, वे अव भी सोचें कि ऐसा करके उन्होंने देश का और संसार का कितना अहित किया है और हिन्दूधर्म को कितना कलंकित किया है ? जो हो, वापू जी गये पर वे अमर भी हो गये। महात्मा गांधी की जय ।।

सुनते ही किसी काम के लिए इन्कार करते तो मैं समझ लेता था कि वे उस काम को जरूर करेंगे। पंडितजी चतुर न हो सो बात नहीं है, पर उनका व्यवहार बच्चों का सा सीधा सरल होता था।

जवाहरलालजी की एक खूबी का ख्याल मुझे बार बार होता है। मैं अपने जाती तजुर्बे से कह सकता हूँ कि स्वभाव, रहन सहन, बोलने काम करने आदि के तरीके में कई तरह का फर्क होते हुए भी उनके साथ सहज ही अपनापन अनुभव होता रहता था। उन्होंने खुद तो एक बार गुमनाम से लिखा था कि उनकी मुस्कराहट ने एक प्रकार की अभ्यास की हुई कला का रूप ले लिया है। पर मैंने देखा कि उनकी सरल मुस्कान में एक जादू जैसा था जो हर किसी का दिल मोह लेता था। साथ चलने वाले के गले में हाथ डाल कर चलना, मिलते ही कभी कभी चिपट जाना, मीठी मन्द मुस्कान के साथ निहारना, होले होले रुक रुक कर बोलना, "यह भी हो सकता है, वह भी हो सकता है" ऐसे भीतरी द्वन्द्व को सरलभाव से प्रकट कर देना, यह सब जवाहर की करामात थी।

पंडितजी को काम करने की शक्ति और आदत गजब की थी। जहाँ तक मुझे मालूम है जब दुनिया सो जाती थी तब पंडितजी के लिखने लिखाने के काम का समय शुरू होता था। वे कहीं भी होते, किसी भी काम में होते, कैसी भी हालत में होते, पर पत्र का उत्तर तुरन्त भेजते थे। मुझे एक भी मौका याद नहीं है जब उनसे अपेक्षित उत्तर नहीं मिला हो या देर से मिला हो। पंडितजी की समय की पाबन्दी भी कमाल की थी। मेरा पंडितजी से पहले से समय लेकर मिलने का काम कम पड़ता था, पर जब जब ऐसे मौके आये तो उनसे मिलने के सिलसिले में इन्तजार करते हुए समय खोने की नौबत कभी नहीं आयी। उनके यहां दरबारी ठाठ बिल्कुल नहीं था। अकेले में झटपट बात हुई और छुट्टी। बिना बुलावे के, बिना पूर्वनिश्चित समय के उनके यहां पहुँच जाना और वहां से अकसर कुछ खापीकर आना कितना आनन्द देने वाला होता था।

अखिल भारत देशी राज्य लोकपरिषद् के जमाने में पंडितजी का कमेटियों में काम करने का तरीका एक दम नजदीक से देखने को मिला। ज्यादातर मौकों पर तो वे महत्वपूर्ण प्रस्तावों को पहले से ही लिखकर ले आते थे। कभी कभी तो पहली बैठक में जो बातें होती थीं उनके आधार पर प्रस्ताव लिखकर दूसरी बैठक में लाते थे। उनके लिखे हुए प्रस्ताव में शायद ही किसी के लिए कुछ कहना बच पाता था। उनकी मूल प्रकृति रईसाना यानी हठ पकड़ने वाली जैसी थी। पर संभवतः पश्चिम की शिक्षा-दीक्षा ने उन्हें जनतांत्रिक यानी लचकीला बना दिया था। पहली स्थिति के कारण वे चिढ़ जाया करते थे, रूठ जाया करते थे। दूसरी स्थिति के कारण वे झुक जाते थे और दूसरों की बात मान लेते थे। पर कुल मिला कर कमेटियों पर उनका व्यक्तित्व हावी होने वाला था।

वनस्थली के लिए पंडितजी के दिल में विशेष प्यार था। जब वे पहले पहल वनस्थली आये तो उन्हें मामूली झोंपड़े में रहना पड़ा और उससे भी मामूली शौचालय से उन्होंने काम चला लिया। आश्विन के तपते हुए सूर्य को उन्होंने सामने से एक अखबार की मदद से झेला। भाषण के लिए खड़े हुए तो बोले—"मैं लड़की होता तो अपनी तालीम के लिए वनस्थली आता"। सभा में खुशी की लहर दौड़ गयी और हम लोग गर्व से फूल कर कुप्पे हो गये। बाद में हमें आज तक भी हर किसी से सुनने को मिलता रहता है—वनस्थली के लिए जवाहरलालजी ने ऐसा कहा था। बाद में एक बार पंडितजी ने मुझे लिखा—वनस्थली विद्यापीठ भारत में अद्वितीय संस्था है। और फिर एक बार उन्होंने लिखा व्यक्तियों को उतम शिक्षा देने के साथ साथ वनस्थली राष्ट्रीय एकता के लिए भी काम करती है। वनस्थली पंडितजी के प्यार को कभी नहीं भूलेगी।

पंडितजी महानों में महान् थे, पर्वतों में हिमालय थे। देश की आज़ादी की लड़ाई में उनका हिस्सा सबसे बढ़कर था। देश के निर्माण के लिए उनका परिश्रम अकथनीय था। विश्वशान्ति के लिए उनके प्रयत्न सर्वमान्य थे। पंडितजी खुद रईस थे, पर गरीब और दलित के लिए उनके दिल में दर्द था। पंडितजी सितारों के बीच सूरज के समान थे और उनकी चाल सूरज की चाल जैसी सततवाहिनी थी। पडितजी की उड़ान हवाई थी। शायद इसीलिए उनके व्यवहार में आवश्यक कठोरता न आ पाती होगी। संसार का व्यवहार चाहता है कि झटपट निर्णय कर डालें और कर गुज़रें। हैदराबाद और कश्मीर के दोनों उदाहरण हमारे सामने हैं। पर इस पर से पंडितजी की विशालता घटती नहीं है। बल्कि इस समय मुझे महसूस हो रहा है कि उनकी विशालता बढ़ जाती है। कुछ हो, संसार पंडितजी को "महतो महीयान्" मानेगा।

अब जरा सी २७ मई की सुनिए। २६ मई को संध्या समय मैंने तय किया कि २८ को सवेरे पंडितजी के यहां जाना, उन्हें उनके प्यारे फूल भेंट करने, और उनके स्वास्थ्यलाभ और दीर्घायुष्य के लिए दो एक स्वरचित पद्य उन्हें देने। २७ मई को प्रातःकाल ४-४॥ बजे मैंने सपना देखा। कोई मुझे पुकार रहा है—"हीरालालजी, उठो शादी में चलो"। मैं सपने में ही चौंक कर उठकर देखता हूं तो पंडितजी खड़े हैं। मुझे तो कुछ सूझा नहीं और पंडितजी मेरे चिपट गये। शादी में जाने के बारे में मैंने कुछ ना नू सी की होगी, पर ठीक से याद नहीं है। सपने में ही सही, पंडितजी से मेरा यह सुखद मिलन उस समय हुआ, जब मैं सोचता हूं, उनके हलका हलका दर्द शुरू हुआ होगा। मैंने अपने आपको धन्य समझा। पर सपने में शादी अशुभ मानी जाती है। मैं उस समय क्या जानता था उसी दिन वह ग़मगीन शादी होने वाली थी।

पंडितजी से मेरा अपना सम्बन्ध प्यार का होते हुए भी ऐसा था जैसा किसी ज़रा से खरगोश का महाकाय गजराज से हो। २७-२८ मई को मुझ से कुछ न बन

पड़ा। एक दो दिन बाद कुछ कलम चली जिसने यह लिखा—एक "संसार का महामानव गया, आदर्शवादी विचारक व लेखक गया, राजनीतिक नेता गया, विश्वशान्ति का अग्रदूत गया—भारत का हृदय-सम्राट गया, कांग्रेस का प्राण गया, बापू का उत्तराधिकारी गया, देश की आजादी का अदम्य सेनानी गया, राष्ट्र की समृद्धि का विधाता, गया। पर मुझ जैसे नाचीज़ को बार बार लगता है कि "मेरे प्यारे पंडितजी गये।" पर अब तो जो कुछ होना था सो हो गया। आज सिसकियां भरना और आंसू बहाना हमारा काम नहीं है। वीर जवाहर से और प्यारे पंडितजी से जो विरासत हमें मिली है, उसके लायक़ हमें बनना है, उस महापुरुष की यादगार अपने कार्यो से हमें बनानी है। जय जवाहर। जयहिन्द। जय जगत।

(श्री सीतारामजी सेकसरिया की धर्मपत्नी श्रीमती भगवानदेवी से हम लोगों का ममत्वपूर्ण सम्बन्ध था। उनके स्वर्गवास के समय २५ जुलाई, १९६५ को मैं कलकत्ता में उनके पास था। उसी दिन मैंने रतनजी को जो पत्र लिखा वह नीचे प्रस्तुत है।

—हीरालाल शास्त्री)

भगवान् देवी

आखिर आज भगवानदेवी चली गयीं। सवेरे ७॥ वजे के करीव अन्त आया। १०॥ वजे उन्हें नीचे लाना शुरू हुआ। फिर एक खास तरह की मोटर में (जो इसी काम की होती है) उन्हें श्मशानघाट ले जाया गया। ११॥ वजे उन्हें विजली के 'भट्टे' में प्रवेश करा दिया गया। १॥ वजे उनके फूल चुन लिये गये। २ वजे हम लोग लॉर्ड सिन्हा रोड आ गये। फूल वाले लोटे की ओर इशारा करके मैंने पन्ना से कहा—पन्ना, मां इतनी सी वची है! एतद्धि रामायणम्! अपने डेरे पर मैं २॥ वजे पहुंचा। मैंने फोनोग्राम वुक कराया—४ वजे आपको तार लगा।

२. भगवानदेवी अर्से से वीमार थीं। और एक अर्से पहले ही सीतारामजी ने तमाम आशा छोड़ दी थी। पर भगवानदेवी निभती रहीं। पिछले महीनेक भर से वे ज्यादा क्षीण हो गयी थीं। मैं २२ ता० को यहां पहुँचा—उससे ३-४ दिन पहले वे एकदम जाने को तय्यार हो गयी थीं, पर फिर रुक गयीं। २२ ता० को मैंने उन्हें देखा—आंखें वन्द थीं, चेहरा शान्त लगता था, सारे शरीर में सोई आयी हुई थी। सीतारामजी ने कहा—शास्त्रीजी आये हैं। वे वोलीं—शास्त्रीजी आये हैं—फिर इसी वात को एकाध वार उन्होंने दोहराया। मेरा दिल भर आया और हम लोग वाहर चले आये।

३. २३ ता० को मेरी भगवानदेवी को देखने के लिए जाने की हिम्मत नहीं हुई। शाम को जाता, पर देर हो गयी है, पाठ-प्रार्थना वाकी है, इत्यादि वहाने निकाल लिए मैंने। २४ ता० को मैं सवेरे १० वजे के करीव आया। सीतारामजी ने मेरा नाम लिया और मेरी प्रेरणा से पूछा—रतनजी को वुलालें क्या? वोलीं—आपकी इच्छा हो

तो वुला लो, सीतारामजी ने कहा—तुम्हारी क्या इच्छा है ? वोलीं—वुला लो तो रतनजी से मेरा मिलना हो जाए। सीतारामजी ने पूछा—रतनजी की याद आती है क्या ? वोलीं—याद तो आती ही है। सीतारामजी ने फिर पूछा—और किसकी याद आती है ? वोलीं—वाई की याद आती है। वाई को भी वुलालें, सीतारामजी ने कहा। वे वोलीं—वुला लो, दोनों से ही मिलना हो जाएगा। थोड़ी देर सव लोग चुप रहे। फिर अचानक ही भगवानदेवी ने पुकारना शुरू कर दिया—'मेरी वाई, मैं तुम्हें कैसे छोड़कर जाऊंगी, तुम्हें कैसे भूलूंगी—तुम दोनों को मैं कैसे भूलूंगी।' वड़ा कारुणिक दृश्य उपस्थित हो गया। मुश्किल से सीतारामजी ने उनसे "नारायण नारायण" और "श्रीराम श्रीराम" वुलवाया। २४ ता० को ही शाम तक भगवानदेवी के कुछ निमोनिया का सा असर हो गया और १०३ डिग्री वुखार वन गया, मैंने सीतारामजी से टेलीफोन पर कहा—यह अन्त का वुखार है—डॉक्टर चाहे कुछ भी कहें, पर आज रात को अन्त आएगा, अचानक आएगा।

४. मैंने सीतारामजी से वहुत कहा—मैं रात को आप लोगों के पास ही ठहरूंगा। पर वे यही कहते रहे—आपको तकलीफ होगी। मैंने कहा—मैं तो कहीं भी पड़ा रहूँगा। पर सीतारामजी नहीं माने। मैंने पहले भी ऐसी इच्छा प्रकट की थी, सीतारामजी के पास, भागीरथजी के पास भी। मैंने जवरदस्ती करना नहीं चाहा। मेरा पक्का विश्वास हो गया था कि भगवानदेवी रात नहीं निकालेगी। पर रात उन्होंने निकाल दी। मुझे वताया गया कि भगवानदेवी प्रलाप में भी किसी भजन की धुन के द्वारा हरि स्मरण करती रही थीं, यथा "अखियां हरि दरसन की प्यासी।" डायविटीज के कारण भगवानदेवी को दिखता नहीं था पर उस रात उन्होंने कहा वताया कि मुझे आप लोग सव दिखाई दे रहे हो। पून्ना, विजया निमटने आदि के लिए अपने अपने घर चली गयीं—सीतारामजी घूमने चलेगये।

पीछे से अचानक भगवानदेवी को उल्टी आयी और उल्टी आने के साथ ही वे विदा हो गयीं। उल्टी आएगी ऐसा लगने तक पड़ौस में विद्या थी। वह डॉक्टर को फोन करने को गयी। वापस आयी तो भगवानदेवी को उल्टी आ चुकी थी और वे जा चुकी थीं। सांस वन्द होना देखने में नर्स के अलावा शायद दूसरा कोई नहीं था। सामने के हाल या क़मरे से ही पहुंचना मुश्किल था, सो मैदान से या किसी दूसरी जगह से कोई कैसे पहुंच सकता था ? मैं खुद रात को सीतारामजी के पास ठहर जाता तव पता नहीं क्या करता। वहुत करके तो दूसरों की तरह उस स्थान से एक वार तो मैं भी हट जाता—और हट ही जाता तो मैं भी असल मौके पर हाजिर नहीं रह पाता। या हो तो यह भी सकता था कि मैं सीतारामजी को घूमने जाने से रोकता। कहा नहीं जा सकता भगवानदेवी की अवस्था में मुझे कुछ विशेष उस समय दिखायी देता या न देता। क्योंकि काम चलाऊ वे ठीक ठाक सी दिखायी दे रही वतायीं। मैं भगवानदेवी से मिल सका और

उनके फूल चुनने के समय तक हाजिर रह सका इसे मैं अपना सद्भाग्य मानता हूँ। आपसे मेरा २३ ता० को ही फोन हो सकता तो शायद आप भी समय पर आ जातीं।

५. शरीरान्त हो जाने पर टेलीफोन करना शुरू हुआ। मेरे पास फोन पहुंचने में देर लग गयी। मैंने खुद ने पहले तो टेलीफोन किया नहीं। असल में मैं रात में ही गुमसुम हो गया था—सवेरे उठा तो और भी ज्यादा गुमसुम था मैं। चन्द्रकला से या किसी दूसरे से एक भी शब्द मैं नहीं बोला। टेलीफोन करने में मुझे झिझक ही होती रही। आखिर बाहर निकलने को हुआ तो चन्द्रकला को फोन मिलाने को कहा—पर सीतारामजी का फोन खाली ही नहीं मिला। तब मैंने समझ लिया कि सब कुछ हो चुका है। एक मित्र से मेरा समय पहले से था–सीतारामजी के मकान के पास ही–मैं पहले उस मित्र के घर पहुंचा-भगवानदेवी की बात कहना मैंने शुरू किया–इतने में फोन आ गया कि घण्टा भर हुआ भगवानदेवी को। यह सुनते ही मैं गाड़ी में बैठकर सीतारामजी के पास पहुंच गया। १०–१५ आदमी और ५–७ स्त्रियां आ चुकी थीं मैंने दूर से ही भगवानदेवी का दर्शन कर लिया–फिर सीतारामजी को देखा–वे विचलित नहीं मालूम पड़े–बल्कि सदा की भांति कुछ मुस्कराते हुए से बोलते दिखायी दिये। मुझे सीतारामजी की मजबूती से आश्चर्य और संतोष हुआ।

६. पुरुषों और स्त्रियों का आना बना रहा। उनमें से कम से कम दो चार तो मुस्कराते हुए से ही सीतारामजी से मिले, जैसे कि कुछ विशेष हुआ ही नहीं था। दो एक स्त्रियां भी हंसती हुई सी आयीं—हंसते हुए दिखाई देने व बात करने का तरीका जो पड़ता जा रहा है। लोग आपस में बातें तो कर ही रहे थे—बात चीत के दौरान में हंस भी रहे थे। मैं इस सारे दृश्य से हैरान रहा। मैं एक विशिष्ट साथी के पास बैठ गया–वहां पर पहले तो एक दूसरे मित्र लम्बी चौड़ी बातें करते रहे–फिर विशिष्ट साथी भी कुछ कहने लगे—यह सम्भव नहीं था कि मैं कुछ भी न बोलूं, पर बातचीत में हिस्सा लेना मुझे बुरा लग रहा था। मैं बार बार भगवानदेवी का ध्यान लगाता था–ज्यादातर यह विचार आता था कि मैं अब इस घर में किसके पास आऊंगा–मेरी खातिर कौन करेगी? सीतारामजी का कैसे क्या होगा? पन्ना को देखता था, विजया को देखता था और देखता था अशोक और दिलीप को। विद्या को देखा, कुसुम को देखा। कुसुम और विजया के चेहरों पर ज्यादा असर था। सत्यनारायण के चेहरे पर काफी असर था, ज्यादा असर था राममनोरथ के चेहरे पर। सीतारामजी पर जाहिरा कोई असर नहीं दिखायी देता था, हालांकि उनके अविचलित चेहरे पर भी एक "श्यामत्व" की रेखा कम से कम मुझे तो साफ दीख रही थी। जब भगवानदेवी की अर्थी को कमरे से बाहर किया जाने लगा उस समय कुछ स्त्रियों की आंखों में आंसू दिखायी दिये, मैं अपने आंसुओं को मुश्किल से रोक सका।

७. प्राकृतिक चिकित्सा की बात चली तब मैंने उपर्युक्त विशिष्ट साथी से पूछा—खाने के मामले में आपकी प्राकृतिकता कहां से शुरू होती है? बनाई हुई रोटी

से ? आटे से ? अनाज से ? अनाज के पौधे से ? पौधे के डंठलों से ? जिस मिट्टी व खाद से अन्न के पौधे उगते हैं उस मिट्टी-खाद से ? विशिष्ट साथी खुद तो सस्ते मंहगे का ध्यान रखते हैं, पर प्राकृतिक चिकित्सा माने पैसा चिकित्सा । यही बहस दूसरे मित्र कर रहे थे । मुझे खबर नहीं और लोग क्या क्या बातें कर रहे थे—पर वह सारा वातावरण मेरे अनुकूल नहीं था । स्त्रियों ने राम धुन शुरू की, फिर कुछ भजन भी गाये । विशिष्ट साथी बीच बीच में मृत्यु के बाद होने वाले दस्तूरों की बात भी करने लगते थे । मैंने उनसे कह दिया—भाई साहब कुछ भी तो जरूरी नहीं है—लाश को फेंक ही दिया जाए तो क्या बिगड़ जाए ? जैसे घर पर स्त्रियों ने वैसे श्मशान भूमि में रामधुन व भजन का काम दो एक पुरुषों ने ठीक ठाक तरीके से किया सो मुझे अच्छा लगा ।

८. श्मशान घाट पर दो एक मित्रों को मैंने सुधार की बातें करते सुना । मोटर में लाना सुधार, बिजली के 'भट्टे' में देना सुधार । मैंने सोचा ऐसा करने में बुराई भी क्या है ? पर इसमें आखिर सुधार क्या रखा है ? भगवानदेवी को पलंग पर से नीचे नहीं लिया गया—ऊपर से नीचे लाने लगे तब अर्थी को उठाने वाले तो "रामनाम सत्त" बोलते ही सही—पर जहां तक मेरा अनुमान गया—उन्हें रोका गया । आखिर "राम नाम" को रोकने में क्या सुधार हो गया ? वे "राम नाम" बोलते तो भी कोई खास बात नहीं थी । लम्बे चौड़े शहर में गाड़ी में ले जाने में सुविधा तो है ही है—और बिजली के भट्टे में डालने से भी काम तो हल्का हो ही जाता है । वहां न पिण्ड की बात आती है न कपाल क्रिया की, एक छेद में से चिता की सी लपटें भट्टे के भीतर उठती हुई देखी जा सकती हैं और एक ट्रे में थोड़ा सा भस्मावशेष अन्त में लिया जा सकता है । भगवानदेवी को मृत्यु के बाद गोटे वाली रंगीन लूगड़ी उढ़ायी गयी, बाल ठीक किये गये, बिन्दी लगायी गयी, नथ पहिनायी गयी, चूड़ियां भी पहनायी गई होंगी, पुष्प चढ़ाये गये, लोगों ने बार-बार और जगह-जगह प्रणाम किया । मतलब यह है कि चाहे निष्प्राण सही, पर जब तक शरीर को अग्नि में नहीं दिया जाता, तब तक यानी आखिर से आखीर तक उसके प्रति वैसी ही भावना रहती है, जैसी जीवित अवस्था में, बल्कि उससे भी कुछ ज्यादा । कम से कम मूर्ति के प्रति जैसी भावना हो सकती है, वैसी तो मान ही सकते हैं । उसी समय एक दूसरी लाश आयी थी । वह किसी के बाप की होगी ? जो मुझे मृत व्यक्ति का लड़का सा लगा वह हाथ की पंखी से लाश को हवा कर रहा था—ऊपर बिजली का पंखा तो चल ही रहा था । एक मित्र ने कहा—देखो वह क्या कर रहा है । मैंने कहा—हवा मूर्ति को भी करते हैं—मन्दिरों में चर्खी वाले पंखे लगे रहते थे जिन्हें बाहर बैठने वाले आदमी खेंचा करते थे । मूर्ति का श्रृंगार किया जाता है सब कुछ किया जाता है—यदि लाश सड़ गल जाने वाली न होती तो उसे भी मूर्ति के तौर पर रखा जा सकता था । कुछ बड़े लोगों की लाशों को मसाले में रखा गया, ऐसा भी हमने सुना है । समय समय पर फोटो लिये गये—भट्टे में उतारे जाने से पहले जो फोटो लिया गया उसमें सीतारामजी, अशोक, दिलीप, सत्यनारायण आदि के साथ मैं भी शामिल किया गया था ।

९. मैं अनुभव करता हूं कि लोगों को कोई बात भीतर से छूती नहीं है। शादी में भी वैसे ही जा सकते हैं और मौत के मौके पर भी वैसे ही। एक भला आदमी तो एकदम हंसता हुआ ही सीतारामजी से मिला और जब तक उनके पास बैठा रहा, हंसता हुआ ही उनसे बात करता रहा, और यह सब श्मशान भूमि में। मुझे कभी कभी लगने लगता है हृदयहीनता ही तो सुधार का नाम नहीं है ? अवहेलना, अश्रद्धा, सुधार का नाम है क्या ? वेद शास्त्रों को समुद्र में फेंक देने के लिए कहना सुधार की बात है क्या ? किसी भी कोड को न मानना सुधार है क्या ? छोटी मोटी बातों में सुधार जिसमें कुछ लगे नहीं, खुद को आंच नहीं आवे। और जो खास बात है खुद को जोर आने की उसमें वही जो चलता आया है। एक दिखावा छोड़ते हैं, दूसरे दिखावे अपना लेते हैं। जो ज्यादा खर्चीले होंगे। मुझे खुद को दस्तूरों का कोई शौक नहीं है, कुछ भोंडे दस्तूर तो मुझे भी बुरे लगते हैं—पर मैं दस्तूरों को लेकर किसी की निन्दा करना पसन्द नहीं करूंगा। चोटी कटा लेना सुधार, जनेऊ को निकाल फेंकना सुधार, साथ ही अखाद्य खाना सुधार और अपेय पीना सुधार। धोती न पहनना सुधार, घाघरा लूगड़ी न पहनना सुधार, गीत न गाना सुधार—साथ ही अधनंगा रहना सुधार, पार्टियों में नाचना सुधार, टाई लगाना अनिवार्य सुधार, काले कपड़े पहन कर जीमने को जाना सुधार, पार्टियों में जूते पहन खड़े खड़े खाना सुधार—सब सुधार ही सुधार है।

१०. पर यहां तो बात भगवानदेवी की थी न ? उन्होंने चाहा बताया कि उन्हें मोटर में ले जाया जाए, बिजली से दाह किया जाय। यह सब कुछ हुआ सो ठीक ही हुआ। झूठमूठ का रोना पीटना हो तो भी ठीक नहीं है। बहुत सी नयी बातें ठीक हो सकती हैं—पर सब पुरानी बातें खराब हों सो नहीं है—सब पुरानी बातें अच्छी भी नहीं है। अच्छा बुरा क्या सो बहुत सोचने की बात है। अपने मन में आगयी और करने लगे और अपन ने न करना चाहा तो छोड़ दिया—यह तो उच्छृंखलता की सी बात हो जाएगी, सो देश में, समाज में हो भी रही हैं।

११. जो हो छोड़िए इस बात को। अपने तो भगवानदेवी का अभाव हो गया है—जानते थे यह होने वाला है, चाहे जब हो सकता है। चाहना शुरू कर दिया था कि जल्दी हो जाए तो उनकी खुद की तकलीफ मिट जाए—पर जब हो गया तो मुझे धक्का लगे बिना न रहा। मुझे बार बार लगता है कि यह इस प्रकार की ममता न हो तो फिर मनुष्य जीवन में कुछ रखा ही नहीं है। बीमार के पास बैठने में समय बिगड़ता है, उसकी सेवा करने में समय बिगड़ता है, शुरू से आखीर तक अन्त्येष्टि संस्कार में शामिल होने में समय बिगड़ता है—पता नहीं किस काम में समय नहीं बिगड़ता है—और समय का सदुपयोग किस काम में होता है। और मनुष्य जीवन का ध्येय ही आखिर क्या है ? जिन्दगी में हम एक दूसरे को चाहें, मरने पर भी चाहें। मर जाने पर भी भावना तो रहती ही है न ? इसीलिए तो कहता हूं—मौत जिसको कह रहे वह जिन्दगी का नाम है।

१२. भगवानदेवी बड़ी बहादुर थीं—उन्होंने मौत का मुकाबला डट कर किया—वे अन्त तक जूझती ही रहीं। आसान काम नहीं रहा काल के लिए भी उन्हें ले जाना। उन्हें कष्ट भी बहुत हुआ। कई बार यही कहने लगी थीं—ऐसा डॉक्टर, बुलाओ, जो ऐसा इंजेक्शन दे दे कि बस सब काम नक्की हो जाए। दूसरों को तकलीफ न हो इसका खयाल भी उन्हें पूरा था—मोटर में इसलिए ले जाना कि ऐसे भारी शरीर को उठाकर ले जाने में लोगों को तकलीफ होगी। वे पक्की भी बहुत थीं—और उनकी ममता भी खूब थी। मेरी खातिर के लिए तो वे हर घड़ी तय्यार रहती थीं—मुझे उनके पड़ौस में अपनापन अनुभव होता था, सुख मिलता था। वे बहुत बीमार रहने लगी थीं तब भी उन्हें मेरे शौक की चीज रावड़ी बनाने या कम से कम अपनी निगरानी में बनवा लेने का आग्रह रहता था। भगवानदेवी जीवन में भी बहादुर थीं—उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया खुशी से। पढ़ी लिखी नहीं थीं यह भी उनका गुण ही था। पढ़ने लिखने पर किन्हीं किन्हीं 'स्त्रियों' में से ये बातें प्रायः निकल जाती हैं। आज तो त्याग का नामोनिशान मिटता जा रहा है—स्वार्थ ही स्वार्थ—अपने छोटे से बच्चे की खातिर भी त्याग नहीं करतीं कोई कोई भली आदमिनें। २-४ महीने के बच्चे को दाई नर्स के भरोसे छोड़कर चली जाती है, वह बच्चा न जाने किसका बन जाता है। बम्बई में एक बच्चा अपनी मां के पास रो रहा था दाई के पास जाने के लिए। भगवानदेवी ने सीतारामजी का साथ आदर्श नीति से दिया—भगवानदेवी के हार्दिक सहयोग के बिना सीतारामजी को बड़ी मुश्किल होती। भगवानदेवी की याद सदा के लिए बनी रहे—उनके जीवन से प्रेरणा ली जाती रहे।

जीवनकुटीर, वनस्थली

(कार्य-विवरणों में से कुछ उद्धरण)

(मई, १९२९ से दिसम्बर, १९३१ तक के प्रथम कार्य विवरण में से)

परन्तु आजकल तो कुटीर के अंतर्गत सेवकनिवास नाम की संस्था है, जिसके द्वारा सेवकों के रहन सहन के नियंत्रण का प्रयत्न होता है, और जिसका एक सम्मिलित भोजनालय है। जो निवास में नहीं रहना चाहें उनको अब अनुभव के वाद अलग रहने की आजादी दे दी गयी है। वेतन भोगी सेवकों के अतिरिक्त दो तीन विद्यार्थी भी कुटीर में बहुधा रहते ही हैं, ये प्राय अपना खर्च आप उठाते हैं और विद्यार्थी रूप में बहुधा जहां तक हो सके ऐसों को लिया जाता है जिनसे काम सीख चुकने पर थोड़ी बहुत आशा तो हो। कार्यकर्ता तैयार करने का यही एकमात्र जरिया है, नहीं तो हाथ में लिये हुए काम के लिए ही शक्ति नही हो तो बाहर वालों को ट्रेण्ड करने का भार लिया ही क्यों जाए? ऐसा भार निभे भी कैसे? जो अलाउन्स मिलता है उसके अतिरिक्त परोक्ष या अपरोक्ष किसी भी प्रकार का लाभ कुटीर से न उठाया जाए, इसके लिये हम बराबर प्रयत्न करना चाहते रहते हैं। कुटीर की हानि किसी के हाथ से हो जाए, तो उसके दाम उसकी असावधानी साबित होने पर अवश्य ही वसूल किये जाते हैं। कुटीर के मकानों का किराया, कुटीर की सवारी का किराया सब कुछ चुकाया जाता है। क्षेत्र में बना हुआ कपड़ा ही सेवकों के खुद के काम में लेने का नियम भी है। इसके अलावा एकतंत्र में रहने, रखने का यथाशक्य प्रयत्न भी होता ही है। यह सब कुछ होने पर भी अब कुटीर का जीवन उतना कष्टमय नहीं रहा है। साधारण स्थिति वाले गृहस्थ के लिये कुटीर वैसा कड़ा स्थान नहीं है जैसा पहले पहल ध्यान में आ जाए। अधिकांश लोग तो अपनी जीवनयात्रा के लिये कम ही कमा सकते हैं और अपना गुजर करते हैं—ऐसे लोगों को जब निर्वाह योग्य अलाउन्स कुटीर से मिल जाए तो वे दुनियावी तरीके से भी घाटे में नही रहें और लोक सेवा द्वारा सुकृत लाभ हो सो अलग। तथापि हमारे देश

में राष्ट्रीयता के विरुद्ध वेहद "पारिवारिकता" और देशभक्ति के विरुद्ध वेहद "घर भक्ति" भरी पड़ी है। चाहे जैसा आत्महनन करके साधारण नौकरियों में फंसे रहना हमारे देशवासियों को स्वीकार है और प्रिय मालूम होता है, परन्तु लोक सेवा जैसे पवित्र कार्य में भाग लेकर अपने जीवन को सफल करने की ,वहुत कम आदमियों को सूझती है। इस सेवक विषयक संताप के साथ साथ क्षेत्र की जनता के अज्ञान और कुज्ञान की कल्पना होने से एक वार तो दृढ़ आशा का वंध भी टूट सा जाता है। दृढ़ निश्चयी सेवक मिल जाए और जनता का कुज्ञान नष्ट हो जाए तो और सव प्रकार की कठिनाइयों को झेला जा सकता है। काम करना है, और अवश्य ही करना है, सव प्रकार के संकट झेलने हैं; परन्तु सव ओर की स्थिति का एक साथ विचार आ जाने पर तो यही आर्तस्वर निकलता है कि इस प्राचीन भूमि का भी भगवान मालिक है। हमने अपने अनुभव से सीखा है कि अपने आपको इस प्रकार भगवान की गोद में रखकर अभिनिवेश रहित होकर, फलाशा छोड़कर, न चला जाए तो ग्राम सेवकों का जीवन ही असम्भव हो जाए। परन्तु यह सव कुछ भगवत्साक्षात्कार की भांति केवल अनुभवगम्य ही है।

अनुभव का सार

(१९३२ के कार्य विवरण में से)

जिस प्रदेश में जिस काम को हमने हाथ में लिया है उस प्रदेश का और उस काम का सही सही अंदाजा प्रत्यक्ष अनुभव करने से ही हो सकता है। इस प्रदेश में हमारे अनुभव की मुख्य बात यह है कि लोगों को अपने सार्वजनिक स्वरूप का लेशमात्र भी अन्दाज नहीं है, इस कारण से सार्वजनिक सेवकों के सच्चे स्वरूप को समझने में उनको खूब कठिनाई हो रही है। लोग भोले हैं तभी पकड़ ले जाएंगे, फौज में भरती कर ली जायगी, ये लोग 'एकमेक' करने वाले हैं, इतना रुपया लग रहा है, इतना परिश्रम कर रहे हैं तो इनका अवश्य ही कुछ न कुछ स्वार्थ होना चाहिए—इत्यादि, बातों का सहज में ही प्रचार हो जाता है। हम ऐसा अनुभव करते हैं कि बाहर से रुपया आकर लगने से, बाहर के आदमियों द्वारा प्रचार होने से ही ऐसी बातों को फैलने का मौका मिला है। परन्तु प्रचार-क्षेत्र में से रुपया निकाल कर काम करना और हूबहू 'गांव वाला' ही बन जाना तो कठिन ही नहीं—इस समय तो असंभव है। हमारे अनुभव की दूसरी बात यह है कि लोग पींजने व बुनने को नीच जातियों के करने के काम समझते हैं और कातने को केवल स्त्रियों का काम। जिनको इस प्रदेश का अनुभव नहीं है, उनको इस कठिनाई की कल्पना करा देना असंभव के बराबर है। आषाढ़ महीना लग जाने के बाद कोई पींजन लिये हुए मिल जाय तो इसको यहां पर महा-अपशकुन माना जाता है। एक परिवार अपना लाभ समझकर पींजन मोल ले लेता है, खूब उत्साह से तमाम घर के खूब पींजना सीख लेते हैं, बराबर काम करते रहते है, परन्तु कोई रिश्तेदार या मेहमान आ जाता है तो शर्म के मारे पींजन को छिपाकर रख दिया जाता है। एक परिवार घर भर के लिए पींजना, कातना और बहुत सारा बुनना कर लेता है; परन्तु कहीं दूसरे गांव अपनी जाति वालों में बात चलती है तो कह देता है, 'नहीं जी, हमारा क्या काम है—पंडित जी ने कहा तो हमने पींजन ले लिया, कभी कभी लड़के बच्चे पींजना बुनना भी कर लेते हैं—हमने तो कभी हाथ लगाया नहीं।" यह बात किसी ब्राह्मण बनिये की

नहीं है--यह है निरे ग्रामवासी की बात--जिसको वात्सायन के "कार्पासस्य सूत्रकरणम्, सूत्रस्य वानं आच्छादनार्थम्" आदि सूत्रों का हवाला देकर भी नहीं समझाया जा सकता है कि पींजना, कातना, बुनना गृहस्थ के घर के काम है। हमारे अनुभव की तीसरी बात फुरसत के विषय की है। हमने सुना और पुस्तकों में पढ़ा कि भारत में ग्रामवासी को वर्ष भर में १२० दिन, १५५ दिन, २१० दिन से अधिक काम नहीं मिलता। यह सब कुछ ठीक ही होगा। परन्तु हमने जो प्रत्यक्ष अनुभव यहां पर किया है उस पर से हम यह कह सकते हैं कि गर्मी के चार महीनों में से आधी से ज्यादा नक्की फुर्सत नहीं निकल सकती। वारिश व सर्दी के दिनों में कभी कभी किसी समय किसी किसी को थोड़ी फुरसत मिल जाती है सही, परन्तु उसका उपयोग करना सिखा देना टेढ़ी खीर है। ग्रामवासी को अपने कड़े परिश्रम का फल मिलता है या नहीं, यह दूसरी बात है--परंतु उसको सदा किसी न किसी काम में बंधा रहना पड़ता है और हमने तो जानबूझकर ठाली बैठे हुए ग्रामवासी वहुत कम देखे हैं। चौथी बात हमने यहां पर यह देखी है कि ग्रामवासी अपने कपड़े के लिये अपने घर की कपास रख सके तब तो ठीक, नहीं तो उसको कपास मोल ले आना अस्वाभाविक मालूम पड़ता है। हमने थोड़ी पूंजी से काम शुरू कराने की यथाशक्य चेष्टा की, उसमें कुछ सफलता भी मिली परन्तु इधर के ग्रामवासी को थोड़ी पूंजी से काम शुरू करना तुच्छ मालूम पड़ता है। किसान की हालत पहिले से ही वहुत अधिक खराब थी, इस आर्थिक संकट की वाढ़ ने तो बिल्कुल ही सफाया कर दिया है। हम आजकल कपड़ों के लिये कपास रखने का प्रचार कर रहे हैं। हम देखते हैं लोग कपास रखना चाहते हुए भी कितने ज्यादा मजबूर हैं। यहां की कठिनाइयों की चर्चा करते समय यहां की मौसमी, लकड़ी-संबंधी, रंगाई-छपाई की रुचि संबंधी और वस्त्र कला के पतन संबंधी कठिनाइयों को भी भूला नहीं जा सकता। यहां पर गर्मी की मौसम की प्रचंडता उन दिनों में कई प्रकार के विघ्न पैदा कर देती है, कुटीर के छान-छप्पर कई बार उड़ जाते हैं, ऐसे मौसम में ही बुनना सिखाना होता है सो बुनना सीखने वालों के स्थान के प्रबन्ध की समस्या ही रहती है। इस प्रदेश में लकड़ी की जो कमी है सो भी वस्त्रकला के उद्धार में वाधा पहुंचाती है। यहां पर स्त्रियों के लिए जो खास तरह के रंगे हुए व छपे हुए कपड़े अपनी-अपनी जाति के रिवाज के माफिक चाहिए उनको बाजार से मोल ले आने में ज्यादा सुभीता मालूम पड़ता है। इसके अलावा इधर बुनने की कला इतनी नष्ट हो गई कि ७-८ नंवर के सूत को बुनने वाले भी मुश्किल से मिलते हैं—जो मिलते हैं सो सूत को हजम न कर जाएं तो वदल अवश्य ही लें—और बुनाई चार्ज करें डवल। हमारे सामने दो चार मामले तो ऐसे आए कि बुनकर लोगों से सूत भी ले गए और बुनाई भी अगाऊ ले गए और कपड़ा आज आता है!

जीवनकुटीर, वनस्थली

(१९३३ के तृतीय कार्य विवरण से)

पिछले विवरणों में ग्रामवासी की दुर्दशा का चित्र हम सहृदय पाठकों के सामने रख चुके हैं। इसलिए इस विवरण में अधिक लिखने का विचार नहीं होता है। हम रचनात्मक कार्यों में साध्य के तौर पर कम परन्तु साधन के तौर पर अधिक विश्वास रखने वाले हैं। परन्तु एक अजीब तरह की भूल भुलैया बनी हुई होती है—जिसमें से रास्ता खोज लेने की आवश्यकता प्रति क्षण बढ़ती जा रही है। समाज शरीर के अंग अपने अपने कर्त्तव्य को पहचानलें और धर्म के मार्ग पर चलें तो कोई सवाल नहीं रहे। परन्तु यह तो होता हुआ नहीं मालूम होता है। अधर्म करने वालों को परवाह नहीं है—और शायद एक हद तक अपने अधर्माचरण का ज्ञान भी नहीं है। अधर्म के शिकार की आंख तो बिल्कुल बन्द ही है। पिछले दिनों में हमने कुछ प्रकाशित अंकों का संकलन किया है जिनसे मालूम होता है कि दूसरे लोग ग्रामवासी के पास से कितना लेकर उसको कितना वापिस लौटाते हैं—मालूम नहीं यह बात देहात के लिये मुजिर होगी या किनके लिये ? यह समाज मन्दिर जर्जरित हो चला है—हम लोग रचना करने वाले यत्र तत्र चूना ईंट लगा कर इसे खड़ा रखना चाहते हैं—परन्तु नींव में खराबी हो जाने के बाद सारी इमारत को एक साथ संभाले बिना सफलता कहां तक मिलेगी यह महा प्रश्न है जो विचार करने वालों से उत्तर मांगता है। परन्तु इस समय इस चर्चा को ज्यादा बढ़ाने से लाभ नहीं है।

हमने क्या देखा और क्या सीखा ?

(१६३४ के चतुर्थ कार्य विवरण से)

पिछले ८० महीनों के २४०० दिनों में हमने जो कुछ देखा है उस दृश्य का चित्र खेंच देने की ताकत इस कलम में नहीं है। हृदय में दया की, सहानुभूति की और न्याय की भावना को लेकर कोई इन गांवों में आए और देखे तो ! समाज सेवियों को और दूसरे नगर निवासियों को अपने आराम की पड़ी है, और यहां तो २ पैसे रोजाना का स्टैण्डर्ड भी निभता रहे तो लोग अपने आपको सुखी समझें। जिसको प्रति दिन ३ पाव पक्का जौ, ज्वार, बाजरा कुछ भी मिल गया वह तो वहां पर 'भागवानों' की गिनती में है। और यह दशा क्यों है ? इसलिए नहीं कि बेचारे ग्रामवासी परिश्रम नहीं करना चाहते अथवा परिश्रम नहीं करते, न इसलिए ही कि उनके पास काफी काम नहीं है, और वे बेकार ही बैठे रह जाते हैं। न इसलिए ही कि वे आजकल की गईगुजरी हालत में भी अपने गुजारे लायक पैदा नहीं कर रहे हैं। हमारी तो निश्चित सम्मति है कि उनकी ऐसी दशा होने का खास कारण यही है कि उनके पास से उनकी पैदावार नष्ट होते होते आज वह दिन आ गया है, जब न तो उनके पास पैदावार बढ़ाने के साधन ही रहे हैं और न पेट भरने का जरिया ही। जिन गांवों को हमने देखा है उनमें १००) खर्च करने से २००) की पैदावार खेती से होती है। नक्की बचत के पूरे १००) में भी दो आने रोजाना की मजदूरी काम करने वालों को नहीं मिलती, फिर उन्हीं १००) में से अनिवार्य देनदारियों को चुकाने के बाद तो ग्रामवासी के पास क्या खाक बचत रह जाएगी ? ऐसी स्थिति में ग्रामवासी न जाने जिन्दा ही कैसे रहता है, और न जाने वह आयन्दा रह ही कितने दिन जाएगा ? इस वस्तुस्थिति को बदलने का क्या उपाय है ? इसके बदलने के लिए देश के प्रत्येक ग्राम के रोम रोम में रम जाने वाले ऐसे असंख्य फक्कड़ चाहिएं जो आवश्यकता हो तो सत्य की खातिर अपनी जान की बाजी लगाने को भी

तैयार हों। वे फक्कड़ ग्रामवासी को बतलाएंगे कि उसकी यह दुरवस्था है और इस दुरवस्था के अमुक कारण हैं और यह दुरवस्था अमुक उपायों के द्वारा सचमुच मिटाई जा सकती है। ग्रामवासी बहुत कुछ अन्धकार में है और अपनी असमर्थता का अनुभव करता है, परन्तु हमने यह देखा है कि अपने विषय में सच्ची बात सुनने पर वह छटपटाता है और पूछने लगता है कि तो बताइये आखिर हम क्या करें? यह शुभ लक्षण है। हमारा विश्वास है कि जब तक ग्रामवासी अपनी चिर निद्रा को त्यागकर बलपूर्वक खड़ा नहीं हो जाता है और आत्म विश्वास के साथ खुद आगे बढ़ने के लिए कदम नहीं उठा लेता है तब तक 'हमाँ तुमां', 'परोपकारियों', 'परमार्थियों' और 'सेवकों' से कुछ होना जाना नहीं है। प्रचारक चाहिएं तो ऐसे चाहिएं जो जन समुदाय के साथ घुल मिल जाएं, उसके जीवन में अपने को मिला डालें, और ऐसी स्थिति में पहुंचने के बाद वे उस 'पर' को ही भूल जावें जिस 'पर' का उपकार करने की, जिस 'पर' की सेवा करने की अहंकार मूलक कल्पना उनके चित्त में हुआ करती है। हजारों मील की दूरी पर टिमटिमाते हुए इस आदर्श को प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा रखने वाले तुच्छ जन हम आज क्या बताएं?

तर्क वितर्क

(१६३५ के पंचम कार्य विवरण से)

६—हमने सीधे शब्दों में अपने काम का निचोड़ पेश कर दिया है। हमको रुपया देने वाले अपने रुपये की फिक्र कर सकते हैं। परन्तु हमने अपनी जवानी में से ७ वर्ष काट डाले इसके लिए हमको भी तो कुछ फिक्र होनी चाहिये ? मैं अपने दूसरे साथियों के लिए बोलने का अधिकार अपने पास न समझूं उस हालत में भी मैं तो निश्चित रूप से यह कहने को तयार हूं कि हमारा यह प्रयोग सही तरीके से हुआ है, और इसलिए मुझको आज परम संतोष है। मुझको (अपने वर्तमान दृष्टिकोण के अनुसार तथा कथित) 'राजनैतिक मामलों' में भाग लिये बिना और खण्डन मण्डन में शामिल हुए बिना ग्रामों में 'शुद्ध रचनात्मक कार्य' का प्रयोग करके देखना था—वह प्रयोग करके देख लिया गया और जो परिणाम निकला वह प्रकाशित किया जा रहा है। अन्न स्वावलम्बन और वस्त्र स्वावलम्बन का सिद्धान्त उत्तम से उत्तम है। परन्तु देश की जो स्थिति है वही बनी रहे तो किसी भी प्रकार से स्वावलम्बन की गुंजाइश रहना मुश्किल है। मैं यह सोच कर चला था कि एक ओर मैं और दूसरी ओर ग्रामवासी; यानी जिन कामों में किसी तीसरी पार्टी की जरूरत नहीं होगी वे काम भी बहुत करने को हैं। हम किसी तीसरी पार्टी के पास नहीं गये तो कई तीसरी पार्टियां स्वयं हमारे पास आने लग गईं। हमने अर्से तक किसी का खण्डन मण्डन नहीं किया, तब भी गांव में से 'पण्डे पुजारियों' को धर्मनाश का भय हो गया और पंच पटेलों को अपनी जान खतरे में दिखाई देने लगी; कस्बे में बोहरे और छोटे-मोटे राज कर्मचारी अपने आप ही घबड़ाने लगे। यहां तक कि सर्व-शक्तिमान, पुलिस राज को भी यह आशंका बराबर बनी रही कि कहीं हम लोग दरपर्दा उसके तख्त को उलटने का षड़यन्त्र तो नहीं कर रहे हैं। भोले ग्रामवासियों ने हमको नया-नया देखा और देखा प्रधानतया 'पींजन वाहक' के रूप में—तीसरी पार्टियों ने उसके जचा दी कि हम लोग इस क्षेत्र में धर्म का लोप करने के लिए उतरे हैं। कई

समझदार ग्रामवासियों ने हमसे साफ़ कहना शुरू कर दिया—"महाराज ! आप हमारी भलाई चाहते हैं परन्तु पींजन से हमारी क्या भलाई हो जायगी—यह अशुभ और अपवित्र वस्तु तो हमको अपने सम्बन्धियों की निगाह में गिरा और देगी। यह तो आप रहने दीजिये—हमें तो बोहरा लूट कर खा रहा है। उसका कुछ इलाज बताइये। हमें तो सबसे बड़ा दुःख "राज" का है—उसका कुछ इलाज बताइये।" हमने बोहरे का इलाज सहकार सभा द्वारा बतलाया—परन्तु कितने साधनों वाली कितनी सहकार सभायें हों तब काम चले ? और राज के मामलों में न बोलने की तो हमने सौगन्ध खा रखी थी। कुछ लोगों ने समझ लिया कि ये तो डरपोक हैं—असली काम तो कुछ करते नहीं हैं—और पींजन को लिये फिरते हैं।

तब भी हमारे संसर्ग से लोगों को नई बातें मालूम हुईं, उनमें एक प्रकार की मन्द-मन्द जागृति की लहर भी आई—और इस रचनात्मक कार्य के पीछे अर्से तक पड़े रहने से लोगों की निगाह में हम जाने पूछे और एक हद तक 'आबरू वाले' सिद्ध हो गये। हमारे कार्य के प्रत्यक्ष फल की कीमत तो उतनी सी ही मालूम पड़ती है जितना रुपया हमने अपने और अपने आश्रितों के पेट में रख लिया—परन्तु इस लम्बे प्रयास के बाद हमने ग्रामवासियों के बीच में रह कर भविष्य में उनका कुछ काम कर देने के लिये जो पात्रता पैदा करली और भोले ग्रामवासियों को हमारे स्वरूप की जो जरा सी झलक हो गई—बस यह सूक्ष्म परिणाम तो अमूल्य हुआ है और इसीलिये मेरे हृदय में उमंग है।

छठवें कार्य विवरण से

जीवनकुटीर बनने, बढ़ने और एक बार सिमटने की घटनाओं ने एक प्रकार से इतिहास का सा रूप ले लिया है। कुटीर की स्थापना के समय के मेरे मनोभाव प्रथम कार्य विवरण में इस तरह प्रकट किये गये थे—"इस प्रकार के प्रत्यक्ष कार्यक्रम को लेकर किसी ग्राम में डेरे लगाना और वहां पर किसी ऐसे स्थान की रचना करना जहां पर "ब्राह्मणत्व" का—लोक सेवा का—वातावरण हो और लोकसेवियों का एक संघ खड़ा करना जिसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य सेवा ही हो।" ७॥ वर्ष के अनुभव के बाद जो पांचवा कार्य विवरण तैयार किया गया था उसके अन्तिम पृष्ठ पर ये वाक्य लिखे गये थे—"जीवनकुटीर अपने मिशन की पूर्ति जब तक आवश्यकता हो करता रहे। बाकी फक्कड़पन के सिद्धान्तों को मानने वाली हमारी छोटी मण्डली अपना काम अलग (?) करेगी। इस मंडली के लोगों के पास सार्वजनिक संपत्ति नहीं होगी, उनको कहीं पर मकान बनाकर रहने की जरूरत नहीं होगी। गांव गांव में घूमना और प्रचार करना, जहां पर जैसा कुछ मिल गया उसी को खा पीकर संतोष मानना, परिवार के मोह को छोड़ना या उसे स्वावलम्वी बनाना, दोनों ही बातें न हो सकें तो मित्रों के भरोसे परिवार को छोड़कर निश्चित हो जाना—फक्कड़ पन्थ का यही तरीका होगा।" मई, १९२९ में जीवन कुटीर की स्थापना हुई, सितम्बर, १९३६ में कुटीर ने अपने कलेवर को समेट लिया और कुटीर परिवार के लोग 'राजस्थान संघ' में शामिल हो गये। दिसम्बर, १९३९ तक जीवनकुटीर राजस्थान संघ की शाखा के रूप में रहा। और जनवरी १९४० से अप्रैल, १९४१ तक मेरे दिमाग में वही बनता विगड़ता रहा। प्रारम्भ से लेकर सितम्बर, १९३६ तक का कार्यविवरण जीवनकुटीर की छपी हुई पुस्तिकाओं में सुरक्षित है। अक्तूबर, १९३६ से सितम्बर, १९३७ तक की राजस्थान संघ की छपी हुई रिपोर्ट मौजूद है। अक्तूबर, १९३७ से दिसंबर, १९३९ तक के शेष २७ महीनों में राजस्थान सघ काल में तथा जनवरी, १९४० से अप्रैल १९४१ तक के १६ महीनों के अनिश्चित काल में जीवनकुटीर के लोग निरंतर लोकसेवा में लगे रहे। किन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि उन सबके जीवन का एकमात्र उद्देश्य लोक सेवा बना या नहीं। अथवा वे फक्कड़पन की कल्पना के अनुसार आचरण कर सके या नहीं। मुझे इतना मालूम है कि वे लोग कठिनाइयों की कम से कम पर्वाह करते हुये काम करते रहे और मैं मानता हूं कि वे ऐसा ही करते रहेंगे। उन्हें निर्वाह व्यय राजस्थान संघ से मिला, प्रजामण्डल से या शिक्षा कुटीर से या किसी दूसरी संस्था से मिला, किसी मित्र से मिला अथवा मिला या न मिला—परन्तु वे लोग दुःखं सुखं अपने काम पर लगे रहे—यह सन्तोष मानने की बात है।

प्रारम्भिक

(अक्षय तृतीया, १९८६ से अक्षय तृतीया, २०११
तक के पच्चीस साला कार्य विवरण में से)

१९१८ में किसी समय अचानक न जाने किस तरह मेरे चित्त में एक लहर पैदा हुई कि मुझे गांव में आश्रम बनाकर रहना और ग्रामवासियों की सेवा करनी चाहिए। यह विचार पक्का होता गया और मैंने १९२३ में एक नाटक लिखा जिसमें मैंने ग्राम-सेवक का चित्र प्रस्तुत किया। १९२१ में पढ़ाई समाप्त करने पर मैं तत्कालीन जयपुर राज्य की नौकरी में फंस चुका था, पर मेरा मन उस काम में नहीं था। नौकरी करता हुआ भी मैं अपने समाधान के लिए एक न एक सेवा कार्य करता ही रहा। मेरे यह बात जमी हुई थी कि निःस्वार्थ और चरित्रवान सेवकों के बिना देश का उद्धार नहीं हो सकता। आगे जाकर ऐसे सेवक तैयार हो सकें, इस दृष्टि से मैंने एक हाई स्कूल में एक पीरियड प्रतिदिन पढ़ाना शुरू किया और उस जरिये से कई सालों तक विद्यार्थियों के सम्पर्क में रहा। साथ ही राजस्थान छात्रालय चलाया गया और बाद में एक छात्र मण्डल भी स्थापित किया गया। अपने कुछ मित्रों के सहयोग से "प्रयास परिषद" की स्थापना की गयी। पर इन कामों से मेरी भूख नहीं मिट सकती थी। आखिर बड़ी कशमकश के बाद १९२७ के अन्त में मैंने राज्य की नौकरी छोड़ दी।

(१६५४-५६के दो साल के कार्य.विवरण से)

मई, १६५४ से मई, १६५६ तक के पच्चीस महीनों के मोटे रूप में छः छः महीनों के चार हिस्से किये जा सकते हैं। पहले छः महीनों में नवजीवन कुटीर के कार्यक्रम के लिये जयपुर शहर, उदयपुर शहर, बीकानेर शहर के अलावा जयपुर, नागौर, पाली, झुंझुनू व सवाई माधोपुर का मेरा दौरा हुआ और फलस्वरूप ४० से अधिक नवजीवन केन्द्रों की स्थापना हो गई। नवजीवन केन्द्रों के लिए समाचार पत्रों की छांट की गई तथा पुस्तकों की तीन तरह की छोटी-छोटी सूचियां तैयार की गईं। पत्रिकायें तैयार करवा कर छपवाने के लिए कई एक विषयों का चुनाव किया गया। "स्वतन्त्र भारत" नाम की एक पत्रिका छपवाई गई। नवजीवन कार्यक्रम से सम्बन्ध रखने वाले लेखों का संग्रह छपवाया गया। घरेलू चिकित्सा के उद्देश्य से सस्ती औषधि पेटियां प्राप्त की गईं। नवजीवन कुटीर के कार्यकर्ताओं के दौरे भी समय समय पर होते रहे।

दूसरे छः महीनों में मेरा कुछ समय तो विनोबाजी के साथ यात्रा में लगा और अधिकतर समय मुख्यतया धनसंग्रह की दृष्टि से बाहर जाने में लग गया। धनसंग्रह की आग्रहयुक्त निश्चित योजना के अभाव में वह काम थोड़ा बहुत ही हो सका। फिर तीसरे छः महीनों का अधिक समय मेरे कांग्रेस में शामिल हो जाने के फलस्वरूप तत्सम्बन्धी काम में मुझे लगाना पड़ा। इस बीच में कर्ज की स्थिति बड़ी विकट हो गई। नवजीवन कुटीर को कायम करने में और उसका खर्चा चलाने में रुपया खर्च हुआ तथा दैनिक 'लोकवाणी' को जीवित रखने के लिये काफी रुपया लगा देना पड़ा। ऐसी हालत में सब कामों को छोड़कर पहले कर्ज से मुक्ति पा लेने का पक्का निश्चय किया गया। तदनुसार आखरी छः महीने आवश्यक धनसंग्रह करने और तमाम हिसाब को चुकती करने में लग गये।

इस प्रकार इन दो सालों की बात जीवन कुटीर का कर्ज चुक जाने की बन गई और नवजीवन कुटीर का काम जो शुरू के महीनों में ठीक ठीक जमने लगा था वह आखिर

में उजड़ा हुआ सा हो गया । नवजीवन कुटीर के पांच वेतनभोगी कार्यकर्ताओं में से केवल एक कार्यकर्ता कुटीर की संभाल में रह गया, बाकी चार कार्यकर्ता दूसरे स्थानों पर चले गये । यह सब होते हुए नवजीवन कुटीर के कार्यक्रम के लिये मेरा आग्रह बना रहा । भविष्य के लिये विचार भी चलते ही रहे । अन्त में यह नतीजा निकला कि नवजीवन कुटीर के द्वारा समाज में नवजीवन की चेतना लाने का काम लोक शिक्षण आदि रचनात्मक समाज सेवा के द्वारा किया जाय । नवजीवन कुटीर के दो साल के आमद खर्च का दाखिला जीवन कुटीर के वही खातों में कर दिया गया और आगे के लिये नवजीवन कुटीर की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मासिक आर्थिक व्यवस्था कर ली गई । नवजीवन कुटीर का रजिस्ट्रेशन करा लेने का फैसला कर दिया गया । साथ में यह निश्चय भी हो गया कि जीवनकुटीर को वनस्थली में कायम रखा जाय और भले ही उसका रजिस्ट्रेशन भी करा लिया जाय । नवजीवन कुटीर अपने नवजीवन कार्यक्रम को चलाने और जीवनकुटीर पूर्ववत् कार्यकर्ताओं को सहायता पहुंचाने वाली संस्था बनी रहे ।

जीवन कुटीर के पच्चीस साल के आमद खर्च का गोशवारा कुटीर के पच्चीस साल के कार्य विवरण के परिशिष्ट में दिया गया था । इस कार्य विवरण के परिशिष्ट में २७ साल के आमद खर्च का गोशवारा दिया गया है जिसमें नवजीवन कुटीर का दो साल का आमद खर्च भी शामिल है । अब जीवन कुटीर के वही खातों के अनुसार कुटीर को किसी का देना लेना नहीं है । भविष्य में जीवन कुटीर अपने प्राप्त साधनों के आधार पर अपना काम करेगा । वैसे ही नवजीवन कुटीर अपने प्राप्त साधनों के अनुसार अपने कार्यक्रम को चलायेगा । दोनों संस्थाएं अलग अलग होंगी और उनका हिसाब किताब आदि सब कुछ अलग अलग होगा ।

वनस्थली में बत्तीस साल
(नामक सोविनिर से)

जहां तक याद है किसी समय १९१८ में इस विचार का उदय हुआ था कि गाँव में एक आश्रम जैसा स्थान बनाकर बैठा जाए और ग्रामवासियों की रचनात्मक सेवा की जाए। तब से १९२७-२८ तक उक्त विचार की पुष्टि होती रही और उसे कार्यान्वित करने की दृष्टि से विद्यालय में, छात्रावास में व बाहर छात्रों के व अन्य अन्य सेवाभावी युवकों के साथ सम्पर्क साधते हुये तैयारी के तौर पर कुछ न कुछ प्रयास चलता रहा। १९२८-२९ में विशेष तय्यारी की गयी और १२ मई, १९२९(अक्षय तृतीया, संवत १९८६ वि०)को जयपुर राज्य में वनस्थली नाम के एक गांव में जीवनकुटीर वनस्थली नाम की संस्था की स्थापना कर दी गयी।

जीवनकुटीर की स्थापना के मूल में दो विचार थे। एक तो चालू राजनीति के विषय में तटस्थ रहते हुए अर्थात् संभावित राजनैतिक संघर्ष में लिप्त न होते हुए रचनात्मक कार्यों द्वारा जन-शक्ति को जागृत व संगठित करना और दूसरे प्रत्यक्ष सेवा कार्य के द्वारा जन-सेवकों का प्रशिक्षण करना। मई, १९२९ से अक्तूबर, १९३६ तक यह कठिन साधना चली। फलस्वरूप वस्त्र स्वावलम्बन, अक्षर-शिक्षा, रोगी सेवा, कृषि प्रयोग, सहकार-सभा, सामाजिक सुधार आदि कार्यक्रमों के द्वारा ठोस ग्रामसेवा होने के साथ-साथ सेवक कार्यकर्ताओं की एक मंडली तैय्यार हो गयी। जैसा कि आगे बताया जायगा, १९३५ में संयोगवश वनस्थली में ही जीवनकुटीर के अलावा शिक्षाकुटीर की स्थापना की गई।

रचनात्मक ग्राम-सेवा के दौरान यह महसूस किया गया कि राजनीति में हिस्सा लिये बिना और आवश्यकता पड़ने पर राजनैतिक संघर्ष में पड़े बिना जनशक्ति का संगठन होना मुमकिन नहीं होगा। इसलिये १९३६-३७ में जीवनकुटीर के कार्यकर्ताओं ने जयपुर राज्य प्रजामंडल के संगठन में पूरा योगदान दिया। १९३९ में नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए सत्याग्रह किया गया जिसमें जनता की चेतना जागृत हुई और प्रजामंडल सुव्यवस्थित और शक्तिशाली संगठन बन गया। इन सालों में कई पुराने व कुछ नये कार्यकर्ता के निर्वाह व्यय का भार जीवनकुटीर पर रहा और कार्यकर्ता चिंतामुक्त होकर अपना पूरा समय काम में लगा सके।

वनस्थली विद्यापीठ की रिपोर्टों में से

हमारा स्वप्न

१६३५-३६

हमको भली भांति मालूम है कि ऐसी संस्था को चलाने के लिये जितने सामर्थ्य और जितने कौशल की जरूरत है उसके मुकावले में हमारे पास कितना सा सामर्थ्य और कौशल है। परन्तु पिछले ७-८ वर्षों में हमने दूसरों को हवा में उड़ते देखा है और हम ख्वाहमख्वाह सोचते हैं कि क्यों नहीं हम भी वैसे ही आकाश की सैर करने लग जाएंगे। अव तक हमको जीवनकुटीर की ओर से वड़ी भारी सहायता मिली और यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि श्री शास्त्रीजी की ओर से जितना सहारा मिला उतना न मिलता तो हम दोनों के वल के भरोसे तो यह गाड़ी न जाने कव की और कहीं ही रुक कर खड़ी रह जाती। जीवनकुटीर का जो स्वरूप वन गया है और श्री शास्त्रीजी के सामने जो प्रोग्राम मालूम पड़ रहा है उसको देखते हुये हम जीवन-कुटीर और श्री शास्त्रीजी दोनों से ही कम सहायता की आशा रख सकते हैं। और अपनी निज की कम योग्यता होने के अलावा हमारे पास वाहरी साधन भी कितने कम हैं, यह सोच कर तो हम कभी-कभी घवड़ा भी उठते हैं। परन्तु हम को यह विश्वास है कि राजस्थान को इस नमूने का एक वालिका विद्यालय अवश्य चाहिए, इसलिये सर्व साधारण की ओर से तथा हमारे विशिष्ट मित्रों की ओर से भी पर्याप्त सहायता मिलती रहने की हमको खूव आशा है और हमारी जिस प्रिय वस्तु के छिन जाने के फलस्वरूप इस संस्था का उदय हुआ है उसकी ओर से हमको वरावर आन्तरिक वेग मिलता रहेगा, यह श्रद्धा भी हमको है। तो फिर हम चाहते हैं कि आज की छोटी सी संस्था "राजस्थान वालिका विद्यालय" का रूप धारण करे और समय पाकर क्यों न भले ही यह एक महाविद्यालय वन जाए? इस विद्यालय के साथ लगा हुआ "श्री शान्तावाई छात्रावास" रहे जिसमें आकर रहने वाली वच्चियों को माता-पिता और भाई वहिनों का प्यार सुलभ हो। विकास चाहने वाली इस उपयोगी संस्था के लिये वाहरी व्यवस्था वैठाना और रुपया पैसा आदि साधन जुटाने के लिये क्या एक कमेटी या ट्रस्ट नहीं वन सकता, जिसकी छत्रछाया में हम दोनों अल्प प्राणी इस जिम्मेदारी को झेल सकें? अव और कुछ कहना वाकी नहीं है—इसलिये स्नेह से लवालव भरे हुये श्री शास्त्रीजी के हृदय के उस नैसर्गिक उद्गार के साथ इस विवरण को हम सम्पूर्ण करते हैं:—

एक म्हांको फूल प्यारो,
अव खिल्यो कुमला गयो।
सोग वीत्यो हर्ष छायो,
फूल वाग लगा गयो॥

अपना निवेदन

१९३६–३७

अब हमें और कुछ नहीं कहना है। बड़े साधनों के जुटने से ऐसे बड़े काम सुभीते से चल सकते हैं। बड़े साधनों को जुटाने के लिए बड़े आदमियों के सहयोग की जरूरत है। परन्तु जो बातें दूसरों के अधिकार में हैं अथवा भविष्य की गोद में हैं उनके बारे में हम अपनी अभिलाषा कहां तक प्रकट करें ? इसलिये हम तो असल में अपनी बात ही कह सकते हैं और वह यह है कि हमारा तो पक्का संकल्प इसी तरह से इसी काम में अपने आप को लगा देने का, खपा देने का है। हमारा किया क्या नहीं बनेगा और क्या बनेगा, यह हमें खुद को पता नहीं—बाकी यह निश्चित है कि हमारे सामने दूसरी कोई चीज नहीं, हम जो कुछ करते हैं, हमें जो कुछ करना है, वह सब इसी उद्देश्य के लिए, वह सब इस देश की नारी जाति के उत्थान के लिए—इसमें जहाँ कहीं हमसे भूल चूक हो उसे बतलाने का जनता को अधिकार है, क्योंकि हम अपने आपको जनता जनार्दन के बिना कौड़ी पैसे के और बिना शर्त के सेवक मानते हैं। अपने इस काम के लिये साधन जुटाने में योग्य कार्यकर्त्ता और पैसा जुटाने में जनता को सहायता देनी होगी। जनता ज्यादा सहायता देगी, ज्यादा अच्छा काम होगा और जनता कम सहायता दे सकेगी तो सम्भव है कम अच्छा काम हो। परन्तु इतना सा कहना भी हमारा काम नहीं है। हम तो अपनी खुशी से और पूरी लगन से इस काम पर अपने आपको झोंके हुए हैं, झोंके रखने का विचार रखते हैं आगे ? आगे अब सब कुछ अच्छा होगा, इस विश्वास से हमें सन्तोष है।

अपील

१९३७–३८

इस रिपोर्ट का निचोड़ यह निकला कि सज्जनों की कृपा से और सभी कुछ है, सिर्फ थोड़ा सा (यानी हजार चालीसेक) रुपया चाहिए। मैं यह जानती हूं कि ऐसे विद्यालय की राजस्थान (राजपूताना और मध्यभारत) को सख्त जरूरत थी और है। और मैं यह भी जानती हूं कि राजस्थान वालों के पास रुपये की कमी नहीं है। ऐसी हालत में मेरा काम तो सिर्फ इतना सा रह जाता है कि राजस्थानी बहिनों और भाइयों के पास पहुंचूं और उन्हें इस संस्था की जरूरत बतला दूं। फिर मुझको पूरा विश्वास है कि इस संस्था की जरूरत पूरी हुए बिना नहीं रहेगी। ऐसा विश्वास न होता तो मुझ जैसी अल्प प्राणिनी आर्थिक चिन्ता के मारे अब तक तो कुचल दी जाती। ज्यादा कुछ नहीं कहना है—जिन बहिनों और भाइयों के हाथ में यह रिपोर्ट जाय वे इस संस्था को अपनी श्रद्धा और शक्ति के अनुसार धन की सहायता दें और दिलवाने की कृपा करें।

आखिर किसके भरोसे

१९३८-३९

यह सवाल पैदा हो सकता है—"आखिर किसके भरोसे यह लम्बी चौड़ी बात की जा रही है?" इसका उत्तर मैं क्या दूं? मैं तो यही बतला सकती हूं कि मेरा इस रिपोर्ट में शुरू में संकेत है, "इस बगीचे में हम अपनी हड्डियों का खाद देने और इसे अपने खून से सींचने की तैयारी रखते हैं।" इन मकानों की कच्ची ईंटों में से एक भी ईंट निकल कर गिरे, उससे पहले तो हम अपने शरीर को गिरा देने की सोचेंगे। इस आत्मविश्वास का, इस श्रद्धा का, इस संकल्प का मैं तो यह कहूं कि बस इसी परमेश्वर का अगर किसी को भरोसा रखना चाहिये तो निश्चय मानिए कि हम को इसी परमेश्वर का भरोसा है और पूरा भरोसा है। इस भारत भूमि में मातृजाति के कल्याण के लिये अपने प्राण न्यौछावर करने वाले भाई बहिनों का नितान्त ही अकाल तो नहीं है। और जब ऐसे भाई बहिन मौजूद होंगे तो धन की कथा ही क्या है? धन का भी न अभाव है और न उसकी कमी ही है। सिर्फ धन को वनस्थली तक घसीट लाने का सवाल है। पहले साधन जुटाकर काम शुरू करने के उसूल पर चलते तो आज तक वनस्थली में कोई काम शुरू ही नहीं हो सकता था। जहां काम होता है वहां साधन लाये ही जा सकते हैं, चले ही आ सकते हैं। और मुझको तो यह भी मालूम है कि इस विद्यालय की धन की कमी को अगर चाहें तो वनस्थली का कोई सा एक आध शुभचिन्तक भी पूरा कर सकता है। और अगर विचार लें—तो संचालक मण्डल के मौजूदा सदस्य खुद अपने पास से भी उसे पूरी कर सकते हैं और १००), ५०), २५) मासिक की सहायता देने वाले स्थाई सदस्य बना लेना भी कोई मुश्किल काम नहीं है। सच बात तो यह है कि चुपचाप अपने काम में लगे रहने के कारण साधन सम्पन्नों के पास हम पहुंच गये उसके पास से खाली हाथ नहीं लौटे। और जो भाई बहिन वनस्थली में आ पहुंचे वे मिट्टी में नंगे खेलने वाले इस बालक की सरल स्वच्छ मुस्कराहट पर रीझे बिना नहीं लौटे। तो फिर डर किस बात का है? यहां तो कल्याणकारी कार्य में सचाई और ईमानदारी के साथ लगे हैं और "न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।" हम धन और जन के लिये बाहर हाथ न भी फैला पाएंगे तो हमारा अटल विश्वास है कि सदा की भांति किन्हीं भक्तों के हृदयों में भगवान् विराजेंगे और वे भक्त भी न सुनेंगे तो इस वनस्थली की पुकार को सुनेंगे स्वयं भगवान्।

हमारी श्रद्धा

१६३६–४०

परन्तु इन कठिनाइयों का बहुत कम असर हम अपने ऊपर होने देते हैं। कठिनाइयों में एक प्रकार का रस भी तो है, उसमें एक प्रकार की प्राणप्रद शक्ति भी तो है। इस प्रकार की थोड़ी बहुत चर्चा हम यदाकदा इसलिए करते हैं कि एक तो हमको पास या फेल बताने वाले जरा इन कठिनाइयों का विचार भी कर लिया करें। दूसरे इसलिये भी कठिनाइयों का पारायण करना जरूरी है कि कहीं हम खुद की अपनी प्रारम्भिक सफलता के मद में अपने बेलैन्स को भी न खो बैठें। "प्रारम्भिक सफलता" ये शब्द इस कलम से निकल गये। परन्तु हमें वास्तव में पता नहीं है कि हम पिछले पांच वर्षों में आखिर क्या सिद्ध कर पाये हैं। इसका फैसला तो सहृदय और पक्षपात रहित दर्शक ही कर सकते हैं और इनके हाथों में हम अपने आपको सुरक्षित भी मानते हैं। हमने पिछले वर्ष में देश की कई सुविख्यात और पुरानी स्त्री शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं को जाकर देखा है और उनके अमूल्य अनुभवों से लाभ उठाने का प्रयत्न किया है। उनके मुकाबिले में अपने बारे में हम खुद क्या कह सकते हैं? नम्रतापूर्वक केवल इतना सा निवेदन तो हम कर ही दें कि पांच वर्ष के समय में और इस देशी राज्य में स्थित साधनहीन संस्था के द्वारा जो कुछ हो पाया है उससे हमारे लिये अथवा और किसी के लिये भी असन्तोष होने का कारण तो नहीं हो सकता। आज तक तो यह हुई और आगे के लिए हम नाना प्रकार के स्वप्न ही स्वप्न देखते रहते हैं। 'वनस्थली वीरबाला विद्यापीठ' के एक भव्य चित्र की रूपरेखा हमारे मानस पटल पर खिंचती रहती है। उस विद्यापीठ में हम लड़कियों के साथ साथ हमारे लड़कों की शिक्षा की झांकी भी देखते हैं। पर हमें कुछ पता नहीं है कब जाकर क्या होगा और हमारा कौन सा 'सपना सांचा' होगा।

भविष्य की झांकी

१६४०-४१

राज की ओर से होने वाली तथा अन्य कठिनाइयों के बावजूद हम तो इस संस्था के विकास के नित्य नये स्वप्न देखते हैं। हमारा विश्वास है कि एक दिन वह आएगा जब इस संस्था को बाहर की परीक्षाओं से मुक्ति मिल जाएगी और जब हम लोग नये से नये तथा देश विदेश में माने हुये सिद्धान्तों के अनुसार अपने इस काम को चलाने के लिये स्वतन्त्र होंगे। हमारे यहां लड़कियों की बराबर बाढ़ जारी रही है, स्टाफ भी आवश्यकतानुसार मिलता ही रहा है, बुरे भले मकानात भी जैसे तैसे खड़े होते रहे हैं। रुपया भी आखिर पहुंचता ही रहा हैं। इन मामलों में भी कठिनाइयां रही हैं। और आगे भी रह सकती हैं। सबसे बड़ी कठिनाइयां राज की बन्दिशों की हैं। और यह कठिनाई बीच के समय में कुछ ज्यादा भी बढ़ सकती है। परन्तु हम इन कठिनाइयों का विचार करने को नहीं बैठते हैं और यही जानते हैं कि जिस समय जो कठिनाइयां आएंगी उसी समय उनका यथोचित निपटारा हो जायेगा। हमारी तो निरन्तर यह अभिलाषा बनी रहती है कि हम इस महान् और पवित्र काम के लायक बनें। हम हमारे पास रहने वाली बच्चियों का माता पिता की भांति पोषण-शिक्षण करने लायक बनें और हमारी बच्चियां भी वनस्थली स्पिरिट को अपनायें और इस स्नेहमय वातावरण में बड़ी होकर तथा शिक्षा पाकर तैयार हो जाएं और अपने इस काम को संभाल कर हमारे भार को हल्का करें। हमारा दृढ़ विश्वास है कि हमारी अभिलाषाएं पूरी होंगी और एक दिन हमें इस वनस्थली में वीरबाला विद्यापीठ का सम्पूर्ण रूप देखने को मिलेगा। तथास्तु।

हमारे सपनों का क्या होगा ?

१९४१–४२

जाहिर है कि हमारे सपने तो लम्बे चौड़े हैं लेकिन हमारे यहां महसूस किया जा रहा है कि हमें यह तक भी पता नहीं है कि इस 'हम' में हम हैं कौन कौन। इस संस्था को अच्छे अच्छे कार्यकर्ताओं का सहयोग मिला है, लेकिन यह बतलाना पड़ेगा कि थोड़े से आदमियों का इतना सा सहयोग इस संस्था की अभिवृद्धि और समृद्धि के लिये काफी सावित नहीं होगा। इस संस्था की प्रगति रुकना नही चाहती। अधिक से अधिक संख्या में और देश के कोने कोने से लड़कियां वनस्थली की ओर खिंची आ रही हैं। उन बच्चियों का लालन पालन करने के लिए हमारे हृदयों में वात्सल्य का स्रोत बहते रहना चाहिए। ऐसा नहीं होगा तो यह विशाल स्नेह वृक्ष हरा भरा कैसे रहेगा ? इस प्रकार की विद्या सीखने के लिए क्रमशः ऊंची से ऊंची कक्षाओं की पढ़ाई पढ़ने के लिये भी लड़कियां वनस्थली की तरफ दौड़ी आ रही हैं। अनेक विद्याओं को सिखाने के लिये और न केवल इण्टरमीजिएट वल्कि वी० ए० और एम० ए० की वरावरी तक की शिक्षा देने के लायक योग्यता हमको चाहिए। इस योग्यता में कमी रही तो यह वनस्थली विद्याभूमि किस प्रकार उर्वरा रह सकेगी ? स्व० शान्तावाई के पुण्य प्रताप से या कैसे भी हम शून्य से अनेक हो गये और प्रति क्षण हम हर तरह से बढ़ते ही जा रहे हैं। लेकिन पिछले दिनों से थोड़ी सी चिन्ता हमको सताने लग गई है, क्योंकि कार्य विस्तार के साथ हमारी हृदय की विशालता और हमारे मस्तिष्क की प्रखरता बढ़ती हुई नजर नहीं आती। हम आइने में अपने आपको देखते हैं तो हमें अपना स्वरूप वहुत छोटा नजर आता है। और फिर बाहर के साधन ? देहात की कहावत है "पाचों ही पराया लाडा मुरड घणी।' अर्थात् अमुक वर के पास पांचों ही आभूषण दूसरों के पास से मांग कर लाये हुये हैं लेकिन वर महोदय में अकड़ वहुत है। उसी से मिलता जुलता हमारा हाल है। पास में एक पैसे का साधन मौजूद नहीं, जव देखो तव कर्जा। और फिर राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने का यह दावा ! तो फिर क्या यह नहीं निभेगा ? नहीं निभेगा, यह तो क्षण भर के लिये भी हमें नहीं मालूम पड़ता। आगे ईश्वरेच्छा। इस संस्था का कलेवर बढ़ता ही जा रहा है। बढ़ते हुए बालक के विकास को रोकने की कल्पना कौन करे ? और किसे ऐसा करने का अधिकार भी है ? इसलिए हम तो इस बालक को आवश्यकतानुसार खिलाने पिलाने की व्यवस्था करें और इसे स्वस्थ रखने की चिन्ता करें। राष्ट्र के जीवन में जव तक इसका उपयोग है, तव तक यह बढ़ता रहेगा और अपना काम करता रहेगा। सपने देखना हमारा काम है, उनको फलीभूत करने का प्रयत्न करना हमारा काम है, परन्तु सफलता का देना—यह हमारे क्षेत्र के बाहर की बात है। हम तो किये चलो, बढ़े चलो, बढ़े चलो—यही जप कर सकते हैं। और कौन जाने हमारे सपनों का क्या होगा ? भीतर से एक आवाज आती तो है – 'हमारे सपने सच्चे होंगे, सच्चे होंगे।'

बढ़े चलो

१९४२ ४३

हमें तो अब एक ही बात सूझती है कि चल पड़े हो तो इसी रफ्तार से बढ़े चलो। हमें दूर से, बहुत दूर से, एक धुंधला सा दीपक टिमटिमाता हुआ दिखाई देता है। लेकिन हम नहीं जानते कि रास्ते में कौन कौन से पहाड़ और नदी-नाले आयेंगे। जैसा मौका होगा उसके अनुसार हम अपने मार्ग को ठीक करते जाएंगे। लेकिन हमें तो इस जिन्दगी में इस काम के सिवाय और कुछ करना है नहीं। हमारे पास कोई बल है तो सिर्फ यही एक बल है। वनस्थली को जिन्दा रखने की सामग्री पहुंचाने वाले एक अभिन्न मित्र ने हमको लिखा—'तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, तिस पर इतना खर्च, और तिस पर यह निश्चिन्तता। क्यों नहीं हो। तुम फक्कड़ हो न ?" पता नहीं हम क्या हैं और क्या नहीं हैं। परन्तु हमें यह काम प्यारा लगता है, शायद प्राणों से भी प्यारा लगता है। और यह राष्ट्र के लिए एक जरूरी सेवा है। अपने प्यारे ऐसे काम में लगे हुए किसी को भी चिन्ता क्यों होनी चाहिए ? यह काम तो स्वयं चिन्ता विघ्न है। रही खाने-पहिनने की बात। सो काम करने वाले के लिये खाने पहिनने की एक न एक व्यवस्था तो हो ही जाएगी। और फर्ज कीजिए नहीं होगी, तो भी हम सोचते हैं कोई अनर्थ नहीं हो जायगा। आज देश में न जाने कितने लोग भूख के मारे रोज रोज मरे जा रहे हैं। तो फिर हमें ही कौन सी अमर पदवी प्राप्त कर लेनी है ? हम लोग इसे हवा की उड़ान नहीं मानते। हमें तो इसी प्रकार अपना श्वास चलता हुआ जान पड़ता है। नहीं तो वनस्थली विद्यापीठ की जो विचित्र आर्थिक स्थिति है उससे घबराहट तो होनी ही चाहिए। परन्तु घबराहट शुरू होने के बाद तो फिर जिया थोड़े ही जाय। जो प्रकाश दिखाई दे रहा है उसे देखते हुए चले चलना। अच्छे मार्ग में साथ चलने वाले यात्रियों की क्या कमी रहने वाली है ? हम बराबर सोचते हैं, यह कमी तो नहीं रह सकती। फिर इन बच्चियों, इन महाभागाओं का भी तो पुण्य प्रताप होगा ? भला फिर चिन्ता करने की क्या बात हो सकती है ? आज अपने देश में पैसा तो बिखरा बिखरा मालूम द रहा है। हम अच्छे होंगे और हमारा काम अच्छा होगा तो एक न एक दिन उस

पैसे को हम तक पहुंच पाने की बड़ी गर्ज हो सकती है। भले ही आज तो हमें भी उसके पास पहुंचने के लिये कभी कभी छटपटाना पड़ता है। वहरहाल हमारे आंकने में जो कीमत एक ही चीज की है और वह एक चीज है यह शुभ कार्य जिसमें हम सच्चे दिल से लगे हैं। इस शुभ कार्य के लिए इतना बड़ा समाज यहां जुट गया है, जहां पहिले शृगाल वोला करते थे। आखिर इसका भी कुछ रहस्य होगा? साल में कई वार इस प्रकार सोचने का मौका हमें मिलता है और कम से कम एक वार इसी प्रकार लिख देने का भी। वस और तो कुछ है नहीं। हम लोग यही चाहते हैं और सुनने वालों से यही निवेदन है कि वनस्थली को देखें और इसके गुण दोष हमें बतलाएं, उनसे वने तो हमें इस काम में सहारा लगाएं। कोई कभी हल्के तरीके से न सोचें, जल्दी से दोष निकाल कर अपना संतोष न मानलें, याद रखलें कि यह बड़ा टेढ़ा काम है। इसमें मानव की अग्निपरीक्षा होती है। हमें खुशी है कि अब तक हम बचे हैं। आगे की आगे देखी जाय। हमारी हृतन्त्री से आज तो यह एक ही स्वर निकलता है—देखते क्या हो, चल पड़े हो, चले चलो, बढ़े चलो।

हमारा आज और कल

१९४३-४४

हमारी आज तक की स्थिति का चित्रण किया जा चुका है। सवाल है सो कल का है। हम सदा की भाँति कल का विचार अब भी नहीं करना चाहते क्योंकि हम तो यह मानते आये हैं कि जब कल आयेगा तब देखा जायेगा और हमारे जीते जी कल तो आयेगा ही नहीं। कठिनाइयों में साहस को कायम रखने के लिए यही विचार धारा बहुत अच्छी है। नहीं तो एक पतले से धागे के सहारे आकाश में लटकने वाले हम जैसों का तो कहीं पता ही न लगे। फिर भी थोड़ा सा विचार तो करना पड़ेगा।

राज की ओर से चलने वाली संस्था राज की। राज के धन पर हक तो हमारा भी है। पर राज से मिलने वाला धन अपने साथ कुछ बंधन भी लाता है जो पाने वालों का गला घोंट कर उनके स्वतन्त्र जीवन को समाप्त कर देता है। पराधीन देश में राष्ट्रीयता का अर्थ राजनीति और देशभक्ति का अर्थ राजद्रोह होता है। इसलिये ऐसे देश में राष्ट्रसम्मत कामों से दूर रहकर और राष्ट्रविरोधी बातों से सहानुभूति दिखा कर एवं अपनी देशभक्ति को छिपाकर और राजभक्ति का प्रदर्शन करके ही राज से आर्थिक सहायता प्राप्त करने का हक हासिल हो सकता है। हम मानते हैं कि किसी भी शिक्षण संस्था को सक्रिय राजनीति में नहीं पड़ना चाहिए परन्तु पराधीन देश में ऐसे अवसर आ सकते हैं जब कार्यकर्त्ताओं को भावना के आवेश में आकर नहीं बल्कि सचमुच यही सोच लेना पड़े कि देश की ऐसी अवस्था में तो संस्था को जीवित रखकर भी क्या करेंगे। राजवर्ग की ओर से यह चाहा जा सकता है कि आप देश भक्त राजनीति से दूर रहें, पर राजभक्त राजनीति में अवश्य भाग लें। यह तो राज की बात हुई।

किसी साधनसम्पन्न व्यक्ति की संस्था हो तो उसे वह व्यक्ति या उसका उत्तराधिकारी चला ही लेगा। किसी सम्प्रदाय, जाति अथवा वर्ग की संस्था हो तो उस सम्प्रदाय,

जाति अथवा वर्ग को उसे चलाने की चिन्ता रहेगी। परन्तु राष्ट्रीय संस्था का मालिक कौन ? राष्ट्रीय संस्था के मालिक राष्ट्र के वे सपूत और वे बेटियां जो उस संस्था के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाये हुए तैयार रहते हैं। या राष्ट्रीय संस्था के मालिक वे सज्जन जो राजवाद, व्यक्तिवाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद और वर्गवाद से ऊपर उठकर राष्ट्रवाद की समृद्धि के लिए अपना बहुत कुछ अर्पण करना चाहते हैं। जिनकी सेवा करना अभीष्ट है उनसे राष्ट्रीय संस्था अपना पूरा 'कर' वसूल नहीं कर सकती। जिस राज से लेने का हक हमें है उससे भी वह अपने असली रूप में जीवित रहने की आशा छोड़े बिना कुछ स्वीकार नहीं कर सकती। संस्था चलाने वाले 'ब्राह्मणों के लिए क्या संस्था की खातिर' भी किसी व्यवसाय में पड़ना उचित हो सकता है ? शायद न हो। तब तो फिर समाज से मांग कर लाना बाकी बचता है। पर वैसा करने से बड़ी अनिश्चित परिस्थितियों का सामना करते रहना होगा। उसके लिए दम चाहिए।

वैसा दम वनस्थली के पास है या नहीं ? शायद थोडा बहुत दम तो हो। यदि है तो बहुत ठीक, नहीं तो फिर उस दम के बिना इस दम का भी निकल जाना ही श्रेयस्कर हो सकता है। काम की बात तो यह है कि हमें अपने प्रयत्न में किसी प्रकार की कमी नहीं रखनी है अपने आपको बचाकर नहीं रखना है, अपनी आस्था में जरासी भी ढिलाई नहीं आने देनी है, इस कठिन मार्ग पर चलते रहने के साहस को अवश्य बनाये रखना है, अमरता के मधुर चिन्तन पर मृत्यु की झांई को नहीं पड़ने देना है, सामने प्रकाश पर अंधकार की छाया का असर नहीं होने देना है, अपनी सत् की उपासना में असत् के ध्यान से विघ्न नहीं आने देना है, अभिमान को दूर रखकर नम्रतापूर्वक मूक कल्पना करते रहना है कि हम अपनी पुण्य यात्रा के पथ पर अग्रसर हुए जा रहे हैं, जिस अमर-आत्मा से हमें प्रेरणा मिली है उसकी याद भी हमें बनाये रखनी है और इसी प्रकार जो करने का है वह सब कुछ करते रहना है। बस, इससे अधिक तो कुछ कहने को नहीं है। नौ वर्षो तक गर्भावस्था में रहने के बाद आज वास्तविक जन्मधारण करने के समय हम फिर एक बार अपना विश्वास प्रकट कर देते हैं कि हमारा मार्ग वह 'सतां वर्त्म' है जिस पर कि थोड़ा सा चलने वाला ही नहीं बल्कि खड़ा रहने वाला तक भी 'नावसीदति'। इसलिए हमारे सामने उज्जवल से उज्जवलतर भविष्य दिखाई दे रहा है। वही भविष्य, क्रमशः वर्तमान बनता जायगा। तथास्तु।

हमारी भावना

१९४४-४५

इस प्रकार फिर एक बार हमने अपने अनुभव का सार पेश कर दिया है। यह भुलाया नहीं जा सकता कि हम पराधीन भारत के एक देशी राज्य में अपनी संस्था को चला रहे हैं। हमने व्यावहारिक समझौते के तौर पर अंग्रेजी को अपनाया है और बाहर की परीक्षाओं की शरण भी ली है। पर हम मानते हैं कि इस समझौते के बावजूद हमारे यहां पर स्वतंत्र और राष्ट्रीय वातावरण बना हुआ है। विद्यापीठ के सामने एक ध्येय है और उस ध्येय के लिए ही वह जीवित है। उस ध्येय के बिना विद्यापीठ को जिन्दा रहना स्वीकार नहीं होगा। हमारे यहां से ऐसी देवियां तय्यार होनी चाहिए जो अपने घर के साथ-साथ, पर घर से कम नहीं, देश को भी याद रखें। वे इस देश की बेटियां हैं और इसके लिए सब कुछ कर गुजरने को तय्यार हों। रूढ़िवादिता को छोड़कर आवश्यकतानुसार नवीनता को भी अपनायें पर इसको याद रखें कि वे उस भारत की संतान है जिसने नीति, संस्कृति और सभ्यता के क्षेत्रों में संसार को बहुत कुछ सिखाया है। इस यंत्रयुग में हम भारतीयों को यंत्र से डरना या घबराना नहीं है पर हमें मानव और यंत्र का समन्वय बैठाना है और यह सिद्ध करना है कि यंत्र मानव के लिए हैं, न कि मानव यंत्र के लिए। हम स्वाधीन हों तो यह सब कुछ हो सकता है। हम स्वाधीन होंगे और यह सब कुछ भी होगा। राजनीति के रोजमर्रा के झगड़ों में इस संस्था को नही पड़ना है, परन्तु स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए इसे अवश्य ही अपने हिस्से को पूरा करना है। एक शिक्षण संस्था की हैसियत से वनस्थली विद्यापीठ सर्वथा स्वतंत्र है। अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए विद्यापीठ जिसका चाहे सहयोग प्राप्त करने को भी स्वतंत्र है, परन्तु किसी के भी सहयोग के लिए विद्यापीठ अपनी स्वतंत्रता के एक अणु को भी कुर्बान नहीं होने देगा। यही हमारा मार्ग है, इसी पर हम चलते आये हैं। जिन्दा रहने के साधन हमें चाहिए, वे साधन हमें बिना किसी शर्त के मिलते आये हैं, और आइन्दा भी मिलते रहेंगे। किसी ने कहा "तुम्हारी संस्था की जड़ चट्टान पर है।' पर यह तो उसने कम ही कहा। क्योंकि वनस्थली विद्यापीठ तो आकाश में बना हुआ है और हवा में उड़ता है। यही विद्यापीठ की खूबी है। विद्यापीठ का भौतिक विस्तार इसके आन्तरिक तत्व को कैद नही कर सकता। बस यही हमारी भावना है। यही हमारी संजीवनी है।

उपसंहार

१९४५–४६

इस प्रकार कुछ बड़े सवालों की रूपरेखा पेश हो गयी है। जब से हमने इस मार्ग पर चलना शुरू किया, तब से हम चलते जा रहे हैं। जब जैसा अनुभव होता है प्रकट कर दिया जाता है। हम एक विशिष्ट प्रयोग में लगे हुए हैं। पूरा प्रकाश हमारे सामने नहीं है तो हम सर्वथा अन्धकार में भी नहीं हैं। ऊपर दिये हुए बड़े सवालों के माकूल जवाब आज हमारे पास नहीं हैं—परन्तु हम जानते हैं कि हम इन सवालों के जवाब खोजकर निकाल लेंगे। अबकी बार हम अपने आपको कुछ ज्यादा दबे हुए पा रहे हैं क्योंकि एक साथ कई कठिनाइयां आ पड़ी हैं। फिर भी हमें किसी प्रकार की चिन्ता या घबराहट नहीं है। हमारा प्रत्यक्ष अनुभव हमें मार्ग दिखायेगा—तथा हम दूसरे अनुभवी गुरुजनों से भी प्रकाश प्राप्त करेंगे और इस प्रकार हम अपने कार्य की संशोधित रूपरेखा को तैयार कर लेंगे। योग्य साथियों की खोज को हम जारी रखेंगे। और उनके वनस्थली पहुंचने के रास्ते में जो बाधायें हैं उन्हें हम दूर करेंगे। इसी प्रकार जब तक हमें मांग मांग कर रुपया लाना पड़ेगा, तब तक हम देश के साधन सम्पन्न व्यक्तियों का पीछा नहीं छोड़ेंगे और जिस प्रदेश में हम रहते है उसमें जब ऐसी सरकार कायम हो हो जायगी जिससे आर्थिक सहायता प्राप्त करने में कोई हानि नहीं मानी जा सकती तब इस विषय में भी हम सोच लेंगे। यदि संस्था के स्वावलम्बन के लिए हमें आयुर्वेदिक रसायनशाला जैसे किसी व्यवसाय में पड़ना होगा तो वैसा भी हम कर लेंगे। मतलब यह है कि जिस समय जैसा करना योग्य और आवश्यक होगा उस समय हम वैसा ही करते जायेंगे। इसी तरह संदेह में पड़े बिना और हार माने बिना हम साहस और विश्वास के साथ आगे बढ़ते जायेंगे। हमारे सामने जब जो स्थिति आ जायेगी तब हम उसी का मुकाबिला कर लेंगे। हमें पूरा विश्वास है कि इस महान् और शुभ प्रयास में हमें देशवासियों से पर्याप्त सहायता मिलती रहेगी।

वर्तमान और भविष्य

१९४६-४७

अपने पिछले अनुभवों से हमारा वर्तमान बना है और इस वर्तमान के प्रकाश में हम अपने भविष्य की कल्पना करते हैं। भविष्य की रचना के लिए हम दूसरे लोगों के अनुभवों की जानकारी प्राप्त करने का यथासाध्य प्रयत्न कर रहे हैं। हमको कई बार सुझाया गया है कि हम लड़कियों की व्यवस्था के साथ ही वनस्थली में या कहीं अन्यत्र लड़कों की शिक्षा की भी व्यवस्था करें। हमें भी समय समय पर खयाल हुआ है कि किसी प्रकार लड़कों की शिक्षा के लिए भी कुछ न कुछ किया जाय। परन्तु अब हम देखते हैं कि हमारे लिए बहुत होगा कि हम केवल लड़कियों की शिक्षा के काम को ही भली भांति चलाने में सफल हो जायं। लड़कियों की शिक्षा के तीन मार्ग हमारे सामने हैं। एक तो यह कि हम १५, १६ वर्ष की उम्र के बाद लड़कियों को अपने पास रखकर शिक्षा देने का जिम्मा अपने ऊपर न लें। दूसरा यह कि हम किसी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित होकर प्रारंभिक से लेकर उच्च शिक्षा तक की व्यवस्था अपने यहां करें और उसी के साथ अपने यहां की जो जितनी विशेषता निभा सकें निभायें। और तीसरा मार्ग यह है कि हम अपनी संस्था को एक स्वतंत्र महिला विश्वविद्यालय का रूप दे दें। पहिले मार्ग पर चलने में हमारी जिम्मेदारी हल्की रहेगी पर उतने से हमारा समाधान नहीं होगा। दूसरा मार्ग भी सुभीते का है परन्तु वर्तमान विश्वविद्यालयों के शिक्षा क्रम के प्रति हमारी श्रद्धा नहीं है। जो तीसरा मार्ग बचता है उसमें अनेक कठिनाइयां हमें दिखाई दे रही हैं। हम अपने चालू अन्वेषणों का परिणाम जाने से पहले किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुंच सकते। फिर भी हम इतना तो कह ही सकते है कि हमारा झुकाव तीसरे मार्ग पर चलने की तरफ है।

हम समाज में लड़के और लड़की को समान अवसर देने के पक्षपाती रहे हैं। परन्तु हमने समझ लिया है कि लड़की की शिक्षा की योजना बनाते समय हमें याद

रखना होगा कि वह लड़की है, लड़का नहीं। मुख्य बात तो यह है कि लड़की पर मातृत्व की जिम्मेदारी आने वाली है और किसी दूसरे कारण से नहीं तो इसी कारण से उसे अपना बहुत सा समय घर के भीतर लगाना होगा। दूसरे, शरीर रचना की दृष्टि से लड़की के लिए कुछ काम ज्यादा अनुकूल होंगे। और कुछ काम बहुत कम अनुकूल अथवा सर्वथा प्रतिकूल। प्रायः ११-१२ साल की उम्र तक तो लड़की कुछ कमी वेशी के साथ लड़के के साथ निभ सकती है परन्तु तेरहवें-चौदहवें साल में जो परिवर्तन लड़की के शरीर में होता है, उससे उसकी संसारयात्रा की दशा बहुत बदल जाती है। लड़की का विकास लड़के की अपेक्षा जल्दी अर्थात् अपेक्षाकृत छोटी उम्र में होता है। इसलिए लड़की की शिक्षा को जल्दी समाप्त हो जाना चाहिए। देश की वर्तमान सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में माता पिता लड़की की शिक्षा को उस हद तक जरूरी नहीं मानते जिस हद तक लड़के की शिक्षा को मानते हैं। माता अपनी लड़की को कुछ बड़ी हो जाने के बाद उसका विवाह हो जाने तक जहां तक बने अपने पड़ौस में ही रखना चाहती है। जिन माता पिताओं के पास साधन हैं वे अपनी लड़कियों को वनस्थली जैसी संस्था में वैसी शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजना पसन्द नहीं करते हैं जिसमें लड़कियों को शारीरिक परिश्रम करना पड़े और जिन माता पिताओं के पास साधनों की कमी है वे चाहते हुए भी अपनी लड़कियों को किसी बाहर की संस्था में शिक्षा प्राप्त करने के लिए नही भेज पाते।

इन कठिनाइयों के साथ ही हमें देश की बदली हुई स्थिति का ख्याल होता है। हम समझते हैं कि देश की समस्त शिक्षा प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने चाहिएं। परन्तु वे परिवर्तन अपना समय लेंगे। ऐसी हालत में यदि हम किसी नये मार्ग को अपनाते हैं तो हम पर अग्रगामी होने का जिम्मा आता है। उस जिम्मे से हम घबड़ाते नहीं हैं, फिर भी हमें यह तो सोचना ही चाहिए कि बीच के संक्रमण काल में नयी नयी समस्यायें सामने आ सकती हैं। जैसे लड़का वैसे लड़की भी देश की प्रचलित शिक्षा प्रणाली में ही जाना चाहेगी और वह किसी भिन्न शिक्षा प्रणाली में जाने से जरूर झिझकेगी चाहे वह शिक्षाप्रणाली कितनी ही अच्छी हो। कई मामलों में हमारा दिमाग बिल्कुल साफ है। यथा हम नहीं चाहते कि अंग्रेजी किसी भी मंजिल में हमारी शिक्षा का माध्यम हो और हम नहीं चाहते कि अंग्रेजी किसी भी परीक्षा के लिए अनिवार्य विषय हो। परन्तु हम नहीं जानते कि देश के विश्वविद्यालय अंग्रेजी की अनिवार्यता को कब तक समाप्त कर पायेंगे। जो कुछ हो, हमें अपनी संस्था को स्वतंत्र विश्वविद्यालय का रूप देना होगा तो हमें लगता है कि हमें उसमें अंग्रेजी को अनिवार्य विषय का स्थान तो देना ही नहीं चाहिए। दूसरी बात हम यह देखते हैं कि भले ही विश्वविद्यालय में लड़की पढ़ने लिखने में लड़के से कम नहीं रहती हो, पर आगे जाकर उसकी मनोदशा और परिस्थिति उसे विद्वत्ता में लड़के के बराबर चलने में रोक लेती है। ऐसी हालत में यह सोचने की बात है कि लड़की की उच्च शिक्षा का मापदण्ड ठीक वैसा ही होना चाहिए जैसे लड़के का या वह उससे भिन्न भी हो सकता है।

हमारे खयाल से कुछ आवश्यक परिवर्तनों के बाद हमारी वर्तमान 'संस्कृता' परीक्षा लड़की की न्यूनतम अनिवार्य शिक्षा का अच्छा मापदण्ड हो सकेगी। वह मापदण्ड अपनी अनेक विशेषताएँ रखता हुआ अंग्रेजी को और किसी हद तक अनावश्यक गणित को छोड़कर वर्तमान हाई स्कूल परीक्षा से कम न होगा। १४ से १६ वर्ष की उम्र तक लड़की को 'संस्कृता' तक की शिक्षा समाप्त कर लेनी चाहिए। बाद में हम चाहेंगे कि कम लड़कियां पुस्तकीय उच्च शिक्षा को अपनायें, हालांकि हम जानते हैं कि सवाल हमारे चाहने या न चाहने का नहीं है। "संस्कृता" के बाद लड़की के लिए कई कामों के द्वार खुले हुए हों जिनमें एक या दो साल से लेकर अधिक से अधिक ४ साल तक लगें। एक द्वार तो पुस्तकीय उच्च शिक्षा का ही होगा। दूसरा संगीत का, तीसरा चित्रकला का, चौथा अध्ययन शास्त्र का, पांचवा चिकित्साशास्त्र का, छठवां पत्रकार कला का, सातवां कार्यालय शिक्षा का और आठवां किसी भी ऐसे हुनर का जिससे लड़की आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त कर सके। इन बातों को सोचते हुए हम यह ध्यान रख रहे हैं कि आने वाले जमाने में कई एक लड़कियों को अपने घर की आमदनी बढ़ाना अधिकाधिक अनिवार्य हो जायगा। लड़की चाहे किसी काम को अपनावे, उसकी शिक्षा की आधारशिला व्यावहारिक ज्ञान और अभ्यास होना चाहिए। खासकर 'संस्कृता' तक की शिक्षा में और सामान्यतया बाद में भी इस बात पर जोर देना होगा कि लड़की की शिक्षा का उसकी दैनिक जीवनचर्या से अटूट सम्बन्ध हो।

हमारे भविष्य का लगभग ऐसा चित्र हमारे दिमाग में साफ हुआ चाहता है। हम खुद सोच रहे हैं, आपस में परामर्श कर रहे हैं तथा हम अपना अन्वेषण भी जारी रख रहे हैं। आखिर थोड़े समय बाद हम किसी निर्णय पर पहुँच जायेंगे। हम सोचते हैं कि जयपुर सरकार के कानून से हमारी संस्था को कानूनी विश्वविद्यालय का रूप तो मिल ही जायगा। फिर यह भी संभव है कि भारत सरकार हमारी परीक्षाओं को मान्य कर ले, साथ ही दूसरे विश्वविद्यालय भी हमारी परीक्षाओं को मान्य कर सकते हैं। इतने विशाल आयोजन के लिए जितना रुपया चाहियेगा वह भी कहीं न कहीं से आ ही जायेगा। हमारा हक जयपुर सरकार पर होगा और भारत सरकार पर भी। दोनों से ही हम वार्षिक सहायता और मकानों आदि के लिए एक मुश्त सहायता ले सकते हैं। कम से कम २५ लाख का स्थायी कोष बनाने के लिए हमें विशेष यत्न करना पड़ेगा। जो कुछ हो हमें पूरा भरोसा है कि यह सब हो जायगा। परन्तु हमें दो बातों की शंका सता रही है। पहिली तो यह कि हमारे पास शिक्षा पाने के लिए किन किन विभागों में कितनी लड़कियां पहुँच जायेंगी और दूसरी यह कि इतने बड़े काम को चलाने के लिए हमारे पास किस हद तक सुयोग्य बहिनें और भाई जुट पायेंगे।

हमने अब तक वातावरण को सादा रखा है और हमने आग्रह के साथ माना है कि दिक्कत झेलने में भी एक प्रकार का आनन्द है। भविष्य में भी हम इस वनस्थली

भावना को जीवित रखना चाहेंगे। हालांकि हम जानते हैं कि आगे चलकर धीरे-धीरे वनस्थली का नकशा बहुत बदल जायेगा। कच्चे मकानों के स्थान में पक्के मकान हो जायेंगे। सारे उपनिवेश में सड़कें और बाग बगीचे हो जायेंगे। बिजली की रोशनी हो जायेगी। पानी के नल लग जायेंगे। एक छोटा सा बाजार भी यहां हो जायगा। सड़क रेल और हवा के मार्गों से वनस्थली दुनिया से दूर या अलग नहीं रह जायेगी। कार्य-कर्ताओं को उनके निर्वाह के लिए पर्याप्त धन देना होगा। उच्च कोटि के कार्यकर्ताओं को उनके विकास के लिए समुचित सुविधाएं देनी होंगी। बड़ी और छोटी लड़कियों के लिए अलग अलग उपयुक्त छात्रावास होंगे। लड़कियों के रहन-सहन को स्वराज्य और स्वावलम्बन के आधार पर नियमित करना होगा।

हमें अपने भविष्य का पूरा भरोसा है, फिर भी हमें थोड़ा थोड़ा डर भी लगता है। यह काम लड़कियों का न होता तो हमे डर न लगता। लेकिन डर लगे या जो कुछ हो, हम पीछे नहीं हट सकते, हम एक जगह खड़े नहीं रह सकते, हम बड़े से छोटे नहीं हो सकते—इसलिए हम बड़े होंगे और आगे बढ़ेंगे। हमारे पास पहिले क्या था? फिर भी हम एक से अनेक हुए, शून्य में से इस संसार की सृष्टि हुई। आज भी हमारे पास क्या है? लेकिन हमारे भीतर यह श्रद्धा है कि जैसे अब तक हुआ वैसे आगे भी होगा। और हम क्या कहें? कहें तो उससे फायदा भी क्या होगा? अतीत में से हम गुजर चुके हैं, वर्तमान को हम देख ही रहे हैं, भविष्य का धुंधला सा दर्शन हमें होता है पर आज तक कौन भविष्य देख पाया है। मनुष्य के सामने भविष्य वर्तमान का रूप धारण करके ही आता है। जैसा भविष्य आने वाला होगा हमारे सामने भी आ जायेगा। और उसे हम वर्तमान रूप में देख लेंगे। हमारा काम तो यह है कि हम अपनी श्रद्धा में कमी न आने दें और उस श्रद्धा के भरोसे हम अपने आप को वैसे ही झोंकते रहें जैसे अब तक झोंकते आये हैं। किसी दिन अचानक हमें कहीं से यह प्रेरणा मिली थी। वही प्रेरक शक्ति हमें आगे बढ़ायेगी। इसलिये न तो हम अपनी मौजूदा कठिनाइयों से दबना चाहते, न आने वाली कठिनाइयों से। कठिनाइयां आई हैं और चली गई हैं। आगे कठिनाइयां आयेंगी तो उन्हें भी चला जाना होगा। इसी प्रकार यह गाड़ी अपना रास्ता पाती रहेगी और अपनी चाल से चलती हुई आगे बढ़ती रहेगी।

कल की झांकी

१९४७-४८

हम अपनी गिनती सपना देखने वालों में करते हैं फिर भी हम प्रत्यक्षदर्शी हैं। इस प्रकार आगे के सपने देखते हुए कल की विशेष चिन्ता हम नहीं करते हैं। हमारी योजना इस प्रकार रही है कि आज तो हम हैं ही, कल की कल देखी जायेगी, जब कल आयेगा। लेकिन हमारे अनुभव में तो आज तक कल आया ही नहीं। हमने इस विवरण को 'दिन बीते जाते हैं' से शुरू किया था अब समाप्त करते हुए भी हम यही महसूस करते हैं कि 'देखते देखते आखिर तेरह वर्ष समाप्त हो गये।' आज तक जो कुछ अनुभव से सीखा उसके आधार पर कल की झांकी हमें हो रही है। वह झांकी बहुत साफ नहीं है, बहुत साफ वह हो भी नहीं सकती क्योंकि यह जमाना विचारधाराओं के संघर्ष का है। जमाने का प्रभाव किसी दिशा में जाता हुआ हमें दिखाई देता है और हम शायद उस प्रवाह के मुकाबले में टकरा रहे हैं या कम से कम यह कहा जाय कि वर्तमान से हमें संतोष नहीं है और अमुक प्रकार के भविष्य की कल्पना को हम वर्तमान में रखकर देखना चाहते हैं जिससे मातृजाति का भविष्य भावी समाज में वैसा ही बने। इस प्रकार यह कोई मामूली बात नहीं है जिसमें हमने अपने आपको लगाया है। हमें बार बार सन्देह होता है कि हम इतने बड़े काम के अधिकारी भी हैं या नहीं? लेकिन इस सन्देह के कारण भी हम अपने अंगीकृत कार्य को छोड़ देने की कल्पना तो नहीं कर सकते। इसीलिए आने वाले कल की झांकी करते हुए आगे बढ़ते रहना हमारा काम है। अब शायद हमारा नया नया जोश तो नहीं कहा जा सकता। शुरू का जोश अब पक कर जमसा गया है, लेकिन जमकर भी वह ठहरा हुआ नहीं रह सकता। क्योंकि ठहर जाने वाला आगे कैसे बढ़े? और हमें तो बढ़ना ही है। कहने की बात यह हैं कि एक विचारधारा को थोड़े अनुभव के बाद हमने अपनाया था, परन्तु यह विचारधारा अंध परम्परा से नहीं अपनायी गई। उसमें नवीनता का संचार करने के लिए हम सदा तैयार रहे हैं। इसी तरह हमें अपने 'स्थायित्व' में बराबर 'गति' का आभास होता रहता है और 'गतिमान्' की अवस्था की अनुभूति में हम अपना कल का स्वरूप देखते हैं। देखते रहना होगा, कितने परिवर्तनों के साथ भविष्य हमारे सामने खुलता जाता है।

उपसंहार

१६४८-४६

मुझे दुःख है कि कई एक मजबूरियों की वजह से हम जितने हैं वे भी इस पवित्र और कठिन कार्य में अपनी पूरी शक्ति नहीं लगा पा रहे हैं। यदि हमारी जितनी भी शक्ति है वह भली भांति लगाई जा सकती तो आन्तरिक दृष्टि से भी हमें कहीं अधिक सफलता मिली होती। पर हम देख सकते हैं कि जो कुछ हुआ है और हो रहा है वह भी परिस्थितियों को देखते हुए कुछ बुरा तो नहीं है। फिर हम जागरूक भी तो हैं। यह जागरूकता हमें संतुलन बनाये रखने के लिए हमारी सहायता करेगी। भारतीय समाज का प्रवाह हमें ठीक दिशा में नहीं लग रहा है और उस प्रवाह के विरुद्ध चलने का कठोर कर्तव्य हमारा है। यह सुनिश्चित है कि हमें अपने प्रकाश के अनुसार यथाशक्ति चलना है, हम नहीं चलते तो यहां तक भी कैसे पहुंचते? यदि श्रद्धा के साथ ठीक दिशा में चलते रहेंगे तो लक्ष्य की ओर अवश्य बढ़ेंगे, क्योंकि—

गच्छन् पिपीलिको याति योजनानां शतान्यपि।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥

दूसरी बात यह भी है—

अनुगन्तुं सतां वर्त्म यदि कृत्स्नं न शक्यते।
स्वल्पमप्येव गन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति॥

हमारी श्रद्धा

१९४९–५०

सच बात यह है कि हमारे पास अपनी आन्तरिक श्रद्धा के अलावा किसी प्रकार की दूसरी शक्ति नहीं है। प्रारम्भ करते समय हमारे मस्तिष्क में कोई कल्पना नहीं थी और हमें सपने में भी ऐसा ख्याल नहीं था कि हम इतने आगे बढ़ जायेंगे। १९३५ में जहां कुछ नहीं था, वहां आज १९५० में सभी कुछ उपस्थित हो रहा है। कभी कभी हमारी श्रद्धा की बड़ी परीक्षा हुई है और इस घड़ी तो हम शायद अपनी कठिनतम परीक्षा में से गुजर रहे है। एक बार क्षण भर के लिए तो हमने अपने आपको डरा हुआ पाया। लेकिन हम संभले और हमने सोचा कि आखिर डरने से क्या होने वाला है—और असल में डरना तो हमारा काम कभी था नहीं। हमने हिम्मत बटोरी और लाख के घाटे के बावजूद दो लाख की लागत के नये विद्यालय भवन का शिलान्यास हमने कर डाला। हमें विचार हुआ कि कहीं से रुपया नहीं आया तो यह नया भवन कैसे बनेगा ? फिर हमने सोचा और अपने आपसे कहा कि रुपया नहीं आया तो पहिले के बने हुए भवनों को खुला हुआ कैसे रखा जायगा ? हमने आज तक किसी से कोई खास शर्त मानकर रुपया नहीं लिया। सरकारों ने भी हमारे साथ ऐसे मामलों में रियायत बरती है। वाजिब बात तो सरकार की ही क्या, किसी की भी मानी जा सकती है। वाजिब बात वह जिससे हमारी स्वतन्त्रता में बाधा नहीं पहुंचे। हमारी कल्पना में यह काम ब्राह्मण का है, साक्षात् परमेश्वर का है। और हम सोचते हैं कि परमेश्वर के काम में बाधा कैसी और बन्धन कैसा ? फिर भी स्वयं परमेश्वर को ही दूसरी बात मंजूर हो तो वह हो जाय। उस हालत में तो हमारे पास साधनों का ढेर लगा हुआ होगा तो वह भी किस काम आयेगा ? हमारा काम तो नम्रता के साथ लेकिन दृढ़ता के साथ भी चलते चलना है। चलने वाले को आगे का रास्ता दिखाई देता ही जाता है और वह लक्ष्य की ओर बढ़ता ही जाता है। किसी भी अभाव की आशंका से भयभीत होना ही नहीं चाहिए। सत्कार्य में परमेश्वर की सहायता मिलेगी और परमेश्वर के भक्तों की भी। इसे सत्कार्य के रूप में बनाये रखने का भार हमारे ऊपर है। हमें सचाई, लगन और आग्रह के साथ उस भार को उठाते जाना है। आग्रह रखते हुए भी हमें आसक्ति से अपने आपको बचाना है। चाहे किसी को यह लगा करे कि इन हवाई बातों से कब तक क्या बनने वाला है—परन्तु हमारा अनुभव और हमारा संकल्प एक दूसरे ढंग का है। उसी संकल्प के बल पर हम यहां तक पहुंचे हैं, आज चल रहे हैं और आगे बढ़ते ही रहेंगे।

कठिन परीक्षा नमो नमो

१९५०-५१

हमें लगता है कि आइन्दा वनस्थली शिक्षा की इस नयी दिशा में आगे बढ़े बिना विद्यापीठ की प्रगति रुकी हुई सी रहेगी। लेकिन सच बात यह है कि इस दिशा में चलने के लिए जो शक्ति चाहिए उसकी हमारे पास कमी रही है। बहुतसी मानव शक्ति हमारे पास जुटी है, उसके द्वारा अब तक का यह विशाल कार्य सम्पन्न भी हुआ है। पर मानव शक्ति को भी कई प्रकार से बढ़ाना होगा। फिर धन शक्ति का सवाल बहुत बड़ा है। जयपुर सरकार से लोकप्रिय मन्त्रियों की नियुक्ति के बाद से, भारत सरकार से स्वराज्य प्राप्ति के बाद से और राजस्थान सरकार से राजस्थान निर्माण के बाद से विद्यापीठ को आर्थिक सहायता मिलने लगी और भारत और राजस्थान सरकारों की सहायता अब भी मिल रही है। लेकिन पिछले सालों में विद्यापीठ के दो प्रमुख कार्यकर्ताओं के राजनैतिक काम में ज्यादा फंस जाने से संस्था को अर्थ के और शिक्षण के दोनों क्षेत्रों में ही बड़ा नुकसान हुआ। संस्था पर कर्जा हो गया जिसे चुकाना अभी तक मुश्किल हो रहा है। इस प्रकार नयी योजनाओं को अमल में लाना भी मुश्किल हो रहा है।

कसौटी पर

१९५१-५२

वैसे तो संस्था को चलाने में हमको शुरू से आज तक लगातार कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। लेकिन अब की बार हम देख रहे हैं कि जिस 'ब्राह्मणत्व' की कल्पना हम पेश करते आ रहे हैं वह ब्राह्मणत्व सचमुच बड़ी कसौटी पर चढ़ने वाला है। जहां तक हम सोच पा रहे हैं वहां तक केन्द्रीय सरकार की सहायता के प्रश्न को लेकर जो कठिनाई हमारे सामने आयी है उसका हल तो निकल ही जायेगा। कदाचित वह हल न निकले तो उसका आर्थिक दृष्टि से काफी प्रतिकूल असर हमारे काम पर पड़ सकता है। केन्द्रीय सरकार की सहायता पूर्ववत जारी रहने पर भी हमारे सामने अपने वजट के चालू घाटे की पूर्ति का सवाल तो है ही है। और फिर बैंक के कर्ज़ के दबाव ने भी हमें बेहद परेशान कर रखा है। किसी प्रकार बैंक के कर्ज का निपटारा हो जाय तो हम एक बार राहत की सांस ले सकें। आगे हर तरह से अपने आपको कस कर किफायत करते हुए हमें कोशिश करनी होगी कि हमारे वजट का घाटा कम से कम रहे, पर सब कुछ कर लेने के बाद जो घाटा रहेगा उसकी पूर्ति के लिए तो हमें जूझना ही पड़ेगा। इस कठिन परिस्थिति से इमारती काम को तो रुके रहना पड़ेगा ही। पर यदि राजस्थान सरकार से इमारती सहायता जो कभी की मिल जानी चाहिए थी अब भी किसी उपाय से मिल जाय या उसके मिलने की आशा हो जाय तो हम कम से कम हमारे नये विद्यालय भवन के काम को चालू करने का खयाल तो अवश्य करें। राजस्थान सरकार से शरणार्थी लड़कियों के लिए छात्रवृत्ति का कुछ रुपया निकल आये तो उससे भी हमारे घाटे की पूर्ति में अच्छी सहायता मिल जाय। हमारा विचार सहायता के लिए कुछ दूसरे राज्यों की सरकारों के पास जाने का भी होता है, क्योंकि वनस्थली में उन राज्यों की बहुत सी लड़कियां शुरू से शिक्षा पाती रही हैं। खेती आदि के जरियों से भी हम कुछ न कुछ आमदनी तो खड़ी कर ही लेंगे। और देश की जनता के पास तो सदा की भांति बल्कि उससे बढ़कर व्यापक रीति से जाना ही है। गर्ज यह कि जो

उपाय हो सकते हैं वे सभी किये जायेंगे और कठिनाइयों कड़ी टक्कर ली जायगी। कड़ी टक्कर लेने के लिए हमें अपने "ब्राह्मणत्व" की शक्ति की ज्यादा से ज्यादा जरुरत पड़ेगी। वह शक्ति वास्तव में हमारे पास कितनी है, इसका पता भी ऐसे ही मौक़े पर चलेगा। वनस्थली को अच्छे अच्छे सेवा भावी कार्यकर्त्ताओं का सहयोग मिला हुआ है—मैं आशा करती हूं कि आवश्यकता पड़ने पर जब हम सब भाई बहिन मिलकर बैठेंगे तो एक न एक ऐसी तरकीब जरूर सोच निकालेंगे जिससे हममें से प्रत्येक से त्याग की भावना की दृष्टि से जो कुछ बने सो वह अपेक्षानुसार आनन्द के साथ कर सके। सर्वोपरि शक्ति के स्रोत उस जगदाधार जगदीश्वर का सहारा हमारे लिए होगा जो हमको अपनी इस अग्नि परीक्षा में से सुरक्षित निकाल लायेगा। शताब्दी के एक चतुर्थांश में जो हवा वनस्थली में बनी है उस हवा में सांस लेने वालों के पास घबड़ाहट का काम तो है नहीं। अटल धैर्य, अविचलित शान्ति, अकंपित दृढ़ता, सम्पूर्ण आत्मविश्वास और अनन्त आशा के साथ, हमें जो कठिनाई हमारे सामने आये उसका मुकाबिला करना है और हमारी जो परीक्षा होने वाली है, उसमें निखर कर उत्तीर्ण होना है, यह हमारी भावना है, यह हमारा संकल्प है।

अपनी बात

१९५२-५३

हम कुछ सोचकर तो चले नहीं थे। एक मौका था, एक तरंग थी, हम चल पड़े। बाद में शिक्षा की योजना बनती गयी। अब तक शिक्षा की निगाह से जो काम वनस्थली में हुआ है उसकी शिक्षा-शास्त्री कद्र करते हैं। हमारा खुद का भी समाधान है कि राष्ट्रीय शिक्षा के और खासकर लड़कियों की शिक्षा के क्षेत्र में कुछ अग्रगामी काम यहां पर हुआ है और यह काम अपने ढंग का आप ही नमूना है। विद्यापीठ की शिक्षित लड़कियों में से कुछ और ज्यादा लड़कियां सेवा और त्याग की भावना से इस संस्था के काम को अपना लें तो इसकी जड़ पक्की हो जाय। और काम चलाऊ साधन भी जुटते ही रह सकते हैं। इसलिए समाज की वर्तमान स्थिति में जिन सीमाओं के भीतर यह काम हो रहा है उसी तरह से यह चलता रह सकता है और राष्ट्रनिर्माण के काम में अपना योगदान देता रह सकता है। पर हम जैसे कार्यकर्त्ताओं का इससे ज्यादा सोचने का कर्त्तव्य भी है। देश का वर्तमान सामाजिक-आर्थिक ढांचा बना रहने वाला नहीं है। उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन होने को हैं, यह चारों ओर महसूस किया जा रहा है। उस परिवर्तन को लाने में हमारे प्रयत्नों का क्या हिस्सा हो? हम यह सोचते हैं कि जिसे रचनात्मक काम कहते हैं उसका उसके स्थायित्वों को कायम रखते हुए क्रान्तिकारी परिणाम लाना मुश्किल है। जिस हद तक शिक्षा संस्था को समाज के वर्तमान ढांचे के भीतर चलना पड़ता है, जिस हद तक उसे न केवल एक प्रकार का स्थायित्व चाहिए बल्कि उसको चलाने में देश में बड़ा सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन न चाहने वाले और न कर सकने वाले लोगों के सहयोग की भी किसी न किसी रूप में जरूरत होती है उस हद तक कोई शिक्षा संस्था प्रत्यक्ष रीति से क्रान्ति करने वाली तो सभवतः नहीं हो सकती पर अच्छी संस्थाओं से निकले हुए युवकों और युवतियों पर क्रान्ति करने का भार अवश्य आता है। उसके लिए उन लोगों को ज्यादा समझदारी के बोझ से और अपनी कथित या वास्तविक परिस्थियों से दब नहीं जाना चाहिए और असल में परिस्थितियों

से दवने का समय आये, उससे पहले ही कुछ कर गुजरने की दिशा में चल पड़ना चाहिए। लड़कियों के साथ साथ लड़कों की शिक्षा की कल्पना का हमारे दिमाग में आते रहने का एक कारण यह भी है। इसके अलावा यह भी सवाल है ही कि मध्यम वर्ग की और शहरी और कस्बई लड़कियों और लड़कों के साथ साथ देहाती लड़के लड़कियों की शिक्षा की भी तो सही प्रकार की व्यवस्था चाहिए। यह सब कुछ ठीक है। पर हम लोग अपनी मर्यादाओं में वन्धे हुए हैं, जिनमें साधनों की मर्यादा भी एक है। हम लोग साल भर सोचते रहते हैं, वात करते रहते हैं, तब एक दिन कुछ कहने का मौका आता है तो हम अपती तड़फ को प्रकट करने लगते हैं। वाकी इस संस्था का काम अपनी चाल से ठीक चल रहा है, भले ही वर्तमान समाज व्यवस्था इस परीक्षण को एक हद से आगे न लेजाने दे फिर भी इस संस्था के मूल में एक उड़ान थी, एक लहर थी, एक वेग था, एक भावना थी·······सो अब आज भी है और उसी वल पर इसका वर्तमान निभ रहा है और भविष्य अवलंवित है।

अपनी बात

१९५३-५४

इस कार्य विवरण के साथ विद्यापीठ अपने जीवन के १९ वर्ष समाप्त कर चुका है। इस अर्से में विद्यापीठ भलीभांति फूला-फला है। देश की स्थिति के अनुसार अच्छे अच्छे कार्यकर्त्ता विद्यापीठ में आये हैं और देश में से चारों ओर से लड़कियां भी पर्याप्त संख्या में पहुंचती रही हैं। अपने और दूसरों के अनुभव के आधार पर शिक्षाक्रम सुस्पष्ट हो चला है, और आगे भी इस दिशा में प्रगति की आशा है। हमें अपने इस विशिष्ट प्रयोग की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने का विशेष ध्यान है। इसीलिए हम किसी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित होने न होने के बारे में उदासीन ही रहे। राजपूताना विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति ने आत्मीयता के साथ आग्रह किया कि विद्यापीठ को विश्वविद्यालय से सम्बन्धित होना चाहिए जिसके फलस्वरूप विद्यापीठ राजपूताना विश्वविद्यालय की 'एप्रूव्ड' संस्था बन गया। अब विश्वविद्यालय ने अपने 'एप्रूवल' को वापिस लेने की सूचना दी है जिसका कोई कारण संस्था को नहीं बताया गया है। विश्वविद्यालय की 'एप्रूवल' सम्बन्धी कार्यवाही में कोई खामी रह गयी होगी तो उसका विद्यापीठ क्या करे? 'एप्रूवल' के होने न होने से विद्यापीठ की छात्राओं के विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में बैठने के विषय में कोई ख़ास फर्क नहीं पड़ता है। फिर भी हमारे लिए यह मामला विचार का विषय तो बन ही गया है।

संकल्प

१९५४–५५

हमारा मानना है कि जो शक्ति है सो श्रद्धा में है। उसी श्रद्धा की अडिग आधार-शिला पर जहां कुछ भी नहीं था वहां इस विद्यापीठ की यह भव्य और विशाल इमारत खड़ी हुई। हमारी समझ में नहीं आता कि आखिर यहाँ पर इतना यह सब कुछ हो कैसे गया ? तत्वज्ञान की वात है कि शून्य में से स्थूल पैदा होता है: अदृश्य में से दृश्य निकलता है। तब फिर हम क्यों चिन्ता करें ? एक दिन हम चल पड़े थे सो चल पड़े और जो प्रकाश हमें मिलता आ रहा है उसमें हम चले ही जा रहे हैं। आगे भी प्रकाश मिलेगा और यह चाल जारी रहेगी। पर इस आकाशी मनः स्थिति में से नीचे उतर कर हमें कल से प्रत्यक्ष काम को हाथ में लेना होगा।

यह लिखते समय एक तरह की भीतरी हलचल का सा अनुभव हो रहा है। खयाल होता है कि कितनी भारी जिम्मेदारी इन वाक्यों से अपने ऊपर आयी जा रही है। कहावत है कि 'होट बाहर सो कोट बाहर।' और मीरा ने क्या सुन्दर गाया है 'अब तो बात फैल गयी जाने सब कोई। मीरा एक लगन लागी होनी हो सो होई।' इस भावना और इस हलचलमय वेग से प्रेरित होकर हम अपनी इस आकांक्षा को, अपने इस सपने को प्रकट करते हैं और उस भगवती आद्या शक्ति का स्मरण करते हैं जो उस नन्हीं सी शान्ताबाई के रूप में हमारे पास आयी थी और उस रूप के अन्तर्हित होने पर जिसने शान्ताबाई की जगह हमारे पास आने वाली असंख्य बालिकाओं के द्वारा आज तक हमको दृष्टि दान देते हुए लगातार कहा है 'शिवा वः पन्थानः सन्तु' इस वरदान के बिना हम कैसे कहां बढ़ने वाले थे ? यह वरदान हम को मिल चुका है। उसी के बल पर आकाश मण्डल की उड़ान सोचते हुए, पर पृथ्वी पर पांव जमाते हुए हम आज की इस घड़ी इस उद्देश्य की सफलता के लिए कृत संकल्प होते हैं।

भविष्य

१९५५-५६

इसी सोच विचार की वजह से हम लोग विश्वविद्यालय के सवाल को दूसरों के सामने बढ़ाने में कुछ झिझकते से रहे। हम अपनी कर्तृत्वशक्ति को बढ़ा सकें, उच्च कक्षाओं की छात्राओं की संख्या जरा तेजी से बढ़ सके, तब हम भारत सरकार के पास अपनी मांग को लेकर पहुँचें। भारत में कम से कम एक अच्छा-सा महिला विश्वविद्यालय तो होना ही चाहिए और वनस्थली विद्यापीठ की विश्वविद्यालय बनने की स्थिति हो सकती है। इन दोनों बातों में संदेह की गुंजाइश नहीं है। तब भी आज हम लोगों का भविष्य की ओर एकदम बहुत आगे बढ़कर देख सकना संभव नहीं जान पड़ता। जो हो, हम मानते हैं कि वनस्थली विद्यापीठ के विश्वविद्यालय बनने का हमारा सपना अपने समय से एक दिन साकार होगा।

भविष्य का दर्शन

१९५६–५७

भविष्य के लिए कभी हम कल्पना की उड़ान भरते हैं और महिला विश्वविद्यालय का सपना देखने लगते हैं और कभी हम सोच-विचार में पड़ते हैं कि विश्वविद्यालय बन जाने से वनस्थली की विशेषता की किस हद तक रक्षा की जा सकेगी। परन्तु आखिर हम देखते हैं कि इस संस्था को चलना तो आगे ही पड़ेगा, क्योंकि न यह पीछे खिसक सकती है और न यह खड़ी ही रह सकती । अब आगे चलने की दिशा विश्वविद्यालय बनाने की ओर ही हो सकती है। अपनी स्वाभाविक चाल से चलते इस संस्था का इतना विस्तार और विकास हो गया। कई बार हमें लगता है कि जितनी जन-शक्ति इतने बड़े काम के लिए चाहिए; उतनी शक्ति हमारे पास नहीं है। पर हम यह जानते हैं कि इतने सालों में हमारी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ी है और आगे भी वह शक्ति समयानुसार बढ़नी ही चाहिए। आर्थिक आदि साधनों की चिन्ता तो हमने कभी की ही नहीं। हमने तो अपने आपको इस काम के अर्पण कर रखा है और कभी हम अपने आपको बचा-कर नहीं रखते हैं। तब फिर साधन अपने आप जुटते रहते हैं। कभी सवाल उठने लगता है कि ऐसी विकट स्थिति में अब क्या होगा, और फिर उस सवाल का जवाब अपने आप ही लग जाता है। सामने कभी कभी शून्यता दिखाई देती है पर न जाने कहां से अचानक मदद टपक पड़ती है। लगातार होने वाले इस तरह के अनुभवों ने हमारे विश्वास को बढ़ा दिया है।

हमारा इरादा

१९५७–५८

संस्था का संचालन वनस्थली विद्यापीठ सोसाइटी के द्वारा होता है। जिसके कुछ सदस्य इस काम के लिए अपना जीवनदान किए हुए हैं। बाकी सदस्यों से दूसरे प्रकारों से यथासम्भव सहायता मिलती है। वनस्थली में सोसाइटी के सदस्यों के अलावा दूसरे भी कई एक कार्यकर्ताओं का विकास हुआ है और हो रहा है, जिनसे इस महान् कार्य के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेने की आशा की जा सकती है। पर हमारी दुविधा यह हो जाती है कि वनस्थली में मौजूद रह कर काम करना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक बाहर जाकर संस्था का काम करना होता है। संस्था के काम के अलावा हममें से किसी किसी को बाहर जाकर ऐसे कामों में भी योग देना पड़ता है, जिनका संस्था की दृष्टि से भी निश्चित उपयोग माना जा सकता है। संस्था में उपस्थित रहकर शिक्षा के सीधे कार्य के अलावा तमाम तरह की व्यवस्था करने का जिम्मा भी हमारे ऊपर आता है। प्रत्येक काम के लिए अलग अलग तरह की शक्ति चाहिए। सबसे बड़ी शर्त तो एक निष्ठा से इस काम के लिए अपना उत्सर्ग करने की है जिसे पूरा करना विरले ही लोगों के वश की बात हो सकती है। फिर जिसके जिम्मे जो काम है, उसे पूरी लगन और योग्यता के साथ करने की इच्छा और क्षमता चाहिए। आज जिस तरह की हवा है, उसमें यह दूसरी बात भी सुलभ नहीं है। जो लोग हमारा भरोसा करके दूर दूर से अपनी लड़कियों को वनस्थली भेजते हैं, उनको हमसे सब तरह की अपेक्षा रखना स्वाभाविक है। कभी वे अपनी ओर से यथोचित सहयोग न दे सकें तो उसकी शिकायत करना हमारे लिए उपयोगी नहीं हो सकता। हमें तो तमाम भार अपने सिर पर ही उठाना है। इसलिए हमें अपने आपको जरा सा भी बचाकर नहीं रखना है। जिधर से जो टक्कर आये, उसी का मुकाबला करने की तैयारी हमें रखनी पड़ती है। सचमुच स्वतंत्र वातावरण में राष्ट्र के मानव का निर्माण करने का प्रयास करना कोई ऐसा वैसा काम नहीं है, जो आसानी से हो जाय और जिसमें यों ही पूर्णता आ जाय या सफलता मिल जाय। इस काम को आसान मान करके तो हम कभी चले भी नहीं थे, पर आज हमें लगता है कि जितना मुश्किल हमने माना था, उससे बहुत ज्यादा मुश्किल है यह काम। जैसे भी हुआ हो, हम लोग आज तक निभे हैं और आगे निभते रहने का विश्वास है। विद्यापीठ के स्थापना-दिवस के अवसर पर प्रति वर्ष हम एक संकल्प पाठ करते हैं। और हमें लगता है उसमें से अपनी आगे की यात्रा के लिए हमको शक्ति प्राप्त होती है। बढ़ती हुई कठिनाइयों के बीच में विचलित होना, शंकित होना, भयभीत होना हमारा काम नहीं है। हमें निश्चल, निःशंक व निर्भय भाव से चलते रहना है। आज हमारी यह मनःस्थिति है, सो पक्की है, कल का ज्यादा विचार करना हमारे खयाल से बहुत सार्थक नहीं हो सकता। समुद्र में एक के बाद दूसरी तरंग आती रहती है, उसके लिए किसी को कुछ करना नहीं होता। इस प्रकार हमें अपनी अबाध गति से चलना है, चलते रहना है। बस, यही हमारा इरादा है।

शिक्षा विषयक विचार

१९५८-५९

हमारे पास प्रायः कुछ भी नहीं था। तब एक दिन अपने जीवनकुटीर से अलग एक शिक्षा कुटीर बनाने की कल्पना पैदा हुई थी। अव्वल दिन कुछ नही था। पर बाद में जो होना चाहिए था, वह सभी कुछ होता गया। लड़कियां आती गयीं, कार्यकर्ता जुटते गये, रुपया भी कहीं न कहीं से आता ही रहा, जमीन भी मिल गयी और पहले कच्चे और बाद में पक्के मकान भी बनाये गये। सर्वोपरि शिक्षा की जो योजना हमें शुरू से सूझी थी, वह भी क्रमशः परिष्कृत होती हुई निश्चित हो गयी जिसके पीछे अपना एक जीवन-दर्शन है। यह सब कुछ अब तक होता गया है तो इसी प्रकार आगे भी सब कुछ होते रहने का पूरे से पूरा भरोसा हमको है और यह तमाम भरोसा हमें अपने स्वभाव से है और अपने इस भरोसे के विषय में, भले ही कभी कभी हम दबे हुए से लगने लगते होंगे, किसी प्रकार का संदेह हमें नहीं सताता है। अपनी इस श्रद्धा के अनुसार हमारा सपना सच्चा हो, इसके लिए चारों ओर से जिस सहानुभूति, सहयोग और सहायता की अपेक्षा हमें है, हम मानते हैं, वह सभी कुछ हमको जैसे मिलता रहा है मिलता रहेगा, अवश्य मिलता रहेगा।

निवेदन

१९५९–६०

हमें अपने आपसे यह कहना है कि इस बड़े मिशन की पूर्ति की अधिकाधिक क्षमता हम प्राप्त करें। कार्यकर्ता के मान व उनकी स्वतन्त्रता का आग्रह हमें हो, पर हमारा अभिमान रहित विनय भाव बना रहे। लड़कियों के संरक्षकों से हमारा यह कहना है कि हम जो कर रहे हैं सो आपका अपना ही काम है और आप यही समझते हुए इस काम में हमारी हर प्रकार से मदद करें। लड़कियों से हम यह कहेंगे कि तुम्हें अपने इस स्थान पर हमारे पड़ौस में अच्छा और सुयोग्य भारतीय मानव बनना है, इसलिए तुम्हारा और हमारा सहयोग पक्का से पक्का होना ही चाहिए। राजसत्ता से हम यह कहना जरूरी समझते हैं कि वह अपने पास के सार्वजनिक साधन कार्यकर्ताओं को दें और उनके उपयोग, दुरुपयोग का ध्यान रखलें, पर अपनी ओर से कार्यकर्ताओं की परेशानी न बढ़ने दें। दाता लोग अपना कर्तव्य मानकर कार्यकर्ताओं की यथाशक्य सहायता करें और राष्ट्र निर्माण के कार्य में योगदान दें। इस निवेदन के साथ हम अपने आपको अपने सद् अंगीकृत कार्य के लिए पुनः समर्पित करते है।

हमारी अनुभूतियां

१९६०-६१

इस सबके बावजूद हम बहुत बड़े बड़े सपने देख रहे हैं। देखने वाले कहते हैं यह काम बहुत बड़ा और बहुत अच्छा हो गया है। बड़ा काम हो गया और अच्छा भी हो गया यह ठीक हो सकता है। यह काम और भी ज्यादा बड़ा हो जायेगा और उसका अच्छापन भी बना रहेगा, ऐसा हम सोचते हैं। पर हमको यह शंका भी होती है कि इस काम के शरीर के बढ़ने के साथ साथ कहीं इसकी आत्मा का सिकुड़ना शुरू न हो जाए। ऐसा न होने पाये, इसके लिए हम सतत प्रयत्नशील रहते हैं। विद्यापीठ का काम अब तक सहज स्वभाव से बढ़ा है। एक दृष्टि से आगे इस काम का बढ़ना जहां अनिवार्य है वहां शुभ भी है। पर हमारा कर्त्तव्य यह होगा कि आगे बढ़ते हुए हम अपनी साबित कदमी का ध्यान रखें। पर हम जानते हैं कि संघर्ष में ही शक्ति पैदा होती है। हम अपनी आन्तरिक प्रेरणा से चले थे और वही प्रेरणा भविष्य में हमें अपना मार्ग दिखायेगी।

हमारा सोच विचार

१९६१–६२

हम सोचते हैं और देख रहे हैं कि विद्यापीठ ने लगभग शुरू से ही केवल एक विद्यालय या महाविद्यालय की सीमा में बंधी रहने वाली संस्था के रूप में चलना नहीं चाहा। विद्यापीठ बहुमुखी शैक्षणिक प्रवृत्तियों का केन्द्र इस जरा से गांव में ही बन गया जहां पर देश के दूर दूर के स्थानों से न जाने किस आकर्षण के मारे लड़कियाँ चली आती रहीं। जब ऐसा होता गया तो इस ग्राम स्थित आवासयुक्त संस्था को नाना प्रकार की व्यवस्थाओं के लिए असाधारण मात्रा में खर्चा करना पड़ा जिसके लिए कहीं न कहीं से रुपया भी आता रहा। जाहिर है कि इतना बड़ा खर्चा साधारण व सीमित काम के लिए मिलना व उठाते रहना सम्भव नहीं हो सकता और उसका औचित्य भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसी हालत मे अपने आपसे अनेक दिशाओं में बढ़ते हुए इस काम को कभी रोकने का हमारा मन नहीं हुआ। भविष्य के लिए भी इस संस्था के सामने फैलने के अलावा दूसरी चाल नहीं हो सकती, यदि इसे पर्याप्त साधन प्राप्त करते हुए अच्छी तरह से जिन्दा रहना हो तो। हम समझते हैं कि वनस्थली की जीवन शक्ति इसके सहज सतत विकास में निहित है और हमें लगता रहता है कि हो न हो काम में पक्कापन भी उसकी स्थिर स्थिति की अपेक्षा उसके आगे बढ़ने के साथ साथ ज्यादा अच्छी तरह से आ सकना चाहिए। तथापि हम महसूस करते हैं कि वर्तमान को पक्का करने और विकास की प्रक्रिया में उचित संतुलन बनाये रखने का हमें निरंतर ध्यान रखना होगा। इसलिए विकास की व आगे बढ़ने की हर मंजिल पर सावधानी बरतना, अपनी सारी उड़ानों के बीच पांव जमीन पर रखना, यह हम जैसे जिम्मेदार राष्ट्रकर्मियों का स्वभाव होना चाहिए। पर उक्त सावधानी का अर्थ अनावश्यक रूप से डरना, झिझकना, संशय में पड़ जाना नहीं हो सकता। सावधानी और साबित कदमी के साथ सही, पर जोखिम उठाने की असीम शक्ति हमारे पास होनी चाहिए। हमारा मानना है कि जब आन्तरिक श्रद्धा प्रबल होगी तो आज ऊपर से दिखायी देने वाली जोखिम अन्ततोगत्वा वास्तव में जोखिम साबित नहीं होगी।

सवाल यह भी उठता है कि हम आखिर क्या करने जा रहे हैं और वह क्यों और किस लिए ? स्त्री शिक्षा के काम की, जीवन के अमुक मूल्यों पर आधारित कुछ कल्पना हमारे दिमाग में जरूर बनी थी। वह कल्पना बाद में विकसित होती गयी और हमने उस कल्पना को मूर्त रूप देने की पूरी कोशिश की, सचाई के साथ और पक्की लगन के साथ। पर देश और समाज में जो परिवर्तन होते हैं उनके असर से हम या कोई भी सर्वथा बचे हुए नहीं रह सकते। हम अपना असर अपने पड़ौस पर डालते हैं तो वह पड़ौस भी कुछ न कुछ असर हम पर अवश्य डालता है। अपनी किसी मूलभूत बात को छोड़ने का सवाल नहीं है। पर बदलती हुई परिस्थितियों में हमारी प्रतिक्रियाओं को भी कुछ तो बदलना ही पड़ेगा। यदि एक ओर अपनी किन्हीं मान्यताओं पर खड़े रहने में प्राणशक्ति का आधार बना रहने वाला है तो दूसरी ओर समयोचित लचकीलेपन के बिना जीवन की गतिशीलता का ह्रास होने लग जायेगा। हमारा कर्म क्षेत्र सीमित रहता। और उसमें लड़कियों आदि की तादाद कम बनी रहती तो हम विविध प्रकार के कार्यकलापों के लिए आवश्यक कार्यकर्ता और साधन नहीं जुटा सकते थे—खुद हम लोगों में से ही सब के सब यहां न होते। और तादाद आदि का विस्तार और भी आगे बढ़ने की हालत में हमारे अपने प्रभाव की शक्ति को तरल होना पड़ेगा और हमें कुछ न कुछ समझौते स्वीकार करने होंगे। कम तादाद के साथ सघन काम करके किसी ने ज्यादा ठोस और ज्यादा बड़ा नतीजा निकाल लिया हो, ऐसा हमारी जानकारी में नहीं है। इसलिए यथाशक्ति अपनी आधारभूत बात को पकड़े रहते हुए, पर अपनी आदत में पड़ी हुई परिस्थितियों के सामने अपनी प्रतिक्रियाओं को आवश्यकतानुसार बदलते हुए चलना होगा। किसी भी प्रकार का संशय–लक्ष्यभ्रष्ट हो जाने का संशय भी, हमें नहीं सता सकता। अपने जीवन की गतिशीलता हमको और हमारे काम को हर तरह से स्वस्थ रखने में समर्थ होगी। इस प्रकार हमें अपने मोर्चे पर डटे रहना है। सत्य हमारे सामने है, कार्यक्रम हमारे हाथ में है, साधन और न्यूनाधिक कठिनाई के साथ, साथी भी जुटते रहने का हमें विश्वास है और हमारा अन्तर्नाद बोलता है—डरो मत, चलते चलो, बढ़ते चलो।

भविष्य की झांकी

१९६२--६३

इस विचार मंथन में से हमें अपने भविष्य की झांकी होना चाहती है। विद्यापीठ भले ही राजस्थान सरकार के कानून से या केन्द्रीय सरकार के कानून से बाकायदा विश्वविद्यालय बने, चाहे वह केन्द्रीय सरकार के कानून से राष्ट्रीय महत्व की संस्था घोषित हो, अथवा यूनिवर्सिटी ग्राण्ट्स कमीशन एक्ट की धारा ३ के तहत में इसका यूनिवर्सिटी जैसा दर्जा माना जाए—हर सूरत में हमारे सामने मुख्य प्रश्न दो हैं। एक तो यह कि वनस्थली में जो सहज स्वाभाविक रीति से एक भारतीय व राष्ट्रीय वातावरण बना है और अब "अन्तर्राष्ट्रीय भवन" की स्थापना से अन्तर्राष्ट्रीय संपर्क व समन्वय का जो वातावरण बनना शुरू होना चाह रहा है उसमें इस संस्था को आजादी होनी चाहिए कि वह उपयुक्त पाठ्यक्रमों का स्वतन्त्र रीति से निर्माण कर सके। दूसरे यह कि हमारे ऊपर जितना भार पब्लिक से धन संग्रह करने का रहता आया है वह क्रमशः कम होता जाए और अन्ततोगत्वा बिल्कुल न रहे और इसके साथ ही यह भी कि संस्था अनुदान देने वालों के सामान्य नियत्रण के सिवाय उनके शिकंजे में ऐसी न जकड़ जाए कि उसे मिलने वाली दूसरे प्रकार की स्वतन्त्रता बेकार ही साबित हो जाए। जब हम विद्यापीठ का दर्जा बढ़वाने की कल्पना करते हैं तो हमारे सामने संस्था के भारी भरकम कलेवर का चित्र नहीं आता है। वनस्थली विद्यापीठ अपने आवासयुक्त संस्था के रूप को छोड़कर किसी परीक्षा लेने वाले विश्वविद्यालय की स्थिति में नहीं जाना चाहता, न विद्यापीठ बोझल व पेचीदा तंत्र ही अपने लिए सोचता है जिसकी बन्दिश में इसकी आत्मा बंध जाए और जिसके बोझ के नीचे उसका शरीर दबकर कुचल जाए। यह सारा सवाल किसी भी तरह से आसान सवाल नहीं है। इस पर धीरज और गंभीरता से विचार करना होगा। विद्यापीठ की परामर्श परिषद् पूरा अन्वेषण करके इस मामले में अपनी राय कायम करेगी और तब संचालक मण्डल उस पर विचार करके निर्णय करेगा। एक ओर यह सब कुछ चलता रहेगा। तब तक दूसरी ओर हमारा काम होगा योग्य कार्यकर्ताओं

की खोज करना, देश विदेश से लड़कियों को लाना, आवश्यक धनसंग्रह करना और सर्वोपरि चारों ओर से सरकारों से, पब्लिक से, विद्वानों से सहानुभूति व सहयोग प्राप्त करना। इसमें शक नहीं कि हम उड़ान भरते रहते हैं और कभी हम किसी कल्पनालोक में विचरते हुए दिखायी दे सकते हैं। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि साथ में हम जमीन पर पांव रखकर साबितकदमी से चलते आये हैं। यह एक प्रकार का योग है। सपना देखे बिना कोई सृष्टि नहीं हो सकती पर केवल आकाश में उड़ते रहने से वह सृष्टि कोई रूप नहीं पकड़ सकती। बस, यही संतुलन रखना है। विघ्न की आशंका से डरना नहीं है तो साफ, दिखाई देने वाले खतरे के सामने आंखे भी बंद नहीं कर लेनी हैं। श्रद्धा बलवती होती है और विश्वास सब कुछ कर डाल सकता है। पर सावधानी एक ही रखने की है कि अपनी शक्ति का गलत अन्दाज न लग जाए। हम अपनी इस दृष्टि से विद्यापीठ के भविष्य की झांकी देख रहे हैं और हमें लगता है कि वह झांकी समय आने पर अपना पूरा रूप न केवल हमारे बल्कि दुनिया के सामने प्रस्तुत करेगी।

विद्यापीठ स्वतन्त्र बने

१९६३–६४

वनस्थली के लिए आमदनी के कई जरिये हैं। एक ओर कई छोटी बड़ी सरकारें हैं, दूसरी ओर पब्लिक है, तीसरे कुछ न कुछ कमा डालने का तरीका भी अपनाया हुआ है जिसे और भी विस्तृत करना हम चाहते हैं। इसलिए सरकार से हम यही निवेदन कर सकते हैं कि वह वनस्थली को कायदे से स्वतन्त्र बनने का मौका दे दे–सिफारिश करने वाली सरकार सिफारिश करदे, मंजूर करने वाली मंजूर करदे। रही रुपये पैसे की बात, सो जब जितना दिया जा सके दे दे और जो न दिया जा सके उसके लिए ना करदे। इसी प्रकार चलते चलते एक दिन वह स्थिति आ जाएगी जिसमें वनस्थली विद्यापीठ को अर्थ के लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी—यह हमारा विश्वास है, यह हमारी श्रद्धा है। हम चाहते हैं कि हमारे इस विश्वास को, हमारी इस श्रद्धा को कसौटी पर चढ़ने का जो मौका आज तक मिलता रहा है उससे बढ़कर मौका भविष्य में मिले और हम उस कठिन परीक्षा में सदा की भांति उत्तीर्ण हों। तथास्तु।

भविष्य

१९६४–६५

अब यहां विद्यापीठ की कानून के अन्तर्गत स्वतन्त्र हैसियत का प्रश्न उठता है जिसके बारे में एकाध वर्ष से वह प्रयत्न कर रहा है। विद्यापीठ को यह आशा थी कि देर से नहीं बल्कि जल्दी ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एक्ट के मातहत उसे डीम्ड यूनिवर्सिटी के तौर पर मान लिया जाएगा। अभी यह आशा पूरी नहीं हुई है, हालांकि विद्यापीठ के कार्यकर्ताओं का यह विश्वास है कि विद्यापीठ को इस रूप में या और किसी अन्य रूप में मान्यता के मिलने में अधिक लम्बा समय नहीं लगेगा। विद्यापीठ का पक्ष मजबूत है। दर असल, एक न एक प्रकार की मान्यता प्राप्त कुछ दूसरी संस्थाओं की मान्यता प्राप्त होने के समय की स्थिति के मुकाबले में कहीं अधिक मजबूत है। विद्यापीठ की स्वतन्त्र हैसियत का जहां तक सम्बन्ध है, विद्यापीठ का जोर इस बात पर है कि उसे शिक्षा की उस सामान्य राष्ट्रीय योजना के अन्तर्गत, जो हमारी आशा है कि शिक्षा आयोग के प्रयत्नों के फलस्वरूप विकसित होगी, अपना शिक्षा कार्य चलाने और उसमें प्रयोग करने की स्वतन्त्रता रहे। हर एक व्यक्ति इस बात से सहमत होगा कि भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि भली प्रकार सोची हुई शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना तैयार हो। हालांकि देश में शिक्षा के क्षेत्र में कई प्रकार के अनेक सुधार हुए हैं (दर असल ये सुधार आवश्यकता से अधिक और अधिक बार हुए हैं), फिर भी हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था दुर्भाग्य से राष्ट्रीय लक्ष्यों और सामाजिक आदर्शों से मेल नहीं खाती और इसी पृष्ठभूमि में विद्यापीठ यह चाहता है कि भविष्य में वह अपना योगदान अधिक स्वतन्त्रता पूर्वक दे सके और इसी पृष्ठभूमि में ही विद्यापीठ के कार्यकर्ताओं के सामने यह मिशन और स्वप्न भी रहा है कि वनस्थली अपने पूर्णतया विकसित रूप में अपनी राष्ट्रीय एकता और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के शान्त और स्वस्थ वातावरण में लड़कियों के शिक्षण प्रशिक्षण और शोध का न केवल राष्ट्रीय केन्द्र, जो कि वह आज भी है, बल्कि एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र भी बने। इस मिशन और स्वप्न को पूरा करने के लिए वनस्थली को देश और विदेश के सभी क्षेत्रों से सहायता और सहयोग चाहिए और जो अवश्य ही प्रचुर मात्रा में उसे उपलब्ध होगा।

भविष्य

१९६५–६६

भूतकाल, वर्तमान काल या भविष्य की जो भी कठिनाइयां हों, वनस्थली ने चमत्कारिक प्रगति की है, कर रही है और करती रहेगी। शिक्षा के क्षेत्र में पूरी स्वतन्त्रता के अभाव में विद्यापीठ को अपने काम में बाधा अनुभव होती रही है। फिर भी पिछले ३१ वर्षों में हमने स्त्री शिक्षा के बारे में हमारे विचारों को व्यावहारिक रूप देने की पूरी कोशिश की है। और वह समय भी अवश्य आयेगा जब विद्यापीठ को अपनी विशिष्ट शिक्षा पद्धति को समुचित रूप देने की पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। हम सब सम्बन्धित लोगों को यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वनस्थली विद्यापीठ का कार्य एक समन्वित इकाई के रूप में है और इसको स्कूल व कालेज के एक दूसरे से सर्वथा अलग टुकड़ों में नहीं बांटा जा सकता। शिशु कक्षा से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक एक ही विचार विद्यापीठ के काम के मूल में होना चाहिए और जिस स्वतन्त्रता की हम बात करते हैं वह पूरे विद्यापीठ को मिलनी चाहिए। शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षण-सामग्री पुस्तकालय, प्रयोगशाला आदि सभी दिशाओं में स्थिति को उत्तरोत्तर ठीक और सुदृढ़ करने का विद्यापीठ प्रयत्न कर रहा है। और विद्यापीठ के लिए आवश्यक कानूनी हैसियत प्राप्त करने में चाहे जितना भी समय लगे, यह प्रयत्न जारी रहेगा। विद्यापीठ के कार्यकर्ता संस्था के भविष्य प्रति निश्चित विश्वास रखते हैं। कठिनायों से वनस्थली को शक्ति प्राप्त हुई है और कठिनाइयां ही इस अद्वितीय संस्था के दृढ़ आधार के रूप में रही हैं।

भविष्य

१९६६–६७

एक लाड़ली व होनहार बेटी की अकाल मृत्यु के परिणामस्वरूप विद्यापीठ का जन्म अकस्मात हो गया। इस घटना से विद्यापीठ के कार्यक्रमों को प्रेरणा व प्रेम की शक्ति प्राप्त हुई। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विद्यापीठ का जन्म व महिला शिक्षा की संस्था के रूप में विकास हुआ है। लड़कियों की शिक्षा के क्षेत्र में वनस्थली के अनुभवों का उपयोग अन्यत्र लड़कों की शिक्षा के क्षेत्र में भी किया जा सकता है। लेकिन जहां तक दिखता है विद्यापीठ खुद लड़कियों की शिक्षा के साथ साथ लड़कों की शिक्षा का काम नहीं उठा सकता। लड़कों व लड़कियों में बहुत समानता है फिर भी "बहुत प्रकार से महिलाओं की अभिरुचि व कार्यक्षेत्र पुरुषों की अभिरुचि व कार्यक्षेत्रों से भिन्न हैं और महिलाओं और पुरुषों के बीच अनेक मनोवैज्ञानिक (व शारीरिक भी) अन्तर और उन पर आधारित उनके बीच सामाजिक कार्यों के विभाजन की आवश्यकता को एक तथ्य के रूप में तथा इसलिए लड़कों व लड़कियों के पाठ्यक्रमों के आधार के रूप में मानकर चलना पड़ेगा।" हमारा मानना है कि इस दिशा में सभी संभावनाओं का अन्वेषण करने के लिए वनस्थली विद्यापीठ बहुत उपयुक्त संस्था है। इसके लिए, अवश्य ही, शिक्षाक्रम सम्बन्धी आजादी आवश्यक है जो कि स्वतन्त्र स्वशासी हैसियत होने से ही मिल सकती है। कुछ भी हो, महिला शिक्षा की विशेष संस्था के रूप में वनस्थली विद्यापीठ की स्थिति को स्वीकार करना होगा और यह भी मानना होगा कि वनस्थली विद्यापीठ को महिला संस्था के रूप में ही अपने चरम विकास तक पहुँचना है।



संकल्प

१९६७–६८

वनस्थली तब न केवल विद्या का एक महान केन्द्र होगी वल्कि नारी के नैतिक, व्यावहारिक, भारतीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर निर्माण का केन्द्र भी होगा।

वनस्थली सब की है वह सबकी सेवा करती है। वनस्थली देश के किसी भी राज्य या प्रदेश के वाहर नहीं है, प्रत्युत वह सब के भीतर है। वनस्थली राष्ट्र की वहुमूल्य सम्पत्ति है। इस भावना से वल प्राप्त करते हुए वनस्थली के कार्यकर्ता सबकी शुभकामनाओं के साथ इस महान राष्ट्रीय प्रयास की सफलता के लिए ही जीने और मरने का संकल्प करते हैं।

अन्तर्विचार एवं निष्कर्ष

१९६८-६९

वनस्थली विद्यापीठ के काम की शुरूआत समझौते की भावना में हुई थी। विद्यापीठ के सामने एक ऐसी शिक्षा प्रणाली थी जो कि स्पष्टतया दोषपूर्ण थी। साथ ही विद्यापीठ के शिक्षा सम्बन्धी विचारों को सब ओर फैली हुई डिग्रियों व सर्टिफिकेटों की चाह के साथ मेल बिठाना था। वनस्थली ने ऐसी स्थिति में अपनी पंचमुखी शिक्षा का विकास किया। लेकिन प्रचलित परीक्षाओं की अनिवार्यता के कारण पंचमुखी शिक्षा, बौद्धिक शिक्षा के अलावा अन्य पहलुओं के सम्बन्धित तत्व सम्पूर्ण प्रणाली का सम्बन्धित अंग बनने के स्थान पर गौण ही रहे। परिणामस्वरूप अपने पाठ्यक्रम बनाने व अपनी परीक्षा लेने का अधिकार प्राप्त करने की दृष्टि से स्वतन्त्र हैसियत प्राप्त करने का विचार सामने आया। यद्यपि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम के अन्तर्गत डीम्ड विश्वविद्यालय की हैसियत प्राप्त करने का लक्ष्य अभी भी विद्यापीठ के सामने है लेकिन यह फिर भी विचारणीय है कि वनस्थली के लिए किस प्रकार की स्वतन्त्र हैसियत उपयुक्त होगी।

स्पष्ट कहा जाय तो डीम्ड विश्वविद्यालय की हैसियत प्राप्त करने से दो लाभ मिलने की आशा विद्यापीठ के सामने थी–अपने खुद के पाठ्यक्रम बना सकने व अपनी डिग्रियां व प्रमाण-पत्र दे सकने की स्वतन्त्रता और चालू खर्च व विकास के लिए पर्याप्त धन मिलने की संभावना । इस समय संस्था के मन में इन और ऐसे ही दूसरे लाभों के मिल सकने के बारे में शंका है । जो हो, विद्यापीठ अपने विशिष्ट कार्यक्रमों के लिए बोर्ड व विश्वविद्यालय के प्रमाण-पत्रों के अतिरिक्त अपने स्वयं के प्रमाण-पत्र देने की योजना का विकास कर रहा है । जहां तक रुपये पैसे का सवाल है, वनस्थली को विश्वास है कि छात्राओं के संरक्षकों से यदि कहा जायगा तो वे सरकार, जनता और विद्यापीठ के अपने स्वयं के कमाई वाले विभागों के साथ सहर्ष संस्था के प्रशासकीय व विकास व्यय के बोझ में उचित हिस्सा बंटा लेंगे ।

(जयपुर राज्य प्रजामण्डल की अक्टूबर, १९३६
से मार्च, १९३८ तक की रिपोर्ट में से)

प्रस्तावना

१. राजस्थान के देशी राज्यों में जयपुर का एक खास स्थान है। रक़बे के हिसाब से जयपुर चौथे नम्बर पर आता है, लेकिन आबादी इसी राज्य की सबसे ज्यादा है। जयपुर राज्य में कई प्रकार के रचनात्मक कार्य होते आ रहे हैं और इसी राज्य की हद में शेखावाटी, सीकर के किसान आन्दोलन भी जोर-शोर से हो चुके हैं। बहुत बड़ी तादाद में जयपुर निवासी दूसरे प्रान्तों में भी रहते हैं और उनमें से कई अपनी जन्म भूमि में शिक्षा प्रचार आदि कामों में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। जयपुर शहर में भी थोड़ी बहुत सार्वजनिक चहल पहल तो रहती आई है। जयपुर शहर वाले एक दो बार अपनी मजबूती का भी अच्छा सबूत दे चुके हैं।

२. फिर भी यह मानना पड़ेगा कि जयपुर राज्य में व्यापक रूप में सार्वजनिक जीवन और लोकमत का विकास नहीं हो पाया और राजनैतिक दृष्टि से भी जयपुर पिछड़ा हुआ ही रहा। इसका कारण यह मालूम पड़ता है कि जो लोग धनीमानी हैं उन्हें तो प्रायः राज्यधिकारियों के रुख के अनुसार चलने में अपना फायदा दिखाई देता है और जो गरीब हैं उनकी एक तो जानकारी कम है और दूसरे वे अपनी गरीबी में असमर्थ से रह जाते हैं। जो लोग पढ़े लिखे हैं वे ज्यादातर राज की नौकरी में होने से परतंत्र हैं। राज की कमी बेशी बतला देना राज के विरुद्ध समझा जाता है और राजभक्ति का प्रदर्शन किये बिना राज की सुदृष्टि रहना मुश्किल है, ऐसी हालत में जिन लोगों को पब्लिक कामों का शौक रहा उन्होंने ऐसे ही काम करने की कोशिश की, जिनका सौगन्ध खाकर भी राजनीति से अलग होना साबित किया जा सके।

३. इसका नतीजा वही हुआ जो होना चाहिये था। राज की ओर से गलतियां होती रहीं और लोग भीतर भीतर ही नाराज होते रहे, लेकिन किसी ने प्रकट होकर उन गलतियों का जिक्र इसलिए नहीं किया कि ऐसा करने से राजभक्ति में फर्क आया हुआ समझा जाता और राजनीति में भाग लेना समझ लिया जाता। जब राज की गलतियों का विरोध नहीं हुआ तो राज को यह पता नहीं चल सका कि उसने कोई गलती की है। राज कर्मचारियों को जैसा ठीक लगा वैसा ही वे करते रहे और पब्लिक को उनके काम पसन्द नहीं आये तब भी किसी ने कुछ कहा नहीं।

मातृमन्दिर विद्यालय, जोबनेर के कार्यविवरण में से

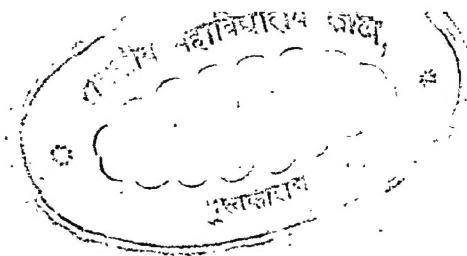
(१९५९ से १९६९ तक के कार्य विवरण से)

ऊपर के विवरण से जाहिर है कि शुरु के २६–२७ महीनों में खर्चा ज्यादा लगा और काम कम हुआ और उसमें भी सत्र १९६१–६२ में तो काम का बहुत ही नुकसान हुआ। अप्रैल, १९६२ से काम ठीक चलने लगा और पिछले ७ सालों में जो काम हुआ उसे सन्तोषजनक माना जा सकता है। अच्छी भावनाशील शिक्षिकाएं बहुत कम मिलती हैं और सेवा भावना के बिना उनका जोबनेर जैसे स्थान में ठहरे रहना मुश्किल होता है। दूसरे शिक्षिकाओं के अलावा सारे काम की देख रेख कर सकने वाला भरोसे का आदमी जोबनेर में उपलब्ध नहीं होता। जोबनेर के ही एक भाई को बड़े प्रेम से मासिक वेतन पर रखा गया था। पर उससे काम बनने के बजाए काम बिगड़ता ही गया। जो हो, इस भले काम को चलाते रहने का और योग्य शिक्षिकाएं तथा आवश्यक साधन मिल जाएं तो काम का विस्तार करने का भी अपना विचार है। जहां श्री शास्त्रीजी का जन्म हुआ वहां उन्हें जन्म देने वाली और साल सवा साल का छोड़कर दिवंगत हो जाने वाली मां की याद में जोबनेर की महिलाओं और बालक–बालिकाओं के लिये कुछ करने की पवित्र भावना ने इस विद्यालय की स्थापना करवायी है। यह

अच्छा काम है जिसमें जोवनेरवासियों को भी कुछ न कुछ सहयोग देना चाहिए। बाकी अपने परिवार से जो कुछ बना सो उसने अब तक किया है और वह आगे भी करता रहेगा। समाज कल्याण बोर्ड से जो सहायता मिली है उसके अलावा तमाम रुपया अपने घर में से ही लगा है। किराये के नाम से जो रुपया खर्च में दिखाया गया है वह भी ज्यों का त्यों संस्था में ही जमा करा दिया गया है। आगे चलकर सरकारी शिक्षा विभाग से सहायता लेने का विचार भी है। पर अपना ध्यान कहीं से सहायता ज्यादा मिले, कम मिले और मिले या न मिले : हर हालत में अपने सामर्थ्य के अनुसार इस पवित्र काम को आगे बढ़ाते जाने का है।

भाग ५

उत्तर कथन



भाग—५

उत्तर--कथन

"प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" नामक यह ग्रन्थ पूरा हुआ। मेरे हैदराबाद बम्बई के लम्बे दौरे में पहले 'रचना पंचशती' के ५०० छन्दों की छांट कर दी गई। उसी दौरे में 'जीवनवृत्त' के ५ अध्याय लिख डाले गये। रात के १२—१ बजे और ५-६ बजे के बीच के समय में लिखने का काम हुआ। दुबारा तिबारा देखने पर जो संशोधन आवश्यक मालूम पड़े सो वनस्थली पहुंच कर किये गये। इस प्रकार दो बड़े भागों का काम नक्की हुआ। बहुत बड़े भाग ३ के लिए अतिरिक्त सामग्री की छांट का काम बहुत मुश्किल साबित हुआ। कागजात बहुत ज्यादा थे जिनमें से थोड़ी सामग्री को ही ग्रन्थ में स्थान मिल सकता था। इसलिए एक से अधिक वार छांट करनी पड़ी।

जीवनवृत्त के ५ अध्यायों को सबसे पहले रतनजी ने पढ़ा। उन्होंने दो एक महत्वपूर्ण सुझाव दिये सो मान लिये। कुछ सुझाव सुधाकर ने दिये जिनमें से मैंने ज्यादातर को मान लिया। श्याम और सुशीला ने बताया कि 'राजनीति' आदि के अध्याय बहुत संक्षिप्त हैं। दोनों की इच्छा को समझकर मैंने कहीं कहीं पर थोड़ा बहुत खुलासा कर दिया। प्रो० प्रेमनारायण जी से ग्रन्थ के एक प्रकरण के विषय में थोड़ी चर्चा हुई। उस पर से मुझे लगा कि उक्त प्रकरण को दुबारा लिख देना चाहिए सो मैंने लिख दिया। संस्कृत रचनाओं को मैंने पण्डित जगदीश शर्मा को दिखा लिया। रामेश्वर देखकर बोला शुरू से आखिर तक अक्खड़पन (यानी उसी के अर्थ के अनुसार खरी स्पष्टवादिता) कायम है।

श्री वीरेन्द्रकुमार मित्तल ने दौरे के दिनों में मेरी बहुत मदद की। वनस्थली पहुंचने पर श्री प्रह्लादनारायण पुरोहित, श्री श्यामसुन्दर माथुर और श्री वीरेन्द्रकुमार मित्तल रात दिन एक करके इस काम में लगे रहे। टाइप के काम में श्री गोपीलाल गोचर, श्री सीताराम पारीक, श्री शिवसिंह गौड़, श्री रामराय वैश्य तथा श्री श्रीधर राजाराम शडांगुले को बहुत परिश्रम पड़ा। मिलान करने के काम में श्री चन्द्रकिशोर शर्मा, श्री दामोदर पारीक, पण्डित जगदीश शर्मा, डॉ० लालचन्द जैन, श्री शिवकुमार शर्मा, श्री राधाकृष्ण अग्रवाल तथा श्री सुनीलकुमार परनामी ने भाग लिया। इस प्रकार कई लोगों के अथक परिश्रम से "प्रत्यक्षजीवनशास्त्र" कुछ हफ्तों में ही तय्यार हो गया।

मेरे मित्र स्व० श्री केशरलालजी अजमेरा के पुत्र चि० रमेशचन्द्र अजमेरा ने परिश्रम पूर्वक इस ग्रंथ का मुद्रण कर दिया। उनका यह योगदान सराहनीय है।

मैं कुछ भी नहीं सोच पा रहा हूं कि नजदीक के, दूर के पाठकों को "प्रत्यक्ष-जीवनशास्त्र" कैसा लगेगा। प्रत्यक्षजीवनशास्त्र का समास इस प्रकार है। प्रत्यक्ष है जो जीवन सो प्रत्यक्षजीवन, प्रत्यक्षजीवन का शास्त्र प्रत्यक्षजीवनशास्त्र। प्रत्यक्ष माने मुझे जो जैसा प्रत्यक्ष दिखाई देता है वही मेरे लिए सत्य है, वही प्रत्यक्ष सत्य है। जिसे मैं नहीं देख सकता, जिसे मैं नहीं जान सकता, जिसका अनुमान भी मैं अच्छी तरह से नहीं लगा सकता उसकी मैं क्या बात करूं? दूसरे सुविज्ञों की बतायी बातें यदि पूरे तौर पर मेरे गले नहीं उतरे तो उसका भी मैं क्या करूं? पर मुझे पता है कि प्रत्यक्ष के विषय में मेरी श्रद्धा सुनिश्चित है, पक्की है। वही मेरे जीवन का आधार है।

इन शब्दों के साथ मेरी यह टूटी-फूटी कृति सबके सामने प्रस्तुत होती है। जिसे देखना हो देखे, जिसे जो कुछ कहना हो सो कहे। "पूर्वकथन" के अनुसार ग्रन्थ में प्रत्यक्ष सत्य का विवेचन हुआ है, मेरी अनुभूति का परिदर्शन हुआ है और मेरे चारित्र्य का निरूपण हुआ है और मेरा विश्वास है कि मेरे प्रियजन इसे देखकर अवश्य प्रसन्न होंगे। "जीवनवृत्त" मेरा लिखा हुआ है, "रचनापंचशती" मेरी रची हुई है, भाषण मेरे दिये हुए या कुछ दूसरों के लिए मेरे लिखे हुए हैं और लेख तो मेरे ही लिखे हुए हैं। परन्तु पत्र कुछ मेरे तो कुछ दूसरों के लिखे हुए भी हैं। इसलिए सत्य को प्रकाश में लाने में पत्र व्यवहार का महत्व कुछ अधिक माना जा सकता है। जो हो, "अब तो बात फैल गई जाणे सब कोई।"

अन्तःप्रेरणया शास्त्रं संकलितं यथामति।
पठनादस्य सर्वेषां मङ्गलम् भवतात् सदा॥
